Chapter एक

राजा सुद्युम्न का स्त्री बनना

इस अध्याय में यह वर्णन हुआ है कि सुद्युम्न किस प्रकार स्त्री बना और किस तरह से वैवस्वत मनु का वंश चन्द्र से उद्धृत सोमवंश में घुलमिल गया।

महाराज परीक्षित की इच्छानुसार शुकदेव गोस्वामी ने वैवस्वत मनु के वंश के विषय में बतलाया जो पूर्वकाल में द्रविड़ का राजा सत्यव्रत था। इस वंश का वर्णन करते हुए उन्होंने यह भी बतलाया कि किस प्रकार प्रलय–जल में लेटे हुए भगवान् ने अपनी नाभि से उत्पन्न कमल से ब्रह्माजी को जन्म दिया और ब्रह्माजी के मन से मरीचि उत्पन्न हुआ जिसका पुत्र कश्यप था। कश्यप को अदिति के गर्भ से विवस्वान की प्राप्ति हुई जिसकी पत्नी संज्ञा के गर्भ से श्राद्धदेव मनु उत्पन्न हुआ। श्राद्धदेव की पत्नी श्रद्धा ने दस पुत्रों को जन्म दिया, जिनमें इक्ष्वाकु तथा नृग प्रमुख थे।

श्राद्धदेव या वैवस्वत मनु महाराज इक्ष्वाकु के पिता थे। पहले वे सन्तानहीन थे, किन्तु वसिष्ठ मुनि की कृपा से उन्होंने मित्र तथा वरुण को प्रसन्न करने के लिए एक यज्ञ किया। यद्यपि वैवस्वत मनु पुत्ररत्न चाहते थे, किन्तु उनकी पत्नी की इच्छानुसार उन्हें इला नामक पुत्री प्राप्त हुई। अतएव मनु पुत्री–प्राप्ति से सन्तुष्ट नहीं थे। फलस्वरूप वसिष्ठ मुनि ने मनु की तुष्टि के लिए इला को एक बालक में परिणत करने के लिए प्रार्थना की जिसे भगवान् ने स्वीकार कर लिया। अत: इला एक सुन्दर युवक हो गई जिसका नाम सुद्युम्न रखा गया।

एक बार सुद्युम्न अपने मंत्रियों के साथ शिकार पर गया। सुमेरु पर्वत की तलहटी पर सुकुमार नामक एक बन है जिसमें प्रविष्ट होते ही सभी लोग स्त्रियों में परिणत हो गये। जब महाराज परीक्षित ने इसका कारण पूछा तो शुकदेव गोस्वामी ने बतलाया कि सुद्युम्न ने स्त्री बनने के बाद किस प्रकार चन्द्रमा के पुत्र बुध को अपने पति के रूप में स्वीकार किया जिससे उसे पुरूरवा नामक पुत्र की प्राप्ति हुई। शिवजी की कृपा से सुद्युम्न को यह वर मिला कि वह एक मास तक स्त्री और एक मास तक पुरुष के रूप में रहेगा। इस प्रकार उसे अपना राज्य पुन: प्राप्त हो गया और उसे उत्कल, गय तथा विमल नामक तीन पुत्र प्राप्त हुए और वे तीनों परम धार्मिक निकले। तत्पश्चात् उसने अपना राज्य पुरूरवा को सौंप दिया और स्वयं वानप्रस्थ

आश्रम में चला गया।

श्रीराजोवाच
मन्वन्तराणि सर्वाणि त्वयोक्तानि श्रुतानि मे ।
वीर्याण्यनन्तवीर्यस्य हरेस्तत्र कृतानि च ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा परीक्षित ने कहा; मन्वन्तराणि—विभिन्न मनुओं के कालों के बारे में; सर्वाणि—समस्त; त्वया—तुम्हारे द्वारा; उक्तानि—वर्णन किये गये; श्रुतानि—सुने गये; मे—मेरे द्वारा; वीर्याणि—अद्भुत कार्यकलाप; अनन्त-वीर्यस्य—असीम बल वाले भगवान्; हरेः—हरि के; तत्र—उन मन्वन्तरों में; कृतानि—सम्पन्न; च—भी।

राजा परीक्षित ने कहा : हे प्रभु शुकदेव गोस्वामी, आप विभिन्न मनुओं के सारे कालों का विस्तार से वर्णन कर चुके हैं और उन कालों में असीम शक्तिशाली भगवान् के अद्भुत कार्यकलापों का भी वर्णन कर चुके हैं। मैं भाग्यशाली हूँ कि मैंने आपसे ये सारी बातें सुनीं।

योऽसौ सत्यव्रतो नाम राजर्षिर्द्रविडेश्वरः ।
ज्ञानं योऽतीतकल्पान्ते लेभे पुरुषसेवया ॥ २ ॥
स वै विवस्वतः पुत्रो मनुरासीदिति श्रुतम् ।
त्वत्तस्तस्य सुताः प्रोक्ता इक्ष्वाकुप्रमुखा नृपाः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

यः असौ—जो विख्यात था; सत्यव्रतः—सत्यव्रत; नाम—नामक; राज-ऋषिः—साधु राजा; द्रविड-ईश्वरः—द्रविड देश का शासक; ज्ञानम्—ज्ञान; यः—जो; अतीत-कल्प-अन्ते—अन्तिम मनु के काल के अन्त में या गत कल्प के अन्त में; लेभे—प्राप्त किया; पुरुष-सेवया—भगवान् की सेवा करके; सः—उसने; वै—निस्सन्देह; विवस्वतः—विवस्वान का; पुत्रः—पुत्र; मनुः आसीत्—वैवस्वत मनु हुआ; इति—इस प्रकार; श्रुतम्—मैंने सुना है; त्वत्तः—तुमसे; तस्य—उसके; सुताः—पुत्र; प्रोक्ताः—बताये जा चुके हैं; इक्ष्वाकु-प्रमुखाः—इक्ष्वाकु इत्यादि; नृपाः—अनेक राजा।

द्रविड़ देश के साधु राजा सत्यव्रत को भगवत्कृपा से गत कल्प के अन्त में आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त हुआ और वह अगले मन्वन्तर में विवस्वान का पुत्र वैवस्वत मनु बना। मुझे इसका ज्ञान आपसे प्राप्त हुआ है। मैं यह भी जानता हूँ कि इक्ष्वाकु इत्यादि राजा उसके पुत्र थे जैसा कि आप पहले बता चुके हैं।

तेषां वंशं पृथग्ब्रह्मन्वंशानुचरितानि च ।
कीर्तयस्व महाभाग नित्यं शुश्रूषतां हि नः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

तेषाम्—उन सारे राजाओं के; वंशम्—वंश को; पृथक्—अलग-अलग; ब्रह्मन्—हे महान् ब्राह्मण (शुकदेव गोस्वामी); वंश-अनुचरितानि च—तथा उनके वंश एवं गुण; कीर्तयस्व—कृपया कहिये; महा-भाग—हे परम भाग्यशाली; नित्यम्—नित्य; शुश्रूषताम्—आपकी सेवा में लगे हुओं का; हि—निस्सन्देह; नः—हम सबका।

हे परम भाग्यशाली शुकदेव गोस्वामी, हे महान् ब्राह्मण, कृपा करके हम सबको उन सारे राजाओं के वंशों तथा गुणों का पृथक्-पृथक् वर्णन कीजिये क्योंकि हम आपसे ऐसे विषयों को सुनने के लिए सदैव उत्सुक रहते हैं।

ये भूता ये भविष्याश्च भवन्त्यद्यतनाश्च ये ।
तेषां नः पुण्यकीर्तीनां सर्वेषां वद विक्रमान् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

ये—जो; भूताः—पहले प्रकट हुए हैं; ये—जो; भविष्याः—भविष्य में उत्पन्न होंगे; च—भी; भवन्ति—विद्यमान हैं; अद्यतनाः—इस समय; च—भी; ये—जो; तेषाम्—उन सब का; नः—हमको; पुण्य-कीर्तीनाम्—जो पवित्र तथा प्रसिद्ध थे; सर्वेषाम्—सबका; वद—कृपा करके बतायें; विक्रमान्—पराक्रम के बारे में।

कृपा करके हमें वैवस्वत मनु के वंश में उत्पन्न उन समस्त विख्यात राजाओं के पराक्रम के विषय में बतलायें जो पहले हो चुके हैं, जो भविष्य में होंगे तथा जो इस समय विद्यमान हैं।

श्रीसूत उवाच
एवं परीक्षिता राज्ञा सदसि ब्रह्मवादिनाम् ।
पृष्टः प्रोवाच भगवाञ्छुकः परमधर्मवित् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

श्री-सूतः उवाच—श्री सूत गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; परीक्षिता—महाराज परीक्षित द्वारा; राज्ञा—राजा द्वारा; सदसि—सभा में; ब्रह्म-वादिनाम्—वैदिक ज्ञान में पटु सभी सन्त पुरुषों की; पृष्टः—पूछे जाकर; प्रोवाच—उत्तर दिया; भगवान्—अत्यन्त शक्तिमान; शुकः—शुक गोस्वामी; परम-धर्म-वित्—धर्म के महान् पंडित।

सूत गोस्वामी ने कहा : जब वैदिक ज्ञान के पंडितों की सभा में परम धर्मज्ञ शुकदेव गोस्वामी से महाराज परीक्षित ने इस प्रकार प्रार्थना की तो वे इस प्रकार बोले।

श्रीशुक उवाच
श्रूयतां मानवो वंशः प्राचुर्येण परन्तप ।
न शक्यते विस्तरतो वक्तुं वर्षशतैरपि ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; श्रूयताम्—मुझसे सुनें; मानवः वंशः—मनु का वंश; प्राचुर्येण—विस्तार से; परन्तप—शत्रुओं का दमन करने वाले राजा; न—नहीं; शक्यते—समर्थ है; विस्तरतः—विस्तार से; वक्तुम्—कह पाना; वर्ष-शतैः अपि—सौ वर्षों में भी।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे शत्रुओं का दमन करने वाले राजा, अब तुम मुझसे मनु के वंश के विषय में विस्तार से सुनो। मैं यथासम्भव तुम्हें बतलाऊँगा यद्यपि सौ वर्षों में भी उसके विषय में पूरी तरह नहीं बतलाया जा सकता।

परावरेषां भूतानामात्मा यः पुरुषः परः ।
स एवासीदिदं विश्वं कल्पान्तेऽन्यन्न किञ्चन ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

पर-अवरेषाम्—जीवन के उच्च या निम्न स्तर के सारे जीवों का; भूतानाम्—भौतिक शरीर धारण करने वालों का (बद्धजीवों का); आत्मा—परमात्मा; यः—जो है; पुरुषः—परम पुरुष; परः—दिव्य; सः—वह; एव—निस्सन्देह; आसीत्—था; इदम्—यह; विश्वम्—ब्रह्माण्ड; कल्प-अन्ते—कल्प के अन्त में; अन्यत्—अन्यत्र; न—नहीं; किञ्चन—कुछ भी।

जीवन की उच्च तथा निम्न अवस्थाओं में पाये जाने वाले जीवों के परमात्मा दिव्य परम पुरुष कल्प के अन्त में विद्यमान थे जब न तो यह ब्रह्माण्ड था, न अन्य कुछ था। केवल वे ही विद्यमान थे।

तात्पर्य : मनु के वंश को कहाँ से प्रारम्भ किया जाय, इस दृष्टि से शुकदेव गोस्वामी यह कहते हुए प्रारम्भ करते हैं कि जब सारा विश्व जलमग्न हो जाता है तो केवल भगवान् विद्यमान रहते हैं, उनके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं रहता। अब शुकदेव गोस्वामी यह बतायेंगे कि भगवान् एक-एक करके अन्य वस्तुओं को किस तरह उत्पन्न करते हैं।

तस्य नाभेः समभवत्पद्मकोषो हिरण्मयः ।
तस्मिञ्जज्ञे महाराज स्वयम्भूश्चतुराननः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसकी (भगवान् की); नाभेः—नाभि से; समभवत्—उत्पन्न हुआ; पद्म-कोषः—कमल; हिरण्मयः—सुनहला या हिरण्मय नामक; तस्मिन्—उस सुनहले कमल पर; जज्ञे—प्रकट हुआ; महाराज—हे राजा; स्वयम्भूः—माता के बिना उत्पन्न होने वाला, या अपने आप प्रकट होने वाला; चतुः-आननः—चार मुखों वाला।

हे राजा परीक्षित, भगवान् की नाभि से एक सुनहला कमल उत्पन्न हुआ जिस पर चार मुखों वाले ब्रह्माजी ने जन्म लिया।

मरीचिर्मनसस्तस्य जज्ञे तस्यापि कश्यपः ।
दाक्षायण्यां ततोऽदित्यां विवस्वानभवत्सुतः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

मरीचिः—मरीचि नामक महान् सन्त ने; मनसः तस्य—ब्रह्माजी के मन से; जज्ञे—जन्म लिया; तस्य अपि—मरीचि से; कश्यपः—कश्यप ने (जन्म लिया); दाक्षायण्याम्—महाराज दक्ष की कन्या के गर्भ से; ततः—तत्पश्चात्; अदित्याम्—अदिति के गर्भ से; विवस्वान्—विवस्वान; अभवत्—हुआ; सुतः—पुत्र।

ब्रह्माजी के मन से मरीचि ने जन्म लिया और मरीचि के वीर्य तथा दक्ष महाराज की कन्या के गर्भ से कश्यप प्रकट हुए। कश्यप द्वारा अदिति के गर्भ से विवस्वान ने जन्म लिया।

ततो मनुः श्राद्धदेवः संज्ञायामास भारत ।
श्रद्धायां जनयामास दश पुत्रान्स आत्मवान् ॥ ११ ॥
इक्ष्वाकुनृगशर्यातिदिष्टधृष्टकरूषकान् ।
नरिष्यन्तं पृषध्रं च नभगं च कविं विभुः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

ततः—विवस्वान से; मनुः श्राद्धदेवः—श्राद्धदेव नामक मनु ने; संज्ञायाम्—विवस्वान की पत्नी संज्ञा के गर्भ से; आस—उत्पन्न हुआ; भारत—हे भारत वंश में श्रेष्ठ; श्रद्धायाम्—श्राद्धदेव की पत्नी श्रद्धा के गर्भ से; जनयाम् आस—जन्म दिया; दश—दस; पुत्रान्—पुत्रों को; सः—श्राद्धदेव ने; आत्मवान्—इन्द्रियों को जीतकर; इक्ष्वाकु-नृग-शर्याति-दिष्ट-धृष्ट-करूषकान्—इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, धृष्ट तथा करूषक को; नरिष्यन्तम्—नरिष्यन्त; पृषध्रम् च—तथा पृषध्र; नभगम् च—तथा नभग; कविम्—कवि को; विभुः—महान।

हे भारतवंश के श्रेष्ठ राजा, संज्ञा के गर्भ से विवस्वान को श्राद्धदेव मनु प्राप्त हुए। श्राद्धदेव मनु ने अपनी इन्द्रियों को जीत लिया था। उन्हें अपनी पत्नी श्रद्धा के गर्भ से दस पुत्र प्राप्त हुए। इन पुत्रों के नाम थे—इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, धृष्ट, करूषक, नरिष्यन्त, पृषध्र, नभग तथा कवि।

अप्रजस्य मनोः पूर्वं वसिष्ठो भगवान्किल ।
मित्रावरुणयोरिष्टिं प्रजार्थमकरोद्विभुः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

अप्रजस्य—निःसन्तान; मनोः—मनु के; पूर्वम्—पहले; वसिष्ठः—मुनि वसिष्ठ; भगवान्—शक्तिशाली; किल—निस्सन्देह; मित्रा-वरुणयोः—मित्र तथा वरुण नामक देवताओं का; इष्टिम्—यज्ञ; प्रजा-अर्थम्—पुत्र प्राप्ति के लिए; अकरोत्—सम्पन्न किया; विभुः—महापुरुष ने।

आरम्भ में मनु के एक भी पुत्र नहीं था। अतएव उसे पुत्रप्राप्ति के लिए आध्यात्मिक ज्ञान में अत्यन्त शक्तिशाली मुनि वसिष्ठ ने मित्र तथा वरुण देवताओं को प्रसन्न करने के लिए एक यज्ञ सम्पन्न किया।

तत्र श्रद्धा मनोः पत्नी होतारं समयाचत ।
दुहित्रर्थमुपागम्य प्रणिपत्य पयोव्रता ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

तत्र—उस यज्ञ में; श्रद्धा—श्रद्धा ने; मनोः—मनु की; पत्नी—पत्नी; होतारम्—यज्ञ करने वाले पुरोहित से; समयाचत—ठीक से भीख माँगी; दुहितृ-अर्थम्—एक पुत्री के लिए; उपागम्य—पास आकर; प्रणिपत्य—प्रणाम करके; पयः-व्रता—पयोव्रत करने वाली, केवल दूध पीने का व्रत रखने वाली।

उस यज्ञ के दौरान मनु की पत्नी श्रद्धा, जो केवल दूध पीकर जीवित रहने का व्रत कर रही थी, यज्ञ कराने वाले पुरोहित के निकट आई, उसे प्रणाम किया और उससे एक पुत्री की याचना की।

प्रेषितोऽध्वर्युणा होता व्यचरत्तत्समाहितः ।
गृहीते हविषि वाचा वषट्कारं गृणन्द्विजः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

प्रेषितः—यज्ञ करने को कहे जाने पर; अध्वर्युणा—ऋत्विक द्वारा; होता—आहुति डालने वाले पुरोहित ने; व्यचरत्—सम्पन्न किया; तत्—वह (यज्ञ); समाहितः—ध्यानपूर्वक; गृहीते हविषि—पहली आहुति के लिए घी लेने पर; वाचा—मंत्रोच्चार द्वारा; वषट्-कारम्—वषट् शब्द से प्रारम्भ होने वाले मंत्र को; गृणन्—उच्चारण करते हुए; द्विजः—ब्राह्मण ने।

प्रधान पुरोहित द्वारा यह कहे जाने पर "अब आहुति डालो" आहुति डालने वाले (होता) ने आहुति डालने के लिए घी लिया। तब उसे मनु की पत्नी की याचना स्मरण हो आई और उसने 'वषट्' शब्दोच्चार करते हुए यज्ञ सम्पन्न किया।

होतुस्तद्व्यभिचारेण कन्येला नाम साभवत् ।
तां विलोक्य मनुः प्राह नातितुष्टमना गुरुम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

होतुः—पुरोहित के; तत्—यज्ञ के; व्यभिचारेण—उल्लंघनपूर्ण कर्म से; कन्या—पुत्री; इला—इला; नाम—नामक; सा—वह कन्या; अभवत्—उत्पन्न हुई; ताम्—उसको; विलोक्य—देखकर; मनुः—मनु; प्राह—बोला; न—नहीं; अतितुष्टमनाः—अत्यधिक तुष्ट; गुरुम्—अपने गुरु से।

मनु ने वह यज्ञ पुत्रप्राप्ति के लिए प्रारम्भ किया था, किन्तु मनु की पत्नी के अनुरोध पर पुरोहित के विपथ होने से इला नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई। इस पुत्री को देखकर मनु बिल्कुल प्रसन्न नहीं हुए। अतएव वे अपने गुरु वसिष्ठ से इस प्रकार बोले।

तात्पर्य : चूँकि मनु के कोई सन्तान न थी अतएव वे सन्तान के जन्म लेने पर प्रसन्न हुए, यद्यपि वह कन्या थी और उन्होंने उसका नाम इला रखा। किन्तु बाद में वे पुत्र के बजाय पुत्री को पाकर अधिक संतुष्ट नहीं थे। चूँकि वे निःसन्तान थे अतएव इला के जन्म पर अत्यन्त प्रसन्न तो थे लेकिन उनका हर्ष क्षणिक था।

भगवन्किमिदं जातं कर्म वो ब्रह्मवादिनाम् ।
विपर्ययमहो कष्टं मैवं स्याद्ब्रह्मविक्रिया ॥ १७॥

शब्दार्थ

भगवन्—हे प्रभु; किम् इदम्—यह क्या है; जातम्—उत्पन्न हुआ; कर्म—सकाम कर्म; वः—हम सभी; ब्रह्म-वादिनाम्—वैदिक मंत्रों के उच्चारण में पटु आप लोगों का; विपर्ययम्—विचलन; अहो—ओह; कष्टम्—कष्टप्रद; मा एवम् स्यात्—इस तरह नहीं होना चाहिए था; ब्रह्म-विक्रिया—वेद मंत्रों का यह विपरीत प्रभाव।

हे प्रभु, आप लोग वैदिक मंत्रों के उच्चारण में पटु हैं। तो फिर वांछित फल से विपरीत फल क्यों निकला? यही पश्चात्ताप का विषय है। वैदिक मंत्रों का ऐसा उल्टा प्रभाव नहीं होना चाहिए था।

तात्पर्य : इस युग में यज्ञ करना मना है क्योंकि कोई भी व्यक्ति वेद-मंत्रों का ठीक से उच्चारण नहीं कर सकता। यदि वैदिक मंत्रों का ठीक से उच्चारण किया जाय तो जिस इच्छा से यज्ञ किया जाता है उसकी पूर्ति अवश्य होती है। इसीलिए हरे कृष्ण उच्चारण महामंत्र कहलाता है जो अन्य समस्त वैदिक मंत्रों से बढ़ चढ़ कर है क्योंकि हरे कृष्ण महामंत्र के उच्चारण मात्र से अनेक लाभ होते हैं। जैसा कि श्रीचैतन्य महाप्रभु ने बतलाया है (शिक्षाष्टक१)—

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापनं

श्रेय:कैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम्।

आनन्दाम्बुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं

सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम्॥

"श्रीकृष्ण संकीर्तन की जय हो जो वर्षों से हृदय में जमी धूल को स्वच्छ करता है और बार-बार जन्म-मरण के बद्धजीवन की अग्नि को शमन करता है। यह संकीर्तन आंदोलन मानवता के लिए मूल वरदान है क्योंकि यह वरदान रूपी चन्द्रमा की किरणों को बिखेरता है। यह समस्त दिव्य ज्ञान का जीवन है। यह दिव्य आनन्द के सागर को बढ़ाता है और हमें उस अमृत को चखने में समर्थ बनाता है जिसके लिए हम सभी सदैव लालायित रहते हैं।"

अतएव हमें जिस सर्वश्रेष्ठ यज्ञ को सम्पन्न करना है वह है *संकीर्तन यज्ञ। यज्ञै संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधस:* (*भागवत* ११.५.३२)। जो लोग बुद्धिमान हैं वे इस युग में हरे कृष्ण महामंत्र का सामूहिक कीर्तन करके महानतम यज्ञ का लाभ उठाते हैं। जब हरे कृष्ण मंत्र का कीर्तन कई पुरुष मिलकर करते हैं तो यह संकीर्तन कहलाता है। ऐसे यज्ञ के प्रभाव से आकाश में बादल आ जाएँगे (*यज्ञाद् भवति पर्जन्य:*)। दुर्भिक्ष

के इन दिनों में मात्र हरे कृष्ण यज्ञ की विधि से लोग वर्षा तथा अन्न के अभाव से छुटकारा पा सकते हैं। निस्सन्देह इससे सारे मानव समाज को राहत मिल सकती है। अधुना सारे यूरोप तथा अमेरिका में दुर्भिक्ष है और लोग कष्ट उठा रहे हैं, किन्तु यदि लोग इस कृष्णभावनामृत आन्दोलन को गम्भीरतापूर्वक ग्रहण करें, यदि वे अपने पापकर्म बन्द कर दें और हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन करें तो उनकी सारी समस्याएँ आसानी से सुलझ जायँ। यज्ञ की अन्य विधियों में तरह-तरह की कठिनाइयाँ आती हैं क्योंकि न तो ऐसे पण्डित हैं जो मंत्रों का ठीक से उच्चारण कर सकें, न ही यज्ञ सम्पन्न करने की सामग्री प्राप्त कर पाना सम्भव है। चूँकि मानव समाज दरिद्र है और लोग वैदिक ज्ञान एवं वैदिक मंत्रों के उच्चारण करने की शक्ति से वंचित हैं अतएव हरे कृष्ण महामंत्र ही एकमात्र आश्रय है। लोगों को इसका कीर्तन करने की बुद्धिमानी बरतनी चाहिए। *यज्ञै संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः*। जिनके मस्तिष्क कुन्द हैं वे न तो इस कीर्तन को समझ सकते हैं, न ही इसे ग्रहण कर सकते हैं।

यूयं ब्रह्मविदो युक्तास्तपसा दग्धकिल्बिषाः ।
कुतः सङ्कल्पवैषम्यमनृतं विबुधेष्विव ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

यूयम्—**तुम सभी**; **ब्रह्म-विदः**—**परम सत्य से भलीभाँति परिचित**; **युक्ताः**—**संयमित**; **तपसा**—**तपस्या के द्वारा**; **दग्ध-किल्बिषाः**—**जिनके सारे भौतिक कल्मष जल चुके हैं**; **कुतः**—**तब कैसे**; **सङ्कल्प-वैषम्यम्**—**संकल्प में त्रुटि**; **अनृतम्**—**झूठा वादा, झूठा कथन**; **विबुधेषु**—**देवताओं के समाज में**; **इव**—**अथवा**।

तुम सभी संयमित, संतुलित तथा परम सत्य से परिचित हो। तुम सबने अपनी तपस्याओं के द्वारा सारे भौतिक कल्मष से अपने को पूरी तरह स्वच्छ कर लिया है। तुम सबके वचन देवताओं के वचनों की तरह कभी मिथ्या नहीं होते। तो फिर यह कैसे सम्भव हुआ कि तुम सबका संकल्प विफल हो गया?

तात्पर्य : अनेक वैदिक ग्रंथों से यह पता चलता है कि देवताओं द्वारा दिया गया वरदान या शाप कभी झूठा नहीं होता। तपस्या करने, इन्द्रियों तथा मन को संयमित करने एवं परम सत्य का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने से मनुष्य का सारा भौतिक कल्मष जाता रहता है। तब उसके वचन तथा आशीर्वाद देवताओं की तरह कभी विफल नहीं होते।

निशम्य तद्वचस्तस्य भगवान्प्रपितामहः ।
होतुर्व्यतिक्रमं ज्ञात्वा बभाषे रविनन्दनम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

निशम्य—सुनकर; तत् वचः—वे शब्द; तस्य—उसके (मनु के); भगवान्—अत्यन्त शक्तिशाली; प्रपितामहः—बाबा के बाबा वसिष्ठ; होतुः व्यतिक्रमम्—होता की त्रुटि; ज्ञात्वा—जानकर; बभाषे—बोला; रवि-नन्दनम्—सूर्यपुत्र वैवस्वत मनु से।

मनु के इन वचनों को सुनकर अत्यन्त शक्तिशाली प्रपितामह वसिष्ठ होता की त्रुटि को समझ गये। अत: वे सूर्यपुत्र से इस प्रकार बोले।

एतत्सङ्कल्पवैषम्यं होतुस्ते व्यभिचारतः ।
तथापि साधयिष्ये ते सुप्रजास्त्वं स्वतेजसा ॥ २० ॥

शब्दार्थ

एतत्—यह; सङ्कल्प-वैषम्यम्—लक्ष्य में त्रुटि; होतुः—होता की; ते—तुम्हारे; व्यभिचारतः—निर्दिष्ट प्रयोजन से हटने के कारण; तथा अपि—फिर भी; साधयिष्ये—मैं सम्पन्न करूँगा; ते—तुम्हारा; सु-प्रजास्त्वम्—अत्यन्त सुन्दर पुत्र; स्व-तेजसा—अपने निजी पराक्रम से।

लक्ष्य में यह त्रुटि तुम्हारे पुरोहित द्वारा मूल उद्देश्य में विचलन के कारण हुई है। फिर भी मैं अपने पराक्रम से तुम्हें एक अच्छा पुत्र प्रदान करूँगा।

एवं व्यवसितो राजन्भगवान्स महायशाः ।
अस्तौषीदादिपुरुषमिलायाः पुंस्त्वकाम्यया ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; व्यवसितः—निश्चित करते हुए; राजन्—हे राजा परीक्षित; भगवान्—अत्यन्त शक्तिमान; सः—वसिष्ठ; महा-यशाः—अत्यन्त प्रसिद्ध; अस्तौषीत्—प्रार्थना की; आदि-पुरुषम्—परम पुरुष भगवान् विष्णु से; इलायाः—इला का; पुंस्त्व-काम्यया—पुरुष में परिणत करने के लिए।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजा परीक्षित, अत्यन्त प्रसिद्ध एवं शक्तिशाली वसिष्ठ ने यह निर्णय लेने के बाद परम पुरुष भगवान् विष्णु से इला को पुरुष में परिणत करने के लिए प्रार्थना की।

तस्मै कामवरं तुष्टो भगवान्हरिरीश्वरः ।
ददाविलाभवत्तेन सुद्युम्नः पुरुषर्षभः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

तस्मै—उसको (वसिष्ठ को); काम-वरम्—इच्छित वरदान; तुष्टः—प्रसन्न होकर; भगवान्—भगवान्; हरिः ईश्वरः—परम नियन्ता भगवान् ने; ददौ—दिया; इला—इला नामक कन्या; अभवत्—हो गई; तेन—इस वरदान से; सुद्युम्नः—सुद्युम्न नामक; पुरुष-ऋषभः—सुन्दर पुरुष।

परम नियन्ता भगवान् ने वसिष्ठ से प्रसन्न होकर उन्हें इच्छित वरदान दिया। इस तरह इला सुद्युम्न नामक एक सुन्दर पुरुष में परिणत हो गई।

स एकदा महाराज विचरन्मृगयां वने ।
वृतः कतिपयामात्यैरश्वमारुह्य सैन्धवम् ॥ २३ ॥
प्रगृह्य रुचिरं चापं शरांश्च परमाद्भुतान् ।
दंशितोऽनुमृगं वीरो जगाम दिशमुत्तराम् ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

सः—सुद्युम्न; एकदा—एक बार; महाराज—हे राजा परीक्षित; विचरन्—भ्रमण करते हुए; मृगयाम्—शिकार करने के लिए; वने—जंगल में; वृतः—साथ होकर; कतिपय—कुछ; अमात्यैः—मंत्रियों या पार्षदों के द्वारा; अश्वम्—घोड़े पर; आरुह्य—चढ़कर; सैन्धवम्—सिन्धु प्रदेश में उत्पन्न; प्रगृह्य—हाथ में पकड़कर; रुचिरम्—सुन्दर; चापम्—धनुष; शरान् च—तथा बाण; परम-अद्भुतान्—अत्यन्त अद्भुत, असामान्य; दंशितः—कवच धारण किये; अनुमृगम्—पशुओं के पीछे; वीरः—वीर; जगाम—गया; दिशम् उत्तराम्—उत्तर दिशा की ओर।

हे राजा परीक्षित, एक बार वीर सुद्युम्न अपने कुछ मंत्रियों के साथ सिन्धुप्रदेश से लाये गये घोड़े पर चढ़कर शिकार करने के लिए जंगल में गया। वह कवच पहने था और धनुष-बाण से सुशोभित था। वह अत्यन्त सुन्दर था। वह पशुओं का पीछा करते तथा उनको मारते हुए जंगल के उत्तरी भाग में पहुँच गया।

सुकुमारवनं मेरोरधस्तात्प्रविवेश ह ।
यत्रास्ते भगवाञ्छर्वो रममाणः सहोमया ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

सुकुमार-वनम्—सुकुमार नामक वन में; मेरोः अधस्तात्—मेरु पर्वत की तलहटी में; प्रविवेश ह—प्रविष्ट हुआ; यत्र—जहाँ; आस्ते—था; भगवान्—अत्यन्त शक्तिशाली (देवता); शर्वः—शिवजी; रममाणः—रमण में तल्लीन; सह उमया—अपनी पत्नी उमा के साथ।

वहाँ उत्तर में मेरु पर्वत की तलहटी में सुकुमार नामक एक वन है जहाँ शिवजी सदैव उमा के साथ विहार करते हैं। सुद्युम्न उसी वन में प्रविष्ट हुआ।

तस्मिन्प्रविष्ट एवासौ सुद्युम्नः परवीरहा ।
अपश्यत्स्त्रियमात्मानमश्वं च वडवां नृप ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

तस्मिन्—उस वन में; प्रविष्टः—प्रविष्ट होने पर; एव—निस्सन्देह; असौ—वह; सुद्युम्नः—राजकुमार सुद्युम्न; पर-वीर-हा—अपने शत्रुओं को दमन करने वाले; अपश्यत्—देखा; स्त्रियम्—स्त्री; आत्मानम्—अपनेआपको; अश्वम् च—तथा अपने घोड़े को; वडवाम्—घोड़ी में; नृप—हे राजा परीक्षित।

हे राजा परीक्षित, ज्यों ही अपने शत्रुओं को दमन करने में निपुण सुद्युम्न उस जंगल में प्रविष्ट हुआ त्यों ही उसने देखा कि वह एक स्त्री में और उसका घोड़ा एक घोड़ी में परिणत हो गया है।

तथा तदनुगाः सर्वे आत्मलिङ्गविपर्ययम् ।
दृष्ट्वा विमनसोऽभूवन्वीक्षमाणाः परस्परम् ॥ २७॥

शब्दार्थ

तथा—उसी तरह; तत्-अनुगाः—सुद्युम्न के साथी; सर्वे—सारे; आत्म-लिङ्ग-विपर्ययम्—विपरीत लिंग में रूपान्तर; दृष्ट्वा—देखकर; विमनसः—खिन्न; अभूवन्—वे हो गये; वीक्षमाणाः—देखते हुए; परस्परम्—एक दूसरे को।

जब उसके साथियों ने भी अपने स्वरूपों एवं अपने लिंग को विपर्यस्त देखा तो वे सभी अत्यन्त खिन्न हो उठे और एक दूसरे की ओर देखने लगे।

श्रीराजोवाच
कथमेवं गुणो देशः केन वा भगवन्कृतः ।
प्रश्नमेनं समाचक्ष्व परं कौतूहलं हि नः ॥ २८॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—महाराज परीक्षित ने कहा; कथम्—कैसे; एवम्—यह; गुणः—गुण; देशः—देश; केन—क्यों; वा—अथवा; भगवन्—हे शक्तिशाली; कृतः—किया गया; प्रश्नम्—प्रश्न; एनम्—यह; समाचक्ष्व—बतलाइये; परम्—अत्यधिक; कौतूहलम्—उत्सुकता; हि—निस्सन्देह; नः—हमारी।

महाराज परीक्षित ने कहा : हे परम शक्तिशाली ब्राह्मण, यह स्थान इतना शक्तिवान क्यों था और इसे किसने इतना शक्तिशाली बनाया था? कृपा करके इस प्रश्न का उत्तर दीजिये क्योंकि मैं इसके विषय में जानने के लिए अत्यधिक उत्सुक हूँ।

श्रीशुक उवाच
एकदा गिरिशं द्रष्टुमृषयस्तत्र सुव्रताः ।
दिशो वितिमिराभासाः कुर्वन्तः समुपागमन् ॥ २९॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एकदा—एक बार; गिरिशम्—शिवजी को; द्रष्टुम्—देखने के लिए; ऋषयः—ऋषिगण; तत्र—उस जंगल में; सु-व्रताः—आध्यात्मिक शक्ति में अत्यन्त बढ़े-चढ़े; दिशः—सारी दिशाएँ; वितिमिर-आभासाः—सारे अंधकार के साफ हो जाने पर; कुर्वन्तः—करते हुए; समुपागमन्—आये।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : एक बार आध्यात्मिक अनुष्ठानों का कठोरता से पालन करने वाले बड़े-बड़े साधु पुरुष उस जंगल में शिवजी का दर्शन करने आये। उन सबके तेज से सारी दिशाओं

का सारा अंधकार दूर हो गया।

तान्विलोक्याम्बिका देवी विवासा व्रीडिता भृशम् ।
भर्तुरङ्कात्समुत्थाय नीवीमाश्वथ पर्यधात् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

तान्—उन साधुपुरुषों को; विलोक्य—देखकर; अम्बिका—माता दुर्गा; देवी—देवी; विवासा—नग्न होने के कारण; व्रीडिता—लज्जित; भृशम्—अत्यधिक; भर्तुः—अपने पति की; अङ्कात्—गोद से; समुत्थाय—उठकर; नीवीम्—वक्षस्थल; आशु अथ—तुरन्त ही; पर्यधात्—वस्त्र से ढक लिया।

जब देवी अम्बिका ने इन साधु पुरुषों को देखा तो वे अत्यधिक लज्जित हुईं क्योंकि उस समय वे नग्न थीं। वे तुरन्त अपने पति की गोद से उठ गईं और अपने वक्षस्थल को ढकने का प्रयास करने लगीं।

ऋषयोऽपि तयोर्वीक्ष्य प्रसङ्गं रममाणयोः ।
निवृत्ताः प्रययुस्तस्मान्नरनारायणाश्रमम् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

ऋषयः—सारे साधु पुरुष; अपि—भी; तयोः—उन दोनों की; वीक्ष्य—देखकर; प्रसङ्गम्—रति क्रीड़ा में; रममाणयोः—लगे हुए; निवृत्ताः—आगे जाने से हिचके; प्रययुः—तुरन्त विदा हो गये; तस्मात्—उस स्थान से; नर-नारायण-आश्रमम्—नर नारायण के आश्रम को।

शिवजी तथा पार्वती को काम-क्रीड़ा में संलग्न देखकर सारे साधु पुरुष तुरन्त ही आगे जाने से रुक गये और उन्होंने नर-नारायण के आश्रम के लिए प्रस्थान किया।

तदिदं भगवानाह प्रियायाः प्रियकाम्यया ।
स्थानं यः प्रविशेदेतत्स वै योषिद्भवेदिति ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

तत्—क्योंकि; इदम्—यह; भगवान्—शिवजी ने; आह—कहा; प्रियायाः—अपनी प्रिय पत्नी के; प्रिय-काम्यया—आनन्द के लिए; स्थानम्—स्थान; यः—जो कोई; प्रविशेत्—प्रवेश करेगा; एतत्—यहाँ; सः—वह व्यक्ति; वै—निस्सन्देह; योषित्—स्त्री; भवेत्—हो जायेगा; इति—इस प्रकार।

तत्पश्चात् अपनी पत्नी को प्रसन्न करने के लिए शिवजी ने कहा, ''इस स्थान में प्रवेश करते ही पुरुष तुरन्त स्त्री बन जायेगा।''

तत ऊर्ध्वं वनं तद्वै पुरुषा वर्जयन्ति हि ।

सा चानुचरसंयुक्ता विचचार वनाद्वनम् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

ततः ऊर्ध्वम्—उस समय के बाद से; **वनम्**—जंगल में; **तत्**—उस; **वै**—विशेष रूप से; **पुरुषाः**—पुरुष-गण; **वर्जयन्ति**—नहीं प्रवेश करते; **हि**—निस्सन्देह; **सा**—स्त्री रूप में सुद्युम्न; **च**—भी; **अनुचर-संयुक्ता**—अपने साथियों के साथ; **विचचार**—घूमने गया; **वनात् वनम्**—एक जंगल से दूसरे में।

उस काल से कोई भी पुरुष उस जंगल में नहीं घुसा। किन्तु अब स्त्री रूप में परिणत होकर राजा सुद्युम्न अपने साथियों समेत एक जंगल से दूसरे जंगल में घूमने लगा।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (२.२२) में कहा गया है—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय

नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्य-

न्यानि संयाति नवानि देही॥

"जिस प्रकार मनुष्य अपने पुराने वस्त्रों को त्यागकर नये वस्त्र धारण करता है उसी प्रकार आत्मा पुराने तथा व्यर्थ के शरीरों को त्यागकर नवीन देहें धारण करता है।"

यह शरीर वस्त्र की भाँति है और यहाँ पर इसे सिद्ध किया गया है। सुद्युम्न तथा उसके साथी नर (पुरुष) थे जिसका अर्थ है कि उनकी आत्माएँ नर वस्त्र से ढकी थीं, किन्तु अब वे स्त्रियाँ हो गई थीं जिसका अर्थ है कि उनका वस्त्र बदला था, किन्तु आत्मा वही रही। कहा जाता है कि आधुनिक चिकित्सा से नर को नारी में और नारी को नर में परिणत किया जा सकता है। किन्तु शरीर का आत्मा से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। शरीर तो इसी जीवन में या अगले जीवन में बदला जा सकता है। अतएव जिस व्यक्ति को आत्मा का और एक शरीर से दूसरे शरीर में आत्मा के देहान्तरण का ज्ञान है वह वस्त्ररूपी शरीर के प्रति कोई ध्यान नहीं देता। *पण्डिताः समदर्शिनः*। ऐसा व्यक्ति परमात्मा के अंश स्वरूप आत्मा का दर्शन करता है। इसीलिए वह समदर्शी अर्थात् विद्वान व्यक्ति है।

अथ तामाश्रमाभ्याशे चरन्तीं प्रमदोत्तमाम् ।
स्त्रीभिः परिवृतां वीक्ष्य चकमे भगवान्बुधः ॥ ३४॥

शब्दार्थ

अथ—इस तरह; ताम्—उसको; आश्रम-अभ्याशे—अपने आश्रम के निकट; चरन्तीम्—विचरण करती; प्रमदा-उत्तमाम्—कामोत्तेजना को जागृत करने वाली श्रेष्ठ सुन्दरी; स्त्रीभिः—अन्य स्त्रियों द्वारा; परिवृताम्—घिरी हुई; वीक्ष्य—देखकर; चकमे—कामेच्छा की; भगवान्—अत्यन्त शक्तिशाली; बुधः—चन्द्रमा का पुत्र बुध तथा बुधलोक का प्रधान देवता।

सुद्युम्न परम सुन्दर स्त्री में परिणत कर दिया गया था जो कामेच्छा को जगाने वाली थी और अन्य स्त्रियों से घिरी हुई थी। चन्द्रमा के पुत्र बुध ने इस सुन्दरी को अपने आश्रम के निकट विचरण करते देखकर उसके साथ संभोग करने की इच्छा प्रकट की।

सापि तं चकमे सुभ्रूः सोमराजसुतं पतिम् ।
स तस्यां जनयामास पुरूरवसमात्मजम् ॥ ३५॥

शब्दार्थ

सा—सुद्युम्न जो स्त्री के रूप में था; अपि—भी; तम्—उसके साथ (बुध के साथ); चकमे—संभोग करना चाहा; सु-भ्रूः—परम सुन्दरी; सोमराज-सुतम्—चन्द्रमा के राजकुमार के साथ; पतिम्—अपने पति रूप में; सः—वह (बुध); तस्याम्—उसके गर्भ से; जनयाम् आस—उत्पन्न किया; पुरूरवसम्—पुरूरवा नामक; आत्म-जम्—पुत्र को।

उस सुन्दर स्त्री ने भी चन्द्रमा के राजकुमार बुध को अपना पति बनाना चाहा। इस तरह बुध ने उसके गर्भ से पुरूरवा नामक एक पुत्र उत्पन्न किया।

एवं स्त्रीत्वमनुप्राप्तः सुद्युम्नो मानवो नृपः ।
सस्मार स कुलाचार्यं वसिष्ठमिति शुश्रुम ॥ ३६॥

शब्दार्थ

एवम्—इस तरह; स्त्रीत्वम्—स्त्रीत्व; अनुप्राप्तः—प्राप्त करके; सुद्युम्नः—सुद्युम्न नामक पुरुष ने; मानवः—मनु पुत्र; नृपः—राजा ने; सस्मार—स्मरण किया; सः—उसने; कुल-आचार्यम्—कुलगुरु को; वसिष्ठम्—अत्यन्त शक्तिशाली वसिष्ठ; इति शुश्रुम—ऐसा मैंने (विश्वस्त सूत्रों से) सुना है।

मैंने विश्वस्त सूत्रों से सुना है कि मनु-पुत्र सुद्युम्न ने इस प्रकार स्त्रीत्व प्राप्त करके अपने कुलगुरु वसिष्ठ का स्मरण किया।

स तस्य तां दशां दृष्ट्वा कृपया भृशपीडितः ।
सुद्युम्नस्याशयन्पुंस्त्वमुपाधावत शङ्करम् ॥ ३७॥

शब्दार्थ

सः—वह; तस्य—सुद्युम्न की; ताम्—उस; दशाम्—दशा को; दृष्ट्वा—देखकर; कृपया—कृपा करके; भृश-पीडितः—अत्यधिक दुखी; सुद्युम्नस्य—सुद्युम्न की; आशयन्—इच्छा; पुंस्त्वम्—पुरुषत्व; उपाधावत—पूजा करने लगा; शङ्करम्—शिवजी को।

सुद्युम्न की इस शोचनीय स्थिति को देखकर वसिष्ठ अत्यधिक दुखी हुए। उन्होंने सुद्युम्न को उसका पुरुषत्व वापस दिलाने की इच्छा से शिवजी की पूजा करनी फिर प्रारम्भ कर दी।

तुष्टस्तस्मै स भगवानृषये प्रियमावहन् ।
स्वां च वाचमृतां कुर्वन्निदमाह विशाम्पते ॥ ३८ ॥
मासं पुमान्स भविता मासं स्त्री तव गोत्रजः ।
इत्थं व्यवस्थया कामं सुद्युम्नोऽवतु मेदिनीम् ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

तुष्टः—प्रसन्न होकर; तस्मै—वसिष्ठ को; सः—उसने (शिवजी ने); भगवान्—अत्यन्त शक्तिशाली; ऋषये—ऋषि को; प्रियम् आवहन्—उसे प्रसन्न करने के लिए; स्वाम् च—अपने; वाचम्—शब्द को; ऋताम्—सत्य; कुर्वन्—करने के लिए; इदम्—यह; आह—कहा; विशाम्पते—हे राजा परीक्षित; मासम्—एक महीना; पुमान्—पुरुष; सः—सुद्युम्न; भविता—बन जायेगा; मासम्—दूसरे महीने में; स्त्री—स्त्री; तव—तुम्हारी; गोत्र-जः—तुम्हारी परम्परा में उत्पन्न शिष्य; इत्थम्—इस तरह; व्यवस्थया—समझौते से; कामम्—इच्छानुसार; सुद्युम्नः—राजा सुद्युम्न; अवतु—शासन कर सकता है; मेदिनीम्—जगत पर।

हे राजा परीक्षित, शिवजी वसिष्ठ पर प्रसन्न हो गए। अतएव शिवजी ने उन्हें तुष्ट करने तथा पार्वती को दिये गये अपने वचन रखने के उद्देश्य से उस सन्त पुरुष से कहा, ''आपका शिष्य सुद्युम्न एक मास तक नर रहेगा और दूसरे मास स्त्री रहेगा। इस तरह वह इच्छानुसार जगत पर शासन कर सकेगा।''

तात्पर्य : इस प्रसंग में *गोत्रजः* शब्द महत्त्वपूर्ण है। ब्राह्मण लोग सामान्यतया दो कुलों के गुरु होते हैं। एक कुल उनकी शिष्य परम्परा होता है और दूसरा उनके वीर्य से उत्पन्न कुल होता है। दोनों ही वंशज एक ही गोत्र से सम्बन्धित होते हैं। वैदिक प्रणाली में कभी-कभी देखा जाता है कि एक ही ऋषि की शिष्य-परम्परा में ब्राह्मण तथा क्षत्रिय दोनों पाये जाते हैं और कभी-कभी तो वैश्य तक पाये जाते हैं। चूँकि गोत्र तथा कुल एक हैं अतएव शिष्य तथा वीर्य से उत्पन्न कुल में कोई अन्तर नहीं होता। आज भी वही प्रणाली भारतीय समाज में चल रही है, विशेष रूप से विवाह में गोत्र की गणना की जाती है। यहाँ पर *गोत्रजः* शब्द एक ही कुल में उत्पन्न लोगों को बताने वाला है, चाहे वे शिष्य हों या कुल के सदस्य।

आचार्यानुग्रहात्कामं लब्ध्वा पुंस्त्वं व्यवस्थया ।
पालयामास जगतीं नाभ्यनन्दन्स्म तं प्रजाः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

आचार्य-अनुग्रहात्—गुरु की कृपा से; कामम्—इच्छित; लब्ध्वा—प्राप्त करके; पुंस्त्वम्—पुरुषत्व; व्यवस्थया—शिवजी के इस निर्णय से; पालयाम् आस—उसने शासन चलाया; जगतीम्—सारे जगत पर; न अभ्यनन्दन् स्म—संतुष्ट नहीं थे; तम्—उस राजा से; प्रजाः—नागरिक।

इस प्रकार गुरु की कृपा पाकर शिवजी के वचनों के अनुसार सुद्युम्न को प्रति दूसरे मास में

उसका इच्छित पुरुषत्व फिर से प्राप्त हो जाता था और इस तरह उसने राज्य पर शासन चलाया यद्यपि नागरिक इससे सन्तुष्ट नहीं थे।

तात्पर्य : नागरिक जान गये थे कि राजा हर दूसरे मास स्त्री में परिणत हो जाता है अतएव वह अपने राजसी कर्तव्यों को निभा नहीं सकता था। फलस्वरूप नागरिक अत्यधिक असन्तुष्ट थे।

तस्योत्कलो गयो राजन्विमलश्च त्रयः सुताः ।
दक्षिणापथराजानो बभूवुर्धर्मवत्सलाः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

तस्य—सुद्युम्न के; उत्कलः—उत्कल नामक; गयः—गय नामक; राजन्—हे राजा परीक्षित; विमलः च—तथा विमल नामक; त्रयः—तीन; सुताः—पुत्र; दक्षिणा-पथ—संसार के दक्षिणी भाग के; राजानः—राजागण; बभूवुः—वे बन गये; धर्म-वत्सलाः—अत्यन्त धार्मिक।.

हे राजा, सुद्युम्न के तीन अत्यन्त पवित्र पुत्र हुए जिनके नाम थे उत्कल, गय तथा विमल, जो दक्षिणापथ के राजा बने।

ततः परिणते काले प्रतिष्ठानपतिः प्रभुः ।
पुरूरवस उत्सृज्य गां पुत्राय गतो वनम् ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; परिणते काले—समय आने पर; प्रतिष्ठान-पतिः—राज्य का स्वामी; प्रभुः—अत्यन्त शक्तिशाली; पुरूरवसे—पुरूरवा को; उत्सृज्य—प्रदान करके; गाम्—जगत को; पुत्राय—अपने पुत्र को; गतः—चला गया; वनम्—वन को।.

तत्पश्चात् समय आने पर जब जगत का राजा सुद्युम्न काफी वृद्ध हो गया तो उसने अपना सारा साम्राज्य अपने पुत्र पुरूरवा को दे दिया और स्वयं जंगल में चला गया।

तात्पर्य : वैदिक प्रणाली के अनुसार जब किसी की आयु पचास वर्ष हो जाय तो वह वर्णाश्रम संस्थान में रहता हुआ अपने पारिवारिक जीवन को अवश्य छोड़ दे (*पञ्चाशद् ऊर्ध्वं वनम् व्रजेत्*)। इस तरह सुद्युम्न ने अपना राजपाट छोड़कर आध्यात्मिक जीवन पूरा करने के लिए जंगल में जाकर वर्णाश्रम के निर्दिष्ट नियमों का पालन किया।

इस प्रकार *श्रीमद्भागवत* के नवम स्कन्ध के अन्तर्गत ''राजा सुद्युम्न का स्त्री बनना'' नामक पहले अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter दो

मनु के पुत्रों की वंशावलियाँ

इस दूसरे अध्याय में करूष इत्यादि मनु के पुत्रों के वंशों का वर्णन हुआ है।

जब सुद्युम्न ने वानप्रस्थ आश्रम स्वीकार कर लिया और वह जंगल के लिए चल दिया तो वैवस्वत मनु ने पुत्रेच्छा से भगवान् की पूजा की। फलस्वरूप महाराज इक्ष्वाकु की ही भाँति उसके दस पुत्र उत्पन्न हुए जो अपने ही पिता के समान थे। इन पुत्रों में से एक, पृषध्र, अपने हाथ में तलवार लेकर रात में गायों की रखवाली किया करता था। अपने गुरु की आज्ञा पालन करते हुए वह समूची रात इसी तरह खड़ा रहता था। एक बार रात्रि के अंधकार में एक बाघ ने गोशाला में जाकर एक गाय पकड़ ली। जब पृषध्र को यह पता चला तो वह अपने हाथ में तलवार लेकर उस बाघ का पीछा करने लगा। दुर्भाग्यवश जब वह बाघ के पास पहुँच गया तो वह अँधेरे के कारण बाघ तथा गाय में अन्तर न देख पाया और इस तरह उसने गाय का वध कर दिया। इस पर उसके गुरु ने शाप दे दिया कि वह शूद्र कुल में जन्म ले, किन्तु उसने योग का अभ्यास किया और भक्तियोग द्वारा भगवान् की पूजा की। तत्पश्चात् वह स्वेच्छा से प्रज्ज्वलित दावाग्नि में प्रविष्ट हो गया और इस तरह अपना भौतिक शरीर त्यागकर भगवद्धाम वापस चला गया।

मनु का सबसे छोटा बेटा कवि अपने बाल्यकाल से ही भगवान् का परम भक्त था। मनु के पुत्र करूष से क्षत्रियों का एक सम्प्रदाय चला जो कारूष कहलाया। मनु के दूसरे पुत्र धृष्ट से क्षत्रियों का एक अन्य सम्प्रदाय चला जो क्षत्रिय-गुणों से युक्त पिता से जन्म लेने के बावजूद भी, बाद में ब्राह्मण हो गये। मनु के अन्य पुत्र नृग से सुमति, भूतज्योति तथा वसु नामक पुत्र तथा पौत्र हुए। वसु से प्रतीक हुआ और उससे ओघवान हुआ। मनु के अन्य पुत्र नरिष्यन्त के वीर्य के वंश में चित्रसेन, ऋक्ष, मीढ़वान्, पूर्ण, इन्द्रसेन, वीतिहोत्र, सत्यश्रवा, उरुश्रवा, देवदत्त तथा अग्निवेश्य उत्पन्न हुए। अग्निवेश्य नामक क्षत्रिय से अग्निवेश्यायन नामक सुविख्यात ब्राह्मण वंश चला। मनु के अन्य पुत्र दिष्ट के वीर्यकुल से नाभाग उत्पन्न हुआ जिसकी परम्परा में भलन्दन, वत्सप्रीति, प्रांशु, प्रमति, खनित्र, चाक्षुष, विविंशति, रम्भ, खनीनेत्र, करन्धम, अवीक्षित, मरुत्त, दम, राज्यवर्धन, सुधृति, नर, केवल, धुन्धुमान, वेगवान, बुध तथा तृणबिन्दु उत्पन्न हुए। इस प्रकार इस गोत्र में अनेक पुत्र तथा पौत्र उत्पन्न हुए। तृणबिन्दु से इलविला नामक कन्या उत्पन्न हुई

जिससे कुवेर ने जन्म लिया। तृणबिन्दु के तीन पुत्र भी हुए जिनके नाम विशाल, शून्यबन्धु तथा धूम्रकेतु थे। विशाल का पुत्र हेमचन्द्र था जिसका पुत्र धूम्राक्ष था और उसका पुत्र संयम हुआ। संयम के पुत्र देवज तथा कृशाश्व हुए। कृशाश्व के पुत्र सोमदत्त ने अश्वमेध यज्ञ किया और भगवान् विष्णु की पूजा करके उसने भगवद्धाम वापस जाकर परम सिद्धि प्राप्त की।

श्रीशुक उवाच
एवं गतेऽथ सुद्युम्ने मनुर्वैवस्वतः सुते ।
पुत्रकामस्तपस्तेपे यमुनायां शतं समाः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; गते—वानप्रस्थ आश्रम स्वीकार करने के लिए; अथ—तत्पश्चात्; सुद्युम्ने—जब सुद्युम्न; मनुः वैवस्वतः—वैवस्वत मनु जो श्राद्धदेव कहलाते थे; सुते—अपना पुत्र; पुत्र-कामः—पुत्र पाने की इच्छा से; तपः तेपे—कठिन तपस्या की; यमुनायाम्—यमुना नदी के तट पर; शतम् समाः—एक सौ वर्षों तक।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इसके पश्चात् जब वैवस्वत मनु (श्राद्धदेव) का पुत्र सुद्युम्न वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करने के लिए जंगल में चला गया तो मनु ने और अधिक सन्तान प्राप्त करने की इच्छा से यमुना नदी के तट पर सौ वर्षों तक कठिन तपस्या की।

ततोऽयजन्मनुर्देवमपत्यार्थं हरिं प्रभुम् ।
इक्ष्वाकुपूर्वजान्पुत्रान्लेभे स्वसदृशान्दश ॥ २ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; अयजत्—पूजा की; मनुः—वैवस्वत मनु ने; देवम्—भगवान् की; अपत्य-अर्थम्—सन्तान प्राप्त करने के लिए; हरिम्—हरि की; प्रभुम्—प्रभु; इक्ष्वाकु-पूर्व-जान्—जिनमें सबसे बड़ा इक्ष्वाकु था; पुत्रान्—पुत्रों को; लेभे—पाया; स्व-सदृशान्—अपनी ही तरह के; दश—दस।

तब पुत्र-कामना से श्राद्धदेव ने देवों के देव भगवान् हरि की पूजा की। इस तरह उसे अपने ही सदृश दस पुत्र प्राप्त हुए। इनमें से इक्ष्वाकु सबसे बड़ा था।

पृषध्रस्तु मनोः पुत्रो गोपालो गुरुणा कृतः ।
पालयामास गा यत्तो रात्र्यां वीरासनव्रतः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

पृषध्रः तु—उनमें से पृषध्र; मनोः—मनु का; पुत्रः—पुत्र; गो-पालः—गायों को पालने वाला; गुरुणा—अपने गुरु के आदेश से; कृतः—लगाया गया; पालयाम् आस—रक्षा की; गाः—गायों को; यत्तः—इस प्रकार लगाया गया; रात्र्याम्—रात में; वीरासन-व्रतः—वीरासन का व्रत लेकर तलवार लिए खड़ा।

इन पुत्रों में से पृषध्र अपने गुरु की आज्ञा का पालन करते हुए गायों की रखवाली में लग गया। गायों की रक्षा के लिए वह सारी रात हाथ में तलवार लिए खड़ा रहता।

तात्पर्य : वीरासन कहलाने वाला व्यक्ति हाथ में तलवार लेकर सारी रात खड़ा रहकर गायों की रक्षा करने का व्रत लेता है। चूँकि पृषध्र ने ऐसा व्रत ले रखा था अतएव यह समझा जा सकता है कि उसका कोई कुल नहीं था। इस व्रत से हम यह भी समझ सकते हैं कि गो-रक्षा कितनी अनिवार्य है। क्षत्रिय का कोई न कोई पुत्र गायों को रात्रि में भी खूँख्वार जानवरों से बचाने के लिए यह व्रत लेता था। तो फिर गायों को कसाईघरों में भेजने के विषय में क्या कहा जाय? यह तो मानव समाज का सबसे पापपूर्ण कृत्य है।

एकदा प्राविशद्गोष्ठं शार्दूलो निशि वर्षति ।
शयाना गाव उत्थाय भीतास्ता बभ्रमुर्व्रजे ॥ ४॥

शब्दार्थ

एकदा—एक बार; प्राविशत्—घुस गया; गोष्ठम्—गोशाला में; शार्दूलः—बाघ; निशि—रात्रि में; वर्षति—वर्षा होते समय; शयानाः—लेटी हुईं; गावः—गाएँ; उत्थाय—उठकर; भीताः—डरी हुईं; ताः—वे सब; बभ्रमुः—इधर-उधर फैल गईं; व्रजे—गोशाला के चारों ओर की भूमि में।

एक बार रात्रि में, जब वर्षा हो रही थी, एक बाघ गोशाला में घुस आया। उसे देखकर भूमि में लेटी हुई सारी गाएँ डर के मारे खड़ी हो गईं और गोशाला में तितर-बितर हो गईं।

एकां जग्राह बलवान्सा चुक्रोश भयातुरा ।
तस्यास्तु क्रन्दितं श्रुत्वा पृषध्रोऽनुससार ह ॥ ५॥
खड्गमादाय तरसा प्रलीनोडुगणे निशि ।
अजानन्नच्छिनोद्बभ्रोः शिरः शार्दूलशङ्कया ॥ ६॥

शब्दार्थ

एकाम्—एक गाय को; जग्राह—पकड़ लिया; बलवान्—बलशाली बाघ ने; सा—वह गाय; चुक्रोश—चिल्लाने लगी; भय-आतुरा—भयभीत; तस्याः—उसकी; तु—लेकिन; क्रन्दितम्—चीत्कार; श्रुत्वा—सुनकर; पृषध्रः—पृषध्र ने; अनुससार ह—पीछा किया; खड्गम्—तलवार; आदाय—लेकर; तरसा—तेजी से; प्रलीन-उडु-गणे—जब तारे बादलों से ढक गये; निशि—रात में; अजानन्—अनजाने; अच्छिनोत्—काट लिया; बभ्रोः—गाय का; शिरः—सिर; शार्दूल-शङ्कया—बाघ का सिर समझकर।

जब अत्यन्त बलवान बाघ ने एक गाय को पकड़ लिया तो वह भयभीत होकर चिल्लाने लगी। पृषध्र ने यह चीत्कार सुनी और वह तुरन्त इस आवाज का पीछा करने लगा। उसने अपनी तलवार निकाल ली लेकिन चूँकि तारे बादलों से ढके थे अतएव उसने गाय को बाघ समझकर धोखे में अत्यन्त बलपूर्वक गाय का सिर काट लिया।

व्याघ्रोऽपि वृक्णश्रवणो निस्त्रिंशाग्राहतस्ततः ।
निश्चक्राम भृशं भीतो रक्तं पथि समुत्सृजन् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

व्याघ्रः—बाघ; अपि—भी; वृक्ण-श्रवणः—कान कटा हुआ; निस्त्रिंश-अग्र-आहतः—तलवार की नोंक से कट जाने के कारण; ततः—तत्पश्चात्; निश्चक्राम—(उस स्थान से) भाग निकला; भृशम्—अत्यधिक; भीतः—भयभीत होकर; रक्तम्—रक्त; पथि—रास्ते में; समुत्सृजन्—गिराता हुआ।

चूँकि तलवार की नोक से बाघ का कान कट गया था अतएव वह अत्यधिक भयभीत था और वह उस स्थान से रास्ते भर कान से खून बहाता हुआ भाग खड़ा हुआ।

मन्यमानो हतं व्याघ्रं पृषध्रः परवीरहा ।
अद्राक्षीत्स्वहतां बभ्रुं व्युष्टायां निशि दुःखितः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

मन्यमानः—यह सोचते हुए कि; हतम्—मार डाला गया; व्याघ्रम्—बाघ को; पृषध्रः—मनु पुत्र पृषध्र; पर-वीर-हा—यद्यपि शत्रु को दण्ड देने में समर्थ था; अद्राक्षीत्—देखा; स्व-हताम्—अपने द्वारा मारी गयी; बभ्रुम्—गाय को; व्युष्टायाम् निशि—रात्रि बीत जाने पर (प्रातःकाल); दुःखितः—अत्यन्त दुखी हुआ।

अपने शत्रु का दमन करने में समर्थ पृषध्र ने प्रातःकाल जब देखा कि उसने गाय का वध कर दिया है, यद्यपि रात में उसने सोचा था कि उसने बाघ को मारा है, तो वह अत्यन्त दुखी हुआ।

तं शशाप कुलाचार्यः कृतागसमकामतः ।
न क्षत्रबन्धुः शूद्रस्त्वं कर्मणा भवितामुना ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको (पृषध्र को); शशाप—शाप दे दिया; कुल-आचार्यः—कुलगुरु वसिष्ठ ने; कृत-आगसम्—गोवध का महापाप करने के कारण; अकामतः—न चाहते हुए; न—नहीं; क्षत्र-बन्धुः—क्षत्रिय कुटुम्बी; शूद्रः त्वम्—तुमने शूद्रजैसा आचरण किया है; कर्मणा—अतएव अपने कर्मफल से; भविता—तुम शूद्र हो जाओगे; अमुना—गोवध करने से।

यद्यपि पृषध्र ने अनजाने में यह पाप किया था, किन्तु उसके कुलपुरोहित वसिष्ठ ने उसे यह शाप दिया, ''तुम अपने अगले जन्म में क्षत्रिय नहीं बन सकोगे, प्रत्युत गोवध करने के कारण तुम्हें शूद्र बनकर जन्म लेना पड़ेगा।''

तात्पर्य : ऐसा लगता है कि वसिष्ठ तमोगुण से मुक्त नहीं हो पाये थे। पृषध्र के कुलपुरोहित या गुरु होने के नाते उन्हें पृषध्र के अपराध को गम्भीरता से नहीं लेना चाहिए था, किन्तु उल्टे उन्होंने उसे शूद्र बनने का शाप दे दिया। कुलपुरोहित का धर्म शिष्य को शाप देना नहीं अपितु कोई प्रायश्चित्त करवा कर राहत देना

होता है। किन्तु वसिष्ठ ने इसके विपरीत किया। अतएव श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं कि वह दुर्मति था अर्थात् उसकी बुद्धि ठीक नहीं थी।

एवं शप्तस्तु गुरुणा प्रत्यगृह्णात्कृताञ्जलिः ।
अधारयद्व्रतं वीर ऊर्ध्वरेता मुनिप्रियम् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; शप्तः—शापित होकर; तु—लेकिन; गुरुणा—अपने गुरु द्वारा; प्रत्यगृह्णात्—उसने स्वीकार कर लिया; कृत-अञ्जलिः—हाथ जोड़कर; अधारयत्—ग्रहण किया; व्रतम्—ब्रह्मचर्य व्रत; वीरः—उस वीर ने; ऊर्ध्व-रेताः—अपनी इन्द्रियों को वश में करके; मुनि-प्रियम्—मुनियों द्वारा स्वीकृत।

जब उस वीर पृषध्र को उसके गुरु ने इस प्रकार शाप दे दिया तो उसने हाथ जोड़कर वह शाप अंगीकार कर लिया। तत्पश्चात् अपनी इन्द्रियों को वश में करते हुए उसने सभी मुनियों द्वारा सम्मत ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया।

वासुदेवे भगवति सर्वात्मनि परेऽमले ।
एकान्तित्वं गतो भक्त्या सर्वभूतसुहृत्समः ॥ ११ ॥
विमुक्तसङ्गः शान्तात्मा संयताक्षोऽपरिग्रहः ।
यदृच्छयोपपन्नेन कल्पयन्वृत्तिमात्मनः ॥ १२ ॥
आत्मन्यात्मानमाधाय ज्ञानतृप्तः समाहितः ।
विचचार महीमेतां जडान्धबधिराकृतिः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

वासुदेवे—वासुदेव में; भगवति—भगवान्; सर्व-आत्मनि—परमात्मा में; परे—ब्रह्म में; अमले—कल्मषरहित परम पुरुष में; एकान्तित्वम्—अविचल भाव से भक्ति करते हुए; गतः—उस पद पर स्थित होकर; भक्त्या—शुद्ध भक्ति के कारण; सर्व-भूत-सुहृत् समः—भक्त, मित्र तथा समदर्शी होने के कारण; विमुक्त-सङ्गः—भौतिक कल्मष से रहित; शान्त-आत्मा—शान्तिपूर्ण प्रवृत्ति; संयत—आत्मसंयमित; अक्षः—जिसकी दृष्टि; अपरिग्रहः—किसी से दान ग्रहण कियेबिना; यत्-ऋच्छया—भगवान् की कृपा से; उपपन्नेन—शारीरिक आवश्यकताओं के लिए जो भी उपलब्ध था उससे; कल्पयन्—व्यवस्थित करके; वृत्तिम्—शरीर की आवश्यकताएँ; आत्मनः—आत्मा के लाभ हेतु; आत्मनि—मन में; आत्मानम्—परमात्मा को; आधाय—सदैव रखते हुए; ज्ञान-तृप्तः—आध्यात्मिक ज्ञान से तुष्ट; समाहितः—सदैव समाधिमग्न; विचचार—सर्वत्र भ्रमण करने लगा; महीम्—पृथ्वी में; एताम्—इस; जड—मूक; अन्ध—अन्धा; बधिर—बहरा; आकृतिः—के समान।

तत्पश्चात् पृषध्र ने सारे उत्तरदायित्वों से अवकाश ले लिया और शान्तचित्त होकर अपनी समग्र इन्द्रियों को वश में किया। भौतिक परिस्थितियों से अप्रभावित, भगवान् की कृपा से शरीर तथा आत्मा को बनाए रखने के लिए जो भी मिल जाय उसी से संतुष्ट एवं सब पर समभाव रखते हुए, वह कल्मषहीन परमात्मा भगवान् वासुदेव पर ही अपना सारा ध्यान देने लगा। इस प्रकार शुद्ध ज्ञान से

पूर्णतः सन्तुष्ट एवं अपने मन को भगवान् में ही लगाकर उसने भगवान् की शुद्धभक्ति प्राप्त की और सारे विश्व में विचरण करने लगा। उसे भौतिक कार्यकलापों से कोई लगाव न रहा मानो वह बहरा, गूँगा तथा अन्धा हो।

एवं वृत्तो वनं गत्वा दृष्ट्वा दावाग्निमुत्थितम् ।
तेनोपयुक्तकरणो ब्रह्म प्राप परं मुनिः ॥ १४॥

शब्दार्थ

एवम् वृत्तः—ऐसे आश्रम में स्थित होकर; वनम्—वन में; गत्वा—जाकर; दृष्ट्वा—देखकर; दाव-अग्निम्—जंगल की आग को; उत्थितम्—वहाँ विद्यमान; तेन—उस (अग्नि) के द्वारा; उपयुक्त-करणः—जलाकर सभी इन्द्रियों को लगाते हुए; ब्रह्म—अध्यात्म; प्राप—प्राप्त किया; परम्—चरम लक्ष्य; मुनिः—मुनि की भाँति।

इस मनोवृत्ति से पृषध्र महान् सन्त बन गया और जब वह जंगल में प्रविष्ट हुआ और उसने प्रज्वलित जंगल की आग देखी तो उसने उस अग्नि में अपने शरीर को भस्म कर डाला। इस तरह उसे दिव्य आध्यात्मिक जगत की प्राप्ति हुई।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (४.९) में भगवान् कहते हैं—

जन्म कर्म च मे दिव्यम् एवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।

त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥

"हे अर्जुन! जो मेरे जन्म तथा कर्म की दिव्य प्रकृति को जानता है वह इस शरीर को त्यागने पर इस भौतिक जगत में पुनः जन्म न लेकर मेरे नित्य धाम को प्राप्त होता है।" पृषध्र को अपने कर्म के कारण अगले जन्म में शूद्र होने का शाप मिला था, किन्तु उसने सन्त जीवन स्वीकार करके भगवान् में अपने मन को केन्द्रित किया जिससे वह शुद्ध भक्त बन गया। जब उसने अग्नि में अपना शरीर त्याग दिया तो वह भक्ति के कारण तुरन्त ही वैकुण्ठधाम जा पहुँचा जैसा कि *भगवद्गीता* में वर्णित है (*मामेति*)। भगवान् का चिन्तन करते हुए जो भक्ति की जाती है वह इतनी शक्तिशाली होती है कि पृषध्र तक, जिसे शूद्र बनने का शाप मिला था, शूद्र बनने के घोर परिणाम से बच गया और भगवद्धाम को वापस गया। जैसा कि *ब्रह्म-संहिता* (५.५४) में कहा गया है—

यस्त्विन्द्रगोपमथवेन्द्रम् अहो स्वकर्म-

बन्धानुरूपफलभाजनमातनोति ।

कर्माणि निर्दहति किन्तु च भक्तिभाजां

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

जो लोग भक्ति में लग जाते हैं उन्हें उनके भौतिक कर्मों के फल प्रभावित नहीं करते। अन्यथा क्षुद्र कीट से लेकर स्वर्ग के राजा इन्द्र तक प्रत्येक प्राणी कर्म के नियमों के अधीन है, किन्तु सदैव भगवान् की सेवा में संलग्न रहने के कारण शुद्ध भक्त इन नियमों से मुक्त रहता है।

कविः कनीयान्विषयेषु निःस्पृहो
विसृज्य राज्यं सह बन्धुभिर्वनम् ।
निवेश्य चित्ते पुरुषं स्वरोचिषं
विवेश कैशोरवयाः परं गतः ॥ १५॥

शब्दार्थ

कविः—दूसरा पुत्र कवि; कनीयान्—जो सबसे छोटा था; विषयेषु—भौतिक भोगों में; निःस्पृहः—आसक्तिरहित; विसृज्य—छोड़कर; राज्यम्—अपने पिता की सम्पत्ति (राज्य) को; सह बन्धुभिः—अपने मित्रों सहित; वनम्—जंगल में; निवेश्य—सदैव रखकर; चित्ते—हृदय में; पुरुषम्—परम पुरुष को; स्व-रोचिषम्—आत्म-तेजस्वी; विवेश—प्रविष्ट हो गया; कैशोर-वयाः—किशोरावस्था में; परम्—दिव्य जगत; गतः—प्रविष्ट हुआ।

मनु के सबसे छोटे पुत्र कवि ने भौतिक भोगों को अस्वीकार करते हुए युवावस्था में पहुँचने के पूर्व ही राजपाट त्याग दिया। वह अपने हृदय में आत्म-तेजस्वी भगवान् का सदैव चिन्तन करते हुए अपने मित्रों सहित जंगल में चला गया। इस प्रकार उसने सिद्धि प्राप्त की।

करूषान्मानवादासन्कारूषाः क्षत्रजातयः ।
उत्तरापथगोप्तारो ब्रह्मण्या धर्मवत्सलाः ॥ १६॥

शब्दार्थ

करूषात्—करूष से; मानवात्—मनु के पुत्र; आसन्—था; कारूषाः—कारूष कहलाने वाले; क्षत्र-जातयः—क्षत्रियों का समूह; उत्तरा—उत्तरी; पथ—दिशा की ओर; गोप्तारः—राजा; ब्रह्मण्याः—ब्राह्मण संस्कृति के विख्यात रक्षक; धर्म-वत्सलाः—अत्यन्त धार्मिक।

मनु के अन्य पुत्र करूष से कारूष वंश चला जो एक क्षत्रिय कुल था। कारूष क्षत्रिय उत्तरी दिशा के राजा थे। वे ब्राह्मण संस्कृति के विख्यात रक्षक थे और सभी अत्यन्त धार्मिक थे।

धृष्टाद्धार्ष्टमभूत्क्षत्रं ब्रह्मभूयं गतं क्षितौ ।
नृगस्य वंशः सुमतिर्भूतज्योतिस्ततो वसुः ॥ १७॥

शब्दार्थ

धृष्टात्—मनु के दूसरे पुत्र धृष्ट से; धार्ष्टम्—धार्ष्ट नामक जाति; अभूत्—उत्पन्न हुई; क्षत्रम्—क्षत्रिय समूह से सम्बन्धित; ब्रह्म-भूयम्—ब्राह्मणों का पद; गतम्—प्राप्त किया था; क्षितौ—पृथ्वी पर; नृगस्य—मनु के अन्य पुत्र नृग का; वंशः—वंश; सुमतिः—सुमति का; भूतज्योतिः—भूतज्योति का; ततः—तत्पश्चात्; वसुः—वसु नाम से।

मनु पुत्र धृष्ट से धार्ष्ट नामक क्षत्रिय जाति निकली जिसके सदस्यों ने इस जगत में ब्राह्मणों का पद प्राप्त किया। तत्पश्चात् मनु के पुत्र नृग से सुमति और सुमति से भूतज्योति और भूतज्योति से वसु उत्पन्न हुए।

तात्पर्य : यहाँ पर कहा गया है—*क्षत्रं ब्रह्मभूयं गतं क्षितौ*—यद्यपि धार्ष्टगण क्षत्रिय जाति के थे, किन्तु वे ब्राह्मण बनने में समर्थ हो गये थे। इससे नारद मुनि के निम्नलिखित कथन (*भागवत* ७.११.३५) की स्पष्ट पुष्टि होती है—

यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम्।

यदन्यत्रापि दृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत्॥

यदि एक समूह के लोगों के गुण दूसरे समूह के लोगों में पाये जायँ तो उन्हें उनके लक्षणों के आधार पर मान्यता दी जानी चाहिए न कि उस जाति के आधार पर जिसमें वे उत्पन्न हुए हों। जन्म तनिक भी महत्त्वपूर्ण नहीं होता। सारे वैदिक वाङ्मय में मनुष्य के गुणों पर बल दिया गया है।

वसोः प्रतीकस्तत्पुत्र ओघवानोघवत्पिता ।
कन्या चौघवती नाम सुदर्शन उवाह ताम् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

वसोः—वसु का; प्रतीकः—प्रतीक नामक; तत्-पुत्रः—उसका पुत्र; ओघवान्—ओघवान; ओघवत्-पिता—जो ओघवान का पिता था; कन्या—उसकी कन्या; च—भी; ओघवती—ओघवती; नाम—नामक; सुदर्शनः—सुदर्शन ने; उवाह—व्याह किया; ताम्—उस कन्या (ओघवती) से।

वसु का पुत्र प्रतीक था और प्रतीक का पुत्र ओघवान हुआ। ओघवान का पुत्र भी ओघवान कहलाया और उसकी पुत्री का नाम ओघवती था। इसका व्याह सुदर्शन के साथ हुआ।

चित्रसेनो नरिष्यन्ताद्दक्षस्तस्य सुतोऽभवत् ।
तस्य मीढ्वांस्ततः पूर्ण इन्द्रसेनस्तु तत्सुतः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

चित्रसेनः—चित्रसेन; नरिष्यन्तात्—मनु के अन्य पुत्र नरिष्यन्त से; ऋक्षः—ऋक्ष; तस्य—चित्रसेन का; सुतः—पुत्र; अभवत्—हुआ; तस्य—ऋक्ष का; मीढ्वान्—मीढ्वान; ततः—उससे (मीढ्वान से); पूर्णः—पूर्ण; इन्द्रसेनः—इन्द्रसेन; तु—लेकिन; तत्-सुतः—उसका (पूर्ण का) पुत्र।

नरिष्यन्त का पुत्र चित्रसेन हुआ और उसका पुत्र ऋक्ष हुआ। ऋक्ष से मीढ्वान, मीढ्वान से पूर्ण और पूर्ण से इन्द्रसेन हुआ।

वीतिहोत्रस्त्विन्द्रसेनात्तस्य सत्यश्रवा अभूत् ।
उरुश्रवाः सुतस्तस्य देवदत्तस्ततोऽभवत् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

वीतिहोत्रः—वीतिहोत्र; तु—लेकिन; इन्द्रसेनात्—इन्द्रसेन से; तस्य—वीतिहोत्र का; सत्यश्रवाः—सत्यश्रवा; अभूत्—हुआ; उरुश्रवाः—उरुश्रवा; सुतः—पुत्र; तस्य—उसका (सत्यश्रवा का); देवदत्तः—देवदत्त; ततः—उरुश्रवा से; अभवत्—हुआ।

इन्द्रसेन से वीतिहोत्र, वीतिहोत्र से सत्यश्रवा, फिर उससे उरुश्रवा और उरुश्रवा से देवदत्त हुआ।

ततोऽग्निवेश्यो भगवानग्निः स्वयमभूत्सुतः ।
कानीन इति विख्यातो जातूकर्ण्यो महानृषिः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

ततः—देवदत्त से; अग्निवेश्यः—अग्निवेश्य; भगवान्—अत्यन्त शक्तिशाली; अग्निः—अग्निदेव; स्वयम्—साक्षात्; अभूत्—हुआ; सुतः—पुत्र; कानीनः—कानीन; इति—इस प्रकार; विख्यातः—सुप्रसिद्ध था; जातूकर्ण्यः—जातूकर्ण्य; महान् ऋषिः—परम सन्त पुरुष।

देवदत्त का पुत्र अग्निवेश्य हुआ जो साक्षात् अग्निदेव था। यह पुत्र विख्यात सन्त था और कानीन तथा जातूकर्ण्य के नाम से विख्यात हुआ।

ततो ब्रह्मकुलं जातमाग्निवेश्यायनं नृप ।
नरिष्यन्तान्वयः प्रोक्तो दिष्टवंशमतः शृणु ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

ततः—अग्निवेश्य से; ब्रह्म-कुलम्—ब्राह्मणों का कुल; जातम्—उत्पन्न हुआ; आग्निवेश्यायनम्—आग्निवेश्यायन; नृप—हे राजा परीक्षित; नरिष्यन्त—नरिष्यन्त का; अन्वयः—वंशज; प्रोक्तः—कहा जा चुका है; दिष्ट-वंशम्—दिष्ट का वंश; अतः—इसके आगे; शृणु—सुनो।

हे राजा, अग्निवेश्य से आग्निवेश्यायन नामक ब्राह्मण कुल उत्पन्न हुआ। चूँकि मैं नरिष्यन्त के वंशजों का वर्णन कर चुका हूँ अतएव अब दिष्ट के वंशजों का वर्णन करूँगा। कृपया मुझसे सुनें।

नाभागो दिष्टपुत्रोऽन्यः कर्मणा वैश्यतां गतः ।

भलन्दन: सुतस्तस्य वत्सप्रीतिर्भलन्दनात् ॥ २३ ॥
वत्सप्रीतेः सुतः प्रांशुस्तत्सुतं प्रमतिं विदुः ।
खनित्रः प्रमतेस्तस्माच्चाक्षुषोऽथ विविंशतिः ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

नाभागः—**नाभाग**; दिष्ट-पुत्रः—**दिष्ट का पुत्र**; अन्यः—**दूसरा**; कर्मणा—**वृत्ति से**; वैश्यताम्—**वैश्य-आश्रम**; गतः—**प्राप्त किया**; भलन्दनः—**भलन्दन**; सुतः—**पुत्र**; तस्य—**उसका (नाभाग का)**; वत्सप्रीतिः—**वत्सप्रीति**; भलन्दनात्—**भलन्दन से**; वत्सप्रीतेः—**वत्सप्रीति से**; सुतः—**पुत्र**; प्रांशुः—**प्रांशु**; तत्-सुतम्—**उसका (प्रांशु का) पुत्र**; प्रमतिम्—**प्रमति**; विदुः—**जानो**; खनित्रः—**खनित्र**; प्रमतेः—**प्रमतिसे**; तस्मात्—**खनित्र से**; चाक्षुषः—**चाक्षुष**; अथ—**इस प्रकार (चाक्षुष से)**; विविंशतिः—**विविंशति**।

दिष्ट का पुत्र नाभाग हुआ। यह नाभाग जो आगे वर्णित होने वाले नाभाग से भिन्न था, वृत्ति से वैश्य बन गया। नाभाग का पुत्र भलन्दन हुआ, भलन्दन का पुत्र वत्सप्रीति हुआ और उसका पुत्र प्रांशु था। प्रांशु का पुत्र प्रमति था, प्रमति का पुत्र खनित्र और खनित्र का पुत्र चाक्षुष था जिसका पुत्र विविंशति हुआ।

तात्पर्य : मनु का एक पुत्र ब्राह्मण, दूसरा क्षत्रिय और तीसरा वैश्य बना। इससे नारद मुनि के इस कथन की पुष्टि होती है—*यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यंजकम्* (*भागवत* ७.११.३५)। यह कभी नहीं मानना चाहिए कि ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य जन्मजात हैं। ब्राह्मण क्षत्रिय बन सकता है और क्षत्रिय ब्राह्मण। इसी प्रकार ब्राह्मण या क्षत्रिय वैश्य बन सकता है और वैश्य ब्राह्मण या क्षत्रिय में बदल सकता है। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* में हुई है (*चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः*)। अतएव कोई जन्म से ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य नहीं बनता अपितु गुण से बनता है। चूँकि ब्राह्मणों की नितान्त आवश्यकता है अतएव हम कृष्णभावनामृत आन्दोलन में कुछ ब्राह्मणों को मानव समाज का मार्गदर्शन कराने के लिए प्रशिक्षित करने का प्रयास कर रहे हैं। चूँकि इस समय ब्राह्मणों की कमी है इसलिए मानव समाज का मस्तिष्क नष्ट हो चुका है। चूँकि व्यावहारिक रूप में प्रत्येक व्यक्ति शूद्र है अतएव इस समय समाज को सही पथ का मार्गदर्शन कराने वाला कोई नहीं है जिससे जीवन की सिद्धि प्राप्त की जा सके।

विविंशतेः सुतो रम्भः खनीनेत्रोऽस्य धार्मिकः ।
करन्धमो महाराज तस्यासीदात्मजो नृप ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

विविंशतेः—**विविंशति से**; सुतः—**पुत्र**; रम्भः—**रम्भ**; खनीनेत्रः—**खनीनेत्र**; अस्य—**रम्भ का**; धार्मिकः—**अत्यन्त धार्मिक**; करन्धमः—**करन्धम**; महाराज—**हे राजा**; तस्य—**उसके (खनीनेत्र से)**; आसीत्—**था**; आत्मजः—**पुत्र**; नृप—**हे राजा**।

विविंशति के पुत्र का नाम रम्भ था जिसका पुत्र अत्यन्त महान् एवं धार्मिक राजा खनीनेत्र हुआ।

हे राजा, खनीनेत्र का पुत्र राजा करन्धम हुआ।

तस्यावीक्षित्सुतो यस्य मरुत्तश्चक्रवर्त्यभूत् ।
संवर्तोऽयाजयद्यं वै महायोग्यङ्गिर:सुत: ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसके (करन्धम के); अवीक्षित्—अवीक्षित; सुत:—पुत्र; यस्य—जिसका (अवीक्षित का); मरुत्त:—मरुत्त नामक (पुत्र); चक्रवर्ती—राजा; अभूत्—हुआ; संवर्त:—संवर्त; अयाजयत्—यज्ञ कराने के लिए रखा; यम्—जिसको (मरुत्त को); वै—निस्सन्देह; महा-योगी—महान् योगी; अङ्गिर:-सुत:—अंगिरा का पुत्र।

करन्धम से अवीक्षित नामक पुत्र हुआ जिसका पुत्र मरुत्त था जो सम्राट था। महान् योगी अंगिरा-पुत्र संवर्त ने यज्ञ सम्पन्न कराने के लिए मरुत्त को लगाया।

मरुत्तस्य यथा यज्ञो न तथान्योऽस्ति कश्चन ।
सर्वं हिरण्मयं त्वासीद्यत्किञ्चिच्चास्य शोभनम् ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

मरुत्तस्य—मरुत्त का; यथा—जिस प्रकार; यज्ञ:—यज्ञ; न—नहीं; तथा—उस प्रकार; अन्य:—कोई दूसरा; अस्ति—है; कश्चन—कोई भी; सर्वम्—सभी वस्तुएँ; हिरण्-मयम्—सोने की बनी; तु—निस्सन्देह; आसीत्—था; यत् किञ्चित्—जो भी उसके पास था; च—तथा; अस्य—मरुत्त का; शोभनम्—अत्यन्त सुन्दर।

राजा मरुत्त के यज्ञ का साज-सामान अत्यन्त सुन्दर था क्योंकि सारी वस्तुएँ सोने की बनी थीं। निस्सन्देह, उसके यज्ञ की तुलना किसी भी और यज्ञ से नहीं की जा सकती।

अमाद्यदिन्द्र: सोमेन दक्षिणाभिर्द्विजातय: ।
मरुत: परिवेष्टारो विश्वेदेवा: सभासद: ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

अमाद्यत्—मदान्ध हो गया; इन्द्र:—इन्द्र; सोमेन—सोमरस का पान करके; दक्षिणाभि:—पर्याप्त दक्षिणा प्राप्त करके; द्विजातय:—ब्राह्मण वर्ग; मरुत:—मरुतों ने; परिवेष्टार:—भोज्य पदार्थ परोसा; विश्वेदेवा:—विश्वेदेवा; सभा-सद:—सभा के सदस्य।

उस यज्ञ में सोमरस की बहुत अधिक मात्रा पीने से राजा इन्द्र मदान्ध हो गया। ब्राह्मणों को प्रचुर दक्षिणा मिली जिससे वे सन्तुष्ट थे। उस यज्ञ में मरुतों के विविध देवताओं ने खाना परोसा और विश्वेदेव सभा के सदस्य थे।

तात्पर्य : मरुत्त द्वारा सम्पन्न यज्ञ से सभी लोग विशेष रूप से ब्राह्मण तथा क्षत्रिय प्रसन्न थे। ब्राह्मण पुरोहितों के रूप में दक्षिणा पाने में रुचि रखते हैं और क्षत्रिय मद्यपान करने में। अतएव सभी लोग अपने-

अपने प्राप्तव्यों से सन्तुष्ट थे।

मरुत्तस्य दमः पुत्रस्तस्यासीद्राज्यवर्धनः ।
सुधृतिस्तत्सुतो जज्ञे सौधृतेयो नरः सुतः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

मरुत्तस्य—मरुत्त का; दमः—दम; पुत्रः—पुत्र; तस्य—दम का; आसीत्—था; राज्य-वर्धनः—राज्यवर्धन अर्थात् राज्य को बढ़ाने वाला; सुधृतिः—सुधृति; तत्-सुतः—उसका पुत्र; जज्ञे—उत्पन्न हुआ; सौधृतेयः—सुधृति से; नरः—नर नामक; सुतः—पुत्र।

मरुत्त का पुत्र दम हुआ, दम का पुत्र राज्यवर्धन था और उसका पुत्र सुधृति और सुधृति का पुत्र नर था।

तत्सुतः केवलस्तस्माद्धुन्धुमान्वेगवांस्ततः ।
बुधस्तस्याभवद्यस्य तृणबिन्दुर्महीपतिः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

तत्-सुतः—उसका (नर का) पुत्र; केवलः—केवल था; तस्मात्—उससे; धुन्धुमान्—धुन्धुमान नामक पुत्र उत्पन्न हुआ; वेगवान्—वेगवान्; ततः—उससे; बुधः—बुध; तस्य—उसके; अभवत्—था; यस्य—जिसका (बुध का); तृणबिन्दुः—तृणबिन्दु; महीपतिः—राजा।

नर का पुत्र केवल हुआ और उसका पुत्र धुन्धुमान था, जिसका पुत्र वेगवान हुआ। वेगवान का पुत्र बुध था और बुध का पुत्र तृणबिन्दु था जो इस पृथ्वी का राजा बना।

तं भेजेऽलम्बुषा देवी भजनीयगुणालयम् ।
वराप्सरा यतः पुत्राः कन्या चेलविलाभवत् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको (तृणबिन्दु को); भेजे—पति रूप में स्वीकार किया; अलम्बुषा—अलम्बुषा; देवी—देवी; भजनीय—स्वीकार करने योग्य; गुण-आलयम्—सद्गुणों का आगार; वर-अप्सराः—अप्सराओं में सर्वश्रेष्ठ; यतः—जिससे (तृणबिन्दु से); पुत्राः—कुछ पुत्र; कन्या—एक पुत्री; च—तथा; इलविला—इलविला नामक; अभवत्—उत्पन्न हुई।

अप्सराओं में सर्वश्रेष्ठ अत्यन्त गुणी कन्या अलम्बुषा ने अपने ही समान योग्य तृणबिन्दु को पति-रूप में स्वीकार किया। उसके कुछ पुत्र तथा इलविला नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई।

यस्यामुत्पादयामास विश्रवा धनदं सुतम् ।
प्रादाय विद्यां परमामृषिर्योगेश्वरः पितुः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

यस्याम्—जिसमें (इलविला) में; उत्पादयाम् आस—जन्म दिया; विश्रवाः—विश्रवा; धन-दम्—कुवेर अर्थात् धन देने वाला; सुतम्—पुत्र को; प्रादाय—प्राप्त करके; विद्याम्—विद्या को; परमाम्—परम; ऋषिः—महान् संत पुरुष; योग-ईश्वरः—योग के स्वामी; पितुः—अपने पिता से।

महान् सन्त योगेश्वर विश्रवा ने अपने पिता से परम विद्या प्राप्त करके इलविला के गर्भ से परम विख्यात पुत्र धन देने वाले कुवेर को उत्पन्न किया।

विशालः शून्यबन्धुश्च धूम्रकेतुश्च तत्सुताः ।
विशालो वंशकृद्राजा वैशालीं निर्ममे पुरीम् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

विशालः—विशाल; शून्यबन्धुः—शून्यबन्धु; च—भी; धूम्रकेतुः—धूम्रकेतु; च—भी; तत्-सुताः—तृणबिन्दु के पुत्र; विशालः—तीनों में राजा विशाल ने; वंश-कृत्—वंश बनाया; राजा—राजा; वैशालीम्—वैशाली नामक; निर्ममे—निर्माण किया; पुरीम्—महल।

तृणबिन्दु के तीन पुत्र थे—विशाल, शून्यबन्धु तथा धूम्रकेतु। इन तीनों में विशाल ने एक वंश चलाया और वैशाली नामक एक महल की रचना कराई।

हेमचन्द्रः सुतस्तस्य धूम्राक्षस्तस्य चात्मजः ।
तत्पुत्रात्संयमादासीत्कृशाश्वः सहदेवजः ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

हेमचन्द्रः—हेमचन्द्र नामक; सुतः—पुत्र; तस्य—उसका (विशाल का); धूम्राक्षः—धूम्राक्ष; तस्य—उसका (हेमचन्द्र का); च—भी; आत्मजः—पुत्र; तत्-पुत्रात्—उसके पुत्र (धूम्राक्ष) से; संयमात्—संयम से; आसीत्—था; कृशाश्वः—कृशाश्व; सह—सहित; देवजः—देवज।

विशाल का पुत्र हेमचन्द्र कहलाया और उसका पुत्र धूम्राक्ष हुआ जिसका पुत्र संयम था और उसके पुत्रों के नाम देवज तथा कृशाश्व थे।

कृशाश्वात्सोमदत्तोऽभूद्योऽश्वमेधैरिडस्पतिम् ।
इष्ट्वा पुरुषमापाछ्यां गतिं योगेश्वराश्रिताम् ॥ ३५ ॥
सौमदत्तिस्तु सुमतिस्तत्पुत्रो जनमेजयः ।
एते वैशालभूपालास्तृणबिन्दोर्यशोधराः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

कृशाश्वात्—कृशाश्व से; सोमदत्तः—सोमदत्त नामक पुत्र; अभूत्—था; यः—जो (सोमदत्त); अश्वमेधैः—अश्वमेध यज्ञ करके; इडस्पतिम्—भगवान् विष्णु को; इष्ट्वा—पूजकर; पुरुषम्—विष्णु को; आप—प्राप्त किया; अछ्याम्—सर्वश्रेष्ठ; गतिम्—गन्तव्य, गति; योगेश्वर-आश्रिताम्—महान् योगियों द्वारा प्राप्त स्थान; सौमदत्तिः—सोमदत्त का पुत्र; तु—लेकिन; सुमतिः—सुमति; तत्-पुत्रः—उसका (सुमति का) पुत्र; जनमेजयः—जनमेजय; एते—इन सबों ने; वैशाल-भूपालाः—वैशाल वंश के राजा; तृणबिन्दोः यशः-धराः—तृणबिन्दु के यश को बनाये रखा।

कृशाश्व का पुत्र सोमदत्त हुआ जिसने अश्वमेध यज्ञ किए और इस प्रकार भगवान् विष्णु को

प्रसन्न किया। भगवान् की पूजा करने से उसे ऐसा उच्चपद प्राप्त हुआ जो बड़े-बड़े योगियों को मिलता है। सोमदत्त का पुत्र सुमति था जिसका पुत्र जनमेजय हुआ। विशाल वंश में प्रकट होकर इन सारे राजाओं ने राजा तृणबिन्दु के विख्यात पद को बनाये रखा।

इस प्रकार *श्रीमद्भागवत* के नवम स्कंध के अन्तर्गत ''मनु के पुत्रों की वंशावलियाँ'' नामक द्वितीय अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter तीन

सुकन्या तथा च्यवन मुनि का विवाह

इस अध्याय में मनु के अन्य पुत्र शर्याति के वंश का वर्णन है और इसमें सुकन्या तथा रेवती का भी उल्लेख हुआ है।

देवज्ञ शर्याति ने अंगिरसों के यज्ञ के दूसरे दिन सम्पन्न होने वाले अनुष्ठानों के विषय में आदेश दिया। एक दिन शर्याति अपनी पुत्री सुकन्या सहित च्यवन मुनि के आश्रम में गये। वहाँ सुकन्या ने एक बाँबी के भीतर दो चमकीली वस्तुएँ देखीं और दैववशात् उसने उन दोनों वस्तुओं को छेद दिया। ज्यों ही उसने ऐसा किया कि उस छेद से खून चूने लगा। फलस्वरूप राजा शर्याति तथा उनके संगियों को कब्ज तथा मूत्रबन्द होने लगा। जब राजा ने पूछा कि अकस्मात् परिस्थिति कैसे बदल गई तो पता चला कि इस दुर्भाग्य का कारण सुकन्या थी। तब सबों ने च्यवन मुनि को प्रसन्न करने के लिए स्तुति की और देवज्ञ शर्याति ने अपनी पुत्री उस वृद्ध पुरुष च्यवन मुनि को सौंप दी।

एक बार स्वर्ग के वैद्य अश्विनीकुमार बन्धु च्यवन मुनि के पास गये तो मुनि ने उनसे अपना तारुण्य वापस माँगा। ये दोनों वैद्य च्यवन मुनि को एक विशेष सरोवर के पास ले गये जहाँ उन्हें नहलवाया जिससे उन्हें तारुण्य फिर से वापस मिल गया। इसके बाद सुकन्या अपने पति को नहीं पहचान पाई। अतएव वह अश्विनीकुमारों की शरण में गई जो उसके सतीत्व से परम प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे पुन: उसके पति से मिला दिया। तब च्यवन मुनि ने राजा शर्याति को सोमयज्ञ कराने में लगा दिया और अश्विनीकुमारों को सोमरस पीने का अवसर प्रदान किया। इस पर स्वर्ग का राजा इन्द्र अत्यन्त कुपित हुआ, किन्तु वह शर्याति को कोई क्षति न पहुँचा पाया। तभी से अश्विनीकुमार वैद्यों को सोमरस में भाग मिलने लगा।

बाद में शर्याति के तीन पुत्र हुए जिनके नाम थे—उत्तानबर्हि, आनर्त तथा भूरिषेण। आनर्त के एक ही पुत्र हुआ जिसका नाम रेवत था। रेवत के सौ पुत्र हुए जिनमें से ककुद्मी ज्येष्ठ था। ककुद्मी को ब्रह्माजी ने सलाह दी कि वह अपनी सुन्दर पुत्री रेवती को बलदेव को अर्पित कर दे जो विष्णुतत्त्व की कोटि में आते हैं। तत्पश्चात् ककुद्मी ने गृहस्थ जीवन से वैराग्य ले लिया और वह तपस्या करने के लिए बदरिकाश्रम के जंगल में चला गया।

श्रीशुक उवाच
शर्यातिर्मानवो राजा ब्रह्मिष्ठः सम्बभूव ह ।
यो वा अङ्गिरसां सत्रे द्वितीयमहरूचिवान् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; शर्यातिः—शर्याति नामक राजा; मानवः—मनु का पुत्र; राजा—शासक; ब्रह्मिष्ठः—वैदिक ज्ञान से पूर्णतः भिज्ञ; सम्बभूव ह—वह बना; यः—जो; वा—अथवा; अङ्गिरसाम्—अंगिरा के वंशजों की; सत्रे—यज्ञशाला में; द्वितीयम् अहः—दूसरे दिन सम्पन्न होने वाले उत्सव; ऊचिवान्—कह सुनाया।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : हे राजा, मनु का दूसरा पुत्र राजा शर्याति वैदिक ज्ञान में पारंगत था। उसने अंगिरावंशियों द्वारा सम्पन्न होने वाले यज्ञ के दूसरे दिन के उत्सवों के विषय में आदेश दिए।

सुकन्या नाम तस्यासीत्कन्या कमललोचना ।
तया सार्धं वनगतो ह्यगमच्च्यवनाश्रमम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

सुकन्या—सुकन्या; नाम—नामक; तस्य—उसकी (शर्याति की); आसीत्—थी; कन्या—पुत्री; कमल-लोचना—कमल जैसे नेत्रों वाली; तया सार्धम्—उसके साथ; वन-गतः—जंगल में गया हुआ; हि—निस्सन्देह; अगमत्—वह गया; च्यवन-आश्रमम्—च्यवन मुनि के आश्रम में।

शर्याति के सुकन्या नामक एक सुन्दर कमलनेत्री कन्या थी जिसके साथ वे जंगल में च्यवन मुनि के आश्रम को देखने गये।

सा सखीभिः परिवृता विचिन्वन्त्यङ्घ्रिपान्वने ।
वल्मीकरन्ध्रे ददृशे खद्योते इव ज्योतिषी ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

सा—वह सुकन्या; सखीभिः—अपनी सहेलियों से; परिवृता—घिरी हुई; विचिन्वन्ती—चुनती हुई; अङ्घ्रिपान्—वृक्षों से फल तथा फूल; वने—जंगल में; वल्मीक-रन्ध्रे—बाँबी के छेद में; ददृशे—देखा; खद्योते—दो जुगुनू; इव—सदृश; ज्योतिषी—दो चमकीली वस्तुएँ।

जब वह सुकन्या जंगल में अपनी सहेलियों से घिरी हुई, वृक्षों से विविध प्रकार के फल एकत्र कर रही थी तो उसने बाँबी के छेद में दो जुगुनू जैसी चमकीली वस्तुएँ देखीं।

ते दैवचोदिता बाला ज्योतिषी कण्टकेन वै ।
अविध्यन्मुग्धभावेन सुस्रावासृक्ततो बहिः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

ते—उन दोनों; दैव-चोदिता—मानो विधाता द्वारा प्रेरित; बाला—तरुणी ने; ज्योतिषी—बाँबी के भीतर दो जुगुनुओं को; कण्टकेन—काँटे से; वै—निस्सन्देह; अविध्यत्—छेद दिया; मुग्ध-भावेन—बिना जाने; सुस्राव—बाहर निकल आया; असृक्—रक्त; ततः—वहाँ से; बहिः—बाहर।

मानो विधाता से प्रेरित होकर उस तरुणी ने बिना जाने उन दोनों जुगुनुओं को एक काँटे से छेद दिया जिससे उनमें से रक्त फूटकर बाहर आने लगा।

शकृन्मूत्रनिरोधोऽभूत्सैनिकानां च तत्क्षणात् ।
राजर्षिस्तमुपालक्ष्य पुरुषान्विस्मितोऽब्रवीत् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

शकृत्—मल का; मूत्र—तथा मूत्र का; निरोधः—अवरोध; अभूत्—हो गया; सैनिकानाम्—सारे सिपाहियों का; च—तथा; तत्-क्षणात्—तुरन्त; राजर्षिः—राजा; तम् उपालक्ष्य—उस घटना को देखकर; पुरुषान्—अपने आदमियों से; विस्मितः—आश्चर्यचकित होकर; अब्रवीत्—बोला।

उसके बाद ही शर्याति के सारे सैनिकों को तुरन्त ही मल-मूत्र में अवरोध होने लगा। यह देखकर शर्याति बड़े अचम्भे में आकर अपने संगियों से बोला।

अप्यभद्रं न युष्माभिर्भार्गवस्य विचेष्टितम् ।
व्यक्तं केनापि नस्तस्य कृतमाश्रमदूषणम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

अपि—ओह; अभद्रम्—कुछ अशुभ; नः—हम लोगों में से; युष्माभिः—तुम लोगों द्वारा; भार्गवस्य—च्यवन मुनि का; विचेष्टितम्—प्रयत्न किया गया है; व्यक्तम्—अब यह स्पष्ट है; केन अपि—किसी के द्वारा; नः—हमारा; तस्य—उसका (च्यवन मुनि का); कृतम्—किया गया है; आश्रम-दूषणम्—आश्रम का प्रदूषण।

यह कितनी विचित्र बात है कि हममें से किसी ने भृगुपुत्र च्यवन मुनि का कुछ अहित करने का प्रयास किया है। निश्चय ही, ऐसा लगता है कि हममें से किसी ने इस आश्रम को अपवित्र कर दिया है।

सुकन्या प्राह पितरं भीता किञ्चित्कृतं मया ।
द्वे ज्योतिषी अजानन्त्या निर्भिन्ने कण्टकेन वै ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

सुकन्या—सुकन्या ने; प्राह—कहा; पितरम्—अपने पिता से; भीता—डरी हुई; किञ्चित्—कुछ; कृतम्—किया गया है; मया—मेरे द्वारा; द्वे—दो; ज्योतिषी—चमकती वस्तुएँ; अजानन्त्या—अज्ञान के कारण; निर्भिन्ने—छेद दी गईं; कण्टकेन—काँटे से; वै—निस्सन्देह।

अत्यन्त भयभीत सुकन्या ने अपने पिता से कहा : मैंने कुछ गलती की है क्योंकि मैंने अज्ञानवश

इन दो चमकीली वस्तुओं को काँटे से छेद दिया है।

दुहितुस्तद्वचः श्रुत्वा शर्यातिर्जातसाध्वसः ।
मुनिं प्रसादयामास वल्मीकान्तर्हितं शनैः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

दुहितुः—अपनी पुत्री का; तत् वचः—वह कथन; श्रुत्वा—सुनकर; शर्यातिः—राजा शर्याति ने; जात-साध्वसः—भयभीत होकर; मुनिम्—च्यवन मुनि को; प्रसादयाम् आस—शांत करने का प्रयास किया; वल्मीक-अन्तर्हितम्—बाँबी के भीतर बैठे; शनैः—धीरे-धीरे।

अपनी पुत्री से यह सुनकर राजा शर्याति अत्यधिक डर गये। उन्होंने अनेक प्रकार से च्यवन मुनि को शांत करने का प्रयत्न किया क्योंकि वे ही उस बाँबी के छेद के भीतर बैठे थे।

तदभिप्रायमाज्ञाय प्रादाद्दुहितरं मुनेः ।
कृच्छ्रान्मुक्तस्तमामन्त्र्य पुरं प्रायात्समाहितः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

तत्—च्यवन मुनि का; अभिप्रायम्—प्रयोजन; आज्ञाय—समझकर; प्रादात्—प्रदान कर दिया; दुहितरम्—अपनी पुत्री; मुनेः—च्यवन मुनि को; कृच्छ्रात्—बड़ी कठिनाई से; मुक्तः—मुक्त बनाया; तम्—मुनि को; आमन्त्र्य—अनुमति लेकर; पुरम्—अपने स्थान को; प्रायात्—चला गया; समाहितः—अत्यधिक विचारमग्न।

अत्यन्त विचारमग्न होकर और च्यवन मुनि के प्रयोजन को समझकर राजा शर्याति ने मुनि को अपनी कन्या दान में दे दी। इस प्रकार बड़ी मुश्किल से संकट से मुक्त होकर उसने च्यवन मुनि से अनुमति ली और वह घर लौट गया।

तात्पर्य : राजा ने अपनी लड़की से सारी बातें सुनकर च्यवन मुनि को यह अवश्य बतलाया होगा कि किस तरह उसकी पुत्री ने अनजाने ऐसा अपराध किया। किन्तु मुनि ने राजा से पूछा कि उसकी पुत्री विवाहिता है या नहीं। इस तरह राजा ने मुनि का अभिप्राय समझकर (*तदभिप्रायम् आज्ञाय*), तुरन्त ही अपनी पुत्री को दान में दे दिया और वह शापित होने के संकट से बच गया। तब मुनि की आज्ञा से राजा घर लौट गया।

सुकन्या च्यवनं प्राप्य पतिं परमकोपनम् ।
प्रीणयामास चित्तज्ञा अप्रमत्तानुवृत्तिभिः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

सुकन्या—राजा शर्याति की पुत्री सुकन्या ने; च्यवनम्—च्यवन मुनि को; प्राप्य—पाकर; पतिम्—पति रूप में; परम-कोपनम्—जो सदैव अत्यन्त क्रुद्ध रहता था; प्रीणयाम् आस—उसको प्रसन्न किया; चित्त-ज्ञा—अपने पति के मन की बात जानने वाली; अप्रमत्ता अनुवृत्तिभिः—घबराए बिना सेवा करके।

च्यवन मुनि अत्यन्त क्रोधी थे, किन्तु क्योंकि सुकन्या ने उन्हें पति रूप में प्राप्त किया था, अतः उसने सावधानी से उनके मनोनुकूल व्यवहार किया। उसने बिना घबराए उनकी सेवा की।

तात्पर्य : यह पति तथा पत्नी के मध्य सम्बन्ध का द्योतक है। च्यवन मुनि जैसा महापुरुष सदैव श्रेष्ठ पद पर बना रहना चाहता है। ऐसा व्यक्ति किसी के आगे घुटने नहीं टेक सकता। अतएव च्यवन मुनि का स्वभाव क्रोधी था। उनकी पत्नी सुकन्या उनकी मनोवृत्ति को समझ गई थी अतएव उसने तदनुसार बर्ताव करना प्रारम्भ किया। यदि कोई पत्नी अपने पति के साथ सुख से रहना चाहती है तो उसे अपने पति के मनोभाव समझने का प्रयास करना चाहिए और उसे प्रसन्न करना चाहिए। यह स्त्री की विजय है। यहाँ तक कि श्रीकृष्ण द्वारा अपनी विभिन्न रानियों के साथ किये जाने वाले बर्ताव में भी इसे देखा जा सकता है कि यद्यपि ये रानियाँ बड़े-बड़े राजाओं की पुत्रियाँ थीं, किन्तु उन्होंने भगवान् कृष्ण के समक्ष अपने आपको दासी के रूप में प्रस्तुत किया। कोई स्त्री कितनी भी महान् क्यों न हो उसे अपने पति के समक्ष इसी तरह प्रस्तुत होना चाहिए अर्थात् उसे अपने पति के आदेशों का पालन करने के लिए तथा सभी परिस्थितियों में उसे प्रसन्न रखने के लिए तैयार रहना चाहिए। तभी उसका जीवन सफल हो पाएगा। यदि पत्नी भी पति के समान क्रोधी बन जाय तो उनका गृहस्थ-जीवन अवश्य ही अस्त-व्यस्त हो जायेगा या अंत में पूर्णतया ध्वस्त हो जायेगा। आधुनिक काल की पत्नी विनयशील नहीं है इसीलिए छोटी से छोटी घटना होने पर गृहस्थ-जीवन भंग हो जाता है। पत्नी या पति दोनों में से कोई भी विवाह-विच्छेद के नियमों का लाभ उठा सकता है। किन्तु वैदिक नियमों में विवाह-विच्छेद की कोई व्यवस्था नहीं है और पत्नी को पति की इच्छा के अनुसार विनीत होने की शिक्षा दी जानी चाहिए। पाश्चात्य लोगों का कहना है कि पत्नी के लिए यह दास-प्रवृत्ति है, किन्तु वास्तव में ऐसा है नहीं। यह तो स्त्री की निपुणता है जिससे वह अपने कितने ही क्रोधी या नृशंस पति के हृदय पर विजय पा सकती है। यहाँ पर हम स्पष्ट देखते हैं कि यद्यपि च्यवन मुनि तरुण नहीं थे और सुकन्या के पितामह होने योग्य तथा अत्यधिक क्रोधी थे, जब कि सुकन्या एक राजा की सुन्दर तरुण कन्या थी तो भी उसने अपने बूढ़े पति को आत्म-समर्पण करके उसे सभी प्रकार से प्रसन्न करने का प्रयत्न किया। इस प्रकार वह आज्ञाकारिणी एवं साध्वी पत्नी थी।

**कस्यचित्त्वथ कालस्य नासत्यावाश्रमागतौ ।
तौ पूजयित्वा प्रोवाच वयो मे दत्तमीश्वरौ ॥ ११ ॥**

शब्दार्थ

कस्यचित्—कुछ (समय) बाद; तु—लेकिन; अथ—इस प्रकार; कालस्य—समय के बीतने पर; नासत्यौ—दोनों अश्विनीकुमार; आश्रम—च्यवन मुनि के स्थान पर; आगतौ—पहुँचे; तौ—उन दोनों को; पूजयित्वा—सत्कार तथा नमस्कार करके; प्रोवाच—कहा; वयः—तारुण्य; मे—मुझको; दत्तम्—कृपा करके दे दो; ईश्वरौ—क्योंकि तुम दोनों ऐसा करने में समर्थ हो।

कुछ काल बीतने के बाद दोनों अश्विनीकुमार जो स्वर्गलोक के वैद्य थे, च्यवन मुनि के आश्रम आये। उनका सत्कार करने के बाद च्यवन मुनि ने उनसे यौवन प्रदान करने के लिए प्रार्थना की क्योंकि वे ऐसा करने में सक्षम थे।

तात्पर्य : अश्विनीकुमार जैसे स्वर्ग के वैद्य किसी को भी, चाहे वह वृद्ध क्यों न हो, जवानी दे सकते थे। निस्सन्देह, बड़े-बड़े योगी अपनी योगशक्ति से शव में भी जीवन फूँक सकते हैं यदि शरीर की संरचना बिगड़ी न हो। शुक्राचार्य द्वारा बलि महाराज के सैनिकों के उपचार के प्रसंग में हम इसकी व्याख्या कर चुके हैं। यद्यपि आधुनिक चिकित्साशास्त्र शव को जीवित करने या वृद्ध शरीर में जवानी लाने में असमर्थ है, किन्तु इस श्लोकों से पता चलता है कि यदि कोई वैदिक शास्त्र से ज्ञान प्राप्त कर ले तो ऐसा उपचार सम्भव है। दोनों अश्विनीकुमार धन्वन्तरि के ही समान आयुर्वेद में पटु थे। यदि भौतिक विज्ञान की प्रत्येक शाखा में पूर्णता प्राप्त की जानी है तो इसे प्राप्त करने के लिए वैदिक साहित्य का अवलोकन करना चाहिए। किन्तु सबसे बड़ी पूर्णता (सिद्धि) तो भगवान् का भक्त बनना है। इस पूर्णता-प्राप्ति के लिए *श्रीमद्भागवत* का अवलोकन करना चाहिए जो वैदिक कल्पतरु का पक्व फल माना जाता है (*निगमकल्पतरोर्गलितं फलम्*)।

**ग्रहं ग्रहीष्ये सोमस्य यज्ञे वामप्यसोमपोः ।
क्रियतां मे वयोरूपं प्रमदानां यदीप्सितम् ॥ १२ ॥**

शब्दार्थ

ग्रहम्—पूर्ण पात्र; ग्रहीष्ये—मैं दूँगा; सोमस्य—सोमरस का; यज्ञे—यज्ञ में; वाम्—तुम दोनों का; अपि—यद्यपि; असोम-पोः—तुम दोनों का, जो सोमरस पीने के अधिकारी नहीं हो; क्रियताम्—पूरा करो; मे—मेरा; वयः—यौवन; रूपम्—नवयुवक का सौन्दर्य; प्रमदानाम्—स्त्री-वर्ग का; यत्—जो; ईप्सितम्—अभीष्ट है।

च्यवन मुनि ने कहा : यद्यपि तुम दोनों यज्ञ में सोमरस पीने के पात्र नहीं हो, किन्तु मैं वचन देता हूँ कि मैं तुम्हें सोमरस का पूरा बर्तन भर कर दूँगा। कृपा करके मेरे लिए सौन्दर्य तथा तारुण्य की

व्यवस्था करो क्योंकि तरुणी स्त्रियों को ये आकर्षक लगते हैं।

बाढमित्यूचतुर्विप्रमभिनन्द्य भिषक्तमौ ।
निमज्जतां भवानस्मिन्ह्रदे सिद्धविनिर्मिते ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

बाढम्—हाँ, हम ऐसा करेंगे; इति—इस प्रकार; ऊचतुः—दोनों ने उत्तर दिया, च्यवन मुनि का प्रस्ताव स्वीकार किया; विप्रम्—ब्राह्मण (च्यवन मुनि) को; अभिनन्द्य—बधाई देकर; भिषक्-तमौ—दोनों महान् वैद्य अश्विनीकुमार; निमज्जताम्—डुबकी लगाइये; भवान्—आप; अस्मिन्—इस; ह्रदे—झील में; सिद्ध-विनिर्मिते—सभी प्रकार की सिद्धियों के लिए विशेषतः बनाई गई।

उन महान् वैद्य अश्विनीकुमारों ने च्यवन मुनि के प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया। उन्होंने उस ब्राह्मण से कहा ''आप इस सिद्धिदायक झील में गोता लगाइये। (जो इस झील में नहाता है उसकी कामनाएँ पूरी होती हैं)।

इत्युक्तो जरया ग्रस्तदेहो धमनिसन्ततः ।
ह्रदं प्रवेशितोऽश्विभ्यां वलीपलितविग्रहः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

इति उक्तः—इस प्रकार कहे जाने पर; जरया—वृद्धावस्था तथा अशक्तता के कारण; ग्रस्त-देहः—रुग्ण देह; धमनि-सन्ततः—जिसकी धमनियाँ शरीर भर में झलक रही थीं; ह्रदम्—झील में; प्रवेशितः—प्रविष्ट हुए; अश्विभ्याम्—अश्विनीकुमारों की सहायता से; वली-पलित-विग्रहः—जिसके शरीर की चमड़ी झूल रही थी तथा बाल सफेद थे।

यह कहकर अश्विनीकुमारों ने च्यवन मुनि को पकड़ा जो वृद्ध थे और जिनके रुग्ण शरीर की चमड़ी झूल रही थी, बाल सफेद थे तथा सारे शरीर में नसें दिख रही थीं और वे तीनों उस झील में घुस गये।

तात्पर्य : च्यवन मुनि इतने वृद्ध थे कि वे अकेले झील में नहीं घुस सकते थे। अतः अश्विनीकुमारों ने उनका शरीर पकड़ा और वे तीनों झील में घुस गये।

पुरुषास्त्रय उत्तस्थुरपीव्या वनिताप्रियाः ।
पद्मस्त्रजः कुण्डलिनस्तुल्यरूपाः सुवाससः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

पुरुषाः—मनुष्य; त्रयः—तीन; उत्तस्थुः—(झील से) ऊपर निकल आये; अपीव्याः—अत्यन्त सुन्दर; वनिता-प्रियाः—स्त्रियों को आकर्षक लगने वाला पुरुष; पद्म-स्त्रजः—कमल की मालाओं से अलंकृत; कुण्डलिनः—कुण्डल पहिने; तुल्य-रूपाः—समान स्वरूप वाले; सु-वाससः—सुन्दर वस्त्र पहने।

तत्पश्चात् झील से तीन अत्यन्त सुन्दर स्वरूप वाले व्यक्ति ऊपर उठे। वे अच्छे वस्त्र धारण किये थे

और कुण्डलों तथा कमल की मालाओं से विभूषित तीनों ही समान सुन्दरता वाले थे।

तान्निरीक्ष्य वरारोहा सरूपान्सूर्यवर्चस: ।
अजानती पतिं साध्वी अश्विनौ शरणं ययौ ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

तान्—उनको; निरीक्ष्य—देखकर; वर-आरोहा—सुन्दरी सुकन्या; स-रूपान्—समान सुन्दरता वाले; सूर्य-वर्चस:—सूर्य के समान तेजस्वी; अजानती—न जानती हुई; पतिम्—अपने पति को; साध्वी—उस सती स्त्री ने; अश्विनौ—अश्विनीकुमारों की; शरणम्—शरण; ययौ—ग्रहण की।

साध्वी एवं परम सुन्दरी सुकन्या अपने पति एवं उन दोनों अश्विनीकुमारों में अन्तर न कर पाई क्योंकि वे समान रूप से सुन्दर थे। अतएव अपने असली पति को पहचान पाने में असमर्थ होने के कारण उसने अश्विनीकुमारों की शरण ग्रहण की।

तात्पर्य : सुकन्या उन तीनों में किसी को भी अपना पति चुन सकती थी क्योंकि उनमें अन्तर कर पाना कठिन था, किन्तु सती होने के कारण उसने अश्विनीकुमारों की शरण ग्रहण की जिससे वे उसका असली पति बतला सकें। सती स्त्री अपने पति के अतिरिक्त अन्य किसी पुरुष को कभी भी स्वीकार नहीं करेगी, भले ही कोई उसी के समान सुन्दर तथा योग्य क्यों न हो।

दर्शयित्वा पतिं तस्यै पातिव्रत्येन तोषितौ ।
ऋषिमामन्त्र्य ययतुर्विमानेन त्रिविष्टपम् ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

दर्शयित्वा—दिखलाने के बाद; पतिम्—पति; तस्यै—सुकन्या को; पाति-व्रत्येन—उसके पातिव्रत्य से; तोषितौ—उसपर प्रसन्न होकर; ऋषिम्—च्यवन मुनि को; आमन्त्र्य—उसकी अनुमति लेकर; ययतु:—चले गये; विमानेन—अपने विमान से; त्रिविष्टपम्—स्वर्गलोक को।

दोनों अश्विनीकुमार सुकन्या के सतीत्व एवं निष्ठा को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। अत: उन्होंने उसे उसके पति च्यवन मुनि को दिखलाया और फिर उनसे अनुमति लेकर वे अपने विमान से स्वर्गलोक को वापस लौट गये।

यक्ष्यमाणोऽथ शर्यातिश्च्यवनस्याश्रमं गत: ।
ददर्श दुहितु: पार्श्वे पुरुषं सूर्यवर्चसम् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

यक्ष्यमाणः—यज्ञ करने की इच्छा से; अथ—इस प्रकार; शर्यातिः—शर्याति; च्यवनस्य—च्यवन मुनि के; आश्रमम्—आवास तक; गतः—जाकर; ददर्श—देखा; दुहितुः—अपनी कन्या के; पार्श्वे—बगल में; पुरुषम्—पुरुष को; सूर्य-वर्चसम्—सूर्य के समान सुन्दर तथा तेजवान।

तत्पश्चात् यज्ञ सम्पन्न करने की इच्छा से राजा शर्याति च्यवन मुनि के आवास में गये। वहाँ उन्होंने अपनी पुत्री के बगल में सूर्य के समान एक तेजस्वी सुन्दर तरुण पुरुष को देखा।

राजा दुहितरं प्राह कृतपादाभिवन्दनाम् ।
आशिषश्चाप्रयुञ्जानो नातिप्रीतिमना इव ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

राजा—राजा (शर्याति) ने; दुहितरम्—अपनी पुत्री से; प्राह—कहा; कृत-पाद-अभिवन्दनाम्—जो अपने पिता को पहले ही सादर नमस्कार कर चुकी थी; आशिषः—आशीर्वाद; च—तथा; अप्रयुञ्जानः—अपनी पुत्री को दिये बिना; न—नहीं; अतिप्रीति-मनाः—अत्यधिक प्रसन्न; इव—सदृश।

राजा की पुत्री ने पिता के चरणों की वन्दना की, किन्तु राजा उसे आशीष देने की बजाय उससे अत्यधिक अप्रसन्न प्रतीत हुआ और उससे इस प्रकार बोला।

चिकीर्षितं ते किमिदं पतिस्त्वया
प्रलम्भितो लोकनमस्कृतो मुनिः ।
यत्त्वं जराग्रस्तमसत्यसम्मतं
विहाय जारं भजसेऽमुमध्वगम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

चिकीर्षितम्—तुम जो करना चाहती हो; ते—तुम्हारा; किम् इदम्—यह क्या है; पतिः—अपना पति; त्वया—तुम्हारे द्वारा; प्रलम्भितः—ठगा गया है; लोक-नमस्कृतः—जिसका सभी लोग आदर करते हैं; मुनिः—महान् साधु; यत्—क्योंकि; त्वम्—तुम; जरा-ग्रस्तम्—अत्यन्त वृद्ध एवं अशक्त; असति—हे दुष्ट लड़की; असम्मतम्—अनाकर्षक; विहाय—छोड़कर; जारम्—परपति, धृष्ट; भजसे—स्वीकार किया है; अमुम्—इस व्यक्ति को; अध्वगम्—जो भिखारी के तुल्य है।

हे दुष्ट लड़की, तुमने यह क्या कर दिया? तुमने अपने अत्यन्त सम्माननीय पति को धोखा दिया है क्योंकि मैं देख रहा हूँ कि उसके वृद्ध, रोगग्रस्त तथा अनाकर्षक होने के कारण तुमने उसका साथ छोड़कर इस तरुण पुरुष को अपना पति बनाना चाहा है जो भिक्षुक जैसा प्रतीत होता है।

तात्पर्य : इससे वैदिक संस्कृति की महत्ता झलकती है। परिस्थितिवश सुकन्या को ऐसा पति दिया गया था जो उसकी तुलना में वृद्ध था। चूँकि च्यवन मुनि रुग्ण एवं अति वृद्ध थे अतएव वे निश्चित रूप से राजा शर्याति की सुन्दर पुत्री के अनुरूप न थे। फिर भी उसके पिता चाहते थे कि वह अपने पति की आज्ञाकारिणी बनी रहे। अतएव जब पिता ने सहसा देखा कि उसकी पुत्री ने किसी अन्य को पति बना लिया है, यद्यपि

वह तरुण तथा सुन्दर था तो भी उसने तुरन्त ही उसे *असती* कहकर दुत्कारा क्योंकि उसने यह कल्पना कर ली कि उसकी पुत्री ने अपने पति के रहते किसी अन्य को पति बना लिया है। वैदिक संस्कृति के अनुसार यदि कोई तरुणी किसी वृद्ध को भी ब्याह दी जाय तो उसे आदरपूर्वक उसकी सेवा करनी चाहिए। यही सतीत्व है। ऐसा नहीं है कि यदि वह अपने पति को नहीं चाहती तो उसे छोड़ दे और दूसरा पति कर ले। यह वैदिक संस्कृति के विरुद्ध है। वैदिक संस्कृति के अनुसार माता-पिता द्वारा कन्या जिसको सौंप दी जाती है उसे ही पति मानकर उसे उसकी आज्ञाकारिणी बनना और सती रहना होता है। इसीलिए राजा शर्याति सुकन्या के बगल में एक तरुण पुरुष को देखकर चकित हो गए।

कथं मतिस्तेऽवगतान्यथा सतां
कुलप्रसूते कुलदूषणं त्विदम् ।
बिभर्षि जारं यदपत्रपा कुलं
पितुश्च भर्तुश्च नयस्यधस्तमः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

कथम्—कैसे; मतिः ते—तुम्हारी चेतना; अवगता—नीचे चली गई; अन्यथा—अन्यथा; सताम्—सर्वाधिक पूज्य; कुल-प्रसूते—कुल में उत्पन्न; कुल-दूषणम्—कुलकलंक; तु—लेकिन; इदम्—यह; बिभर्षि—रख रही हो!; जारम्—परपति को; यत्—क्योंकि यह; अपत्रपा—लज्जारहित है; कुलम्—कुल; पितुः—तुम्हारे पिता का; च—तथा; भर्तुः—पति का; च—तथा; नयसि—नीचे ले जा रही हो; अधः तमः—नीचे अंधकार या नरक में।.

हे पूज्य कुल में उत्पन्न मेरी पुत्री, तुमने अपनी चेतना को किस तरह इतना नीचे गिरा दिया है? तुम किस तरह परपति को इतनी निर्लज्जतापूर्वक रख रही हो? इस तरह तुम अपने पिता तथा अपने पति दोनों के कुलों को नरक में धकेल कर बदनाम करोगी।

तात्पर्य : यह बिल्कुल स्पष्ट है कि वैदिक संस्कृति के अनुसार जो स्त्री अपने विवाहित पति के रहते दूसरा पति (जार) स्वीकार करती है वह अपने पिता के कुल तथा पति के कुल को डुबाने वाली मानी जाती है। आज भी इस विषय में ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा वैश्यों के सम्मानित कुलों में वैदिक संस्कृति के नियमों का दृढ़ता से पालन होता है। इस विषय में केवल शूद्र ही पतित होते हैं। वैदिक संस्कृति में ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य कुल की स्त्री के लिए विवाहित पति की उपस्थिति में दूसरा पति स्वीकार करना या विवाह-विच्छेद की माँग करना या परपति को प्रेमी बनाना अमान्य है। अतएव राजा शर्याति च्यवन मुनि के स्वरूप-परिवर्तन की असलियत न जानने के कारण अपनी पुत्री के ऐसे आचरण को देखकर आश्चर्यचकित हुए।

**एवं ब्रुवाणं पितरं स्मयमाना शुचिस्मिता ।
उवाच तात जामाता तवैष भृगुनन्दनः ॥ २२ ॥**

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; ब्रुवाणम्—बातें करते तथा फटकारते हुए; पितरम्—अपने पिता से; स्मयमाना—मुस्काती हुई (क्योंकि सती थी); शुचि-स्मिता—हँसती हुई; उवाच—बोली; तात—हे पिता; जामाता—दामाद; तव—तुम्हारा; एषः—यह तरुण; भृगु-नन्दनः—च्यवन मुनि ही हैं (अन्य कोई नहीं)।

किन्तु अपने सतीत्व पर गर्वित सुकन्या अपने पिता की डाँट फटकार सुनकर मुस्काने लगी। उसने हँसते हुए कहा "हे पिता, मेरी बगल में बैठा यह तरुण व्यक्ति आपका असली दामाद, भृगुवंश में उत्पन्न, च्यवन मुनि है।"

तात्पर्य : यद्यपि पिता ने यह सोचकर अपनी पुत्री को फटकारा था कि उसने दूसरा पति स्वीकार कर लिया है, किन्तु पुत्री जान रही थी कि वह पूर्णतया ईमानदार तथा सती है; इसीलिए वह हँस रही थी। जब उसने बताया कि उसका वृद्ध पति च्यवन मुनि ही बदलकर तरुण पुरुष बन गया है तो उसे अपने सतीत्व पर गर्व हुआ और इसीलिए वह अपने पिता से बातें करते समय मुस्करा रही थी।

**शशंस पित्रे तत्सर्वं वयोरूपाभिलम्भनम् ।
विस्मितः परमप्रीतस्तनयां परिषस्वजे ॥ २३ ॥**

शब्दार्थ

शशंस—उसने वर्णन किया; पित्रे—अपने पिता से; तत्—वह; सर्वम्—हर बात; वयः—आयु परिवर्तन का; रूप—तथा सौन्दर्य का; अभिलम्भनम्—किस तरह उपलब्धि मिली (पति को); विस्मितः—चकित; परम-प्रीतः—अत्यधिक प्रसन्न; तनयाम्—अपनी पुत्री को; परिषस्वजे—हर्षित होकर गले से लगा लिया।

तब सुकन्या ने बतलाया कि किस तरह उसके पति को तरुण पुरुष का सुन्दर शरीर प्राप्त हुआ। जब राजा ने इसे सुना तो वह अत्यधिक चकित हुआ और परम हर्षित होकर उसने अपनी प्रिय पुत्री को गले से लगा लिया।

**सोमेन याजयन्वीरं ग्रहं सोमस्य चाग्रहीत् ।
असोमपोरप्यश्विनोश्च्यवनः स्वेन तेजसा ॥ २४ ॥**

शब्दार्थ

सोमेन—सोम से; याजयन्—यज्ञ कराते हुए; वीरम्—राजा (शर्याति) को; ग्रहम्—पूर्ण पात्र; सोमस्य—सोमरस का; च—भी; अग्रहीत्—प्रदान किया; असोम-पोः—जिन्हें सोमरस पीना वर्जित था; अपि—यद्यपि; अश्विनोः—अश्विनीकुमारों का; च्यवनः—च्यवन मुनि; स्वेन—अपने; तेजसा—पराक्रम से।

च्यवन मुनि ने अपने पराक्रम से राजा शर्याति से सोमयज्ञ सम्पन्न कराया। मुनि ने अश्विनीकुमारों को सोमरस का पूरा पात्र प्रदान किया यद्यपि वे इसे पीने के अधिकारी नहीं थे।

हन्तुं तमाददे वज्रं सद्यो मन्युरमर्षितः ।
सवज्रं स्तम्भयामास भुजमिन्द्रस्य भार्गवः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

हन्तुम्—मारने के लिए; तम्—उस (च्यवन) को; आददे—इन्द्र ने धारण किया; वज्रम्—अपना वज्र; सद्यः—तुरन्त; मन्युः—बिना सोचे-विचारे, क्रोध में आकर; अमर्षितः—अत्यन्त उद्विग्न होकर; स-वज्रम्—अपने वज्र से; स्तम्भयाम् आस—निश्चेष्ट कर दिया; भुजम्—बाँह को; इन्द्रस्य—इन्द्र की; भार्गवः—भृगुवंशी च्यवन मुनि।

उद्विग्न एवं क्रुद्ध होने से इन्द्र ने च्यवन मुनि को मार डालना चाहा अतएव उसने बिना सोचे-विचारे अपना वज्र धारण कर लिया। लेकिन च्यवन मुनि ने अपने पराक्रम से इन्द्र की उस बाँह को संज्ञाशून्य कर दिया जिससे उसने वज्र पकड़ रखा था।

अन्वजानंस्ततः सर्वे ग्रहं सोमस्य चाश्विनोः ।
भिषजाविति यत्पूर्वं सोमाहुत्या बहिष्कृतौ ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

अन्वजानन्—उनकी अनुमति से; ततः—तत्पश्चात्; सर्वे—सारे देवता; ग्रहम्—भरा पात्र; सोमस्य—सोमरस का; च—भी; अश्विनोः—अश्विनीकुमारों के; भिषजौ—यद्यपि केवल वैद्य; इति—इस प्रकार; यत्—क्योंकि; पूर्वम्—इसके पहले; सोम-आहुत्या—सोमयज्ञ में भाग देकर; बहिः-कृतौ—निकाला गया।

यद्यपि अश्विनीकुमार मात्र वैद्य थे और इसी कारण से उन्हें यज्ञों में सोमरस-पान से बाहर रखा जाता था, किन्तु देवताओं ने इसके बाद उन्हें सोमरस पीने के लिए अनुमति प्रदान कर दी।

उत्तानबर्हिरानर्तो भूरिषेण इति त्रयः ।
शर्यातेरभवन्पुत्रा आनर्ताद्रेवतोऽभवत् ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

उत्तानबर्हिः—उत्तानबर्हि; आनर्तः—आनर्त; भूरिषेणः—भूरिषेण; इति—इस प्रकार; त्रयः—तीन; शर्यातेः—राजा शर्याति के; अभवन्—उत्पन्न हुए; पुत्राः—पुत्र; आनर्तात्—आनर्त से; रेवतः—रेवत; अभवत्—उत्पन्न हुआ।

राजा शर्याति के उत्तानबर्हि, आनर्त तथा भूरिषेण नामक तीन पुत्र हुए। आनर्त के पुत्र का नाम रेवत था।

सोऽन्तःसमुद्रे नगरीं विनिर्माय कुशस्थलीम् ।
आस्थितोऽभुङ्क्त विषयानानर्तादीनरिन्दम ।
तस्य पुत्रशतं जज्ञे ककुद्मिज्येष्ठमुत्तमम् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

सः—रेवत; अन्तः-समुद्रे—समुद्र के नीचे; नगरीम्—शहर; विनिर्माय—बनवाकर; कुशस्थलीम्—कुशस्थली नामक; आस्थितः—वहाँ रहा; अभुङ्क्त—भौतिक सुख का भोग किया; विषयान्—राज्य; आनर्त-आदीन्—आनर्त तथा अन्य; अरिम्-दम—हे शत्रुओं का दमन करने वाले महाराज परीक्षित; तस्य—उसके; पुत्र-शतम्—एक सौ पुत्र; जज्ञे—उत्पन्न हुए; ककुद्मि-ज्येष्ठम्—जिनमें से ककुद्मी ज्येष्ठ था; उत्तमम्—अत्यन्त शक्तिशाली तथा ऐश्वर्यवान्।

हे शत्रुओं के दमनकर्ता महाराज परीक्षित, इस रेवत ने समुद्र के भीतर कुशस्थली नामक राज्य का निर्माण कराया। वहाँ रहकर उसने आनर्त इत्यादि भूखण्डों पर शासन किया। उसके एक सौ सुन्दर पुत्र थे जिनमें सबसे बड़ा ककुद्मी था।

ककुद्मी रेवतीं कन्यां स्वामादाय विभुं गतः ।
पुत्र्या वरं परिप्रष्टुं ब्रह्मलोकमपावृतम् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

ककुद्मी—राजा ककुद्मी; रेवतीम्—रेवती को; कन्याम्—ककुद्मी की पुत्री; स्वाम्—निजी; आदाय—लेकर; विभुम्—ब्रह्मा के समक्ष; गतः—गया; पुत्र्याः—अपनी पुत्री का; वरम्—पति; परिप्रष्टुम्—पूछने के लिए; ब्रह्मलोकम्—ब्रह्मलोक में; अपावृतम्—तीनों गुणों से परे।

ककुद्मी अपनी पुत्री रेवती को लेकर ब्रह्मा के पास ब्रह्मलोक में गया जो भौतिक प्रकृति के तीनों गुणों से परे है और उसके लिए पति के विषय में पूछताछ की।

तात्पर्य : ऐसा लगता है कि ब्रह्मा का धाम ब्रह्मलोक भी भौतिक प्रकृति के तीनों गुणों से परे है (*अपावृतम्*)।

आवर्तमाने गान्धर्वे स्थितोऽलब्धक्षणः क्षणम् ।
तदन्त आद्यमानम्य स्वाभिप्रायं न्यवेदयत् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

आवर्तमाने—लगा रहने के कारण; गान्धर्वे—गन्धर्वों से गाने सुनने में; स्थितः—स्थित; अलब्ध-क्षणः—बात करने के लिए समय न था; क्षणम्—क्षणभर के लिए भी; तत्-अन्ते—समाप्त होने पर; आद्यम्—ब्रह्माण्ड के आदि गुरु (ब्रह्माजी) को; आनम्य—नमस्कार करके; स्व-अभिप्रायम्—अपनी निजी इच्छा; न्यवेदयत्—ककुद्मी ने निवेदन किया।

जब ककुद्मी वहाँ पहुँचा तो ब्रह्माजी गन्धर्वों का संगीत सुनने में व्यस्त थे और उन्हें बात करने की तनिक भी फुरसत न थी। अतएव ककुद्मी प्रतीक्षा करता रहा और संगीत समाप्त होने पर उसने ब्रह्माजी को नमस्कार करके अपनी चिरकालीन इच्छा व्यक्त की।

तच्छ्रुत्वा भगवान्ब्रह्मा प्रहस्य तमुवाच ह ।
अहो राजन्निरुद्धास्ते कालेन हृदि ये कृताः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

तत्—उसे; श्रुत्वा—सुनकर; भगवान्—अत्यन्त शक्तिशाली; ब्रह्मा—ब्रह्माजी ने; प्रहस्य—हँसकर; तम्—ककुद्मी राजा से; उवाच ह—कहा; अहो—ओह; राजन्—हे राजा; निरुद्धाः—सभी चले गये; ते—वे; कालेन—कालक्रम से; हृदि—हृदय में; ये—वे सभी; कृताः—जिन्होंने तुम्हारे दामाद के रूप में स्वीकृति दे दी है।

उसके वचन सुनकर शक्तिशाली ब्रह्माजी जोर से हँसे और ककुद्मी से बोले: हे राजा, तुमने अपने हृदय में जिन लोगों को अपना दामाद बनाने का निश्चय किया है वे कालक्रम से मर चुके हैं।

तत्पुत्रपौत्रनप्तृणां गोत्राणि च न शृण्महे ।
कालोऽभियातस्त्रिणवचतुर्युगविकल्पितः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

तत्—वहाँ; पुत्र—पुत्रों का; पौत्र—पौत्रों का; नप्तृणाम्—तथा वंशजों का; गोत्राणि—गोत्र; च—भी; न—नहीं; शृण्महे—हम सुनते हैं; कालः—काल; अभियातः—चले गये; त्रि—तीन; नव—नौ; चतुर्-युग—चारों युग (सत्य, त्रेता, द्वापर तथा कलि); विकल्पितः—इस प्रकार मापा गया।

सत्ताईस चतुर्युग बीत चुके हैं। तुमने जिन लोगों को रेवती का पति बनाना चाहा होगा वे अब सब चले गये हैं और उनके पुत्र, पौत्र तथा अन्य वंशज भी नहीं रहे हैं। अब तुम्हें उनके नाम भी नहीं सुनाई पड़ेंगे।

तात्पर्य : ब्रह्माजी के एक दिन में चौदह मनु या एक हजार महायुग बीत जाते हैं। ब्रह्माजी ने राजा ककुद्मी को सूचित किया कि पहले ही सत्ताईस महायुग बीत चुके हैं जिनमें से प्रत्येक में चार युग—सत्य, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग—होते हैं। उन युगों में उत्पन्न सारे राजा तथा महापुरुष पहले ही विस्मृत हो चुके थे। भूत, वर्तमान तथा भविष्य से होकर गतिशील काल की यही रीति है।

तद्गच्छ देवदेवांशो बलदेवो महाबलः ।
कन्यारत्नमिदं राजन्नररत्नाय देहि भोः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

तत्—इसलिए; गच्छ—जाओ; देव-देव-अंशः—जिनके स्वांश विष्णु हैं; बलदेवः—बलदेव; महा-बलः—अत्यन्त शक्तिशाली; कन्या-रत्नम्—अपनी सुन्दर पुत्री को; इदम्—इस; राजन्—हे राजा; नर-रत्नाय—भगवान् को, जो सदैव तरुण रहते हैं; देहि—दो (दान में); भोः—हे राजा।

हे राजा, तुम यहाँ से जाओ और अपनी पुत्री भगवान् बलदेव को अर्पित करो जो अभी भी

उपस्थित हैं। वे अत्यन्त शक्तिशाली हैं। निस्सन्देह, वे भगवान् हैं और उनके स्वांश विष्णु हैं। उन्हें दान में दिये जाने के लिए तुम्हारी पुत्री सर्वथा उपयुक्त है।

भुवो भारावताराय भगवान्भूतभावनः ।
अवतीर्णो निजांशेन पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ ३४॥

शब्दार्थ

भुवः—जगत का; भार-अवताराय—भार कम करने के लिए; भगवान्—भगवान्; भूत-भावनः—सारे जीवों के नित्य हितैषी; अवतीर्णः—अवतरित हुए हैं; निज-अंशेन—अपने अंशस्वरूप समस्त साज-सामान सहित; पुण्य-श्रवण-कीर्तनः—उनकी पूजा श्रवण तथा कीर्तन से की जाती है जिससे मनुष्य पवित्र हो जाता है।

बलदेवजी भगवान् हैं। जो कोई उनका श्रवण और उनका कीर्तन करता है वह पवित्र हो जाता है। चूँकि वे समस्त जीवों के सतत हितैषी हैं अतएव वे अपने सारे साज-सामान सहित सारे जगत को शुद्ध करने तथा इसका भार कम करने के लिए अवतरित हुए हैं।

इत्यादिष्टोऽभिवन्द्याजं नृपः स्वपुरमागतः ।
त्यक्तं पुण्यजनत्रासाद्भ्रातृभिर्दिक्ष्ववस्थितैः ॥ ३५॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; आदिष्टः—ब्रह्माजी द्वारा आज्ञा दिये जाने पर; अभिवन्द्य—नमस्कार करके; अजम्—ब्रह्माजी को; नृपः—राजा; स्व-पुरम्—अपने आवास को; आगतः—लौट आया; त्यक्तम्—जो शून्य था; पुण्य-जन—उच्चतर जीवों का; त्रासात्—भय से; भ्रातृभिः—अपने भाइयों के द्वारा; दिक्षु—विभिन्न दिशाओं में; अवस्थितैः—रह रहे।

ब्रह्माजी से यह आदेश पाकर ककुद्मी ने उन्हें नमस्कार किया और अपने निवासस्थान को लौट गया। तब उसने देखा कि उसका आवास रिक्त है, उसके भाई तथा अन्य कुटुम्बी उसे छोड़कर चले गये हैं और यक्षों जैसे उच्चतर जीवों के भय से वे समस्त दिशाओं में रह रहे हैं।

सुतां दत्त्वानवद्याङ्गीं बलाय बलशालिने ।
बदर्याख्यं गतो राजा तप्तुं नारायणाश्रमम् ॥ ३६॥

शब्दार्थ

सुताम्—अपनी पुत्री को; दत्त्वा—देकर; अनवद्य-अङ्गीम्—सुगठित शरीर वाली; बलाय—बलदेव; बल-शालिने—अत्यन्त बलवान; बदरी-आख्यम्—बदरिकाश्रम नामक; गतः—चला गया; राजा—राजा; तप्तुम्—तपस्या करने के लिए; नारायण-आश्रमम्—नर-नारायण के स्थान को।

तत्पश्चात् राजा ने अपनी परम सुन्दरी पुत्री परम शक्तिशाली बलदेव को दान में दे दी और सांसारिक जीवन से विरक्त होकर वह नर-नारायण को प्रसन्न करने के लिए बदरिकाश्रम चला गया।

इस प्रकार *श्रीमद्‌भागवत* के नवम स्कन्ध के अन्तर्गत "सुकन्या तथा च्यवन मुनि का विवाह" नामक तीसरे अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter चार

दुर्वासा मुनि द्वारा अम्बरीष महाराज का अपमान

इस अध्याय में महाराज नभग एवं उनके पुत्र नाभाग तथा महाराज अम्बरीष का इतिहास वर्णित है।

मनु का पुत्र नभग हुआ जिसका पुत्र नाभाग कई वर्षों तक गुरुकुल में रहा। नाभाग की अनुपस्थिति में उसके भाइयों ने राज्य में उसे कोई हिस्सा न देकर सारी सम्पत्ति आपस में बाँट ली। जब वह घर लौटा तो उसके भाइयों ने उसके हिस्से के रूप में उसे अपना पिता दे दिया, किन्तु जब नाभाग अपने पिता के पास गया और अपने भाइयों के इस बर्ताव का वर्णन किया तो पिता ने कहा कि यह कपट है। उसने उसे सलाह दी कि तुम अपनी जीविका के लिए यज्ञशाला में जाओ और वहाँ दो मंत्रों का उच्चारण करो। नाभाग ने पिता की आज्ञा का पालन किया और इस प्रकार अंगिरा तथा अन्य मुनियों ने उस यज्ञ में संग्रहीत सारा धन उसे दे दिया। शिवजी ने नाभाग की परीक्षा लेने के लिए इस धन पर अपना दावा किया, किन्तु जब वे उसके आचरण से प्रसन्न हो गये तो सारा धन उसे वापस दे दिया।

नाभाग से अम्बरीष उत्पन्न हुए जो अत्यन्त शक्तिशाली एवं विख्यात भक्त थे। महाराज अम्बरीष सम्पूर्ण जगत के सम्राट थे लेकिन वे अपने ऐश्वर्य को नश्वर मानते थे। वे जानते थे कि ऐसा भौतिक ऐश्वर्य बद्धजीवन में गिराने वाला है अतएव वे इस ऐश्वर्य से विरक्त रहे। उन्होंने अपनी इन्द्रियों तथा मन को भगवान् की सेवा में लगाया। यह विधि युक्त-वैराग्य कहलाती है और भगवान् की पूजा के लिए सर्वथा उपयुक्त होती है। सम्राट होने से उनके पास प्रभूत ऐश्वर्य था; अतएव वे भक्ति भी ऐश्वर्यपूर्वक करते थे और अपने ऐश्वर्य के बावजूद उन्हें अपनी पत्नी, सन्तान या राज्य से कोई अनुराग नहीं था। वे अपनी इन्द्रियों तथा मन को सदैव भगवान् की सेवा में संलग्न रखते थे। अतएव भौतिक ऐश्वर्य का भोग तो क्या, उन्हें मुक्ति की भी कामना नहीं थी।

एक बार महाराज अम्बरीष ने एकादशी का व्रत रखा और वे वृन्दावन में भगवान् की पूजा कर रहे थे। एकादशी के अगले दिन द्वादशी को जब वे अपना व्रत तोड़ने वाले थे तो उनके घर महान् योगी दुर्वासा पधारे और उनके अतिथि बने। अम्बरीष ने दुर्वासा मुनि का स्वागत किया और मुनि ने भोजन करने का आमंत्रण स्वीकार किया। दोपहर में वे यमुना नदी में स्नान करने चले गये। वे वहाँ समाधि में तल्लीन होने

के कारण जल्दी लौट न पाये। किन्तु महाराज अम्बरीष ने जब देखा कि उनके व्रत तोड़ने का समय बीतता जा रहा है तो उन्होंने विद्वान ब्राह्मणों की सलाह से व्रत तोड़ने की औपचारिकता के तौर पर थोड़ा जल पी लिया। दुर्वासा मुनि योगशक्ति से इस घटना को जान गये अत: वे बहुत रुष्ट हुए। लौटकर वे महाराज अम्बरीष को फटकारने लगे और जब इतने से भी संतुष्ट नहीं हुए तो उन्होंने अपनी जटा के एक बाल से कालाग्नि जैसा असुर उत्पन्न किया। लेकिन भगवान् अपने भक्त की सदैव रक्षा करते हैं अतएव उन्होंने महाराज अम्बरीष की रक्षा करने के लिए अपना सुदर्शन चक्र भेजा जिसने तुरन्त ही उस अग्नि सदृश असुर को विनष्ट कर दिया और फिर वह चक्र अम्बरीश महाराज के ईर्ष्यालु दुर्वासा का पीछा करने लगा। दुर्वासा ब्रह्मलोक, शिवलोक तथा अन्य उच्चलोकों में दौते फिरे लेकिन वे सुदर्शन चक्र के कोप से अपने को न बचा सके। अन्त में वैकुण्ठ लोक जाकर उन्होंने भगवान् नारायण की शरण ली। किन्तु भगवान् नारायण भी ऐसे व्यक्ति को क्षमा नहीं कर सके जिसने एक वैष्णव के प्रति अपराध किया हो। ऐसे अपराध से क्षमा के लिए उसी वैष्णव की शरण में जाना होगा जिसका अपमान हुआ हो। क्षमा पाने का कोई अन्य उपाय नहीं है। इस तरह भगवान् नारायण ने दुर्वासा को सलाह दी कि वे महाराज अम्बरीष के पास जाकर उनसे क्षमायाचना करें।

श्रीशुक उवाच
नाभागो नभगापत्यं यं ततं भ्रातर: कविम् ।
यविष्ठं व्यभजन्दायं ब्रह्मचारिणमागतम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुक: उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; नाभाग:—नाभाग; नभग-अपत्यम्—जो महाराज नभग का पुत्र था; यम्—जिस; ततम्—पिता को; भ्रातर:—बड़े भाइयों ने; कविम्—विद्वान; यविष्ठम्—सबसे छोटा; व्यभजन्—बाँट दिया; दायम्—धन; ब्रह्मचारिणम्—ब्रह्मचारी जीवन स्वीकार करके (नैष्ठिक); आगतम्—वापस आया।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : नभग का पुत्र नाभाग बहुत काल तक अपने गुरु के पास रहा। अतएव उसके भाइयों ने सोचा कि अब वह गृहस्थ नहीं बनना चाहता और वापस नहीं आएगा। फलस्वरूप उन्होंने अपने पिता की सम्पत्ति में उसका हिस्सा न रख कर उसे आपस में बाँट लिया। जब नाभाग अपने गुरु के स्थान से वापस आया तो उन्होंने उसके हिस्से के रूप में उसे अपने पिता को दे दिया।

तात्पर्य : ब्रह्मचारी दो प्रकार के होते हैं। एक तो वे जो घर लौटकर विवाह करके गृहस्थ बन जाते हैं और दूसरे वे जो आजीवन ब्रह्मचारी बने रहने का व्रत लेते हैं और *बृहद्व्रत* कहलाते हैं। *बृहद्व्रत ब्रह्मचारी* गुरु के स्थान से वापस नहीं आता, अपितु वहीं रहता है और बाद में वहीं संन्यास ग्रहण कर लेता है। क्योंकि नाभाग अपने गुरु के स्थान से वापस नहीं आया अत: उसके भाइयों ने सोचा कि उसने *बृहद्व्रत ब्रह्मचर्य* ग्रहण कर लिया है। इसीलिए उन्होंने उसका हिस्सा सुरक्षित नहीं रखा और जब वह लौटा तो उसके हिस्से के रूप में उसे अपने पिता को दे दिया।

भ्रातरोऽभाङ्क्त किं मह्यं भजाम पितरं तव ।
त्वां ममार्यास्तताभाङ्क्षुर्मा पुत्रक तदादृथाः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

भ्रातरः—हे मेरे भाइयो; अभाङ्क्त—आपने हमारे पिता की सम्पत्ति का हिस्सा दिया है; किम्—क्या; मह्यम्—मुझको; भजाम—हम देते हैं; पितरम्—पिता को; तव—तुम्हारे हिस्से के रूप में; त्वाम्—तुम्हें; मम—मुझको; आर्याः—मेरे बड़े भाइयों ने; तत—हे पिता; अभाङ्क्षुः—हिस्सा दिया है; मा—नहीं; पुत्रक—हे पुत्र; तत्—इस वचन को; आदृथाः—कोई महत्त्व दो।

नाभाग ने पूछा, ''मेरे भाइयो, आप लोगों ने पिता की सम्पत्ति में से मेरे हिस्से में मुझे क्या दिया है?'' उसके भाई बोले, ''हमने तुम्हारे हिस्से में पिताजी को रख छोड़ा है।'' तब नाभाग अपने पिता के पास गया और बोला, ''हे पिताजी, मेरे भाइयों ने मेरे हिस्से में आपको दिया है।'' इस पर पिता ने उत्तर दिया, ''मेरे बेटे, तुम इनके ठगने वाले शब्दों पर विश्वास मत करना। मैं तुम्हारी सम्पत्ति नहीं हूँ।''

इमे अङ्गिरसः सत्रमासतेऽद्य सुमेधसः ।
षष्ठं षष्ठमुपेत्याहः कवे मुह्यन्ति कर्मणि ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

इमे—ये सब; अङ्गिरसः—अंगिरा के वंशज; सत्रम्—यज्ञ; आसते—कर रहे हैं; अद्य—आज; सुमेधसः—जो अत्यन्त बुद्धिमान हैं; षष्ठम्—छठवाँ; षष्ठम्—छठवाँ; उपेत्य—प्राप्त करके; अहः—दिन; कवे—हे विद्वान पुरुष; मुह्यन्ति—मोहग्रस्त होते हैं; कर्मणि—सकाम कर्मों में।

नाभाग के पिता ने कहा : अंगिरा के वंशज इस समय एक महान् यज्ञ सम्पन्न करने जा रहे हैं, किन्तु अत्यन्त बुद्धिमान होते हुए भी वे हर छठे दिन यज्ञ करते हुए मोहग्रस्त होंगे और अपने नैत्यिक कर्मों में त्रुटि करेंगे।

तात्पर्य : नाभाग अत्यन्त सरल हृदय था। अतएव जब वह अपने पिता के पास गया तो पिता ने दयावश अपने पुत्र को समझाया कि अपनी जीविका चलाने के लिए वह अंगिरा के वंशजों के पास जाये और यज्ञ करने में होने वाली उनकी त्रुटियों का लाभ उठाये।

तांस्त्वं शंसय सूक्ते द्वे वैश्वदेवे महात्मनः ।
ते स्वर्यन्तो धनं सत्रपरिशेषितमात्मनः ॥ ४॥
दास्यन्ति तेऽथ तानर्च्छ तथा स कृतवान्यथा ।
तस्मै दत्त्वा ययुः स्वर्गं ते सत्रपरिशेषणम् ॥ ५॥

शब्दार्थ

तान्—उन सबको; त्वम्—तुम; शंसय—वर्णन करो; सूक्ते—वैदिक स्तुतियाँ; द्वे—दोनों; वैश्वदेवे—भगवान् वैश्वदेव के विषय में; महात्मनः—महात्माओं को; ते—वे; स्वः यन्तः—अपने-अपने स्वर्गधामों को जाते हुए; धनम्—सम्पत्ति; सत्र-परिशेषितम्—यज्ञ के अन्त में शेष रहने वाली; आत्मनः—अपनी निजी सम्पत्ति; दास्यन्ति—दे देंगे; ते—तुमको; अथ—इसलिए; तान्—उनको; अर्च्छ—वहाँ जाओ; तथा—उस तरह से (अपने पिता की आज्ञानुसार); सः—वह (नाभाग); कृतवान्—सम्पन्न किया हुआ; यथा—अपने पिता की आज्ञानुसार; तस्मै—उसको; दत्त्वा—देकर; ययुः—चले गये; स्वर्गम्—स्वर्गलोक को; ते—वे सभी; सत्र-परिशेषणम्—यज्ञ का अवशेष।

नाभाग के पिता ने आगे कहा : ''उन महात्माओं के पास जाओ और उन्हें वैश्वदेव सम्बन्धी दो वैदिक मंत्र सुनाओ। जब वे महात्मा यज्ञ समाप्त करके स्वर्गलोक को जा रहे होंगे तो वे यज्ञ में प्राप्त शेष दक्षिणा तुम्हें दे देंगे। अतएव तुम तुरन्त जाओ।'' इस तरह नाभाग ने वैसा ही किया जैसा उसके पिता ने सलाह दी थी और अंगिरा वंश के सारे मुनियों ने उसे अपना सारा धन दे दिया और फिर वे स्वर्गलोक को चले गये।

तं कश्चित्स्वीकरिष्यन्तं पुरुषः कृष्णदर्शनः ।
उवाचोत्तरतोऽभ्येत्य ममेदं वास्तुकं वसु ॥ ६॥

शब्दार्थ

तम्—नाभाग को; कश्चित्—कोई; स्वीकरिष्यन्तम्—मुनियों द्वारा दिये गये धन को स्वीकार करते हुए; पुरुषः—व्यक्ति; कृष्ण-दर्शनः—देखने में काला; उवाच—कहा; उत्तरतः—उत्तर से; अभ्येत्य—आकर; मम—मेरा; इदम्—यह; वास्तुकम्—यज्ञ का अवशेष; वसु—सारा धन।

जब नाभाग सारा धन ले रहा था तो उत्तर दिशा से एक काला कलूटा व्यक्ति उसके पास आया और बोला, ''इस यज्ञशाला की सारी सम्पत्ति मेरी है।''

ममेदमृषिभिर्दत्तमिति तर्हि स्म मानवः ।

स्यान्नौ ते पितरि प्रश्नः पृष्टवान्पितरं यथा ॥ ७॥

शब्दार्थ

मम—मेरा; इदम्—यह; ऋषिभिः—ऋषियों द्वारा; दत्तम्—प्रदत्त; इति—इस प्रकार; तर्हि—अतएव; स्म—निस्सन्देह; मानवः—नाभाग; स्यात्—हो; नौ—हमारा; ते—तुम्हारा; पितरि—पिता के पास; प्रश्नः—प्रश्न; पृष्टवान्—उसने भी पूछा; पितरम्—अपने पिता से; यथा—जैसी प्रार्थना की गई।

तब नाभाग ने कहा : "यह धन मेरा है। इसे ऋषियों ने मुझे प्रदान किया है।" जब नाभाग ने यह कहा तो उस काले कलूटे ने उत्तर दिया, "चलो तुम्हारे पिता के पास चलें और उनसे इसका निपटारा करने के लिए कहें।" तदनुसार नाभाग ने अपने पिता से पूछा।

यज्ञवास्तुगतं सर्वमुच्छिष्टमृषयः क्वचित् ।
चक्रुर्हि भागं रुद्राय स देवः सर्वमर्हति ॥ ८॥

शब्दार्थ

यज्ञ-वास्तु-गतम्—यज्ञशाला से सम्बन्धित वस्तुएँ; सर्वम्—सारी; उच्छिष्टम्—बची हुई; ऋषयः—ऋषिगण; क्वचित्—कभी, दक्षयज्ञ में; चक्रुः—ऐसा किया; हि—निस्सन्देह; भागम्—हिस्सा; रुद्राय—शिवजी को; सः—वह; देवः—देवता; सर्वम्—हर वस्तु का; अर्हति—पात्र है।

नाभाग के पिता ने कहा : ऋषियों ने दक्ष यज्ञशाला में जो भी आहुति दी थी, वह शिवजी को उनके भाग के रूप में दी गई थी। अतएव इस यज्ञशाला की प्रत्येक वस्तु निश्चित रूप से शिवजी की है।

नाभागस्तं प्रणम्याह तवेश किल वास्तुकम् ।
इत्याह मे पिता ब्रह्मञ्छिरसा त्वां प्रसादये ॥ ९॥

शब्दार्थ

नाभागः—नाभाग ने; तम्—उसको (शिवजी को); प्रणम्य—प्रणाम करके; आह—कहा; तव—तुम्हारा; ईश—हे भगवान्; किल—निश्चय ही; वास्तुकम्—यज्ञशाला की हर वस्तु; इति—इस प्रकार; आह—कहा; मे—मेरे; पिता—पिता ने; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; शिरसा—सिर के बल नमन करके; त्वाम्—तुमसे; प्रसादये—कृपा की भीख माँगता हूँ।

तत्पश्चात् शिवजी को नमस्कार करने के बाद नाभाग ने कहा : हे पूज्यदेव, इस यज्ञशाला की प्रत्येक वस्तु आपकी है—ऐसा मेरे पिता का मत है। अब मैं विनम्रतापूर्वक आपके समक्ष अपना सिर झुकाकर आपसे कृपा की भीख माँगता हूँ।

यत्ते पितावदद्धर्मं त्वं च सत्यं प्रभाषसे ।
ददामि ते मन्त्रदृशो ज्ञानं ब्रह्म सनातनम् ॥ १०॥

शब्दार्थ

यत्—जो कुछ; ते—तुम्हारे; पिता—पिता ने; अवदत्—कहा है; धर्मम्—सत्य; त्वम् च—तुम भी; सत्यम्—सत्य; प्रभाषसे—बोल रहे हो; ददामि—दूँगा; ते—तुम्हें; मन्त्र-दृशः—मंत्र-विज्ञान को जानने वाले; ज्ञानम्—ज्ञान; ब्रह्म—दिव्य; सनातनम्—शाश्वत।

शिवजी ने कहा : तुम्हारे पिता ने जो कुछ कहा है वह सत्य है और तुम भी वही सत्य कह रहे हो। अतएव वेदमंत्रों का ज्ञाता मैं तुम्हें दिव्य ज्ञान बतलाऊँगा।

गृहाण द्रविणं दत्तं मत्सत्रपरिशेषितम् ।
इत्युक्त्वान्तर्हितो रुद्रो भगवान्धर्मवत्सलः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

गृहाण—अब ग्रहण करो; द्रविणम्—सारा धन; दत्तम्—दिया गया; मत्-सत्र-परिशेषितम्—मेरे लिए किये गये यज्ञ का अवशेष; इति उक्त्वा—ऐसा कहकर; अन्तर्हितः—ओझल हो गये; रुद्रः—शिवजी; भगवान्—अत्यन्त शक्तिशाली देवता; धर्म-वत्सलः—धार्मिक सिद्धान्तों का दृढ़ता से पालन करने वाले।

शिवजी ने कहा : "अब तुम यज्ञ का बचा सारा धन ले सकते हो क्योंकि मैं इसे तुम्हें दे रहा हूँ।" यह कहकर धार्मिक सिद्धान्तों में अटल रहने वाले शिवजी उस स्थान से अदृश्य हो गये।

य एतत्संस्मरेत्प्रातः सायं च सुसमाहितः ।
कविर्भवति मन्त्रज्ञो गतिं चैव तथात्मनः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

यः—जो कोई; एतत्—इस घटना के विषय में; संस्मरेत्—स्मरण करेगा; प्रातः—प्रातःकाल; सायम् च—तथा सायंकाल; सुसमाहितः—अत्यन्त ध्यानपूर्वक; कविः—विद्वान; भवति—बन जाता है; मन्त्र-ज्ञः—समस्त वैदिक मंत्रों का ज्ञाता; गतिम्—गन्तव्य, लक्ष्य; च—भी; एव—निस्सन्देह; तथा आत्मनः—स्वरूपसिद्ध व्यक्ति की तरह।

जो कोई इस कथा को प्रातःकाल एवं सायंकाल अत्यन्त ध्यानपूर्वक सुनता या स्मरण करता है वह निश्चय ही विद्वान, वैदिक स्तोत्रों को समझने वाला एवं स्वरूपसिद्ध हो जाता है।

नाभागादम्बरीषोऽभून्महाभागवतः कृती ।
नास्पृशद्ब्रह्मशापोऽपि यं न प्रतिहतः क्वचित् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

नाभागात्—नाभाग से; अम्बरीषः—महाराज अम्बरीष ने; अभूत्—जन्म लिया; महा-भागवतः—अत्यन्त पूज्य भक्त; कृती—अत्यन्त विख्यात; न अस्पृशत्—स्पर्श भी नहीं कर पाया; ब्रह्म-शापः अपि—ब्राह्मण का शाप भी; यम्—जिसको (अम्बरीष को); न—न तो; प्रतिहतः—विफल हुआ; क्वचित्—किसी समय।

नाभाग से महाराज अम्बरीष ने जन्म लिया। महाराज अम्बरीष उच्च भक्त थे और अपने महान् गुणों के लिए विख्यात थे। यद्यपि उन्हें एक अच्युत ब्राह्मण ने शाप दिया था, किन्तु वह शाप उनका

स्पर्श भी न कर पाया।

श्रीराजोवाच
भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि राजर्षेस्तस्य धीमतः ।
न प्राभूद्यत्र निर्मुक्तो ब्रह्मदण्डो दुरत्ययः ॥ १४॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा परीक्षित ने पूछा; भगवन्—हे ब्राह्मणश्रेष्ठ; श्रोतुम् इच्छामि—आपसे सुनना चाहता हूँ; राजर्षेः—महान् राजा अम्बरीष का; तस्य—उस; धीमतः—अत्यन्त गम्भीर; न—नहीं; प्राभूत्—कार्य कर सका; यत्र—जिस पर (अम्बरीष पर); निर्मुक्तः—मुक्त होकर; ब्रह्म-दण्डः—ब्राह्मण का शाप; दुरत्ययः—दुर्लंघ्य।

राजा परीक्षित ने पूछा: हे महापुरुष, महाराज अम्बरीष निश्चय ही अत्यन्त उच्च एवं सच्चरित्र थे। मैं उनके विषय में सुनना चाहता हूँ। यह कितना आश्चर्यजनक है कि एक ब्राह्मण का दुर्लंघ्य शाप उन पर अपना कोई प्रभाव नहीं दिखला सका।

श्रीशुक उवाच
अम्बरीषो महाभागः सप्तद्वीपवतीं महीम् ।
अव्ययां च श्रियं लब्ध्वा विभवं चातुलं भुवि ॥ १५॥
मेनेऽतिदुर्लभं पुंसां सर्वं तत्स्वप्नसंस्तुतम् ।
विद्वान्विभवनिर्वाणं तमो विशति यत्पुमान् ॥ १६॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; अम्बरीषः—राजा अम्बरीष; महा-भागः—अत्यन्त भाग्यशाली राजा; सप्त-द्वीपवतीम्—सात द्वीपों वाले; महीम्—सारे विश्व को; अव्ययाम् च—तथा न घटने वाली; श्रियम्—सुन्दरता को; लब्ध्वा—प्राप्त करके; विभवम् च—तथा ऐश्वर्य; अतुलम्—असीम; भुवि—पृथ्वी पर; मेने—उसने निश्चय किया; अति-दुर्लभम्—बहुत कम प्राप्त; पुंसाम्—अनेक व्यक्तियों का; सर्वम्—सर्वस्व; तत्—जो; स्वप्न-संस्तुतम्—मानो स्वप्न में कल्पना की गई हो; विद्वान्—पूरी तरह जानते हुए; विभव-निर्वाणम्—उस ऐश्वर्य का विनाश; तमः—अज्ञान; विशति—प्रवेश करता है; यत्—जिससे; पुमान्—व्यक्ति।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : अत्यन्त भाग्यवान महाराज अम्बरीष ने सात द्वीपों वाले समस्त विश्व पर शासन किया और पृथ्वी का अक्षय असीम ऐश्वर्य तथा सम्पन्नता प्राप्त की। यद्यपि ऐसा पद विरले ही मिलता है, किन्तु महाराज अम्बरीष ने इसकी तनिक भी परवाह नहीं की क्योंकि उन्हें पता था कि ऐसा सारा ऐश्वर्य भौतिक है। ऐसा ऐश्वर्य स्वप्नतुल्य है और अन्ततोगत्वा विनष्ट हो जायेगा। राजा जानता था कि कोई भी अभक्त ऐसा ऐश्वर्य प्राप्त करके प्रकृति के तमोगुण में अधिकाधिक प्रविष्ट होता है।

तात्पर्य : भक्त के लिए भौतिक ऐश्वर्य नगण्य है, किन्तु अभक्त के लिए वही ऐश्वर्य अधिकाधिक बन्धन

का कारण होता है क्योंकि भक्त जानता है कि कोई भी भौतिक वस्तु नश्वर है जब कि अभक्त तथाकथित क्षणिक सुख को सर्वस्व मानकर आत्म-साक्षात्कार का मार्ग भूल जाता है। इस प्रकार अभक्त के लिए भौतिक ऐश्वर्य आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग में बाधक होता है।

वासुदेवे भगवति तद्भक्तेषु च साधुषु ।
प्राप्तो भावं परं विश्वं येनेदं लोष्ट्रवत्स्मृतम् ॥ १७॥

शब्दार्थ

वासुदेवे—सर्वव्यापी परम पुरुष में; भगवति—भगवान्; तत्-भक्तेषु—उनके भक्तों में; च—भी; साधुषु—साधु पुरुषों में; प्राप्तः—प्राप्त; भावम्—सम्मान तथा भक्ति; परम्—दिव्य; विश्वम्—सारा ब्रह्माण्ड; येन—जिससे (आध्यात्मिक चेतना); इदम्—यह; लोष्ट्र-वत्—पत्थर के टुकड़े के समान नगण्य; स्मृतम्—स्वीकार्य है (ऐसे भक्त द्वारा)।

महाराज अम्बरीष भगवान् वासुदेव के तथा भगवद्भक्त सन्त पुरुषों के महान् भक्त थे। इस भक्ति के कारण वे सारे विश्व को एक पत्थर के टुकड़े के समान नगण्य मानते थे।

स वै मनः कृष्णपदारविन्दयो-
र्वचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने ।
करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु
श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये ॥ १८॥
मुकुन्दलिङ्गालयदर्शने दृशौ
तद्भृत्यगात्रस्पर्शेऽङ्गसङ्गमम् ।
घ्राणं च तत्पादसरोजसौरभे
श्रीमत्तुलस्या रसनां तदर्पिते ॥ १९॥
पादौ हरेः क्षेत्रपदानुसर्पणे
शिरो हृषीकेशपदाभिवन्दने ।
कामं च दास्ये न तु कामकाम्यया
यथोत्तमश्लोकजनाश्रया रतिः ॥ २०॥

शब्दार्थ

सः—वह (महाराज अम्बरीष); वै—निस्सन्देह; मनः—जिसका मन; कृष्ण-पद-अरविन्दयोः—कृष्ण के दोनों चरणकमलों पर (स्थिर); वचांसि—जिसके शब्द; वैकुण्ठ-गुण-अनुवर्णने—कृष्ण का गुणानुवाद करने; करौ—दोनों हाथ; हरेः मन्दिर-मार्जन-आदिषु—हरि मन्दिर की सफाई करने जैसे कार्यों में; श्रुतिम्—जिसका कान; चकार—संलग्न; अच्युत—कभी न गिरने वाले कृष्ण के विषय में; सत्-कथा-उदये—दिव्य कथाओं के श्रवण करने में; मुकुन्द-लिङ्ग-आलय-दर्शने—मुकुन्दके अर्चाविग्रह, मन्दिर तथा पवित्र धामों का दर्शन करने में; दृशौ—उसकी दोनों आँखें; तत्-भृत्य—कृष्ण के सेवकों का; गात्र-स्पर्शे—शरीर का स्पर्श करने में; अङ्ग-सङ्गमम्—उनके शरीर का स्पर्श; घ्राणम् च—तथा उनकी घ्राणेन्द्रिय; तत्-पाद—उनके चरणों के; सरोज—कमल के फूल की; सौरभे—सुगन्धि में; श्रीमत्-तुलस्याः—तुलसी दलों का; रसनाम्—उसकी जीभ; तत्-अर्पिते—भगवान् को चढ़ाये गये प्रसाद में; पादौ—दोनों पाँव; हरेः—भगवान्के; क्षेत्र—मन्दिर या वृन्दावन एवं द्वारकाधाम जैसे पवित्र स्थान; पद-अनुसर्पणे—उन स्थानों तक चलते हुए; शिरः—सिर; हृषीकेश—इन्द्रियों के स्वामी कृष्ण के; पद-अभिवन्दने—चरणकमल को नमस्कार करने में; कामम् च—

तथा उसकी इच्छाएँ; दास्ये—सेवक की भाँति लगी होने में; न—नहीं; तु—निस्सन्देह; काम-काम्यया—इन्द्रियतृप्ति की इच्छा से युक्त; यथा—जिस तरह; उत्तमश्लोक-जन-आश्रया—जो प्रह्लाद जैसे भक्त की शरण लेता है; रतिः—आसक्ति।

महाराज अम्बरीष सदैव अपने मन को कृष्ण के चरणकमलों का ध्यान करने में, अपने शब्दों को भगवान् का गुणगान करने में, अपने हाथों को भगवान् का मन्दिर झाड़ने-बुहारने में तथा अपने कानों को कृष्ण द्वारा या कृष्ण के विषय में कहे गये शब्दों को सुनने में लगाते रहे। वे अपनी आँखों को कृष्ण के अर्चाविग्रह, कृष्ण के मन्दिर तथा कृष्ण के स्थानों, यथा मथुरा तथा वृन्दावन, को देखने में लगाते रहे। वे अपनी स्पर्श-इन्द्रिय को भगवद्भक्तों के शरीरों का स्पर्श करने में, अपनी घ्राण-इन्द्रिय को भगवान् पर चढ़ाई गई तुलसी की सुगन्ध को सूँघने में और अपनी जीभ को भगवान् का प्रसाद चखने में लगाते रहे। उन्होंने अपने पैरों को पवित्र स्थानों तथा भगवत् मन्दिरों तक जाने में, अपने सिर को भगवान् के समक्ष झुकाने में और अपनी इच्छाओं को चौबीसों घण्टे भगवान् की सेवा करने में लगाया। निस्सन्देह, महाराज अम्बरीष ने अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिए कभी कुछ भी नहीं चाहा। वे अपनी सारी इन्द्रियों को भगवान् से सम्बन्धित भक्ति के कार्यों में लगाते रहे। भगवान् के प्रति आसक्ति बढ़ाने की और समस्त भौतिक इच्छाओं से पूर्णतः मुक्त होने की यही विधि है।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (७.१) में भगवान् कहते हैं—*मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः*। इससे सूचित होता है कि मनुष्य को किसी भक्त के निर्देशन में या फिर सीधे भगवान् के निर्देशन में भक्ति करनी चाहिए। किन्तु गुरु के निर्देशन के बिना अपने आपको प्रशिक्षित कर पाना सम्भव नहीं है। अतएव श्रील रूपगोस्वामी के आदेशों के अनुसार भक्त का प्रथम कर्तव्य है कि वह कोई प्रामाणिक गुरु स्वीकार करे जो उसकी इन्द्रियों को भगवान् की दिव्य सेवा करने में लगा सके। *भगवद्गीता* (७.१) में भी भगवान् कहते हैं—*असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु*। दूसरे शब्दों में, यदि कोई भगवान् को पूरी तरह समझना चाहता है तो उसे महाराज अम्बरीष के चरण-चिह्नों का अनुसरण करते हुए भगवान् कृष्ण द्वारा दिये गये उपदेशों का पालन करना चाहिए। कहा गया है—*हृषीकेण हृषीकेशसेवनं भक्तिरुच्यते*। भक्ति का अर्थ है इन्द्रियों के स्वामी, हृषीकेश या अच्युत कृष्ण की सेवा में इन्द्रियों को लगाना। ये शब्द इन श्लाकों में प्रयुक्त हैं। *अच्युत-सत्-कथोदये, हृषीकेश-पदाभिवन्दने*। अच्युत तथा हृषीकेश शब्द *भगवद्गीता* में भी प्रयुक्त हुए हैं। *भगवद्गीता* तो साक्षात् कृष्ण द्वारा कही गई कृष्णकथा है और *श्रीमद्भागवत* भी कृष्णकथा है क्योंकि

भागवत में वर्णित प्रत्येक कथा कृष्ण से सम्बन्धित है।

एवं सदा कर्मकलापमात्मनः
परेऽधियज्ञे भगवत्यधोक्षजे ।
सर्वात्मभावं विदधन्महीमिमां
तन्निष्ठविप्राभिहितः शशास ह ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार (भक्तिमय जीवन बिताते हुए); सदा—सदैव; कर्म-कलापम्—क्षत्रिय राजा के रूप में नियत कार्य; आत्मनः—अपना, स्वयं; परे—परब्रह्म में; अधियज्ञे—परम नियंत्रक, परम भोक्ता में; भगवति—भगवान् में; अधोक्षजे—इन्द्रियबोध से परे जो है उस; सर्व-आत्म-भावम्—भक्ति के विविध प्रकार; विदधत्—सम्पन्न करते हुए, अर्पित करते हुए; महीम्—पृथ्वीलोक को; इमाम्—इस; तत्-निष्ठ—जो भगवान् के निष्ठावान भक्त हैं; विप्र—ऐसे ब्राह्मणों द्वारा; अभिहितः—निर्देशित; शशास—शासन किया; ह—भूतकाल में।

राजा के रूप में अपने नियत कर्तव्यों का पालन करते हुए महाराज अम्बरीष अपने राजसी कार्यकलापों के फलों को सदैव भगवान् कृष्ण को अर्पित करते थे, जो प्रत्येक वस्तु के भोक्ता हैं और भौतिक इन्द्रियों के बोध के परे हैं। वे निश्चित रूप से निष्ठावान भगवद्भक्त ब्राह्मणों से सलाह लेते थे और इस प्रकार वे बिना किसी कठिनाई के पृथ्वी पर शासन करते थे।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (५.२९) में कहा गया है—

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

इस भौतिक जगत में लोग शान्ति तथा सम्पन्नता में रहने के लिए अतीव उत्सुक रहते हैं और *भगवद्गीता* के इस श्लोक में साक्षात् भगवान् यह शान्ति सूत्र प्रदान करते हैं—हर एक को समझना चाहिए कि भगवान् कृष्ण सभी लोकों के चरम स्वामी हैं; अतएव वे सभी कार्यों—राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक इत्यादि—के भोक्ता हैं। भगवान् ने *भगवद्गीता* में पूर्ण उपदेश दिया है। अम्बरीष महाराज ने आदर्श कार्यकारी अध्यक्ष के रूप में वैष्णव ब्राह्मणों से परामर्श करके एक वैष्णव की भाँति सारे विश्व पर शासन चलाया। शास्त्रों का कथन है कि भले ही ब्राह्मण अपने ब्राह्मण-कर्मों में कितना ही पटु तथा वैदिक ज्ञान में कितना ही पण्डित क्यों न हो, यदि वह वैष्णव नहीं है तो वह गुरुवत् उपदेश नहीं दे सकता।

षट्कर्मनिपुणो विप्रो मन्त्रतन्त्रविशारदः।

अवैष्णवो गुरुर्न स्याद् वैष्णव: श्वपचो गुरु: ॥

अतएव जैसा कि यहाँ पर *तन्निष्ठ विप्राभिहित:* शब्दों से सूचित है महाराज अम्बरीष विशुद्ध भगवद्भक्त ब्राह्मणों से सलाह लेते थे क्योंकि केवल विद्वान पण्डित या कर्मकाण्ड में पटु सामान्य ब्राह्मण सलाह देने में कुशल नहीं होते।

आधुनिक समय में विधान सभाओं के सदस्य राज्य के कल्याण हेतु विधान बनाने के लिए अधिकृत होते हैं, किन्तु महाराज अम्बरीष के साम्राज्य के इस विवरण के अनुसार देश या विश्व का शासन उस कार्यकारी अध्यक्ष के द्वारा चलाया जाना चाहिए जिसके सारे सलाहकार भक्त ब्राह्मण हों। ऐसे सलाहकारों या विधायकों को न तो व्यावसायिक राजनीतिज्ञ होना चाहिए, न ही उन्हें अज्ञानी जनता द्वारा चुना जाना चाहिए प्रत्युत उन्हें राजा द्वारा नियुक्त किया जाना चाहिए। जब राजा अर्थात् राज्याध्यक्ष भक्त होता है और देश का शासन चलाने के लिए भक्त ब्राह्मणों के आदेशों का पालन करता है तो हर व्यक्ति शान्त तथा समृद्ध होगा। जब राजा तथा उसके सलाहकार पूर्ण भक्त होते हैं तो राज्य में कोई अमंगल नहीं हो सकता। सारे नागरिकों को भगवद्भक्त बनना चाहिए जिससे उनका चरित्र स्वत: उत्तम हो—

यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुरा: ।

हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा मनोरथेनासति धावतो बहि: ॥

''जिसकी भगवान् में अविचल भक्ति होती है उसमें देवताओं के सारे गुण रहते हैं। किन्तु जो भगवद्भक्त नहीं है उसमें केवल भौतिक गुण आ पाते हैं जिनका कोई महत्त्व नहीं है। इसका कारण यह है कि उसका मन मानसिक धरातल पर उड़ता रहता है और उसका चमकीली भौतिक शक्ति द्वारा आकृष्ट होना निश्चित रूप से सम्भव है।'' (*भागवत* ५.१८.१२) कृष्णभक्त राजा के निर्देशन में, जनता भक्त बन जायेगी और तब जीवन को सुधारने के लिए राज्य में नित्य नये विधान बनाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। यदि जनता को भक्त बनने का प्रशिक्षण दिया जाय तो वह स्वत: शान्त तथा निष्कपट बनती है और यदि जनता भक्तों की मंत्रणा लेने वाले भक्त राजा का पथ-प्रदर्शन प्राप्त करती है तो वह राज्य भौतिक जगत में नहीं अपितु आध्यात्मिक जगत में होता है। अतएव विश्व के सारे राज्यों को महाराज अम्बरीष के शासन का आदर्श ग्रहण करना चाहिए, जिसका वर्णन यहाँ पर हुआ है।

ईजेऽश्वमेधैरधियज्ञमीश्वरं
महाविभूत्योपचिताङ्गदक्षिणैः ।
ततैर्वसिष्ठासितगौतमादिभिर्
धन्वन्यभिस्त्रोतमसौ सरस्वतीम् ॥ २२॥

शब्दार्थ

ईजे—पूजा किया; अश्वमेधैः—अश्वमेध यज्ञ करके; अधियज्ञम्—सारे यज्ञों के स्वामी को तुष्ट करने के लिए; ईश्वरम्—भगवान् को; महा-विभूत्या—महान् ऐश्वर्य से; उपचित-अङ्ग-दक्षिणैः—समस्त सामग्री तथा ब्राह्मणों को दी गई दक्षिणा समेत; ततैः—सम्पन्न किया; वसिष्ठ-असित-गौतम-आदिभिः—वसिष्ठ, असित तथा गौतम जैसे ब्राह्मणों के द्वारा; धन्वनि—रेगिस्तान में; अभिस्त्रोतम्—नदी के जल से प्लावित; असौ—महाराज अम्बरीष; सरस्वतीम्—सरस्वती नदी के तट पर।

महाराज अम्बरीष ने उस मरुस्थल में अश्वमेध यज्ञ जैसे महान् यज्ञ सम्पन्न किये जिसमें से होकर सरस्वती नदी बहती है और समस्त यज्ञों के स्वामी भगवान् को प्रसन्न किया। ऐसे यज्ञ महान् ऐश्वर्य तथा उपयुक्त सामग्री द्वारा तथा ब्राह्मणों को दक्षिणा देकर सम्पन्न किये जाते थे और इन यज्ञों का निरीक्षण वसिष्ठ, असित तथा गौतम जैसे महापुरुषों द्वारा किया जाता था जो यज्ञों के सम्पन्नकर्ता राजा के प्रतिनिधि होते थे।

तात्पर्य : जब कोई वैदिक विधि से यज्ञ सम्पन्न करता है तो उसे पटु ब्राह्मणों की आवश्यकता होती है जिन्हें याज्ञिक ब्राह्मण कहते हैं। किन्तु कलियुग में ऐसे ब्राह्मणों का अभाव है, अतएव कलियुग में शास्त्रों द्वारा संकीर्तनयज्ञ करने की संस्तुति की जाती है (*यज्ञै संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः*)। कलियुग में याज्ञिक ब्राह्मणों का अभाव होने के कारण असम्भव यज्ञों को सम्पन्न करने में धन का अपव्यय न करके बुद्धिमान मनुष्य संकीर्तन यज्ञ करता है। यदि भगवान् को प्रसन्न करने के लिए ठीक से यज्ञ नहीं किये जाते तो वर्षा अभाव हो जाता है (*यज्ञाद् भवति पर्जन्यः*) अतएव यज्ञ सम्पन्न करना अनिवार्य है। यज्ञ के बिना वर्षा का अभाव रहेगा और इस अभाव से अन्न उत्पन्न नहीं होगा जिससे दुर्भिक्ष पड़ेगा। इसलिए राजा का कर्तव्य है कि वह अन्न का उत्पादन बनाये रखने के लिए अश्वमेध यज्ञ जैसे विभिन्न यज्ञ सम्पन्न करता रहे। *अन्नाद् भवन्ति भूतानि।* अन्न के बिना मनुष्य तथा पशु दोनों ही भूखों मरेंगे; अतएव राज्य के लिए आवश्यक है कि यज्ञ सम्पन्न होते रहें क्योंकि यज्ञ होने से जनता भरपेट भोजन प्राप्त करेगी। ब्राह्मणों तथा याज्ञिक पुरोहितों को कुशल सेवा के लिए पर्याप्त धन दिया जाना चाहिए। यह दान दक्षिणा कहलाता है। अम्बरीष महाराज राजा होने के नाते इन सारे यज्ञों को वसिष्ठ, गौतम, असित जैसे महापुरुषों से सम्पन्न कराते थे।

किन्तु वे स्वयं भक्ति में लगे रहते थे जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है (*स वै मन: कृष्णपदारविन्दयो:*)। राजा का यह धर्म है कि वह यह देखे कि सारा कामकाज समुचित मार्ग-निर्देशन में हो रहा है और उसे महाराज अम्बरीष की भाँति आदर्श भक्त होना चाहिए। राजा का कर्तव्य है कि वह यह देखे कि रेगिस्तान में भी अन्न उत्पन्न हो, अन्य स्थानों के विषय में तो क्या कहना?।

यस्य क्रतुषु गीर्वाणै: सदस्या ऋत्विजो जना: ।
तुल्यरूपाश्चानिमिषा व्यदृश्यन्त सुवासस: ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

यस्य—जिसके (अम्बरीष के); क्रतुषु—(उसके द्वारा सम्पन्न) यज्ञों में; गीर्वाणै:—देवताओं के साथ; सदस्या:—यज्ञ करने वाले सदस्य; ऋत्विज:—पुरोहित; जना:—तथा अन्य कुशल व्यक्ति; तुल्य-रूपा:—समान रूप वाले; च—तथा; अनिमिषा:—देवताओं की तरह निर्निमेष दृष्टि से, बिना पलक भाँजे; व्यदृश्यन्त—देखे जाकर; सु-वासस:—कीमती वस्त्रों से सज्जित।.

महाराज अम्बरीष द्वारा आयोजित यज्ञ में सभा के सदस्य तथा पुरोहित (विशेष रूप से होता, उद्गाता, ब्रह्मा तथा अध्वर्यु) वस्त्रों से बहुत अच्छी तरह से सज्जित थे और वे सब देवताओं की तरह लग रहे थे। उन्होंने उत्सुकतापूर्वक यज्ञ को समुचित रूप से सम्पन्न कराया।

स्वर्गो न प्रार्थितो यस्य मनुजैरमरप्रिय: ।
शृण्वद्भिरुपगायद्भिरुत्तमश्लोकचेष्टितम् ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

स्वर्ग:—स्वर्गलोक का जीवन; न—नहीं; प्रार्थित:—इच्छा का विषय; यस्य—जिसका (अम्बरीष महाराज का); मनुजै:—नागरिकों (प्रजा) द्वारा; अमर-प्रिय:—देवताओं तक को परम प्रिय; शृण्वद्भि:—सुनने के आदी; उपगायद्भि:—तथा कीर्तन करने के आदी; उत्तमश्लोक—भगवान् के; चेष्टितम्—महिमामय कार्यकलापों के विषय में।.

महाराज अम्बरीष की प्रजा भगवान् के महिमामय कार्यकलापों के विषय में कीर्तन एवं श्रवण करने की आदी थी। इस प्रकार वह कभी भी देवताओं के परम प्रिय स्वर्गलोक में जाने की इच्छा नहीं करती थी।

तात्पर्य : वह शुद्ध भक्त जिसे भगवान् के पवित्र नाम, यश, गुण, रूप तथा साज-सामान के विषय में कीर्तन एवं श्रवण करने का प्रशिक्षण मिला रहता है कभी भी स्वर्गलोक जाने का इच्छुक नहीं रहता, भले ही वह देवताओं को परम प्रिय क्यों न हो।

नारायणपरा: सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति।

स्वर्गापवर्गनरकेष्वपि तुल्यार्थदर्शिनः ॥

"भगवान् नारायण की एकान्त भक्ति में लगे भक्तगण जीवन की किसी भी परिस्थिति से कभी नहीं डरते। भक्त के लिए स्वर्ग, मुक्ति तथा नरकलोक एक समान हैं।" (भागवत ६.१७.२८) भक्त सदैव वैकुण्ठ में रहता है अतएव उसे किसी भी वस्तु की इच्छा नहीं रहती। वह अकाम कहलाता है क्योंकि उसे भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति करने के अतिरिक्त किसी वस्तु की इच्छा नहीं रहती। चूँकि महाराज अम्बरीष महाभागवत थे अतएव उन्होंने अपनी प्रजा को ऐसी शिक्षा दी थी कि उनकी प्रजा की रुचि किसी भौतिक वस्तु में, यहाँ तक कि स्वर्ग के सुख में भी, नहीं थी।

संवर्धयन्ति यत्कामाः स्वाराज्यपरिभाविताः ।
दुर्लभा नापि सिद्धानां मुकुन्दं हृदि पश्यतः ॥ २५॥

शब्दार्थ

संवर्धयन्ति—सुख को बढ़ाती हैं; यत्—क्योंकि; कामाः—ऐसी इच्छाएँ; स्वा-राज्य—भगवान् की सेवा करने के अपने स्वाभाविक पद पर स्थित; परिभाविताः—ऐसी इच्छाओं से पूरित; दुर्लभाः—दुर्लभ; न—नहीं; अपि—भी; सिद्धानाम्—महान् योगियों के; मुकुन्दम्—कृष्ण को; हृदि—हृदय में; पश्यतः—उनका दर्शन करने के आदी व्यक्ति।

जो लोग भगवान् की सेवा करने के दिव्य सुख से परिपूर्ण हैं वे महान् योगियों की उपलब्धियों में भी कोई रुचि नहीं रखते क्योंकि ऐसी उपलब्धियाँ उस भक्त के द्वारा अनुभव किये गये दिव्य आनन्द को वर्धित नहीं करतीं जो अपने हृदय के भीतर सदैव कृष्ण का चिन्तन करता रहता है।

तात्पर्य : शुद्ध भक्त न केवल उच्च लोकों को जाने में अपितु योग की सिद्धियों तक में अरुचि रखता है। असली सिद्धि तो भक्ति है। निर्विशेष ब्रह्म में तल्लीन होने से प्राप्त सुख तथा योग की आठ सिद्धियों (अणिमा, लघिमा, प्राप्ति इत्यादि) से मिलने वाले सुख भक्त को हर्षित नहीं करते। जैसा कि श्रील प्रबोधानन्द सरस्वती ने कहा है—

कैवल्यं नरकायते त्रिदशपूराकाशपुष्पायते
दुर्दान्तेन्द्रियकालसर्पपटली प्रोत्खातदंष्ट्रायते।
विश्वं पूर्णसुखायते विधिमहेन्द्रादिश्च कीटायते
यत्कारुण्यकटाक्षवैभववतां तं गौरमेव स्तुमः ॥

(*चैतन्य चन्द्रामृत* ५)

जब भक्त को भगवान् श्रीचैतन्य की कृपा से भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति करने का पद मिल जाता है तो वह निर्विशेष ब्रह्म को नरकतुल्य मानता है और स्वर्गलोक के भौतिक सुख को मायाजाल मानता है। जहाँ तक योग की सिद्धियों की बात है, भक्त इन्हें दन्तहीन विषैले सर्प के समान मानता है। योगी की विशेष चिन्ता इन्द्रियों को वश में करने की रहती है, किन्तु भक्त की इन्द्रियाँ भगवान् की सेवा में लगी रहने के कारण (*हृषीकेण हृषीकेशसेवनं भक्तिरुच्यते*) उसे इन्द्रियों को पृथक् रूप से वश में करने की आवश्यकता नहीं रहती। जो लोग भौतिकता में लगे हैं उनके लिए इन्द्रियों को वश में करने की आवश्यकता पड़ती है लेकिन भक्त की इन्द्रियाँ तो भगवत्सेवा में सदैव लगी रहती हैं जिसका अर्थ है कि वे पहले से ही वश में हो चुकी हैं। *परं दृष्ट्वा निवर्तते* (*भगवद्गीता* २.५९)। भक्त की इन्द्रियाँ भौतिक भोग के द्वारा आकृष्ट नहीं होतीं। यद्यपि यह जगत दुखमय है, किन्तु भक्त इस जगत को भी आध्यात्मिक मानता है क्योंकि प्रत्येक वस्तु भगवान् की सेवा में लगी रहती है। भौतिक तथा आध्यात्मिक जगतों का अन्तर सेवा का भाव है। *निर्बन्धः कृष्णसम्बन्धे युक्तं वैराग्यमुच्यते*—जब भगवान् की सेवा करने का भाव नहीं होता तो मनुष्य के कार्यकलाप भौतिक होते हैं।

प्रापञ्चिकतया बुद्ध्या हरिसम्बन्धिवस्तुनः।
मुमुक्षुभिः परित्यागो वैराग्यं फल्गु कथ्यते॥

(*भक्तिरसामृत सिन्धु १.२.२५६*)

जो कुछ भगवान् की सेवा में नहीं लगा है वह भौतिक है और जो कुछ इस तरह लगा है उसका परित्याग नहीं होना चाहिए। एक गगनचुम्बी प्रासाद तथा एक मन्दिर के निर्माण के पीछे एक-जैसा उत्साह हो सकता है लेकिन प्रयास भिन्न-भिन्न होते हैं क्योंकि एक प्रयास भौतिक होता है और दूसरा आध्यात्मिक है। आध्यात्मिक कार्यों को भौतिक कार्यकलाप समझ कर भ्रम में नहीं पडना चाहिए और इन्हें त्यागना नहीं चाहिए। भगवान् हरि से सम्बन्धित कोई भी वस्तु भौतिक नहीं होती। जो भक्त इस पर विचार करता है वह सदैव आध्यात्मिक कार्यों को प्राप्त होता है अतएव वह भौतिक कार्यों के द्वारा आकृष्ट नहीं होता (*परं दृष्ट्वा निवर्तते*)।

स इत्थं भक्तियोगेन तपोयुक्तेन पार्थिवः ।
स्वधर्मेण हरिं प्रीणन्सर्वान्कामाञ्शनैर्जहौ ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

सः—उस (अम्बरीष); इत्थम्—इस प्रकार; भक्ति-योगेन—भगवान् की भक्ति के द्वारा; तपः-युक्तेन—जो तपस्या की श्रेष्ठ विधि भी है; पार्थिवः—राजा ने; स्व-धर्मेण—अपने वैधानिक कार्यकलापों से; हरिम्—परमेश्वर को; प्रीणन्—सन्तुष्ट करते हुए; सर्वान्—सभी प्रकार की; कामान्—भौतिक इच्छाओं को; शनैः—धीरे-धीरे; जहौ—त्याग दिया।

इस तरह इस लोक के राजा महाराज अम्बरीष ने भगवान् की भक्ति की और इस प्रयास में उन्होंने कठिन तपस्या की। उन्होंने अपने वैधानिक कार्यकलापों से भगवान् को सदैव प्रसन्न करते हुए धीरे-धीरे सारी भौतिक इच्छाओं का परित्याग कर दिया।

तात्पर्य : भक्ति के अभ्यास में की गई कठिन तपस्याएँ कई प्रकार की होती हैं। उदाहरणार्थ, मन्दिर में अर्चाविग्रह की पूजा में श्रम-साध्य कार्य करने होते हैं। *श्रीविग्रहाराधननित्यनानाशृंगारतन्मन्दिरमार्जनादौ*। मनुष्य को अर्चाविग्रह को अलंकृत करना चाहिए, मन्दिर साफ करना चाहिए, गंगा तथा यमुना से जल लाना चाहिए, नित्यकर्म करते रहना चाहिए, कई बार आरती करनी चाहिए, अर्चाविग्रह के लिए उत्कृष्ट भोजन तैयार करना चाहिए, वस्त्र तैयार करने चाहिए, आदि-आदि। इस तरह विविध कार्यों में सदैव लगे रहना चाहिए। इसमें जो श्रम लगता है वह निश्चय ही, तपस्या है। इसी प्रकार प्रचारकार्य करने, साहित्य तैयार करने, नास्तिकों को उपदेश देने तथा द्वार-द्वार जाकर साहित्य बाँटने में जो कठिन श्रम निहित रहता है वह निश्चय ही तपस्या है (*तपोयुक्तेन*) । *तपो दिव्यं पुत्रका*। ऐसी तपस्या आवश्यक है। *येन सत्त्वं शुद्ध्येत्*। भक्ति में ऐसी तपस्या से मनुष्य भौतिकवादिता से पवित्र हो जाता है (*कामान् शनैर्जहौ*)। निस्सन्देह, ऐसी तपस्या से भक्ति की स्वाभाविक स्थिति प्राप्त होती है। इस तरह मनुष्य अपनी भौतिक इच्छाएँ त्याग सकता है और ज्योंही वह भौतिक इच्छाओं से मुक्त हो जाता है त्योंही वह जन्म, जरा, मृत्यु तथा रोग की पुनरावृत्ति से छूट जाता है।

गृहेषु दारेषु सुतेषु बन्धुषु
द्विपोत्तमस्यन्दनवाजिवस्तुषु ।
अक्षय्यरत्नाभरणाम्बरादिष्व्
अनन्तकोशेष्वकरोदसन्मतिम् ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

गृहेषु—घरों में; दारेषु—स्त्रियों में; सुतेषु—सन्तानों में; बन्धुषु—मित्रों तथा सम्बन्धियों में; द्विप-उत्तम—श्रेष्ठ शक्तिशाली हाथियों में; स्यन्दन—उत्तम रथों में; वाजि—उत्तम घोड़ों में; वस्तुषु—ऐसी सारी वस्तुओं में; अक्षय्य—जिनका महत्त्व कभी घटता नहीं; रत्न—रत्नों में; आभरण—गहनों में; अम्बर-आदिषु—कपड़े, गहने इत्यादि में; अनन्त-कोशेषु—अक्षय खजाने में; अकरोत्—स्वीकार किया; असत्-मतिम्—अनासक्ति।

महाराज अम्बरीष ने घरेलू कार्यों, पत्नियों, सन्तानों, मित्रों तथा सम्बन्धियों, श्रेष्ठ शक्तिशाली हाथियों, सुन्दर रथों, गाड़ियों, घोड़ों, अक्षय रत्नों, गहनों, वस्त्रों तथा अक्षय कोश के प्रति सारी आसक्ति छोड़ दी। उन्होंने इन वस्तुओं को नश्वर तथा भौतिक मानकर इनकी आसक्ति छोड़ दी।

तात्पर्य : *अनासक्तस्य विषयान् यथार्हम् उपयुञ्जत:।* जहाँ तक भौतिक वस्तुएँ भक्ति के काम आयें उन्हें स्वीकार कर लेना चाहिए। *आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनम्। आनुकूल्यस्य संकल्प: प्रातिकूल्य-स्य वर्जनम्।* उपदेश देते समय अनेक भौतिक कहलाने वाली वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है। भक्त को घर, पत्नी, सन्तान, मित्र, मोटरकार जैसी भौतिक वस्तुओं के प्रति आसक्त नहीं होना चाहिए। उदाहरणार्थ, महाराज अम्बरीष के पास ये सारी वस्तुएँ थीं, किन्तु वे उनके प्रति आसक्त नहीं थे। यह भक्तियोग का प्रभाव है। भक्ति: *परेशानुभवो विरक्तिरन्यत्र च* (*भागवत* ११.२.४२)। जो भक्ति में बढ़ा-चढ़ा है वह इन्द्रिय-भोग के लिए भौतिक वस्तुओं के प्रति आसक्त नहीं रहता, किन्तु उपदेश देने के लिए, भगवान् की महिमा का प्रसार करने में वह बिना आसक्ति के ऐसी वस्तुएँ स्वीकार करता है। *अनासक्तस्य विषयान् यथार्हम् उपयुञ्जत:।* ऐसी प्रत्येक वस्तु जहाँ तक वह कृष्ण की सेवा में लगाई जा सके, उपयोग की जानी चाहिए।

तस्मा अदाद्धरिश्चक्रं प्रत्यनीकभयावहम् ।
एकान्तभक्तिभावेन प्रीतो भक्ताभिरक्षणम् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

तस्मै—उसको (महाराज अम्बरीष को); अदात्—प्रदान किया; हरि:—भगवान् ने; चक्रम्—अपना चक्र; प्रत्यनीक-भय-आवहम्—जो भगवान् तथा उनके भक्तों के शत्रुओं के लिए अत्यन्त भयावह है; एकान्त-भक्ति-भावेन—अनन्य भक्ति करने के कारण; प्रीत:—भगवान् इस प्रकार प्रसन्न होकर; भक्त-अभिरक्षणम्—अपने भक्तों की रक्षा के लिए।

महाराज अम्बरीष की अनन्य भक्ति से अतीव प्रसन्न होकर भगवान् ने राजा को अपना चक्र प्रदान किया जो शत्रुओं के लिए भयावह है और जो शत्रुओं तथा विपत्तियों से भक्तों की सदैव रक्षा करता है।

तात्पर्य : सदैव भगवान् की सेवा में लगे रहने के कारण, हो सकता है कि भक्त अपनी रक्षा में पटु न हो, किन्तु भगवान् के चरणकमलों पर पूर्णाश्रित रहने से वह भगवान् द्वारा अपनी रक्षा किये जाने के लिए

आश्वस्त रहता है। प्रह्लाद महाराज ने (*भागवत* ७.९.४३) कहा है—

नैवोद्विजे पर दुरत्ययवैतरण्या-

स्त्वद्वीर्यगायनमहामृतमग्नचित्तः।

भक्त भगवान् की सेवा करने के दिव्य आनन्द के सागर में सदैव मग्न रहता है; अतएव वह भौतिक जगत की किसी विपरीत स्थिति से कभी भयभीत नहीं होता। भगवान् यह भी वचन देते हैं—*कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति*—हे अर्जुन! तुम संसार को घोषित कर दो कि भगवान् का भक्त कभी विनष्ट नहीं होता (*भगवद्गीता* ९.३१)। भक्तों की रक्षा के लिए कृष्ण का सुदर्शन चक्र सदैव तैयार रहता है। यह चक्र अभक्तों के लिए अत्यन्त भयावह है (*प्रत्यनीकभयावहम्*)। इसलिए महाराज अम्बरीष के भक्ति-संलग्न रहने पर भी उनका साम्राज्य सभी प्रकार के संकट से मुक्त था।

आरिराधयिषुः कृष्णं महिष्या तुल्यशीलया ।
युक्तः सांवत्सरं वीरो दधार द्वादशीव्रतम् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

आरिराधयिषुः—पूजा करने के लिए इच्छुक; कृष्णम्—भगवान् कृष्ण को; महिष्या—अपनी रानी सहित; तुल्य-शीलया—महाराज अम्बरीष के ही समान योग्य; युक्तः—साथ-साथ; सांवत्सरम्—एक वर्ष तक; वीरः—राजा ने; दधार—स्वीकार किया; द्वादशी-व्रतम्—एकादशी तथा द्वादशी मनाने का व्रत।

महाराज अम्बरीष ने अपने ही समान योग्य अपनी रानी के साथ भगवान् कृष्ण की पूजा करने के लिए एक वर्ष तक एकादशी तथा द्वादशी का व्रत रखा।

तात्पर्य : एकादशी व्रत तथा द्वादशी व्रत रखने का अर्थ है भगवान् को प्रसन्न करना। जो लोग कृष्णभावनामृत में प्रगति करने के इच्छुक हैं उन्हें एकादशी व्रत नियमपूर्वक रखना चाहिए। महाराज अम्बरीष की पत्नी भी राजा के ही समान सुयोग्य थी, इसलिए महाराज अम्बरीष के लिए अपने जीवन को गृहस्थी के कार्यों में व्यस्त रखना संभव हो सका। अतएव इस प्रसंग में *तुल्यशीलया* शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। जब तक पत्नी अपने पति के समान ही योग्य नहीं होती तब तक गृहस्थी के कार्यों को चला पाना अत्यन्त कठिन होता है। चाणक्य पण्डित की सलाह है कि ऐसी स्थिति में मनुष्य को तुरन्त ही गृहस्थ जीवन त्यागकर वानप्रस्थ या संन्यासी बन जाना चाहिए।

माता यस्य गृहे नास्ति भार्या चाप्रियवादिनी।

अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम् ॥

जिस व्यक्ति के घर में माता न हो और जिसकी पत्नी उसके अनुकूल न हो, उसे तुरन्त ही जंगल में चले जाना चाहिए। चूँकि मनुष्य जीवन मात्र आध्यात्मिक प्रगति के लिए है अतएव उसकी पत्नी को इस प्रयास में सहायक बनना चाहिए अन्यथा गृहस्थ जीवन की कोई आवश्यकता नहीं है।

व्रतान्ते कार्तिके मासि त्रिरात्रं समुपोषितः ।
स्नातः कदाचित्कालिन्द्यां हरिं मधुवनेऽर्चयत् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

व्रत-अन्ते—व्रत रखने के अन्त में; कार्तिके—कार्तिक (अक्टूबर-नवम्बर) मास में; मासि—महीने में; त्रि-रात्रम्—तीन रातों तक; समुपोषितः—पूर्णतया व्रत रखने के पश्चात्; स्नातः—स्नान करके; कदाचित्—कभी; कालिन्द्याम्—यमुना नदी के तट पर; हरिम्—भगवान् को; मधुवने—वृन्दावन के मधुवन नामक क्षेत्र में; अर्चयत्—भगवान् की पूजा की।

एक वर्ष तक उस व्रत को रखने के बाद, तीन रातों तक उपवास रखकर तथा युमना में स्नान करके महाराज अम्बरीष ने कार्तिक के महीने में भगवान् हरि की मधुवन में पूजा की।

महाभिषेकविधिना सर्वोपस्करसम्पदा ।
अभिषिच्याम्बराकल्पैर्गन्धमाल्यार्हणादिभिः ॥ ३१ ॥
तद्गतान्तरभावेन पूजयामास केशवम् ।
ब्राह्मणांश्च महाभागान्सिद्धार्थानपि भक्तितः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

महा-अभिषेक-विधिना—अर्चाविग्रह को नहलाने के अनुष्ठान द्वारा; सर्व-उपस्कर-सम्पदा—अर्चाविग्रह की पूजा की सारी सामग्री से; अभिषिच्य—नहलाकर; अम्बर-आकल्पैः—सुन्दर वस्त्रों तथा गहनों से; गन्ध-माल्य—सुगन्धित फूल की मालाओं से; अर्हण-आदिभिः—अर्चाविग्रह की पूजा की अन्य सामग्री सहित; तत्-गत-अन्तर-भावेन—भक्ति से पूरित अपने मन से; पूजयाम् आस—उसने पूजा की; केशवम्—कृष्ण को; ब्राह्मणान् च—तथा ब्राह्मणों को; महा-भागान्—अत्यन्त भाग्यशाली; सिद्ध-अर्थान्—आत्मतुष्ट, किसी पूजा के लिए प्रतीक्षा किये बिना; अपि—भी; भक्तितः—अत्यन्त भक्तिपूर्वक।

महाभिषेक के विधि-विधानों के अनुसार महाराज अम्बरीष ने सारी सामग्री से भगवान् कृष्ण के अर्चाविग्रह को स्नान कराया। फिर उन्हें सुन्दर वस्त्रों, आभूषणों, सुगन्धित फूलों की मालाओं तथा पूजा की अन्य सामग्री से अलंकृत किया। उन्होंने ध्यानपूर्वक तथा भक्तिपूर्वक कृष्ण की तथा भौतिक इच्छाओं से मुक्त परम भाग्यशाली ब्राह्मणों की पूजा की।

गवां रुक्मविषाणीनां रूप्याङ्घ्रीणां सुवाससाम् ।

पयःशीलवयोरूपवत्सोपस्करसम्पदाम् ॥ ३३॥
प्राहिणोत्साधुविप्रेभ्यो गृहेषु न्यर्बुदानि षट् ।
भोजयित्वा द्विजानग्रे स्वाद्वन्नं गुणवत्तमम् ॥ ३४॥
लब्धकामैरनुज्ञातः पारणायोपचक्रमे ।
तस्य तर्ह्यतिथिः साक्षाद्दुर्वासा भगवानभूत् ॥ ३५॥

शब्दार्थ

गवाम्—गाएँ; रुक्म-विषाणीनाम्—सोने के पत्तर से मढ़े सींगों वाली; रूप्य-अङ्घ्रीणाम्—चाँदी के पत्तर से मढ़े खुरों वाली; सु-वाससाम्—वस्त्रों से सुसज्जित; पयः-शील—खूब दूध देने वाली; वयः—तरुण; रूप—सुन्दर; वत्स-उपस्कर-सम्पदाम्—सुन्दर बछड़ों सहित; प्राहिणोत्—दान में दिया; साधु-विप्रेभ्यः—ब्राह्मणों तथा साधु पुरुषों को; गृहेषु—उनके घर में (पहुँचे हुए); न्यर्बुदानि—दस करोड़; षट्—छः गुणा; भोजयित्वा—उन्हें खिलाकर; द्विजान् अग्रे—पहले ब्राह्मणों को; स्वादु अन्नम्—अत्यन्त स्वादिष्ट खाद्यपदार्थ; गुणवत्-तमम्—अत्यन्त स्वादिष्ट; लब्ध-कामैः—परम सन्तुष्ट ब्राह्मणों के द्वारा; अनुज्ञातः—उनकी अनुमति से; पारणाय—द्वादशी का व्रत पूरा करने के लिए; उपचक्रमे—अन्तिम उत्सव मनाने जा रहे; तस्य—उसका (अम्बरीष); तर्हि—तुरन्त; अतिथिः—अनिच्छित मेहमान; साक्षात्—प्रत्यक्ष; दुर्वासाः—योगी दुर्वासा; भगवान्—अत्यन्त शक्तिशाली; अभूत्—अतिथि रूप में वहाँ प्रकट हुए।

तत्पश्चात् महाराज अम्बरीष ने अपने घर में आये सारे अतिथियों को, विशेषकर ब्राह्मणों को संतुष्ट किया। उन्होंने दान में साठ करोड़ गौवें दीं जिनके सींग सोने के पत्तर से और खुर चाँदी के पत्तर से मढ़े थे। सारी गौवें वस्त्रों से खूब सजाई गई थीं और उनके थन दूध से भरे थे। वे सुशील, तरुण तथा सुन्दर थीं और अपने-अपने बछड़ों के साथ थीं। इन गौवों का दान देने के बाद राजा ने सर्वप्रथम सारे ब्राह्मणों को पेटभर भोजन कराया और जब वे पूरी तरह संतुष्ट हो गये तो वे उनकी आज्ञा से एकादशी व्रत तोड़कर उस का पारण करने वाले थे। किन्तु ठीक उसी समय महान् एवं शक्तिशाली दुर्वासा मुनि अनामंत्रित अतिथि के रूप में वहाँ पर प्रकट हुए।

तमानर्चातिथिं भूपः प्रत्युत्थानासनार्हणैः ।
ययाचेऽभ्यवहाराय पादमूलमुपागतः ॥ ३६॥

शब्दार्थ

तम्—उसको (दुर्वासा को); आनर्च—पूजा की; अतिथिम्—यद्यपि वे अनाहूत आये थे; भूपः—राजा (अम्बरीष) ने; प्रत्युत्थान—खड़े हो करके; आसन—आसन देकर; अर्हणैः—पूजा की सामग्री से; ययाचे—प्रार्थना की; अभ्यवहाराय—भोजन करने के लिए; पाद-मूलम्—पाँवों पर; उपागतः—गिर कर।

दुर्वासा मुनि का स्वागत करने के लिए राजा अम्बरीष ने खड़े होकर उन्हें आसन तथा पूजा की सामग्री प्रदान की। तब उनके पाँवों के पास बैठकर राजा ने मुनि से भोजन करने के लिए प्रार्थना की।

प्रतिनन्द्य स तां याच्ञां कर्तुमावश्यकं गतः ।
निममज्ज बृहद्ध्यायन्कालिन्दीसलिले शुभे ॥ ३७॥

शब्दार्थ

प्रतिनन्द्य—प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करके; सः—दुर्वासा मुनि ने; ताम्—उस; याच्ञाम्—प्रार्थना को; कर्तुम्—करने के लिए; आवश्यकम्—आवश्यक धार्मिक अनुष्ठान; गतः—चला गया; निममज्ज—जल में डुबकी लगाई; बृहत्—परब्रह्म; ध्यायन्—ध्यान करते हुए; कालिन्दी—यमुना के; सलिले—जल में; शुभे—अत्यन्त शुभ।

दुर्वासा मुनि ने प्रसन्नतापूर्वक महाराज अम्बरीष की प्रार्थना स्वीकार कर ली, किन्तु आवश्यक अनुष्ठान करने के लिए वे यमुना नदी में गये। वहाँ उन्होंने पवित्र यमुना नदी के जल में डुबकी लगाई और निराकार ब्रह्म का ध्यान किया।

मुहूर्तार्धावशिष्टायां द्वादश्यां पारणं प्रति ।
चिन्तयामास धर्मज्ञो द्विजैस्तद्धर्मसङ्कटे ॥ ३८॥

शब्दार्थ

मुहूर्त-अर्ध-अवशिष्टायाम्—आधे मुहूर्त के शेष रहने पर; द्वादश्याम्—द्वादशी के दिन; पारणम्—व्रत तोड़ना; प्रति—मनाने के लिए; चिन्तयाम् आस—सोचने लगा; धर्म-ज्ञः—धार्मिक नियमों का ज्ञाता; द्विजैः—ब्राह्मणों के द्वारा; तत्-धर्म—उस धर्म से सम्बन्धित; सङ्कटे—विकट परिस्थिति में।

तब तक व्रत तोड़ने के लिए द्वादशी का केवल आधा मुहूर्त शेष था। फलस्वरूप व्रत को तुरन्त तोड़ा जाना अनिवार्य था। ऐसी विकट परिस्थिति में राजा ने विद्वान ब्राह्मणों से परामर्श किया।

ब्राह्मणातिक्रमे दोषो द्वादश्यां यदपारणे ।
यत्कृत्वा साधु मे भूयादधर्मो वा न मां स्पृशेत् ॥ ३९॥
अम्भसा केवलेनाथ करिष्ये व्रतपारणम् ।
आहुरब्भक्षणं विप्रा ह्यशितं नाशितं च तत् ॥ ४०॥

शब्दार्थ

ब्राह्मण-अतिक्रमे—ब्राह्मणों के प्रति सत्कार के नियमों का उल्लंघन करने में; दोषः—दोष है; द्वादश्याम्—द्वादशी के दिन; यत्—क्योंकि; अपारणे—समय से व्रत न तोड़ने पर; यत् कृत्वा—जिसे करने पर; साधु—जो शुभ है; मे—मेरे लिए; भूयात्—ऐसा हो; अधर्मः—जो धर्म से रहित है; वा—अथवा; न—नहीं; माम्—मुझको; स्पृशेत्—स्पर्श करे; अम्भसा—जल से; केवलेन—केवल; अथ—अतएव; करिष्ये—मैं करूँगा; व्रत-पारणम्—व्रत की पूर्ति; आहुः—कहा; अप्-भक्षणम्—पीने का पानी; विप्राः—हे ब्राह्मणो; हि—निस्सन्देह; अशितम्—खाना; न अशितम् च—तथा न खाना; तत्—ऐसा कार्य।

राजा ने कहा : "ब्राह्मणों के प्रति सत्कार के नियमों का उल्लंघन करना निश्चय ही, महान् अपराध है। दूसरी ओर यदि कोई द्वादशी की तिथि में अपने व्रत को नहीं तोड़ता तो व्रत के पालन में दोष आता है। अतएव हे ब्राह्मणो, यदि आप लोग यह सोचें कि यह शुभ है तथा अधर्मनहीं है तो मैं जल पीकर व्रत तोड़ दूँ।" इस प्रकार ब्राह्मणों से परामर्श करने के बाद राजा इस निर्णय पर पहुँचा

कि ब्राह्मणों के मतानुसार जल का पीना भोजन करना स्वीकार किया जा सकता है और नहीं भी।

तात्पर्य : जब महाराज अम्बरीष ने दुविधा में पड़कर ब्राह्मणों से इस विषय में परामर्श किया कि वे अपना व्रत तोड़ें या दुर्वासा मुनि की प्रतीक्षा करें तो ब्राह्मणगण इसके विषय में कोई निश्चित उत्तर नहीं दे पाये। लेकिन वैष्णव सबसे अधिक बुद्धिमान व्यक्ति होता है। अतएव महाराज अम्बरीष ने ब्राह्मणों के समक्ष स्वयं निर्णय लिया कि वे थोड़ा सा जल पी लें क्योंकि इससे व्रत तोड़ने की पुष्टि भी हो जायेगी और ब्राह्मण-सत्कार के नियमों का उल्लंघन भी नहीं होगा। वेदों में कहा गया है—*अपोऽश्नाति तन् नैवाशितम् नैवानशितम्*—इस वैदिक आदेश का अर्थ है कि जल पीने को भोजन करना माना जा सकता है और नहीं भी माना जा सकता। कभी-कभी अपने व्यावहारिक अनुभव में हम यह देखते हैं कि कोई राजनैतिक नेता सत्याग्रह करते समय खाता नहीं, लेकिन जल पी लेता है। जल पीने को खाना न मानते हुए महाराजअम्बरीष ने ऐसा करने का निर्णय लिया।

इत्यपः प्राश्य राजर्षिश्चिन्तयन्मनसाच्युतम् ।
प्रत्यचष्ट कुरुश्रेष्ठ द्विजागमनमेव सः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; अपः—जल; प्राश्य—पीकर; राजर्षिः—राजर्षि अम्बरीष; चिन्तयन्—ध्यान करते हुए; मनसा—मन से; अच्युतम्—भगवान् को; प्रत्यचष्ट—प्रतीक्षा करने लगा; कुरु-श्रेष्ठ—हे कुरु राजाओं में श्रेष्ठ; द्विज-आगमनम्—महान् योगी ब्राह्मण दुर्वासा मुनि के आने की; एव—निस्सन्देह; सः—वह राजा।

हे कुरुश्रेष्ठ, थोड़ा सा जल पीकर राजा अम्बरीष ने अपने मन में भगवान् का ध्यान किया और फिर वे महान् योगी दुर्वासा मुनि के वापस आने की प्रतीक्षा करने लगे।

दुर्वासा यमुनाकूलात्कृतावश्यक आगतः ।
राज्ञाभिनन्दितस्तस्य बुबुधे चेष्टितं धिया ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

दुर्वासाः—महर्षि; यमुना-कूलात्—यमुना नदी के तट से; कृत—करके; आवश्यकः—आवश्यक अनुष्ठान; आगतः—वापस आया; राज्ञा—राजा के द्वारा; अभिनन्दितः—भलीभाँति सत्कार किया जाकर; तस्य—उसका; बुबुधे—समझ सका; चेष्टितम्—चेष्टा, कृत्य; धिया—बुद्धि से।

दोपहर के समय सम्पन्न होने वाले अनुष्ठानों को संपन्न कर लेने के बाद दुर्वासा मुनि यमुना के तट से वापस आये। राजा ने अच्छी प्रकार से उनका स्वागत किया, किन्तु दुर्वासा मुनि ने अपने

योगबल से जान लिया कि राजा ने उनकी अनुमति के बिना जल पी लिया है।

मन्युना प्रचलद्गात्रो भ्रुकुटीकुटिलाननः ।
बुभुक्षितश्च सुतरां कृताञ्जलिमभाषत ॥ ४३॥

शब्दार्थ

मन्युना—क्रोध से उद्विग्न मन वाला; प्रचलत्-गात्रः—काँपते शरीर से; भ्रु-कुटी—भौहों से; कुटिल—वक्र; आननः—मुख; बुभुक्षितः च—तथा भूखा; सुतराम्—अत्यधिक; कृत-अञ्जलिम्—हाथ जोड़कर खड़े अम्बरीष महाराज से; अभाषत—कहा।

भूखे, काँपते शरीर, टेढ़े मुँह तथा क्रोध से टेढ़ी भौहें किये दुर्वासा मुनि ने अपने समक्ष हाथ जोड़े खड़े राजा अम्बरीष से क्रोधपूर्वक इस प्रकार कहा।

अहो अस्य नृशंसस्य श्रियोन्मत्तस्य पश्यत ।
धर्मव्यतिक्रमं विष्णोरभक्तस्येशमानिनः ॥ ४४॥

शब्दार्थ

अहो—ओह; अस्य—इस पुरुष का; नृ-शंसस्य—इतने निर्दय का; श्रिया उन्मत्तस्य—अपने ऐश्वर्य के कारण गर्वित; पश्यत—देखो तो; धर्म-व्यतिक्रमम्—धार्मिक सिद्धान्तों का उल्लंघन; विष्णोः अभक्तस्य—जो विष्णु का भक्त नहीं है उसका; ईश-मानिनः—अपने आपको ईश्वर मानने वाला।

ओह! जरा इस निर्दय व्यक्ति का आचरण तो देखो, यह भगवान् विष्णु का भक्त नहीं है। यह अपने ऐश्वर्य एवं पद के गर्व के कारण अपने आपको ईश्वर समझ रहा है। देखो न, इसने धर्म के नियमों का उल्लंघन किया है।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने इस श्लोक में दुर्वासा मुनि द्वारा कहे गये वचनों का पूरा अर्थ ही बदल दिया है। दुर्वासा मुनि ने *नृशंसस्य* शब्द का व्यवहार राजा को क्रूर बताने के लिए किया है लेकिन विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर इसका अर्थ यह लगाते हैं कि राजा के चरित्र की महिमा का गान सारे स्थानीय लोगों ने किया। उनके अनुसार नृ का अर्थ है "सारे स्थानीय लोग" तथा शंसस्य का अर्थ है "अम्बरीष का, जिसके चरित्र का गायन किया गया।" इसी प्रकार जो अत्यन्त धनी होता है वह अपने धन के कारण पागल हो जाता है अतएव वह *श्रिया उन्मत्तस्य* कहलाता है, किन्तु श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार यद्यपि महाराज अम्बरीष अत्यन्त ऐश्वर्यवान राजा थे, किन्तु वे दान के पीछे पागल नहीं थे क्योंकि वे भौतिक ऐश्वर्य के पागलपन को पहले ही पार कर चुके थे। इसी प्रकार *ईशमानिनः* का अर्थ यह लगाया है कि वह भगवान् का इतना आदर करता था कि दुर्वासा मुनि के ऐसा सोचने के बावजूद भी उसने

एकादशी पारण के नियम का उल्लंघन नहीं किया क्योंकि उसने केवल जल ग्रहण किया था। इस प्रकार श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने अम्बरीष महाराज के सारे

यो मामतिथिमायातमातिथ्येन निमन्त्र्य च ।
अदत्त्वा भुक्तवांस्तस्य सद्यस्ते दर्शये फलम् ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

यः—जो व्यक्ति; माम्—मुझ; अतिथिम्—अतिथि को; आयातम्—आया हुआ; आतिथ्येन—अतिथि के रूप में सत्कार द्वारा; निमन्त्र्य—निमंत्रण देकर; च—भी; अदत्त्वा—(भोजन) दिये बिना; भुक्तवान्—स्वयं खा लिया; तस्य—उसका; सद्यः—तुरन्त; ते—तुम्हारा; दर्शये—दिखलाऊँगा; फलम्—परिणाम, फल।.

महाराज अम्बरीष, तुमने मुझे अतिथि के रूप में भोजन के लिए बुलाया है लेकिन तुमने मुझे न खिलाकर स्वयं पहले खा लिया है। तुम्हारे इस दुर्व्यवहार के कारण मैं तुमको इसका मजा चखाऊँगा।

तात्पर्य : भक्त तथाकथित योगी द्वारा पराजित नहीं किया जा सकता। यह दुर्वासा मुनि द्वारा महाराज अम्बरीष को प्रताड़ित करने के प्रयास के असफल होने से सिद्ध हो जायेगा। *हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणाः* (*भागवत* ५.१८.१२)। जो भगवद्भक्त नहीं है वह कितना ही बड़ा योगी, दार्शनिक या कर्मी क्यों न हो, अच्छा गुणवान अथवा योग्य नहीं माना जाता। केवल भक्त ही सभी परिस्थितियों में विजयी होता है जैसा कि दुर्वासा तथा महाराज अम्बरीष की स्पर्धा की प्रस्तुत घटना से देखा जायेगा।

एवं ब्रुवाण उत्कृत्य जटां रोषप्रदीपितः ।
तया स निर्ममे तस्मै कृत्यां कालानलोपमाम् ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; ब्रुवाणः—बोलकर (दुर्वासा मुनि); उत्कृत्य—उखाड़कर; जटाम्—बालों के समूह को; रोष-प्रदीपितः—क्रोध के मारे लाल होकर; तया—सिर से उखाड़ी अपनी जटा से; सः—दुर्वासा मुनि ने; निर्ममे—उत्पन्न कर दिया; तस्मै—महाराज अम्बरीष को दण्ड देने के लिए; कृत्याम्—कृत्या; काल-अनल-उपमाम्—प्रलयाग्नि के समान प्रकट होकर।.

जब दुर्वासा मुनि ने ऐसा कहा तो क्रोध से उनका मुख लाल पड़ गया। उन्होंने अपने सिर की जटा से एक बाल उखाड़कर महाराज अम्बरीष को दण्ड देने के लिए एक कृत्या उत्पन्न कर दी जो प्रलयाग्नि के समान प्रज्ज्वलित हो रही थी।

तामापतन्तीं ज्वलतीमसिहस्तां पदा भुवम् ।
वेपयन्तीं समुद्वीक्ष्य न चचाल पदान्नृपः ॥ ४७॥

शब्दार्थ

ताम्—उसको; आपतन्तीम्—उस पर आक्रमण करने के लिए जो आगे बढ़ती हुई; ज्वलतीम्—अग्नि के समान प्रज्ज्वलित; असि-हस्ताम्—हाथ में त्रिशूल लिए हुए; पदा—अपने पगों से; भुवम्—पृथ्वी को; वेपयन्तीम्—कंपाती हुई; समुद्वीक्ष्य—उसे ठीक से देखकर; न—नहीं; चचाल—हिला या हटा; पदात्—अपने स्थान से; नृपः—राजा।

वह देदीप्यमान कृत्या अपने हाथ में त्रिशूल लेकर तथा अपने पदचाप से धरती को कंपाती हुई महाराज अम्बरीष के सामने आई। किन्तु उसे देखकर राजा तनिक भी विचलित नहीं हुआ और अपने स्थान से रंचभर भी नहीं हटा।

तात्पर्य : *नारायणपराः सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति* (*भागवत* ६.१७.२८)—नारायण का भक्त कभी किसी भौतिक भय से भयभीत नहीं होता। भक्तों के ऐसे अनेक उदाहरण प्राप्त हैं—यथा प्रह्लाद महाराज जिन्हें उनके पिता तरह-तरह के कष्ट देते थे, किन्तु वे तनिक भी भयभीत नहीं हुए यद्यपि वे अभी केवल पाँच वर्ष के बालक थे। अतएव अम्बरीष महाराज तथा प्रह्लाद महाराज का अनुकरण करते हुए भक्त को इस संसार की ऐसी सारी विषम स्थितियों को सहने का अभ्यास करना चाहिए। भक्तों को प्रायः अभक्त सताते हैं फिर भी भगवान् की कृपा पर आश्रित रहकर शुद्ध भक्त कभी भी ऐसे शत्रुतापूर्ण कार्यों से विचलित नहीं होते।

प्राग्दिष्टं भृत्यरक्षायां पुरुषेण महात्मना ।
ददाह कृत्यां तां चक्रं क्रुद्धाहिमिव पावकः ॥ ४८॥

शब्दार्थ

प्राक् दिष्टम्—पूर्व आयोजित; भृत्य-रक्षायाम्—अपने दासों की रक्षा करने के लिए; पुरुषेण—परम पुरुष द्वारा; महा-आत्मना—परमात्मा द्वारा; ददाह—जलाकर राख कर दिया; कृत्याम्—सृजित कृत्या को; ताम्—उस; चक्रम्—चक्र; क्रुद्ध—क्रुद्ध; अहिम्—सर्प को; इव—सदृश; पावकः—अग्नि।

जिस प्रकार दावाग्नि एक क्रुद्ध सर्प को तुरन्त जला देती है उसी प्रकार पहले से आदिष्ट भगवान् के सुदर्शन चक्र ने भगवद्भक्त की रक्षा करने के लिए उस सृजित कृत्या को जलाकर क्षार कर दिया।

तात्पर्य : शुद्ध भक्त होने के कारण महाराज अम्बरीष ऐसे संकट में पड़कर भी न तो अपने स्थान से रंचभर हटे, न ही भगवान् से अपनी रक्षा करने के लिए कोई प्रार्थना की। वे विचार में स्थिर थे अतएव यह स्पष्ट था कि वे अपने मन में भगवान् का चिन्तन मात्र कर रहे थे। भक्त कभी अपनी मृत्यु से डरता नहीं

क्योंकि वह सदैव भगवान् का ध्यान अपने कर्तव्य के रूप में करता है, किसी भौतिक लाभ के लिए नहीं। लेकिन भगवान् जानते हैं कि भक्त की रक्षा कैसे करनी चाहिए। जैसा कि *प्राग्-दिष्टम्* शब्द से सूचित होता है, भगवान् सब जानते थे।अतएव इसके पूर्व कि कोई घटना घटे, उन्होंने महाराज अम्बरीष की रक्षा करने के लिए अपने चक्र को तैयार रखा था। भक्त को यह सुरक्षा भक्ति शुरू करने के दिन से ही प्रदान की जाती है। *कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति* (*भगवद्गीता* ९.३१)। यदि कोई व्यक्ति भक्ति शुरू करता है तो तुरन्त ही भगवान् उसकी रक्षा करने लगते हैं। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (१८.६६) के द्वारा होती है—*अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि।* सुरक्षा का कार्य तुरन्त प्रारम्भ हो जाता है। भगवान् इतने दयालु हैं कि वे अपने भक्त को सही मार्गदर्शन तथा सारी सुरक्षा प्रदान करते हैं। इस तरह भक्त शान्तिपूर्वक बिना किसी बाहरी उपद्रव के कृष्णभावनामृत में ठोस प्रगति करता है। सर्प कितना ही क्रुद्ध और काटने को तैय्यार क्यों न हो, किन्तु जब उसे जंगल की प्रज्ज्वलित अग्नि का सामना करना पड़ता है तो क्रुद्ध से क्रुद्ध सर्प भी असहाय बन जाता है। यद्यपि भक्त का शत्रु अत्यन्त प्रबल भी हो, वह भक्ति की अग्नि के समक्ष क्रुद्ध सर्प जैसा बन जाता है।

तदभिद्रवदुद्वीक्ष्य स्वप्रयासं च निष्फलम् ।
दुर्वासा दुद्रुवे भीतो दिक्षु प्राणपरीप्सया ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

तत्—उस चक्र को; अभिद्रवत्—अपनी ओर आते; उद्वीक्ष्य—देखकर; स्व-प्रयासम्—अपने निजी प्रयास को; च—तथा; निष्फलम्—व्यर्थ हुआ; दुर्वासाः—दुर्वासा मुनि; दुद्रुवे—भगने लगा; भीतः—भयभीत हो गए; दिक्षु—हर दिशा में; प्राण-परीप्सया—अपने जीवन की रक्षा करने की इच्छा से।

जब दुर्वासा मुनि ने देखा कि उनका निजी प्रयास विफल हो गया है और सुदर्शन चक्र उनकी ओर बढ़ रहा है तो वे अत्यधिक भयभीत हो उठे और अपनी जान बचाने के लिए सारी दिशाओं में दौने लगे।

तमन्वधावद्भगवद्रथाङ्गं
दावाग्निरुद्धूतशिखो यथाहिम् ।
तथानुषक्तं मुनिरीक्षमाणो
गुहां विविक्षुः प्रससार मेरोः ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

तम्—दुर्वासा का; अन्वधावत्—पीछा करने लगा; भगवत्-रथ-अङ्गम्—भगवान् के रथ के पहिए से निकला चक्र; दाव-अग्निः—जंगल की अग्नि के समान; उद्धूत—ऊपर उठती; शिखः—लपटें; यथा अहिम्—जिस तरह साँप का पीछा करती हैं; तथा—उसी प्रकार; अनुषक्तम्—मानो दुर्वासा मुनि की पीठ को छूता हुआ; मुनिः—मुनि; ईक्षमाणः—इस तरह देखता; गुहाम्—गुफा में; विविक्षुः—प्रवेश करना चाहा; प्रससार—तेजी से आगे बढ़ने लगा; मेरोः—मेरु पर्वत की।

जिस प्रकार दवाग्नि की लपटें साँप का पीछा करती हैं उसी तरह भगवान् का चक्र दुर्वासा मुनि का पीछा करने लगा। दुर्वासा मुनि ने देखा कि यह चक्र उनकी पीठ को छूने वाला है अतएव वे तेजी से दौकर सुमेरु पर्वत की गुफा में घुस जाना चाह रहे थे।

दिशो नभः क्ष्मां विवरान्समुद्रान्
लोकान्सपालांस्त्रिदिवं गतः सः ।
यतो यतो धावति तत्र तत्र
सुदर्शनं दुष्प्रसहं ददर्श ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

दिशः—सारी दिशाएँ; नभः—आकाश में; क्ष्माम्—पृथ्वी पर; विवरान्—छेदों में; समुद्रान्—समुद्रों के भीतर; लोकान्—सारे स्थानों में; स-पालान्—तथा उनके शासकों समेत; त्रिदिवम्—स्वर्गलोकों में; गतः—गया हुआ; सः—वह दुर्वासा मुनि; यतः यतः—जहाँ-जहाँ; धावति—गया; तत्र तत्र—वहीं-वहीं; सुदर्शनम्—भगवान् का चक्र; दुष्प्रसहम्—अत्यन्त भयावह; ददर्श—दुर्वासा मुनि ने देखा।

अपनी रक्षा करने के लिए दुर्वासा मुनि सर्वत्र भागते रहे—वे आकाश, पृथ्वीतल, गुफाओं, समुद्र, तीनों लोकों के शासकों के विभिन्न लोकों तथा स्वर्गलोक में भी गये, किन्तु जहाँ-जहाँ गये वहीं उन्होंने सुदर्शन चक्र की असह्य अग्नि को उनका पीछा करते देखा।

अलब्धनाथः स सदा कुतश्चित्
सन्त्रस्तचित्तोऽरणमेषमाणः ।
देवं विरिञ्चं समगाद्विधात-
स्त्राह्यात्मयोनेऽजिततेजसो माम् ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

अलब्ध-नाथः—रक्षक की शरण पाये बिना; सः—दुर्वासा मुनि; सदा—सदैव; कुतश्चित्—कहीं; सन्त्रस्त-चित्तः—भयभीत मन से; अरणम्—शरणदाता को; एषमाणः—ढूँढते हुए; देवम्—प्रमुख देवता; विरिञ्चम्—ब्रह्माजी के पास; समगात्—पहुँचा; विधातः—हे प्रभु; त्राहि—मेरी रक्षा कीजिये; आत्म-योने—हे ब्रह्माजी; अजित-तेजसः—अजित अर्थात् भगवान् द्वारा छोड़ी गयी अग्नि से; माम्—मुझको।

दुर्वासा मुनि भयभीत मन से इधर उधर शरण खोजते रहे, किन्तु जब उन्हें कोई शरण न मिल सकी तो अन्ततः वे ब्रह्माजी के पास पहुँचे और कहा—हे प्रभु, हे ब्रह्माजी, कृपा करके भगवान् द्वारा

भेजे गये इस ज्वलित सुदर्शन चक्र से मेरी रक्षा कीजिये।

श्रीब्रह्मोवाच

स्थानं मदीयं सहविश्वमेतत्
क्रीडावसाने द्विपरार्धसंज्ञे ।
भ्रूभङ्गमात्रेण हि सन्दिधक्षोः
कालात्मनो यस्य तिरोभविष्यति ॥५३॥
अहं भवो दक्षभृगुप्रधानाः
प्रजेशभूतेशसुरेशमुख्याः ।
सर्वे वयं यन्नियमं प्रपन्ना
मूर्ध्न्यार्पितं लोकहितं वहामः ॥५४॥

शब्दार्थ

श्री-ब्रह्मा उवाच—ब्रह्माजी ने कहा; स्थानम्—वह स्थान जहाँ मैं हूँ; मदीयम्—मेरा आवास, ब्रह्मलोक; सह—सहित; विश्वम्—सारा ब्रह्माण्ड; एतत्—यह; क्रीडा-अवसाने—भगवान् की लीला-अवधि के अन्त में; द्वि-परार्ध-संज्ञे—द्वि परार्ध के अन्त के नाम से जाना जाने वाला समय; भ्रू-भङ्ग-मात्रेण—भौहों के टेढ़ा होने मात्र से; हि—निस्सन्देह; सन्दिधक्षोः—भगवान् का, जब वे सारे ब्रह्माण्ड को भस्म करना चाहते हैं; काल-आत्मनः—विनाश रूपी; यस्य—जिसका; तिरोभविष्यति—लुप्त हो जायेगा; अहम्—मैं; भवः—शिवजी; दक्ष—प्रजापति दक्ष; भृगु—भृगुमुनि; प्रधानाः—तथा अन्य; प्रजा-ईश—प्रजाओं के नियंत्रक; भूत-ईश—जीवों के नियन्ता; सुर-ईश—देवताओं के नियन्ता; मुख्याः—उनके नेतृत्व में; सर्वे—सभी; वयम्—हम भी; यत्-नियमम्—जिसके नियम; प्रपन्नाः—शरणागत; मूर्ध्ना अर्पितम्—हम अपने-अपने सिर झुकाकर; लोक-हितम्—जीवों के कल्याण हेतु; वहामः—जीवों के ऊपर शासन करने वाले आदेशों का पालन करते हैं।

ब्रह्माजी ने कहा : द्वि-परार्ध के अन्त में, जब भगवान् की लीलाएँ समाप्त हो जाती हैं तो भगवान् विष्णु अपनी एक भृकुटि के टेढ़ा होने से सारे ब्रह्माण्ड का, जिसमें हमारे निवास स्थान भी सम्मिलित हैं, विनाश कर देते हैं। मैं तथा शिवजी जैसे पुरुष तथा दक्ष, भृगु इत्यादि प्रधान ऋषिमुनि एवं जीवों के शासक, मानव समाज के शासक एवं देवताओं के शासक, हम सभी उन भगवान् विष्णु को अपने अपने सिर झुकाकर समस्त जीवों के कल्याण हेतु उनके आदेशों का पालन करने के लिए उनकी शरण में जाते हैं।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (१०.३४) में कहा गया है—*मृत्युः सर्वहरश्चाहम्*—जब भगवान् मृत्यु या काल के परम नियामक के रूप में आते हैं तो वे सर्वस्व छीन लेते हैं। दूसरे शब्दों में, सारा ऐश्वर्य, प्रतिष्ठा तथा हमारा सर्वस्व भगवान् द्वारा किसी प्रयोजन के लिए प्रदत्त है। यह तो शरणागत जीव का कर्तव्य है कि वह परमेश्वर के आदेशों का पालन करे। कोई भी उनकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता। ऐसी परिस्थिति में ब्रह्माजी ने भगवान् के शक्तिशाली सुदर्शन चक्र से दुर्वासा मुनि की रक्षा करने के लिए उन्हें शरण देने से

इनकार कर दिया।

प्रत्याख्यातो विरिञ्चेन विष्णुचक्रोपतापित: ।
दुर्वासा: शरणं यात: शर्वं कैलासवासिनम् ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ

प्रत्याख्यात:—मना किये जाने पर; विरिञ्चेन—ब्रह्माजी द्वारा; विष्णु-चक्र-उपतापित:—भगवान् विष्णु के चक्र की ज्वलित अग्नि से झुलस कर; दुर्वासा:—दुर्वासा मुनि; शरणम्—शरण में; यात:—गया; शर्वम्—शिवजी की; कैलास-वासिनम्—कैलासवासी।.

जब सुदर्शन चक्र की ज्वलित अग्नि से संतप्त दुर्वासा को ब्रह्माजी ने इस प्रकार मना कर दिया तो उन्होंने कैलास लोक में सदैव निवास करने वाले शिवजी की शरण लेने का प्रयास किया।

श्रीशङ्कर उवाच
वयं न तात प्रभवाम भूम्नि
यस्मिन्परेऽन्येऽप्यजजीवकोशा: ।
भवन्ति काले न भवन्ति हीदृशा:
सहस्रशो यत्र वयं भ्रमाम: ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ

श्री-शङ्कर: उवाच—शंकरजी ने कहा; वयम्—हम; न—नहीं; तात—हे पुत्र; प्रभवाम:—पर्याप्त सक्षम; भूम्नि—भगवान् को; यस्मिन्—जिसमें; परे—अध्यात्म में; अन्ये—अन्य लोग; अपि—भी; अज—ब्रह्माजी; जीव—सारे जीव; कोशा:—ब्रह्माण्ड; भवन्ति—हो सकते हैं; काले—कालक्रम से; न—नहीं; भवन्ति—हो सकते हैं; हि—निस्सन्देह; ईदृशा:—इसकी तरह; सहस्रश:—कई हजार तथा लाख; यत्र—जिसमें; वयम्—हम सभी; भ्रमाम:—घूम रहे हैं।.

शिवजी ने कहा : हे पुत्र, मैं, ब्रह्माजी तथा अन्य देवता जो अपनी-अपनी महानता की भ्रान्त धारणा के कारण इस ब्रह्माण्ड के भीतर चक्कर लगाते रहते हैं, भगवान् से स्पर्धा करने की क्षमता नहीं रखते क्योंकि भगवान् के निर्देशन मात्र से असंख्य ब्रह्माण्डों एवं उनके निवासियों का जन्म और संहार होता रहता है।

तात्पर्य : भौतिक जगत में असंख्य ब्रह्माण्ड हैं और ब्रह्मा, शिव तथा अन्य देवता भी असंख्य हैं। ये सभी भगवान् के परम निर्देशानुसार इस भौतिक जगत के भीतर चक्कर लगाते रहते हैं। अतएव कोई भी भगवान् की शक्ति की बराबरी नहीं कर सकता। शिवजी ने भी दुर्वासा की रक्षा करने से इनकार कर दिया क्योंकि शिवजी स्वयं भी भगवान् द्वारा भेजे सुदर्शन चक्र की किरणों के नीचे थे।

अहं सनत्कुमारश्च नारदो भगवानज: ।

कपिलोऽपान्तरतमो देवलो धर्म आसुरिः ॥ ५७॥
मरीचिप्रमुखाश्चान्ये सिद्धेशाः पारदर्शनाः ।
विदाम न वयं सर्वे यन्मायां माययावृताः ॥ ५८ ॥
तस्य विश्वेश्वरस्येदं शस्त्रं दुर्विषहं हि नः ।
तमेवं शरणं याहि हरिस्ते शं विधास्यति ॥ ५९ ॥

शब्दार्थ

अहम्—मैं; सनत्-कुमारः च—तथा चारों कुमार (सनक, सनातन, सनत्कुमार तथा सनन्द); नारदः—नारद मुनि; भगवान् अजः—ब्रह्माण्ड के श्रेष्ठतम प्राणी, ब्रह्माजी की; कपिलः—देवहूति के पुत्र; अपान्तरतमः—व्यासदेव; देवलः—देवलऋषि; धर्मः—यमराज; आसुरिः—महान् सन्त आसुरि; मरीचि—महान् सन्त मरीचि; प्रमुखाः—इत्यादि; च—भी; अन्ये—अन्य; सिद्ध-ईशाः—सभी अपने-अपने ज्ञान में पूर्ण; पार-दर्शनाः—जिन्होंने सारे ज्ञान का अन्त देखा है; विदामः—समझ सकते हैं; न—नहीं; वयम्—हम सभी; सर्वे—पूर्णतः; यत्-मायाम्—जिसकी माया को; मायया—माया द्वारा; आवृताः—ढका हुआ; तस्य—उसका; विश्व-ईश्वरस्य—ब्रह्माण्ड के स्वामी का; इदम्—यह; शस्त्रम्—हथियार (चक्र); दुर्विषहम्—असह्य; हि—निस्सन्देह; नः—हमारा; तम्—उसकी; एवम्—इसलिए; शरणम् याहि—शरण में जाओ; हरिः—भगवान्; ते—तुम्हारा; शम्—कल्याण; विधास्यति—अवश्यमेव करेंगे।

मैं (शिवजी), सनत्कुमार, नारद, परमादरणीय ब्रह्माजी, कपिल (देवहूति पुत्र), अपान्तरतम (व्यासदेवजी), देवल, यमराज, आसुरि, मरीचि इत्यादि अनेक सन्तपुरुष एवं सिद्धिप्राप्त अन्य अनेक लोग भूत, वर्तमान तथा भविष्य को जानने वाले हैं। फिर भी भगवान् की माया से प्रच्छन्न होने के कारण हम यह नहीं समझ पाते कि यह माया कितनी विस्तीर्ण है। तुम उन्हीं भगवान् के पास राहत प्राप्त करने के लिए जाओ क्योंकि यह सुदर्शन चक्र हम लोगों के लिए भी दुःसह है। तुम भगवान् विष्णु के पास जाओ। वे अवश्य ही दयार्द्र होकर तुम्हें सौभाग्य प्रदान करेंगे।

ततो निराशो दुर्वासाः पदं भगवतो ययौ ।
वैकुण्ठाख्यं यदध्यास्ते श्रीनिवासः श्रिया सह ॥ ६० ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; निराशः—निराश हुआ; दुर्वासाः—दुर्वासा मुनि; पदम्—स्थान; भगवतः—भगवान् विष्णु के; ययौ—गया; वैकुण्ठ-आख्यम्—वैकुण्ठ नामक; यत्—जहाँ पर; अध्यास्ते—नित्य वास करते हैं; श्रीनिवासः—भगवान् विष्णु; श्रिया—लक्ष्मी; सह—सहित।

तत्पश्चात् शिवजी के द्वारा भी शरण न दिये जाने से निराश होकर दुर्वासा मुनि वैकुण्ठधाम गये जहाँ भगवान् नारायण अपनी प्रियतमा लक्ष्मीदेवी के साथ निवास करते हैं।

सन्दह्यमानोऽजितशस्त्रवह्निना
तत्पादमूले पतितः सवेपथुः ।
आहाच्युतानन्त सदीप्सित प्रभो

कृतागसं मावहि विश्वभावन ॥ ६१ ॥

शब्दार्थ

सन्दह्यमानः—दग्ध होकर; अजित-शस्त्र-वह्निना—भगवान् के हथियार की ज्वलित अग्नि से; तत्-पाद-मूले—उनके चरणकमलों पर; पतितः—गिरते हुए; स-वेपथुः—काँपते शरीर से; आह—कहा; अच्युत—हे अच्युत भगवान्; अनन्त—हे असीम पराक्रम वाले; सत्-ईप्सित—सन्तों द्वारा वांछित भगवान्; प्रभो—हे परमेश्वर; कृत-आगसम्—महानतम अपराधी; मा—मुझको; अवहि—शरण दो; विश्व-भावन—समस्त विश्व के हितैषी।

सुदर्शन चक्र की गर्मी से झुलसे हुए महान् योगी दुर्वासा मुनि नारायण के चरणकमलों पर गिर पड़े। काँपते शरीर से वे इस तरह बोले, ''हे अच्युत, हे अनन्त, हे समस्त ब्रह्माण्ड के रक्षक, आप सभी भक्तों के अभीष्ट हैं। हे प्रभु, मैं महान् अपराधी हूँ। कृपया मुझे संरक्षण प्रदान करें।''

अजानता ते परमानुभावं
कृतं मयाघं भवतः प्रियाणाम् ।
विधेहि तस्यापचितिं विधात-
र्मुच्येत यन्नाम्न्युदिते नारकोऽपि ॥ ६२ ॥

शब्दार्थ

अजानता—अनजाने; ते—तुम्हारी; परम-अनुभावम्—अचिन्त्य शक्ति; कृतम्—किया गया है; मया—मेरे द्वारा; अघम्—महान् अपराध; भवतः—आपके; प्रियाणाम्—भक्तों के चरणों पर; विधेहि—अब कृपा करके जो आवश्यक हो करें; तस्य—ऐसे अपराध का; अपचितिम्—प्रतिक्रिया; विधातः—हे परम नियन्ता; मुच्येत—उद्धार हो सकता है; यत्—जिसका; नाम्नि—जब नाम; उदिते—जगाया जाता है; नारकः अपि—नरक जाने योग्य व्यक्ति भी।

हे प्रभु, हे परम नियन्ता, मैंने आपकी असीम शक्ति समझे बिना आपके परम प्रिय भक्त के प्रति अपराध किया है। कृपया मुझे इस अपराध के फल से बचा लें। आप हर काम कर सकते हैं क्योंकि यदि कोई व्यक्ति नरक जाने के लायक हो, उसके भी हृदय में अपने पवित्र नाम को जगाकर आप उसका उद्धार कर सकते हैं।

श्रीभगवानुवाच
अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज ।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ॥ ६३ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; अहम्—मैं; भक्त-पराधीनः—मैं अपने भक्तों के वशीभूत हूँ; हि—निस्सन्देह; अस्वतन्त्रः—स्वतंत्र नहीं हूँ; इव—के समान; द्विज—हे ब्राह्मण; साधुभिः—शुद्ध भक्तों से, जो सारी भौतिक इच्छाओं से मुक्त हैं; ग्रस्त-हृदयः—मेरा हृदय नियंत्रण में है; भक्तैः—क्योंकि वे भक्त हैं; भक्त-जन-प्रियः—मैं न केवल अपने भक्त पर आश्रित हूँ लेकिन भक्त के भी भक्त के आश्रित हूँ (मुझे अपने भक्त का भक्त अत्यन्त प्रिय होता है)।

भगवान् ने उस ब्राह्मण से कहा : मैं पूर्णतः अपने भक्तों के वश में हूँ। निस्सन्देह, मैं तनिक भी

स्वतंत्र नहीं हूँ। चूँकि मेरे भक्त भौतिक इच्छाओं से पूर्णतः रहित होते हैं अतएव मैं उनके हृदयों में ही निवास करता हूँ। मुझे मेरे भक्त ही नहीं, मेरे भक्तों के भक्त भी अत्यन्त प्रिय हैं।

तात्पर्य : इस ब्रह्माण्ड के सारे महापुरुष, जिसमें ब्रह्माजी तथा शिवजी भी सम्मिलित हैं, पूर्णतः भगवान् के वशीभूत हैं, किन्तु भगवान् पूरी तरह अपने भक्त के वश में रहते हैं। ऐसा क्यों है? क्योंकि भक्त *अन्याभिलाषिताशून्य* होता है अर्थात् उसके हृदय में कोई अन्य इच्छा नहीं रहती। उसकी एकमात्र इच्छा सदैव भगवान् का चिन्तन करते रहने और अच्छी तरह से उनकी सेवा करते रहने की होती है। इस दिव्य गुण के कारण परमेश्वर भक्तों के अत्यन्त अनुकूल रहते हैं—न केवल भक्तों के अपितु भक्तों के भक्तों के प्रति भी अनुकूल रहते हैं। श्रील नरोत्तमदास ठाकुर कहते हैं—*छाडिया वैष्णव-सेवा निस्तार पायेछे केबा*—भक्तों के भक्त बने बिना कोई भवपाश से छूट नहीं सकता। इसलिए श्रीचैतन्य महाप्रभु ने अपने आपको *गोपीभर्तुः पदकमलयोर्दासानुदासः* कहा। इस तरह उन्होंने हमें उपदेश दियाहै कि हम सीधे कृष्ण के दास न बनें अपितु कृष्ण के दास के दास बनें। ब्रह्मा, नारद, व्यासदेव तथा शुकदेव गोस्वामी जैसे भक्तगण कृष्ण के सीधे दास हैं और जो व्यक्ति नारद, व्यासदेव तथा शुकदेव का दास बनता है जिस तरह कि षड्गोस्वामी थे, वह और भी बड़ा भक्त है। इसलिए श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं—*यस्य प्रसादाद् भगवत्प्रसादः*—जो व्यक्ति निष्ठापूर्वक गुरु की सेवा करता है उस भक्त के प्रति कृष्ण निश्चय ही, अनुकूल रहते हैं। भगवान् के आदेशों का सीधा पालन करने की अपेक्षा भक्त के आदेशों का पालन करना अधिक मूल्यवान होता है।

नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना ।
श्रियं चात्यन्तिकीं ब्रह्मन्येषां गतिरहं परा ॥ ६४॥

शब्दार्थ

न—नहीं; अहम्—मैं; आत्मानम्—दिव्य आनन्द; आशासे—चाहता हूँ; मत्-भक्तैः—मेरे भक्तों के साथ; साधुभिः—साधुपुरुषों के साथ; विना—उनके बिना; श्रियम्—मेरे छहो ऐश्वर्य; च—भी; आत्यन्तिकीम्—परम; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; येषाम्—जिसका; गतिः—लक्ष्य; अहम्—मैं; परा—परम, चरम।

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ, मैं उन साधुपुरुषों के बिना अपना दिव्य आनन्द तथा अपने परम ऐश्वर्यों का भोग नहीं करना चाहता जिनके लिए मैं ही एकमात्र गन्तव्य हूँ।

तात्पर्य : भगवान् आत्मनिर्भर हैं लेकिन अपने दिव्य आनन्द का भोग करने के लिए उन्हें अपने भक्तों

के सहयोग की आवश्यकता पड़ती है। उदाहरणार्थ, यद्यपि वृन्दावन में भगवान् कृष्ण स्वयं में पूर्ण हैं, किन्तु वे अपने दिव्य आनन्द को वर्धित करने के लिए अपने भक्त ग्वालों तथा गोपियों का सहयोग चाहते हैं। ऐसे शुद्ध भक्त जो भगवान् की ह्लादिनी शक्ति को बढ़ाने वाले हैं, भगवान् को अत्यन्त प्रिय हैं। भगवान् न केवल अपने भक्तों की संगति का आनन्द लेते हैं अपितु अनन्त होने के कारण वे अपने भक्तों की संख्या को भी असीमित बनाना चाहते हैं। इस तरह वे अभक्तों तथा विद्रोही जीवों को भगवद्धाम वापस जाने के लिए प्रेरित करने हेतु इस भौतिक जगत में अवतरित होते हैं और उन्हें प्रोत्साहित करते हैं कि उनकी शरण में जाया जाय क्योंकि अनन्त होने के कारण वे अपने भक्तों की संख्या को असीम बनाना चाहते हैं। कृष्णभावनामृत आन्दोलन भगवान् के शुद्धभक्तों की संख्या को अधिकाधिक बढ़ाने का प्रयास है। यह निश्चित है कि जो भक्त भगवान् को संतुष्ट करने के इस प्रयास को पूरा करने में सहायक होता है वह अप्रत्यक्ष रूप से भगवान् का नियंत्रक बन जाता है। यद्यपि भगवान् षड्ऐश्वर्य से पूर्ण हैं, किन्तु अपने भक्तों के बिना उन्हें दिव्य आनन्द प्राप्त नहीं होता। इस सन्दर्भ में यह उदाहरण दिया जा सकता है कि यदि किसी धनी पुरुष के परिवार में पुत्र नहीं होता तो वह अपने को सुखी अनुभव नहीं करता। इसीलिए अपने इस सुख की पूर्ति के लिए वह कभी-कभी दत्तक पुत्र बनाता है। शुद्ध भक्त को दिव्य आनन्द का विज्ञान ज्ञात है अतएव वह भगवान् के दिव्य सुख को बढ़ाने में सदा लगा रहता है।

ये दारागारपुत्राप्तप्राणान्वित्तमिमं परम् ।
हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे ॥ ६५ ॥

शब्दार्थ

ये—जो भक्त; **दार**—पत्नी; **अगार**—घर; **पुत्र**—लड़के, बच्चे; **आप्त**—सम्बन्धी समाज; **प्राणान्**—यहाँ तक कि प्राण भी; **वित्तम्**—सम्पत्ति; **इमम्**—ये सब; **परम्**—स्वर्गलोक को जाना या ब्रह्म से एकाकार होना; **हित्वा**—त्यागकर (ये सब आकांक्षाएँ और सम्पत्ति); **माम्**—मुझको (मेरी); **शरणम्**—शरण में; **याताः**—ग्रहण करके; **कथम्**—कैसे; **तान्**—ऐसे पुरुषों को; **त्यक्तुम्**—त्यागने के लिए; **उत्सहे**—मैं किस तरह उत्साहित हो सकता हूँ (जो सम्भव नहीं है)।

चूँकि शुद्ध भक्तगण इस जीवन में या अगले जीवन में किसी भौतिक उन्नति की इच्छा से रहित होकर अपने घर, पत्नियों, बच्चों, सम्बन्धियों, धन और यहाँ तक कि अपने जीवन का भी परित्याग, मात्र मेरी सेवा करने के लिए, करते हैं तो मैं ऐसे भक्तों को कभी भी किस तरह छोड़ सकता हूँ ?

तात्पर्य : भगवान् की पूजा *ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मण हिताय च* शब्दों से की जाती है। इस तरह वे

ब्राह्मणों के हितैषी हैं। दुर्वासा मुनि निस्सन्देह, महान् ब्राह्मण थे, किन्तु अभक्त होने के कारण वे भक्ति के लिए सर्वस्व अर्पित नहीं कर सकते थे। वस्तुतः महान् योगीजन स्वार्थी होते हैं। इसका प्रमाण यह है कि जब दुर्वासा मुनि ने महाराज अम्बरीष को मारने के लिए असुर उत्पन्न किया तो राजा भगवान् की प्रार्थना करते हुए और उन्हीं पर पूर्णतः आश्रित रहते हुए अपने स्थान पर खड़े रहे, किन्तु जब भगवान् की इच्छानुसार सुदर्शनचक्र ने दुर्वासा मुनि का पीछा करना शुरू किया तो वे इतने व्याकुल हो उठे कि सारे विश्व के कोने-कोने में शरण पाने के लिए भागते फिरे। अन्ततः प्राणों के भय से वे ब्रह्माजी, शिवजी तथा अन्त में भगवान् के पास गये। उन्हें अपने शरीर से इतना मोह था कि वे एक वैष्णव के शरीर का विनाश करना चाह रहे थे। इसलिए उनकी बुद्धि ठीक नहीं थी और ऐसा बुद्धिहीन व्यक्ति भला किस तरह भगवान् द्वारा उबारा जा सकता है? भगवान् उन भक्तों को निश्चित रूप से संरक्षण प्रदान करते हैं जो उनकी सेवा करने के लिए अपना सर्वस्व त्याग देते हैं।

इस श्लोक में दूसरी बात यह कही गई है कि *दारागार पुत्राप्त* अर्थात् घर, पत्नी, सन्तान, मैत्री, समाज तथा प्रेम के प्रति अनुरक्ति होने से भगवान् की कृपा नहीं प्राप्त की जा सकती। जो व्यक्ति भौतिक सुख के लिए चूल्हा-चक्की से लिप्त रहना चाहता है वह शुद्धभक्त नहीं हो सकता। कभी-कभी शुद्ध भक्त में भी पत्नी, सन्तान तथा घर के लिए आकर्षण हो सकता है, किन्तु यदि उसी के साथ वह अपनी शक्तिभर भगवान् की सेवा करना चाहता है तो भगवान् ऐसे भक्त के लिए विशेष प्रबन्ध करते हैं—वे उसकी झूठी आसक्ति की वस्तुओं को छीन लेते हैं और इस तरह उसे उसकी पत्नी, घर, बच्चे, मित्र इत्यादि की आसक्ति से मुक्त कर देते हैं। भक्त को अपने धाम वापस बुलाने के लिए उन पर यह विशेष कृपा है।

मयि निर्बद्धहृदयाः साधवः समदर्शनाः ।
वशे कुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा ॥ ६६ ॥

शब्दार्थ

मयि—मुझको; निर्बद्ध-हृदयाः—हृदय में दृढ़ता से संयुक्त; साधवः—शुद्ध भक्तगण; सम-दर्शनाः—समदर्शी; वशे—नियंत्रण में; कुर्वन्ति—कर लेते हैं; माम्—मुझको; भक्त्या—भक्ति से; सत्-स्त्रियः—सती स्त्रियाँ; सत्-पतिम्—अपने सदाचारी पति को; यथा—जिस तरह।

जिस तरह सती स्त्रियाँ अपने भद्र पतियों को अपनी सेवा से अपने वश में कर लेती हैं उसी प्रकार से समदर्शी एवं हृदय से मुझमें अनुरक्त शुद्ध भक्तगण मुझको पूरी तरह अपने वश में कर लेते हैं।

तात्पर्य : इस श्लोक का *समदर्शना:* शब्द महत्त्वपूर्ण है। शुद्ध भक्त वास्तव में सब के प्रति समभाव रखता है, जैसी कि *भगवद्गीता* (१८.५४) में पुष्टि की गई है—*ब्रह्मभूत: प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति। सम: सर्वेषुभूतेषु*। शुद्ध भक्त होने पर ही विश्वबन्धुत्व सम्भव है (*पण्डिता: समदर्शिन:*)। शुद्ध भक्त विद्वान होता है क्योंकि वह अपनी स्वाभाविक स्थिति को जानता है, भगवान् की स्थिति को जानता है और जीव तथा भगवान् के पारस्परिक सम्बन्ध को जानता है। इस तरह उसे पूर्ण आध्यात्मिक ज्ञान रहता है और वह स्वत: मुक्त हो जाता है (*ब्रह्मभूत:*)। इसलिए वह हर व्यक्ति को आध्यात्मिक स्तर पर देख सकता है। वह सारे जीवों के सुख तथा दुख को समझ सकता है। वह समझता है कि जो उसके लिए सुख है वही दूसरों के लिए सुख है और जो उसके लिए दुख है वही दूसरों के लिए दुख है। इस तरह वह हरएक के प्रति कारुणिक होता है। जैसा कि प्रह्लाद महाराज ने कहा है—

शोचे ततो विमुखचेतस इन्द्रियार्थ-

मायासुखाय भरमुद्वहतो विमूढान्

(*भागवत* ७.९.४३)

लोगों को सांसारिक दुख इसलिए मिलते हैं क्योंकि वे भगवान् के प्रति अनुरक्त नहीं होते। इसलिए शुद्ध भक्त का मुख्य कार्य है कि वह अज्ञानी जनता को कृष्णभावनामृत का बोध कराये।

मत्सेवया प्रतीतं ते सालोक्यादिचतुष्टयम् ।
नेच्छन्ति सेवया पूर्णा: कुतोऽन्यत्कालविप्लुतम् ॥ ६७॥

शब्दार्थ

मत्-सेवया—मेरी प्रेमाभक्ति में पूर्णरूपेण संलग्न रहने से; प्रतीतम्—स्वत: प्राप्त; ते—ऐसे भक्त पूर्णतया तुष्ट होते हैं; सालोक्य-आदि-चतुष्टयम्—चार प्रकार के मोक्ष (सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य तथा सार्ष्टि, सायुज्य का तो कहना ही क्या); न—नहीं; इच्छन्ति—इच्छा करते हैं; सेवया—केवल भक्ति से; पूर्णा:—पूर्ण; कुत:—कोई प्रश्न ही नहीं है; अन्यत्—अन्य वस्तुएँ; काल-विप्लुतम्—कालक्रम से विनष्ट होने वाली।

मेरे जो भक्त मेरी प्रेमाभक्ति में लगे रहकर सदैव सन्तुष्ट रहते हैं वे मोक्ष के चार सिद्धान्तों (सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य तथा सार्ष्टि) में भी तनिक रुचि नहीं रखते यद्यपि उनकी सेवा से ये उन्हें स्वत: प्राप्त हो जाते हैं। तो फिर स्वर्गलोक जाने के नश्वर सुख के विषय में क्या कहा जाए?

तात्पर्य : श्रील बिल्वमंगल ठाकुर ने मोक्ष का मूल्यांकन इस प्रकार किया है—

मुक्तिः स्वयं मुकुलिताञ्जलिः सेवतेऽस्मान् धर्मार्थकामगतयः समयप्रतीक्षाः

उन्हें अनुभव हुआ कि यदि कोई भगवान् के प्रति अपनी सहज भक्ति विकसित कर लेता है तो मुक्ति उसकी पूर्णरूपेण सेवा करने के लिए हाथ जोड़े खड़ी रहती है। दूसरे शब्दों में, भक्त पहले से मुक्त रहता है। उसे भिन्न प्रकार की मुक्ति पाने के लिए आकांक्षा करना व्यर्थ है। शुद्ध भक्त को बिना चाहे ही स्वतः मुक्ति प्राप्त होती है।

साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम् ।
मदन्यत्ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि ॥ ६८ ॥

शब्दार्थ

साधवः—शुद्ध भक्तगण; हृदयम्—हृदय में; मह्यम्—मेरे; साधूनाम्—शुद्ध भक्तों के भी; हृदयम्—हृदयों में; तु—निस्सन्देह; अहम्—मैं हूँ; मत्-अन्यत्—मेरे अतिरिक्त अन्य कुछ; ते—वे; न—नहीं; जानन्ति—जानते हैं; न—नहीं; अहम्—मैं; तेभ्यः—उनकी अपेक्षा; मनाक् अपि—एक अंश भी।

शुद्ध भक्त सदैव मेरे हृदय में रहता है और मैं शुद्ध भक्त के हृदय में सदैव रहता हूँ। मेरे भक्त मेरे सिवाय और कुछ नहीं जानते और मैं उनके अतिरिक्त और किसी को नहीं जानता।

तात्पर्य : चूँकि दुर्वासा मुनि महाराज अम्बरीष को प्रताड़ित करना चाहते थे, इसका अर्थ यह हुआ कि वे भगवान् के दिल को दुखाना चाहते थे क्योंकि भगवान् का वचन है—*साधवो हृदयं मह्यम्*—शुद्ध भक्त सदैव मेरे हृदय में रहता है। भगवान् की भावनाएँ उस पिता के समान होती हैं जो अपने बच्चे को पीड़ा में देखकर पीड़ा का अनुभव करता है। अतएव भक्त के चरणकमलों पर किये गये अपराध गम्भीर होते हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभु ने जोरदार शब्दों में संस्तुति की है कि किसी को भक्त के चरणकमलों पर अपराध नहीं करना चाहिए। ऐसे अपराधों की तुलना उस मतवाले हाथी से की जा सकती है जो बगीचे में घुसकर उत्पात मचा देता है। अतएव शुद्ध भक्त के चरणकमलों पर अपराध न करने के लिए अत्यधिक सतर्क रहना चाहिए। वस्तुतः महाराज अम्बरीष का तनिक भी दोष न था; दुर्वासा मुनि उन्हें व्यर्थ ही प्रताड़ित करना चाहते थे। महाराज अम्बरीष ने भगवान् को प्रसन्न करने के लिए भक्ति का अंगस्वरूप एकादशी पारण पूरा करना चाहा, अतएव उन्होंने थोड़ा सा जल पी लिया। यद्यपि दुर्वासा मुनि महान् योगी ब्राह्मण थे, किन्तु वे यह नहीं जानते थे कि यह सब क्या है। एक शुद्ध भक्त तथा वैदिक ज्ञान के तथाकथित पंडित में यही अन्तर होता है। भक्तगण सदैव भगवान् के हृदय में स्थित होने के कारण सीधे भगवान् से सारे आदेश प्राप्त करते

हैं जैसा कि *भगवद्गीता* (१०.११) में स्वयं भगवान् पुष्टि करते हैं—

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।

नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता॥

"मैं उनके हृदयों में वास करते हुए उन पर दया करने के कारण अज्ञानजन्य अंधकार को ज्ञान के दीपक से नष्ट करता हूँ।" भक्त ऐसा कोई कार्य नहीं करता जिसकी अनुमति भगवान् नहीं देते। जैसा कि कहा गया है—*वैष्णवेर क्रियामुद्रा विज्ञेह ना बुझय।* यहाँ तक कि अत्यन्त विद्वान या अनुभवी व्यक्ति भी वैष्णव या शुद्ध भक्त की गतिविधियों को नहीं जान सकता। अतएव किसी को शुद्ध वैष्णव की आलोचना नहीं करनी चाहिए। वैष्णव अपने कार्य को सही ढंग से जानता है और वह जो कुछ करता है वह सही होता है क्योंकि वह सदैव भगवान् से मार्गदर्शन प्राप्त करता है।

उपायं कथयिष्यामि तव विप्र शृणुष्व तत् ।
अयं ह्यात्माभिचारस्ते यतस्तं याहि मा चिरम् ।
साधुषु प्रहितं तेजः प्रहर्तुः कुरुतेऽशिवम् ॥ ६९ ॥

शब्दार्थ

उपायम्—इस भयावह स्थिति से बचने का उपाय; कथयिष्यामि—तुम्हें बतलाऊँगा; तव—इस संकट से तुम्हारे उद्धार का; विप्र—हे ब्राह्मण; शृणुष्व—मुझसे सुनो; तत्—जो मैं कहूँ; अयम्—तुम्हारे द्वारा की गई कार्यवाही; हि—निस्सन्देह; आत्म-अभिचारः—स्वयं से ईर्ष्या (तुम्हारा मन ही तुम्हारा शत्रु बन गया है); ते—तुम्हारे लिए; यतः—जिसके कारण; तम्—उसको (अम्बरीष महाराज को); याहि—तुरन्त जाओ; मा चिरम्—एक क्षण भी देरी न करो; साधुषु—भक्तों को; प्रहितम्—प्रयुक्त; तेजः—शक्ति; प्रहर्तुः—कर्ता का; कुरुते—करता है; अशिवम्—अमंगल।

हे ब्राह्मण, अब मैं तुम्हारी रक्षा के लिए उपदेश देता हूँ। मुझसे सुनो। तुमने महाराज अम्बरीष का अपमान करके आत्म-द्वेष से कार्य किया है। अतएव तुम एक क्षण की भी देरी किये बिना तुरन्त उनके पास जाओ। जो व्यक्ति अपनी तथाकथित शक्ति का प्रयोग भक्त पर करता है उसकी वह शक्ति प्रयोक्ता को ही हानि पहुँचाती है। इस प्रकार कर्ता (विषयी) को हानि पहुँचती है विषय को नहीं।

तात्पर्य : वैष्णव सदा से अभक्तों की ईर्ष्या का विषय बनता रहा है चाहे वह अभक्त उसका पिता ही क्यों न हो। उदाहरणार्थ, हिरण्यकशिपु अपने पुत्र प्रह्लाद महाराज से ईर्ष्या करता था लेकिन यह ईर्ष्या प्रह्लाद के लिए नहीं अपितु हिरण्यकशिपु के लिए घातक सिद्ध हुई। हिरण्यकशिपु ने अपने पुत्र के विरुद्ध जितनी भी कार्यवाहियाँ कीं, उन्हें भगवान् गम्भीरतापूर्वक देखते रहे और जब हिरण्यकशिपु प्रह्लाद को मारने ही

वाला था तो भगवान् साक्षात् प्रकट हुए और हिरण्यकशिपु को मार डाला। वैष्णव के प्रति की गई सेवा धीरे-धीरे संचित होती रहती है और भक्त के लिए वही सम्पत्ति बन जाती है। इसी प्रकार भक्त के विरुद्ध किये गये हानिप्रद कार्यकलाप धीरे-धीरे कर्ता के पतन के कारण बनते हैं। दुर्वासा जैसा महान् ब्राह्मण एवं योगी भी घोर संकट में था क्योंकि उसने शुद्ध भक्त महाराज अम्बरीष के चरणकमलों पर अपराध किया था।

तपो विद्या च विप्राणां निःश्रेयसकरे उभे ।
ते एव दुर्विनीतस्य कल्पेते कर्तुरन्यथा ॥ ७० ॥

शब्दार्थ

तपः—तपस्या; **विद्या**—ज्ञान; **च**—भी; **विप्राणाम्**—ब्राह्मणों की; **निःश्रेयस**—उन्नति के लिए अत्यन्त शुभ है जो उसका; **करे**—कारण हैं; **उभे**—दोनों; **ते**—ऐसी तपस्या तथा विद्या; **एव**—निस्सन्देह; **दुर्विनीतस्य**—उद्धत व्यक्ति का; **कल्पेते**—हो जाते हैं; **कर्तुः**—कर्ता का; **अन्यथा**—विपरीत।

ब्राह्मण के लिए तपस्या तथा विद्या निश्चय ही कल्याणप्रद हैं, किन्तु जब तपस्या तथा विद्या ऐसे व्यक्ति के पास होती हैं जो विनीत नहीं है तो वे अत्यन्त घातक होती हैं।

तात्पर्य : कहा जाता है कि मणि अत्यन्त मूल्यवान होता है, किन्तु जब वह साँप के फण में होता है तो मूल्यवान होते हुए भी घातक होता है। इसी प्रकार जब भौतिकतावादी अभक्त विद्या तथा तपस्या में महान् सफलता प्राप्त कर लेता है तो वह सारे समाज के लिए घातक बन जाता है। उदाहरणार्थ, तथाकथित विद्वान वैज्ञानिकों ने परमाणु हथियारों का आविष्कार किया है जो सारी मानवता के लिए घातक है। अतएव कहा जाता है—*मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयङ्करः ।* मणिधारी सर्प मणिविहीन सर्प की ही तरह घातक होता है। दुर्वासा मुनि अत्यन्त विद्वान ब्राह्मण थे जिनके पास योगशक्ति थी, किन्तु भद्रपुरुष न होने के कारण उन्हें अपनी शक्ति का प्रयोग करना नहीं आता था। अतः वे अत्यन्त घातक थे। भगवान् कभी भी ऐसे घातक व्यक्ति की ओर प्रवृत्त नहीं होते जो किसी निजी कार्य के लिए अपनी योगशक्ति का प्रयोग करता है। अतः प्रकृति के नियमानुसार शक्ति का दुरुपयोग अन्ततः न केवल समाज के लिए घातक बनता है अपितु शक्ति का दुरुपयोग करने वाले व्यक्ति के लिए भी।

ब्रह्मंस्तद्गच्छ भद्रं ते नाभागतनयं नृपम् ।
क्षमापय महाभागं ततः शान्तिर्भविष्यति ॥ ७१ ॥

शब्दार्थ

ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; **तत्**—अतएव; **गच्छ**—जाओ; **भद्रम्**—कल्याण हो; **ते**—तुम्हारा; **नाभाग-तनयम्**—महाराज नाभाग के पुत्र; **नृपम्**—राजा (अम्बरीष) को; **क्षमापय**—उसे जाकर शान्त करने का यत्न करो; **महा-भागम्**—महापुरुष, शुद्ध भक्त; **ततः**—तत्पश्चात्; **शान्तिः**—शान्ति; **भविष्यति**—हो जायेगी।

अतएव हे ब्राह्मणश्रेष्ठ, तुम तुरन्त महाराज नाभाग के पुत्र राजा अम्बरीष के पास जाओ। मैं तुम्हारे कल्याण की कामना करता हूँ। यदि तुम महाराज अम्बरीष को प्रसन्न कर सके तो तुम्हें शान्ति मिल जायेगी।

तात्पर्य : इस प्रसंग मे मध्व मुनि ने *गरुड़ पुराण* से निम्नलिखित उद्धरण दिया है—

ब्रह्मादिभक्तिकोट्यंशाद् अंशो नैवाम्बरीषके।

नैवन्यस्य चक्रस्यापि तथापि हरिरीश्वरः॥

तात्कालिकोपचेयत्वात् तेषां यशस आदिराट्।

ब्रह्मादयश्च तत्कीर्तिं व्यञ्जयाम् आसुरुत्तमाम्॥

मोहनाय च दैत्यानां ब्रह्मादे निन्दनाय च।

अन्यार्थं च स्वयं विष्णुर्ब्रह्माद्याश्च निराशिषः॥

मानुषेषूत्तमात्वाच्च तेषां भक्त्यादिभिर्गुणै।

ब्रह्मादेर्विष्ण्वधीनत्वज्ञापनाय च केवलम्॥

दुर्वासाश्च स्वयं रुद्रस्तथाप्यन्यायामुक्तवान्।

तस्याप्यनुग्रहार्थाय दर्पनाशार्थमेव च॥

महाराज अम्बरीष तथा दुर्वासा मुनि विषयक इस कथा से यह शिक्षा ग्रहण की जा सकती है कि ब्रह्माजी तथा शिवजी समेत सारे देवता भगवान् विष्णु के अधीन हैं। अतएव जब किसी वैष्णव का अपमान होता है तो भगवान् विष्णु उस अपमानकर्ता को दण्ड देते हैं। ऐसे व्यक्ति को कोई भी बचा नहीं पाता, यहाँ तक कि ब्रह्माजी या शिवजी भी नहीं।

इस प्रकार *श्रीमद्भागवत* के नवम स्कन्ध के अन्तर्गत ''दुर्वासा मुनि द्वारा अम्बरीष महाराज का अपमान'' नामक चौथे अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter पाँच

दुर्वासा मुनि को जीवन-दान

इस अध्याय में महाराज अम्बरीष सुदर्शन चक्र की स्तुति करते हैं और हम देखते हैं कि किस तरह सुदर्शन चक्र दुर्वासा मुनि पर कृपालु हो उठा।

भगवान् विष्णु के आदेश से दुर्वासा मुनि अविलम्ब महाराज अम्बरीष के पास जाकर उनके चरणकमलों पर गिर पड़े। स्वभाव से अत्यन्त विनम्र होने के कारण महाराज अम्बरीष लज्जित हुए क्योंकि दुर्वासा मुनि उनके चरणों पर गिर पड़े थे, अतएव दुर्वासा को बचाने के लिए उन्होंने सुदर्शन चक्र की स्तुति करनी प्रारम्भ की। यह सुदर्शन चक्र क्या है? यह भगवान् की दृष्टि है जिससे वे सारे भौतिक जगत की सृष्टि करते हैं। *स ऐक्षत स असृजत।* यह वेदवाक्य है। यह सुदर्शन चक्र सृष्टि का उत्स है और भगवान् को अत्यन्त प्रिय है। इसमें एक हजार अरे हैं। यह अन्य सारे हथियारों के पराक्रम को ध्वंस करने वाला, अंधकार का नाशक तथा भक्ति-बल को प्रकट करने वाला है। यह धर्म-स्थापना का साधन है और अधर्मों का विनाशक है। इसकी कृपा के बिना ब्रह्माण्ड स्थित नहीं रह सकता अतएव भगवान् इस चक्र को उपयोग में लाते हैं। जब महाराज अम्बरीष ने स्तुति की कि सुदर्शन चक्र कृपालु हो तो सुदर्शन चक्र शांत होकर दुर्वासा मुनि को मारने से विरत हुआ। इस तरह दुर्वासा को सुदर्शन चक्र की कृपा प्राप्त हो गई। फलस्वरूप दुर्वासा मुनि ने वैष्णव को सामान्य व्यक्ति समझने के अपने घृणित विचार को त्याग दिया (*वैष्णवे जातिबुद्धि*)। महाराज अम्बरीष क्षत्रिय जाति के थे अतएव दुर्वासा मुनि उन्हें ब्राह्मणों से निम्न मानते थे और इसीलिए उन पर ब्राह्मण शक्ति का प्रयोग करना चाहते थे। इस घटना से हर एक को यह सीख लेना चाहिए कि वैष्णवों की उपेक्षा का गर्हित विचार किस तरह त्याग देना चाहिए। इस घटना के बाद महाराज अम्बरीष ने दुर्वासा मुनि को अच्छा भोजन खिलाया और राजा ने भी, जो उस स्थान पर एक वर्ष से बिना कुछ खाये खड़े थे, प्रसाद ग्रहण किया। कालान्तर में महाराज अम्बरीष ने अपनी सम्पत्ति अपने पुत्रों में बाँट दी और वे भक्तिपूर्वक ध्यान करने के लिए मानस सरोवर के तट पर चले गये।

श्रीशुक उवाच

एवं भगवतादिष्टो दुर्वासाश्चक्रतापित: ।
अम्बरीषमुपावृत्य तत्पादौ दु:खितोऽग्रहीत् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुक: उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस तरह से; भगवता आदिष्ट:—भगवान् द्वारा आदेशित होकर; दुर्वासा:—दुर्वासा; चक्र-तापित:—सुदर्शन चक्र के द्वारा अत्यन्त सताया जाकर; अम्बरीषम्—महाराज अम्बरीष के; उपावृत्य—पास पहुँचकर; तत्-पादौ—उसके चरणकमलों को; दु:खित:—अत्यन्त दुखी होकर; अग्रहीत्—पकड़ लिया।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : जब भगवान् विष्णु ने दुर्वासा मुनि को इस प्रकार सलाह दी तो सुदर्शन चक्र से अत्यधिक उत्पीड़ित मुनि तुरन्त ही महाराज अम्बरीष के पास पहुँचे। उन्होंने अत्यन्त दुखित होने के कारण राजा के चरणकमलों पर गिरकर उन्हें पकड़ लिया।

तस्य सोद्यममावीक्ष्य पादस्पर्शविलज्जित: ।
अस्तावीत्तद्धरेरस्त्रं कृपया पीडितो भृशम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

तस्य—दुर्वासा का; स:—महाराज अम्बरीष ने; उद्यमम्—प्रयत्न; आवीक्ष्य—देखकर; पाद-स्पर्श-विलज्जित:—दुर्वासा द्वारा अपने चरणकमल छुए जाने से लज्जित; अस्तावीत्—स्तुति की; तत्—उस; हरे: अस्त्रम्—भगवान् के अस्त्र की; कृपया—कृपापूर्वक; पीडित:—दुखित; भृशम्—अत्यधिक।

जब दुर्वासा मुनि ने महाराज अम्बरीष के पाँव छुए तो वे अत्यन्त लज्जित हो उठे और जब उन्होंने यह देखा कि दुर्वासा उनकी स्तुति करने का प्रयास कर रहे हैं तो वे दयावश और भी अधिक संतप्त हो उठे। अत: उन्होंने तुरन्त ही भगवान् के महान् अस्त्र की स्तुति करनी प्रारम्भ कर दी।

अम्बरीष उवाच
त्वमग्निर्भगवान्सूर्यस्त्वं सोमो ज्योतिषां पति: ।
त्वमापस्त्वं क्षितिर्व्योम वायुर्मात्रेन्द्रियाणि च ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

अम्बरीष: उवाच—महाराज अम्बरीष ने कहा; त्वम्—तुम (हो); अग्नि:—अग्नि; भगवान्—अत्यन्त शक्तिशाली; सूर्य:—सूर्य; त्वम्—तुम (हो); सोम:—चन्द्रमा; ज्योतिषाम्—सारे नक्षत्रों के; पति:—स्वामी; त्वम्—तुम (हो); आप:—जल; त्वम्—तुम (हो); क्षिति:—पृथ्वी; व्योम—आकाश; वायु:—वायु; मात्र—इन्द्रियों के विषय, तन्मात्रा; इन्द्रियाणि—तथा इन्द्रियाँ; च—भी।

महाराज अम्बरीष ने कहा : हे सुदर्शन चक्र, तुम अग्नि हो, तुम परम शक्तिमान सूर्य हो तथा तुम सारे नक्षत्रों के स्वामी चन्द्रमा हो। तुम जल, पृथ्वी तथा आकाश हो, तुम पाँचों इन्द्रियविषय (ध्वनि, स्पर्श, रूप, स्वाद तथा गंध) हो और तुम्हीं इन्द्रियाँ भी हो।

सुदर्शन नमस्तुभ्यं सहस्त्राराच्युतप्रिय ।
सर्वास्त्रघातिन्विप्राय स्वस्ति भूया इडस्पते ॥ ४॥

शब्दार्थ

सुदर्शन—हे भगवान् की मूल ज्योति; नमः—नमस्कार; तुभ्यम्—तुमको; सहस्त्र-अर—हे हजार अरों वाले; अच्युत-प्रिय—भगवान् अच्युत के अत्यन्त प्रिय; सर्व-अस्त्र-घातिन्—हे सभी अस्त्रों को नष्ट करने वाले; विप्राय—इस ब्राह्मण को; स्वस्ति—अत्यन्त शुभ; भूयाः—हो जाओ; इडस्पते—हे संसार के स्वामी।

हे भगवान् अच्युत के परम प्रिय, तुम एक हजार अरों वाले हो। हे संसार के स्वामी, समस्त अस्त्रों के विनाशकर्ता, भगवान् की आदि दृष्टि, मैं तुमको सादर नमस्कार करता हूँ। कृपा करके इस ब्राह्मण को शरण दो तथा इसका कल्याण करो।

त्वं धर्मस्त्वमृतं सत्यं त्वं यज्ञोऽखिलयज्ञभुक् ।
त्वं लोकपालः सर्वात्मा त्वं तेजः पौरुषं परम् ॥ ५॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम; धर्मः—धर्म; त्वम्—तुम; ऋतम्—प्रेरणाप्रद कथन; सत्यम्—चरम सत्य; त्वम्—तुम; यज्ञः—यज्ञ; अखिल—सारे विश्व का; यज्ञ-भुक्—यज्ञ से उत्पन्न फलों का भोक्ता; त्वम्—तुम; लोक-पालः—विभिन्न लोकों के पालनकर्ता; सर्व-आत्मा—सर्वव्यापी; त्वम्—तुम; तेजः—तेज; पौरुषम्—भगवान् का; परम्—दिव्य।

हे सुदर्शन चक्र, तुम धर्म हो, तुम सत्य हो, तुम प्रेरणाप्रद कथन हो, तुम यज्ञ हो तथा तुम्हीं यज्ञ-फल के भोक्ता हो। तुम अखिल ब्रह्माण्ड के पालनकर्ता हो और तुम्हीं भगवान् के हाथों में परम दिव्य तेज हो। तुम भगवान् की मूल दृष्टि हो; अतएव तुम सुदर्शन कहलाते हो। सभी वस्तुएँ तुम्हारे कार्यकलापों से उत्पन्न की हुई हैं, अतएव तुम सर्वव्यापी हो।

तात्पर्य : *सुदर्शन* शब्द का अर्थ है ''शुभ दृष्टि।'' वैदिक आदेशों से पता चलता है कि यह संसार भगवान् की चितवन से उत्पन्न हुआ (*स ऐक्षत स असृजत*)। भगवान् ने महत्-तत्त्व पर दृष्टि डाली और जब वह विक्षुब्ध हुआ तो सारी वस्तुएँ उत्पन्न हो गईं। कभी-कभी पाश्चात्य दार्शनिक सोचते हैं कि सृष्टि का मूल कारण पिंड का विस्फोट था। यदि कोई इस पिंड को सम्पूर्ण भौतिक शक्ति या महत्-तत्त्व माने तो वह समझ सकता है कि यह पिंड भगवान् की चितवन से विक्षुब्ध हुआ और इस तरह भगवान् की चितवन ही इस सृष्टि का मूल कारण है।

नमः सुनाभाखिलधर्मसेतवे
ह्यधर्मशीलासुरधूमकेतवे ।

त्रैलोक्यगोपाय विशुद्धवर्चसे
मनोजवायाद्भुतकर्मणे गृणे ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

नमः—आपको सादर नमस्कार है; सु-नाभ—हे शुभ नाभि वाले; अखिल-धर्म-सेतवे—जिसके अरे समस्त ब्रह्माण्ड के सेतु समान हैं; हि—निस्सन्देह; अधर्म-शील—अधार्मिक; असुर—असुरों के लिए; धूम-केतवे—जो अग्नि या अशुभ पुच्छल तारे के समान हैं, उनको; त्रैलोक्य—तीनों संसारों के; गोपाय—पालक को; विशुद्ध—दिव्य; वर्चसे—जिसका तेज; मनः-जवाय—मन के समान गति वाला; अद्भुत—विचित्र; कर्मणे—इतना सक्रिय; गृणे—मैं बोलता हूँ।.

हे सुदर्शन, तुम्हारी नाभि अत्यन्त शुभ है, अतएव तुम धर्म की रक्षा करने वाले हो। तुम अधार्मिक असुरों के लिए अशुभ पुच्छल तारे के समान हो। निस्सन्देह, तुम्हीं तीनों लोकों के पालक हो। तुम दिव्य तेज से पूर्ण हो, तुम मन के समान तीव्रगामी हो और अद्‌भुत कर्म करने वाले हो। मैं केवल नमः शब्द कहकर तुम्हें सादर नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : भगवान् का चक्र सुदर्शन कहलाता है क्योंकि यह उच्च तथा निम्न अपराधियों या असुरों में भेदभाव नहीं करता। दुर्वासा मुनि निश्चय ही शक्तिशाली ब्राह्मण थे, किन्तु उनके कार्यकलाप शुद्ध भक्त अम्बरीष महाराज के प्रति असुरों जैसे थे। शास्त्रों का वचन है—*धर्मं तु साक्षाद् भगवत्प्रणीतम्*—धर्म शब्द का अर्थ है भगवान् द्वारा दिये गये आदेश या नियम। *सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज*—असली धर्म तो भगवान् की शरण ग्रहण करना है। अतएव असली धर्म का अर्थ है भगवान् की भक्ति। इसीलिए सुदर्शन चक्र को यहाँ *धर्मसेतवे* अर्थात् धर्म का रक्षक कहा गया है। महाराज अम्बरीष सचमुच धार्मिक व्यक्ति थे अतएव उनकी रक्षा करने के लिए सुदर्शन चक्र दुर्वासा मुनि जैसे कठोर ब्राह्मण को भी दण्ड देने को उद्यत था क्योंकि उन्होंने असुर जैसा कर्म किया था। ब्राह्मणों के रूप में भी असुर मिलते हैं। अतएव सुदर्शन चक्र ब्राह्मण असुर तथा शूद्र असुर में भेद नहीं बरतता। जो कोई भी भगवान् तथा उनके भक्तों के विरुद्ध होता है वह असुर कहलाता है। शास्त्रों में ऐसे अनेक ब्राह्मण तथा क्षत्रिय असुरों की तरह कर्म करते पाये गए हैं अतएव उनका वर्णन असुरों की भाँति हुआ है। शास्त्रों के निर्णय के अनुसार किसी की पहचान उसके लक्षणों के अनुसार ही की जाती है। यदि कोई ब्राह्मण पिता से उत्पन्न है, किन्तु उसके लक्षण असुरों जैसे हैं तो वह असुर माना जाता है। सुदर्शन चक्र सदैव असुरों का ध्वंस करने के लिए है अतएव उसे *अधर्मशीलासुर धूमकेतवे* कहा गया है। जो भक्त नहीं हैं वे अधर्मशील कहलाते हैं। सुदर्शन चक्र ऐसे सारे असुरों के लिए अशुभ पुच्छल तारे की भाँति है।

त्वत्तेजसा धर्ममयेन संहृतं
तमः प्रकाशश्च दृशो महात्मनाम् ।
दुरत्ययस्ते महिमा गिरां पते
त्वद्रूपमेतत्सदसत्परावरम् ॥ ७॥

शब्दार्थ

त्वत्-तेजसा—तुम्हारे तेज से; धर्म-मयेन—धार्मिक नियमों से पूर्ण; संहृतम्—दूर हो जाता है; तमः—अंधकार; प्रकाशः च—प्रकाश भी; दृशः—सभी दिशाओं का; महा-आत्मनाम्—महान् विद्वान पुरुषों का; दुरत्ययः—दुर्लंघ्य; ते—तुम्हारी; महिमा—महिमा; गिराम् पते—हे वाणी के स्वामी; त्वत्-रूपम्—तुम्हारा स्वरूप; एतत्—यह; सत्-असत्—प्रकट तथा अप्रकट; पर-अवरम्—उच्च तथा निम्न।

हे वाणी के स्वामी, धार्मिक सिद्धान्तों से पूर्ण तुम्हारे तेज से संसार का अंधकार दूर हो जाता है और विद्वान पुरुषों या महात्माओं का ज्ञान प्रकट होता है। निस्सन्देह, कोई तुम्हारे तेज का पार नहीं पा सकता क्योंकि सारी वस्तुएँ, चाहे प्रकट अथवा अप्रकट हों, स्थूल अथवा सूक्ष्म हों, उच्च अथवा निम्न हों, आपके तेज के द्वारा प्रकट होने वाले आपके विभिन्न रूप ही हैं।

तात्पर्य : प्रकाश के बिना इस भौतिक संसार में कुछ भी नहीं देखा जा सकता। इस संसार का प्रकाश उस सुदर्शन के तेज से उद्भूत होता है जो भगवान् की मूल दृष्टि है। सूर्य, चन्द्र तथा अग्नि के प्रकाश-तत्त्व सुदर्शन से उद्भूत होते हैं। इसी प्रकार ज्ञान का प्रकाश भी सुदर्शन से ही आता है क्योंकि सुदर्शन का प्रकाश ऊँच तथा नीच में अन्तर बतला सकता है। सामान्यतया लोग दुर्वासा मुनि जैसे शक्तिशाली योगी को अद्भुत रूप से उच्च मानते हैं, किन्तु यदि ऐसे पुरुष का पीछा सुदर्शन चक्र करे तो हम उसकी असली पहचान पा सकते हैं और यह समझ सकते हैं कि वह भक्तों के साथ अपने व्यवहार में कितना निम्न है।

यदा विसृष्टस्त्वमनञ्जनेन वै
बलं प्रविष्टोऽजित दैत्यदानवम् ।
बाहूदरोर्वङ्घ्रिशिरोधराणि
वृश्चन्नजस्त्रं प्रधने विराजसे ॥ ८॥

शब्दार्थ

यदा—जब; विसृष्टः—भेजा; त्वम्—तुमने; अनञ्जनेन—दिव्य भगवान् द्वारा; वै—निस्सन्देह; बलम्—सैनिकों के; प्रविष्टः—बीच घुसकर; अजित—हे अजित; दैत्य-दानवम्—दैत्यों तथा दानवों का; बाहु—भुजाएँ; उदर—पेट; ऊरु—जाँघें; अङ्घ्रि—पाँव; शिरः-धराणि—गर्दन; वृश्चन्—पृथक् करने वाले; अजस्त्रम्—निरन्तर; प्रधने—युद्धभूमि में; विराजसे—रहते हो।

हे अजित, जब तुम भगवान् द्वारा दैत्यों तथा दानवों के सैनिकों के बीच घुसने के लिए भेजे जाते

हो तो तुम युद्धस्थल पर डटे रहते हो और निरन्तर उनके हाथों, पेटों, जाँघों, पाँवों तथा शिरों को विलग करते रहते हो।

स त्वं जगत्त्राण खलप्रहाणये
निरूपितः सर्वसहो गदाभृता ।
विप्रस्य चास्मत्कुलदैवहेतवे
विधेहि भद्रं तदनुग्रहो हि नः ॥ ९॥

शब्दार्थ

सः—वह व्यक्ति; त्वम्—तुम; जगत्-त्राण—हे सम्पूर्ण जगत के रक्षक; खल-प्रहाणये—ईर्ष्यालु शत्रुओं को मारने में; निरूपितः—लगे हुए; सर्व-सहः—सर्वशक्तिमान; गदा-भृता—भगवान् द्वारा; विप्रस्य—इस ब्राह्मण का; च—भी; अस्मत्—हमारा; कुल-दैव-हेतवे—वंश के सौभाग्य हेतु; विधेहि—कृपा करके करें; भद्रम्—शुभ, कल्याण; तत्—वह; अनुग्रहः—कृपा; हि—निस्सन्देह; नः—हमारा।

हे विश्व के रक्षक, तुमको ईर्ष्यालु शत्रुओं को मारने के लिए भगवान् अपने सर्वशक्तिशाली अस्त्र के रूप में प्रयोग करते हैं। हमारे सम्पूर्ण वंश के लाभ हेतु कृपया इस गरीब ब्राह्मण पर दया कीजिये। निश्चय ही, यह हम सब पर कृपा होगी।

यद्यस्ति दत्तमिष्टं वा स्वधर्मो वा स्वनुष्ठितः ।
कुलं नो विप्रदैवं चेद्द्विजो भवतु विज्वरः ॥ १०॥

शब्दार्थ

यदि—अगर; अस्ति—है; दत्तम्—दान; इष्टम्—इष्टदेव की पूजा करना; वा—अथवा; स्व-धर्मः—वृत्तिपरक कार्य; वा—अथवा; सु-अनुष्ठितः—भलीभाँति सम्पन्न किया गया; कुलम्—वंश; नः—हमारा; विप्र-दैवम्—ब्राह्मणों द्वारा कृपा प्राप्त; चेत्—यदि ऐसा; द्विजः—यह ब्राह्मण; भवतु—हो सके; विज्वरः—जलन से (सुदर्शन चक्र से) मुक्त।

यदि हमारे परिवार ने सुपात्रों को दान दिया है, यदि हमने कर्मकांड तथा यज्ञ सम्पन्न किये हैं, यदि हमने अपने-अपने वृत्तिपरक कर्तव्यों को ठीक से पूरा किया है और यदि हम विद्वान ब्राह्मणों द्वारा मार्गदर्शन पाते रहे हैं तो मैं चाहूँगा कि उनके बदले में यह ब्राह्मण सुदर्शन चक्र के द्वारा उत्पन्न जलन से मुक्त कर दिया जाय।

यदि नो भगवान्प्रीत एकः सर्वगुणाश्रयः ।
सर्वभूतात्मभावेन द्विजो भवतु विज्वरः ॥ ११॥

शब्दार्थ

यदि—यदि; नः—हम पर; भगवान्—भगवान्; प्रीतः—प्रसन्न है; एकः—एकमात्र; सर्व-गुण-आश्रयः—समस्त दिव्य गुणों का आगार; सर्व-भूत-आत्म-भावेन—समस्त जीवों के प्रति दया भाव होने से; द्विजः—यह ब्राह्मण; भवतु—हो जाये; विज्वरः—सारे ताप से मुक्त।

यदि समस्त दिव्य गुणों के आगार तथा समस्त जीवों के प्राण तथा आत्मा अद्वितीय परमेश्वर हम पर प्रसन्न हैं तो हम चाहेंगे कि यह ब्राह्मण दुर्वासा मुनि जलन की पीड़ा से मुक्त हो जाय।

श्रीशुक उवाच
इति संस्तुवतो राज्ञो विष्णुचक्रं सुदर्शनम् ।
अशाम्यत्सर्वतो विप्रं प्रदहद्राजयाच्ञया ॥ १२॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; संस्तुवतः—प्रार्थना किये जाने पर; राज्ञः—राजा द्वारा; विष्णु-चक्रम्—भगवान् विष्णु के चक्र को; सुदर्शनम्—सुदर्शन नामक; अशाम्यत्—शान्त हो गया; सर्वतः—सभी तरह से; विप्रम्—ब्राह्मण को; प्रदहत्—जलाता हुआ; राज—राजा की; याच्ञया—याचना द्वारा।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : जब राजा ने सुदर्शन चक्र एवं भगवान् विष्णु की स्तुति की तो स्तुतियों के कारण सुदर्शन चक्र शान्त हुआ और उसने दुर्वासा मुनि नामक ब्राह्मण को जलाना बन्द कर दिया।

स मुक्तोऽस्त्राग्नितापेन दुर्वासाः स्वस्तिमांस्ततः ।
प्रशशंस तमुर्वीशं युञ्जानः परमाशिषः ॥ १३॥

शब्दार्थ

सः—वह, दुर्वासा मुनि; मुक्तः—छूटकर; अस्त्र-अग्नि-तापेन—सुदर्शन चक्र की अग्नि के ताप से; दुर्वासाः—योगी दुर्वासा ने; स्वस्तिमान्—पूर्णतया संतुष्ट, ताप से मुक्त; ततः—तब; प्रशशंस—प्रशंसा की; तम्—उस; उर्वी-ईशम्—राजा को; युञ्जानः—करते हुए; परम-आशिषः—सर्वोच्च आशीर्वाद।

सुदर्शन चक्र की अग्नि से मुक्त किये जाने पर परम शक्तिशाली योगी दुर्वासा मुनि प्रसन्न हुए। तब उन्होंने महाराज अम्बरीष के गुणों की प्रशंसा की और उन्हें उत्तमोत्तम आशीष दिये।

दुर्वासा उवाच
अहो अनन्तदासानां महत्त्वं दृष्टमद्य मे ।
कृतागसोऽपि यद्राजन्मङ्गलानि समीहसे ॥ १४॥

शब्दार्थ

दुर्वासाः उवाच—दुर्वासा मुनि ने कहा; अहो—ओह; अनन्त-दासानाम्—भगवान् के सेवकों की; महत्त्वम्—महानता; दृष्टम्—देखी गई; अद्य—आज; मे—मेरे द्वारा; कृत-आगसः अपि—अपराधी होते हुए भी; यत्—फिर भी; राजन्—हे राजा; मङ्गलानि—सौभाग्य के लिए; समीहसे—तुम याचना कर रहे हो।

दुर्वासा मुनि ने कहा : हे राजा, आज मैंने भगवान् के भक्तों की महानता का अनुभव किया क्योंकि मेरे अपराधी होने पर भी आपने मेरे सौभाग्य के लिए प्रार्थना की है।

दुष्करः को नु साधूनां दुस्त्यजो वा महात्मनाम् ।
यैः सङ्गृहीतो भगवान्सात्वतामृषभो हरिः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

दुष्करः—कर पाना कठिन; कः—क्या; नु—निस्सन्देह; साधूनाम्—भक्तों का; दुस्त्यजः—छोड़ पाना असम्भव; वा—अथवा; महा-आत्मनाम्—महापुरुषों का; यैः—जिन पुरुषों के द्वारा; सङ्गृहीतः—(भक्ति द्वारा) प्राप्त किया गया; भगवान्—भगवान्; सात्वताम्—शुद्ध भक्तों का; ऋषभः—नायक; हरिः—भगवान्।

जिन लोगों ने शुद्ध भक्तों के स्वामी भगवान् को प्राप्त कर लिया है उनके लिए क्या करना असम्भव है और क्या त्यागना असम्भव है?

यन्नामश्रुतिमात्रेण पुमान्भवति निर्मलः ।
तस्य तीर्थपदः किं वा दासानामवशिष्यते ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

यत्-नाम—भगवान् का पवित्र नाम; श्रुति-मात्रेण—सुनने से ही; पुमान्—मनुष्य; भवति—हो जाता है; निर्मलः—शुद्ध; तस्य—उसका; तीर्थ-पदः—भगवान् जिनके चरण पवित्र स्थल हैं; किम् वा—क्या; दासानाम्—दासों के द्वारा; अवशिष्यते—करने को बचता है।

भगवान् के दासों के लिए क्या असम्भव है? भगवान् का पवित्र नाम सुनने मात्र से ही मनुष्य शुद्ध हो जाता है।

राजन्ननुगृहीतोऽहं त्वयातिकरुणात्मना ।
मदघं पृष्ठतः कृत्वा प्राणा यन्मेऽभिरक्षिताः ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

राजन्—हे राजा; अनुगृहीतः—अत्यधिक दया प्राप्त; अहम्—मैं; त्वया—आपके द्वारा; अति-करुण-आत्मना—आपके अत्यन्त करुणामय होने से; मत्-अघम्—मेरे अपराध; पृष्ठतः—पीठ की ओर; कृत्वा—करके; प्राणाः—प्राण; यत्—जो; मे—मेरा; अभिरक्षिताः—बचाया।

हे राजन्, आपने मेरे अपराधों को अनदेखा करके मेरा जीवन बचाया है। इस तरह मैं आपका अत्यन्त अनुगृहीत हूँ क्योंकि आप इतने दयावान हैं।

राजा तमकृताहारः प्रत्यागमनकाङ्क्षया ।

चरणावुपसङ्गृह्य प्रसाद्य समभोजयत् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

राजा—राजा; तम्—उसको, दुर्वासा को; अकृत-आहारः—भोजन करने से विरत; प्रत्यागमन—वापसी; काङ्क्षया—चाहते हुए; चरणौ—पाँवों तक; उपसङ्गृह्य—पहुँच कर; प्रसाद्य—सभी प्रकार से तुष्ट करके; समभोजयत्—भोजन कराया।

राजा ने दुर्वासा मुनि की वापसी की आशा से स्वयं भोजन नहीं किया था। अतएव जब मुनि लौटे तो राजा उनके चरण-कमलों पर गिर पड़ा और उन्हें सभी प्रकार से तुष्ट करके भरपेट भोजन कराया।

सोऽशित्वादृतमानीतमातिथ्यं सार्वकामिकम् ।
तृप्तात्मा नृपतिं प्राह भुज्यतामिति सादरम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

सः—वह (दुर्वासा); अशित्वा—भरपेट भोजन करके; आदृतम्—बड़े सत्कार के साथ; आनीतम्—स्वागत किया; आतिथ्यम्—तरह-तरह के व्यंजन प्रदान किये; सार्व-कामिकम्—सभी प्रकार से स्वादों को पूरा करने वाले; तृप्त-आत्मा—पूरी तरह से तुष्ट; नृपतिम्—राजा से; प्राह—कहा; भुज्यताम्—हे राजा, तुम भी खाओ; इति—इस प्रकार; स-आदरम्—आदरपूर्वक।

इस प्रकार राजा ने बड़े आदर के साथ दुर्वासा मुनि का स्वागत किया। वे नाना प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन खाकर इतने सन्तुष्ट हुए कि उन्होंने बड़े ही स्नेह से राजा से भी खाने के लिए प्रार्थना की ''कृपया भोजन ग्रहण करें।''

प्रीतोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि तव भागवतस्य वै ।
दर्शनस्पर्शनालापैरातिथ्येनात्ममेधसा ॥ २० ॥

शब्दार्थ

प्रीतः—अत्यधिक सन्तुष्ट; अस्मि—हूँ; अनुगृहीतः—अत्यन्त आभारी; अस्मि—हूँ; तव—तुम; भागवतस्य—शुद्ध भक्त का; वै—निस्सन्देह; दर्शन—तुम्हें देखकर; स्पर्शन—तथा तुम्हारे पाँवों का स्पर्श करके; आलापैः—तुमसे बातें करके; आतिथ्येन—तुम्हारे आतिथ्य से; आत्म-मेधसा—अपनी बुद्धि से।

दुर्वासा मुनि ने कहा : हे राजा, मैं आपसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ। पहले मैंने आपको एक सामान्य व्यक्ति समझकर आपका आतिथ्य स्वीकार किया था, किन्तु बाद में अपनी बुद्धि से मैं समझ सका कि आप भगवान् के अत्यन्त महान् भक्त हैं। इसलिए मात्र आपके दर्शन और आपके चरणस्पर्श से तथा आपसे बातें करके मैं सन्तुष्ट हो गया हूँ और आपका अत्यन्त कृतज्ञ हो गया हूँ।

तात्पर्य : कहा गया है—*वैष्णवेर क्रिया मुद्रा विज्ञेह ना बुझय*—शुद्ध वैष्णव के कार्यकलापों को बुद्धिमान से बुद्धिमान व्यक्ति भी नहीं समझ सकता। अतएव महान् योगी दुर्वासा ने पहले महाराज अम्बरीष

को एक सामान्य व्यक्ति समझ कर उन्हें दण्ड देना चाहा। वैष्णव को समझने में ऐसी भूल हो जाती है। किन्तु जब दुर्वासा मुनि को सुदर्शन चक्र द्वारा सजा मिल चुकी तो उनकी बुद्धि जागी। इसीलिए *आत्ममेधसा* शब्द प्रयुक्त हुआ है जो सूचित करता है कि वे अपने निजी अनुभव से समझ सके कि राजा कितना महान् वैष्णव था। जब सुदर्शनचक्र ने दुर्वासा मुनि का पीछा करना प्रारम्भ किया तो उन्होंने ब्रह्माजी तथा शिवजी की शरण लेनी चाही और वे वैकुण्ठ धाम तक भी पहुँच गए जहाँ उन्होंने साक्षात् भगवान् से भी बातें कीं, किन्तु सुदर्शन चक्र के आक्रमण से उन्हें कोई बचा न सका। अतएव वे अपने निजी अनुभव से वैष्णव के प्रभाव को समझ सके। दुर्वासा मुनि निस्सन्देह महान् योगी तथा अत्यन्त विद्वान ब्राह्मण थे, किन्तु इतने बड़े योगी होते हुए भी वे वैष्णव के प्रभाव को नहीं समझ पाये थे। इसीलिए कहा जाता है—*वैष्णवेर क्रिया मुद्रा विज्ञेह ना बुझय।* जब भी तथाकथित ज्ञानी तथा योगी वैष्णव के चरित्र का अध्ययन करते हैं तो उसमें त्रुटि रहने की सम्भावना बनी रहती है। वैष्णव को इसीसे समझा जा सकता है कि अचिन्त्य कार्य करने में भगवान् की उस पर कितनी दया प्राप्त है।

कर्मावदातमेतत्ते गायन्ति स्वःस्त्रियो मुहुः ।
कीर्तिं परमपुण्यां च कीर्तयिष्यति भूरियम् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

कर्म—कार्य; अवदातम्—कल्मषरहित; एतत्—यह सारा; ते—तुम्हारा; गायन्ति—गायेंगे; स्वः-स्त्रियः—स्वर्ग की स्त्रियाँ; मुहुः—सदा; कीर्तिम्—कीर्ति, यश; परम-पुण्याम्—अत्यन्त पवित्र तथा महिमामय; च—भी; कीर्तयिष्यति—निरन्तर गान करेगा; भूः—सारा संसार; इयम्—यह।

स्वर्गलोक की सारी भाग्यशाली स्त्रियाँ प्रतिक्षण आपके निर्मल चरित्र का गान करेंगी और इस संसार के लोग भी आपकी महिमा का निरन्तर उच्चारण करेंगे।

श्रीशुक उवाच
एवं सङ्कीर्त्य राजानं दुर्वासाः परितोषितः ।
ययौ विहायसामन्त्र्य ब्रह्मलोकमहैतुकम् ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; सङ्कीर्त्य—महिमागान करके; राजानम्—राजा को; दुर्वासाः—महान् योगी दुर्वासा मुनि; परितोषितः—सभी प्रकार से संतुष्ट होकर; ययौ—वहाँ से चला गया; विहायसा—अन्तरिक्ष मार्ग से; आमन्त्र्य—अनुमति लेकर; ब्रह्मलोकम्—इस ब्रह्माण्ड के सर्वोच्च लोक को; अहैतुकम्—शुष्क चिन्तन से विहीन।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : इस प्रकार सब तरह से सन्तुष्ट होकर महान् योगी दुर्वासा ने

अनुमति ली और वे राजा का निरन्तर यशोगान करते हुए वहाँ से चले गये। वे आकाश मार्ग से ब्रह्मलोक गये जो शुष्क ज्ञानियों से रहित है।

तात्पर्य : यद्यपि दुर्वासा मुनि आकाश मार्ग से ब्रह्मलोक गये, किन्तु उन्हें किसी विमान की आवश्यकता नहीं पड़ी क्योंकि महान् योगीजन बिना किसी यंत्र के एक लोक से दूसरे लोक की यात्रा कर सकते हैं। सिद्धलोक के निवासी किसी भी लोक की यात्रा कर सकते हैं क्योंकि उन्हें योग की सारी सिद्धियाँ सहज प्राप्त हैं। इस तरह महान् योगी दुर्वासा मुनि आकाश मार्ग से किसी लोक को, यहाँ तक कि ब्रह्मलोक को भी, जा सकते थे। ब्रह्मलोक में हर व्यक्ति स्वरूपसिद्ध है और परम सत्य को प्राप्त करने के लिए उसे किसी दार्शनिक चिन्तन की आवश्यकता नहीं पड़ती। ब्रह्मलोक जाने का उद्देश्य वहाँ के निवासियों को यह बताना था कि भक्त कितना शक्तिशाली होता है और इस भौतिक जगत के हर जीव से आगे निकल सकता है। तथाकथित ज्ञानी तथा योगी किसी भक्त की तुलना नहीं कर सकते।

संवत्सरोऽत्यगात्तावद्यावता नागतो गतः ।
मुनिस्तद्दर्शनाकाङ्क्षो राजाब्भक्षो बभूव ह ॥ २३॥

शब्दार्थ

संवत्सरः—पूरा एक वर्ष; अत्यगात्—बीत गया; तावत्—तब तक; यावता—जब तक; न—नहीं; आगतः—वापस आया; गतः—गया हुआ, दुर्वासा मुनि; मुनिः—मुनि; तत्-दर्शन-आकाङ्क्षः—उसे फिर से देखने की इच्छा करते हुए; राजा—राजा; अप्-भक्षः—केवल जल ग्रहण करके; बभूव—रहा; ह—निस्सन्देह।

दुर्वासा मुनि महाराज अम्बरीष के स्थान से चले गये थे और जब तक वे वापस नहीं लौटे—पूरे एक वर्ष तक—तब तक राजा केवल जल पीकर उपवास करते रहे।

गतेऽथ दुर्वाससि सोऽम्बरीषो
द्विजोपयोगातिपवित्रमाहरत् ।
ऋषेर्विमोक्षं व्यसनं च वीक्ष्य
मेने स्ववीर्यं च परानुभावम् ॥ २४॥

शब्दार्थ

गते—वापस आने पर; अथ—तब; दुर्वाससि—महान् योगी दुर्वासा के; सः—वह राजा; अम्बरीषः—महाराज अम्बरीष; द्विज-उपयोग—शुद्ध ब्राह्मण के लिए सर्वोपयुक्त; अति-पवित्रम्—अत्यन्त शुद्ध भोजन; आहरत्—खाया और खाने को दिया; ऋषेः—ऋषि का; विमोक्षम्—मुक्ति, छूटना; व्यसनम्—सुदर्शन चक्र द्वारा भस्म किये जाने के महान् संकट से; च—तथा; वीक्ष्य—देखकर; मेने—विचार किया; स्व-वीर्यम्—अपने पौरुष के विषय में; च—भी; पर-अनुभावम्—भगवान् की शुद्ध भक्ति के कारण।

एक वर्ष बाद जब दुर्वासा मुनि लौटे तो राजा अम्बरीष ने उन्हें सभी प्रकार के व्यंजन भरपेट

खिलाये और तब स्वयं भी भोजन किया। जब राजा ने देखा कि दुर्वासा दग्ध होने के महान् संकट से मुक्त हो चुके हैं तो वे यह समझ सके कि भगवान् की कृपा से वे स्वयं भी शक्तिमान हैं, किन्तु उन्होंने इसका श्रेय अपने को नहीं दिया क्योंकि यह सब भगवान् ने किया था।

तात्पर्य : महाराज अम्बरीष जैसा भक्त नाना प्रकार के कार्यों में सदा व्यस्त रहता है। निस्सन्देह, यह संसार सभी प्रकार के संकटों से भरा पड़ा है जिन से मनुष्य का सामना होता रहता है, किन्तु भगवान् पर पूर्णत: आश्रित रहने के कारण भक्त तनिक भी विचलित नहीं होता। इसके प्रत्यक्ष उदाहरण महाराज अम्बरीष हैं। वे सारे जगत के सम्राट थे और उन्हें अनेक कार्य सम्पन्न करने होते थे और इन कार्यों के बीच में दुर्वासा मुनि जैसे व्यक्ति अनेक प्रकार के व्यवधान उपस्थित करते रहते थे लेकिन राजा इन सबको धैर्यपूर्वक सहता जाता था क्योंकि वह भगवान् की कृपा पर पूर्णत: निर्भर रहता था। किन्तु भगवान् सबके हृदयों में स्थित हैं (*सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्ट:*) और वे अपनी इच्छानुसार कार्य चलाते हैं। अत: यद्यपि महाराज अम्बरीष को अनेक उपद्रवों का सामना करना पड़ा, किन्तु भगवान् उन पर दयालु थे; अतएव सारी बातें इस तरह से नियोजित हो सकीं कि अन्त में दुर्वासा मुनि तथा महाराज अम्बरीष महान् मित्र बन गये और उन्होंने भक्तियोग के आधार पर मैत्रीभाव से एक दूसरे से विदा ली। अन्तत: दुर्वासा मुनि को भक्तियोग की शक्ति पर विश्वास हो गया यद्यपि वे स्वयं महान् योगी थे। अतएव जैसा कि भगवान् कृष्ण ने *भगवद्गीता* (६.४७) में कहा है—

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्तमो मत: ॥

''समस्त योगियों में से जो योगी श्रद्धापूर्वक मुझमें सदैव विश्वास करता है और दिव्य प्रेमाभक्ति से मेरी पूजा करता है वह योग द्वारा मुझसे भली भाँति संयुक्त हो जाता है और सबसे महान् होता है।'' इस तरह यह तथ्य है कि भक्त महानतम योगी होता है जैसा कि महाराज अम्बरीष द्वारा दुर्वासा मुनि के साथ किये गये व्यवहार से सिद्ध होता है।

एवं विधानेकगुण: स राजा
परात्मनि ब्रह्मणि वासुदेवे ।

क्रियाकलापैः समुवाह भक्तिं
ययाविरिञ्च्यान्निरयांश्चकार ॥ २५॥

शब्दार्थ

एवम्—इस तरह; विधा-अनेक-गुणः—अनेकानेक गुणों से युक्त; सः—वह महाराज अम्बरीष; राजा—राजा; पर-आत्मनि—परमात्मा में; ब्रह्मणि—ब्रह्म में; वासुदेवे—वासुदेव कृष्ण में; क्रिया-कलापैः—कार्यों से; समुवाह—सम्पन्न किया; भक्तिम्—भक्ति; यया—ऐसे कार्यों से; आविरिञ्च्यान्—सर्वोच्चलोक से लेकर; निरयान्—नरकलोकों तक; चकार—सर्वत्र संकट का अनुभव किया।

इस प्रकार अपनी भक्ति के कारण नाना प्रकार के दिव्य गुणों से युक्त महाराज अम्बरीष ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान् से भलीभाँति अवगत हो गये और सम्यक् रीति से भक्ति करने लगे। अपनी भक्ति के कारण उन्हें इस भौतिक जगत का सर्वोच्चलोक भी नरक तुल्य लगने लगा।

तात्पर्य : महाराज अम्बरीष जैसा महान् एवं शुद्ध भक्त ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान् से भलीभाँति परिचित रहता है। दूसरे शब्दों में, वासुदेव कृष्ण का भक्त परम सत्य के अन्य स्वरूपों से अवगत रहता है। परम सत्य की अनुभूति तीन रूपों में की जाती है—ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान् (*ब्रह्मेति परमात्मेति भगवान् इति शब्द्यते*)। भगवान् वासुदेव का भक्त सब जानता है (*वासुदेवः सर्वमिति*) क्योंकि वासुदेव कृष्ण में परमात्मा तथा ब्रह्म दोनों निहित रहते हैं। मनुष्य को योग क्रिया द्वारा परमात्मा की अनुभूति नहीं करनी होती क्योंकि सदैव वासुदेव का ध्यान करने वाला भक्त सर्वोच्च योगी हैं (*योगिनामपि सर्वेषां*)। जहाँ तक ज्ञान का सम्बन्ध है, यदि कोई वासुदेव का पूर्ण भक्त है तो वह सबसे बड़ा महात्मा होता है (*वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः*)। महात्मा वह है जिसे परम सत्य का पूरा ज्ञान हो। इस प्रकार महाराज अम्बरीष भगवान् का भक्त होने के कारण परमात्मा, ब्रह्म, माया, भौतिक जगत, आध्यात्मिक जगत तथा सर्वत्र घटित होने वाली घटनाओं से पूरी तरह अवगत थे। *यस्मिन् विज्ञाते सर्वमेवं विज्ञातं भवति।* वासुदेव को जानने के कारण उनका भक्त वासुदेव की सृष्टि के भीतर हर वस्तु को जानता है (*वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः*)। ऐसा भक्त इस भौतिक जगत के भीतर सुख के सर्वोच्च स्तर को कोई महत्त्व प्रदान नहीं करता।

नारायणपराः सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति।

स्वर्गापवर्गनरकेष्वपि तुल्यार्थदर्शिनः ॥

(भागवत ६.१७.२८)

भक्ति में स्थिर रहने के कारण भक्त इस जगत के किसी भी पद को महत्त्वपूर्ण नहीं मानता। इसीलिए श्रील प्रबोधानन्द सरस्वती ने लिखा है (*चैतन्य चन्द्रामृत* ५)—

कैवल्यं नरकायते त्रिदशपूराकाश पुष्पायते

दुर्दान्तेन्द्रियकालसर्पपटली प्रोत्खातदंष्ट्रायते।

विश्वं पूर्णसुखायते विधिमहेन्द्रादिश्च कीटायते

यत्कारुण्यकटाक्षवैभववतां तं गौरमेव स्तुमः॥

ऐसा व्यक्ति जो श्रीचैतन्य महाप्रभु जैसे महान् पुरुष की भक्ति के द्वारा शुद्ध भक्त बनता है, उसके लिए *कैवल्य* अर्थात् ब्रह्म में तल्लीन हो जाना नरक तुल्य है। भक्त के लिए स्वर्गलोक आकाश-पुष्प के समान है और सिद्धि की तो भक्त तनिक भी परवाह नहीं करता क्योंकि भक्त को योगसिद्धि का उद्देश्य स्वतः प्राप्त हो जाता है। ऐसा तभी सम्भव है जब मनुष्य श्रीचैतन्य महाप्रभु के आदेशों के माध्यम से भगवद्भक्त बन जाता है।

श्रीशुक उवाच
अथाम्बरीषस्तनयेषु राज्यं
समानशीलेषु विसृज्य धीरः ।
वनं विवेशात्मनि वासुदेवे
मनो दधद्ध्वस्तगुणप्रवाहः ॥ २६॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; अथ—इस प्रकार; अम्बरीषः—राजा अम्बरीष; तनयेषु—अपने पुत्रों को; राज्यम्—राज्य; समान-शीलेषु—अपने पिता की ही भाँति योग्य; विसृज्य—बाँट करके; धीरः—अत्यन्त विद्वान पुरुष, महाराज अम्बरीष; वनम्—वन में; विवेश—प्रविष्ट हुए; आत्मनि—भगवान्; वासुदेवे—वासुदेव नाम से प्रसिद्ध कृष्ण में; मनः—मन को; दधत्—केन्द्रीभूत करते हुए; ध्वस्त—नष्ट; गुण-प्रवाहः—प्रकृति के गुणों की लहरें।

श्रील शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : तत्पश्चात् भक्तिमय जीवन की उन्नत दशा के कारण अम्बरीष भौतिक वस्तुओं की किसी तरह से इच्छा न रखते हुए सक्रिय गृहस्थ जीवन से उपरत हो गये। उन्होंने अपनी सम्पत्ति अपने ही समान योग्य पुत्रों में बाँट दी और स्वयं वानप्रस्थ आश्रम स्वीकार करके भगवान् वासुदेव में अपना मन पूर्णतः एकाग्र करने के लिए जंगल चले गये।

तात्पर्य : शुद्ध भक्त होने के नाते महाराज अम्बरीष जीवन की किसी भी स्थिति में मुक्त थे। जैसा कि श्रील रूपगोस्वामी ने बतलाया है कि भक्त सदैव मुक्त होता है—

ईहा यस्य हरेर्दास्ये कर्मणा मनसा गिरा।

निखिलास्वप्यवस्थासु जीवन्मुक्तः स उच्यते॥

भक्तिरसामृत सिन्धु में श्रील रूप गोस्वामी इस तरह उपदेश देते हैं कि यदि किसी की एकमात्र इच्छा भगवान् की सेवा करने की है तो वह जीवन की किसी भी दशा में मुक्त होता है। निस्सन्देह, महाराज अम्बरीष किसी भी दशा में मुक्त थे, किन्तु आदर्श राजा के रूप में उन्होंने गृहस्थ जीवन से वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण किया। मनुष्य के लिए अत्यावश्यक है कि पारिवारिक जिम्मेदारियाँ त्याग करके वासुदेव के चरणकमलों में एकाग्र हो। इसीलिए महाराज अम्बरीष ने अपना राज्य अपने पुत्रों में बाँट दिया और फिर वे गृहस्थ जीवन से विरक्त हो गये।

इत्येतत्पुण्यमाख्यानमम्बरीषस्य भूपते ।
सङ्कीर्तयन्ननुध्यायन्भक्तो भगवतो भवेत् ॥ २७॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; एतत्—यह; पुण्यम् आख्यानम्—इतिहास का सर्वाधिक पुण्यकर्म; अम्बरीषस्य—महाराज अम्बरीष का; भूपते—हे राजा (परीक्षित); सङ्कीर्तयन्—दुहराने या कीर्तन करने से; अनुध्यायन्—ध्यान धरने से; भक्तः—भक्त; भगवतः—भगवान् का; भवेत्—बन सकता है।.

जो भी इस कथा को बार-बार पढ़ता है या महाराज अम्बरीष के कार्यकलापों से सम्बन्धित इस कथा का चिन्तन करता है वह अवश्य ही भगवान् का शुद्ध भक्त बन जाता है।

तात्पर्य : यहाँ पर श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने एक उत्तम उदाहरण दिया है। जब कोई मनुष्य धन के लिए उत्सुक रहता है तो वह लखपति या करोड़पति बन जाने पर भी सन्तुष्ट नहीं होता प्रत्युत येन-केन-प्रकारेण अधिकाधिक धन कमाना चाहता है। ऐसी ही मनोवृत्ति भक्त में भी पाई जाती है। भक्त यह सोचकर कभी सन्तुष्ट नहीं होता कि ''मेरी भक्ति की यह सीमा है।'' वह भगवान् की जितनी अधिक सेवा करता है, उतनी ही अधिक सेवा करने की उसकी इच्छा जगती है। यह एक भक्त की दशा है। महाराज अम्बरीष अपने गृहस्थ जीवन में सभी प्रकार से शुद्ध भक्त थे क्योंकि उनका मन तथा उनकी सारी इन्द्रियाँ भक्ति में लगी रहती थीं (*स वै मन: कृष्ण पदारविन्दयो: वचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने*)। महाराज अम्बरीष आत्म-तुष्ट थे क्योंकि उनकी सारी इन्द्रियाँ भक्ति में लगी थीं (*सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम्। हृषीकेण हृषीकेशसेवनं भक्तिरुच्यते*)। महाराज अम्बरीष ने अपनी सारी इन्द्रियों को भक्ति में लगाये रखते हुए भी अपना घर त्याग दिया और अपने मन को श्रीकृष्ण के चरणकमलों पर एकाग्र करने के उद्देश्य से वे जंगल चले गये, ठीक वैसे ही जैसे एक व्यापारी धनधान्य से सम्पन्न होते हुए भी और अधिक धन कमाना चाहता

है। भक्ति में अधिकाधिक लगे रहने की यह प्रवृत्ति मनुष्य को महान् पद पर लाती है। कर्म स्तर पर जो व्यापारी अधिकाधिक धन चाहता है वह अधिकाधिक बन्धन में फँसता जाता है जबकि भक्त अधिकाधिक मुक्त होता जाता है।

अम्बरीषस्य चरितं ये शृण्वन्ति महात्मनः ।
मुक्तिं प्रयान्ति ते सर्वे भक्त्या विष्णोः प्रसादतः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

अम्बरीषस्य—महाराज अम्बरीष का; चरितम्—चरित्र; ये—जो लोग; शृण्वन्ति—सुनते हैं; महा-आत्मनः—महात्मा या भक्त का; मुक्तिम्—मुक्ति; प्रयान्ति—अवश्य पाते हैं; ते—ऐसे लोग; सर्वे—सभी; भक्त्या—भक्ति से; विष्णोः—भगवान् विष्णु की; प्रसादतः—कृपा से।

भगवत्कृपा से जो लोग महान् भक्त महाराज अम्बरीष के कार्यकलापों के विषय में सुनते हैं, वे अवश्य ही मुक्त हो जाते हैं या तुरन्त भक्त बन जाते हैं।

इस प्रकार *श्रीमद्भागवत* के नवम स्कन्ध के अन्तर्गत "दुर्वासा मुनि को जीवन-दान" नामक पाँचवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter छह

सौभरि मुनि का पतन

महाराज अम्बरीष के वंशजों का वर्णन करने के बाद शुकदेव गोस्वामी ने शशाद से लेकर मान्धाता तक सारे राजाओं का वर्णन किया और इस प्रसंग में उन्होंने यह भी वर्णन किया कि किस प्रकार सौभरि मुनि ने मान्धाता की पुत्रियों से विवाह किया।

महाराज अम्बरीष के तीन पुत्र थे—विरूप, केतुमान तथा शम्भु। विरूप का पुत्र पृषदश्व था, जिसका पुत्र रथीतर हुआ। रथीतर के कोई सन्तान नहीं थी, किन्तु अंगिरा ऋषि की कृपा याचना करने पर उसकी पत्नी के गर्भ से कई पुत्र हुए। इन पुत्रों के उत्पन्न होने पर वे अंगिरा ऋषि तथा रथीतर के वंशज कहलाये।

मनुपुत्र इक्ष्वाकु के एक सौ पुत्र हुए जिनमें से विकुक्षि, निमि तथा दण्डका सबसे बड़े थे। इक्ष्वाकु के पुत्र संसार के विभिन्न भागों के राजा बने। इनमें से विकुक्षि ने यज्ञ के विधि-विधानों का उल्लंघन किया जिससे उसे राज्य से निकाल दिया गया। वसिष्ठ की कृपा तथा योगशक्ति से महाराज इक्ष्वाकु को भौतिक शरीर-त्याग करने के बाद मोक्ष प्राप्त हुआ। महाराज इक्ष्वाकु की मृत्यु के बाद उसका पुत्र विकुक्षि वापस आया और उसने अपने राज्य की बागडोर सँभाली। उसने नाना प्रकार के यज्ञ किये और इस तरह भगवान् को प्रसन्न किया। बाद में यही विकुक्षि शशाद नाम से विख्यात हुआ।

विकुक्षि के पुत्र ने देवताओं के लिए असुरों से युद्ध किया और अपनी बहुमूल्य सेवा के कारण वह पुरञ्जय, इद्रवाह तथा ककुत्स्थ नाम से विख्यात हुआ। पुरञ्जय का पुत्र अनेना था और अनेना का पुत्र पृथु हुआ। पृथु का पुत्र विश्वगन्धि था। विश्वगन्धि का पुत्र चन्द्र हुआ, चन्द्र का पुत्र युवनाश्व और फिर उसका पुत्र श्रावस्त हुआ जिसने श्रावस्ती पुरी का निर्माण कराया। श्रावस्त का पुत्र बृहदाश्व हुआ। बृहदाश्व के पुत्र कुवलयाश्व ने धुन्धु नामक असुर का वध किया जिससे वह धुन्धुमार नाम से विख्यात हुआ। धुन्धुमार के पुत्रों के नाम थे दृढ़ाश्व, कपिलाश्व तथा भद्राश्व। इनके अतिरिक्त उसके हजारों पुत्र और भी थे लेकिन वे सभी धुन्धु से निकलने वाली अग्नि में जलकर राख हो गये थे। दृढ़ाश्व का पुत्र हर्यश्व हुआ, हर्यश्व का पुत्र निकुम्भ था और निकुम्भ का पुत्र बहुलाश्व तथा उसका पुत्र कृशाश्व हुआ। कृशाश्व का पुत्र सेनजित था और उसका पुत्र युवनाश्व हुआ।

युवनाश्व के एक सौ पत्नियाँ थीं, किन्तु उसके कोई सन्तान नहीं थी अतएव वह जंगल चला गया। जंगल में ऋषियों ने उसके लिए इन्द्रयज्ञ सम्पन्न किया। एक बार राजा जंगल में इतना प्यासा हुआ कि उसने यज्ञ के लिए रखा हुआ जल पी लिया। फलस्वरूप कुछ काल बाद उसकी दाहिनीकोख से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। यह पुत्र अत्यन्त सुन्दर था और स्तनपान करने के लिए रोने लगा अतएव इन्द्र ने उसे अपनी तर्जनी अँगुली चूसने को दे दी। इस तरह यह पुत्र मान्धाता कहलाया। कालान्तर में युवनाश्व ने तपस्या के बल पर सिद्धि प्राप्त की।

तत्पश्चात् मान्धाता सम्राट बना और उसने सप्तद्वीप वाली पृथ्वी पर राज्य किया। चोर तथा उचक्के इस बलशाली राजा से थर्राते थे इसलिए राजा त्रसद्दस्यु कहलाने लगा जिसका अर्थ है ''वह जिस से बदमाश और उचक्के भयभीत हों।'' मान्धाता की पत्नी बिन्दुमती के गर्भ से तीन पुत्र तथा पचास पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं। पुत्रों के नाम थे पुरुकुत्स, अम्बरीष तथा मुचुकुन्द। ये पचासों पुत्रियाँ सौभरि नामक ऋषि की पत्नियाँ बनीं।

इस प्रसंग में शुकदेव गोस्वामी ने सौभरि मुनि के इतिहास का वर्णन किया है जो मछली के प्रति ऐन्द्रिय विचलन के कारण अपने योग से पतित हुए और कामसुख के लिए मान्धाता की सभी पुत्रियों से विवाह करना चाहा। बाद में सौभरि मुनि को अत्यधिक पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने वानप्रस्थ आश्रम स्वीकार करके कठिन तपस्या की और इस तरह सिद्धि पाई। शुकदेव गोस्वामी ने यह भी वर्णन किया है कि किस तरह सौभरि मुनि की पत्नियाँ भी सिद्ध बनीं।

श्रीशुक उवाच
विरूपः केतुमाञ्छम्भुरम्बरीषसुतास्त्रयः ।
विरूपात्पृषदश्वोऽभूत्तत्पुत्रस्तु रथीतरः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; विरूपः—विरूप नामक; केतुमान्—केतुमान नामक; शम्भुः—शम्भु नामक; अम्बरीष—अम्बरीष महाराज के; सुताः त्रयः—तीन पुत्र; विरूपात्—विरूप से; पृषदश्वः—पृषदश्व नामक; अभूत्—था; तत्-पुत्रः—उसका पुत्र; तु—तथा; रथीतरः—रथीतर नामक।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे महाराज परीक्षित, अम्बरीष के तीन पुत्र हुए—विरूप, केतुमान तथा शम्भु। विरूप के पृषदश्व नामक पुत्र हुआ और पृषदश्व के रथीतर नामक पुत्र हुआ।

रथीतरस्याप्रजस्य भार्यायां तन्तवेऽर्थितः ।
अङ्गिरा जनयामास ब्रह्मवर्चस्विनः सुतान् ॥ २॥

शब्दार्थ

रथीतरस्य—रथीतर की; अप्रजस्य—निःसन्तान; भार्यायाम्—अपनी पत्नी के; तन्तवे—सन्तान वृद्धि के लिए; अर्थितः—प्रार्थना किये जाने पर; अङ्गिराः—अंगिरा ऋषि; जनयाम् आस—उत्पन्न किया; ब्रह्म-वर्चस्विनः—ब्राह्मण गुणों से युक्त; सुतान्—पुत्रों को।

रथीतर निःसन्तान था अतएव उसने अंगिरा ऋषि से पुत्र उत्पन्न करने के लिए प्रार्थना की। इस प्रार्थना के फलस्वरूप अंगिरा ने रथीतर की पत्नी के गर्भ से पुत्र उत्पन्न कराये। ये सारे पुत्र ब्राह्मण तेज से सम्पन्न थे।

तात्पर्य : वैदिक युग में कभी-कभी निम्न कुल वाले पुरुष की पत्नी से अच्छी सन्तान उत्पन्न करने के लिए किसी उच्च पुरुष को बुलाया जाता था। ऐसी स्थिति में स्त्री की तुलना खेत से की जाती है। खेत वाला व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति को अन्न उपजाने का काम सौंप सकता है, किन्तु उस खेत से जो अन्न उपजता है वह खेत के स्वामी का होता है। इसी प्रकार स्त्री को कभी-कभी अपने पति के अतिरिक्त किसी अन्य पुरुष से गर्भ धारण करना होता था, किन्तु इस तरह से उत्पन्न पुत्र उसके पति के पुत्र कहलाते थे। ये पुत्र *क्षेत्र-जात* कहलाते थे। चूँकि रथीतर के कोई पुत्र न था अतएव उसने इस विधि का लाभ उठाया।

एते क्षेत्रप्रसूता वै पुनस्त्वाङ्गिरसाः स्मृताः ।
रथीतराणां प्रवराः क्षेत्रोपेता द्विजातयः ॥ ३॥

शब्दार्थ

एते—अंगिरा द्वारा उत्पन्न पुत्र; क्षेत्र-प्रसूताः—रथीतर की सन्तान बने और उसके कुल के कहलाये (क्योंकि वे उसकी पत्नी के गर्भ से हुए थे); वै—निस्सन्देह; पुनः—फिर; तु—लेकिन; आङ्गिरसाः—अंगिरा के वंश के; स्मृताः—कहलाये; रथीतराणाम्—रथीतर के सारे पुत्रों का; प्रवराः—प्रमुख; क्षेत्र-उपेताः—क्षेत्र से उत्पन्न होने के कारण; द्वि-जातयः—ब्राह्मण कहलाये (ब्राह्मण तथा क्षत्रिय का मिश्रण होकर)।

रथीतर की पत्नी से जन्म लेने के कारण ये सारे पुत्र रथीतर के वंशज कहलाये, किन्तु अंगिरा के वीर्य से उत्पन्न होने के कारण वे अंगिरा के वंशज भी कहलाये। रथीतर की सन्तानों में से ये पुत्र सबसे अधिक प्रसिद्ध थे क्योंकि अपने जन्म के कारण ये ब्राह्मण समझे जाते थे।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने *द्वि-जातयः* शब्द का अर्थ "मिश्रजाति" दिया है जो ब्राह्मण तथा क्षत्रिय के मिश्रण का सूचक है।

**क्षुवतस्तु मनोर्जज्ञे इक्ष्वाकुर्घ्राणतः सुतः ।
तस्य पुत्रशतज्येष्ठा विकुक्षिनिमिदण्डकाः ॥ ४॥**

शब्दार्थ

क्षुवतः—छींकते समय; तु—लेकिन; मनोः—मनु के; जज्ञे—उत्पन्न हुआ; इक्ष्वाकुः—इक्ष्वाकु नामक; घ्राणतः—नथुनों से; सुतः—पुत्र; तस्य—इक्ष्वाकु के; पुत्र-शत—एक सौ पुत्र; ज्येष्ठाः—प्रमुख; विकुक्षि—विकुक्षि नामक; निमि—निमि नामक; दण्डकाः—दण्डका नामक।

मनु का पुत्र इक्ष्वाकु था। जब मनु छींक रहे थे तो इक्ष्वाकु उनके नथुनों से उत्पन्न हुआ था। राजा इक्ष्वाकु के एक सौ पुत्र थे जिनमें से विकुक्षि, निमि तथा दण्डका प्रमुख थे।

तात्पर्य : श्रीधर स्वामी के अनुसार यद्यपि *भागवत* में (९.१.११-१२) इक्ष्वाकु को मनु की पत्नी श्रद्धा से उत्पन्न दस पुत्रों में से एक माना गया है, किन्तु यह एक सामान्यीकरण है। यहाँ यह विशेष रूप से बतलाया गया है कि इक्ष्वाकु का जन्म मनु के छींकने मात्र से हुआ था।

**तेषां पुरस्तादभवन्नार्यावर्ते नृपा नृप ।
पञ्चविंशतिः पश्चाच्च त्रयो मध्येऽपरेऽन्यतः ॥ ५॥**

शब्दार्थ

तेषाम्—इन पुत्रों में से; पुरस्तात्—पूर्व दिशा में; अभवन्—वे बने; आर्यावर्ते—आर्यावर्त में, जो हिमालय तथा विन्ध्याचल पर्वतों के बीच का स्थान था; नृपाः—राजा; नृप—हे राजा (परीक्षित); पञ्च-विंशतिः—पच्चीस; पश्चात्—पश्चिम दिशा में; च—भी; त्रयः—उनमें से तीन; मध्ये—मध्य में (पूर्व और पश्चिम के बीच); अपरे—अन्य; अन्यतः—अन्य स्थानों में।

सौ पुत्रों में से पच्चीस पुत्र हिमालय तथा विन्ध्याचल पर्वतों के मध्यवर्ती स्थान आर्यावर्त के पश्चिमी भाग के राजा बने, पच्चीस पुत्र पूर्वी आर्यावर्त के राजा बने और तीन प्रमुख पुत्र मध्यवर्ती प्रदेश के राजा बने। शेष पुत्र अन्य विविध स्थानों के राजा बने।

**स एकदाष्टकाश्राद्धे इक्ष्वाकुः सुतमादिशत् ।
मांसमानीयतां मेध्यं विकुक्षे गच्छ मा चिरम् ॥ ६॥**

शब्दार्थ

सः—वह राजा (महाराज इक्ष्वाकु); एकदा—एक बार; अष्टका-श्राद्धे—जनवरी, फरवरी तथा मार्च के महीनों मे जब पितरों की श्राद्ध की जाती है; इक्ष्वाकुः—राजा इक्ष्वाकु ने; सुतम्—अपने पुत्र को; आदिशत्—आज्ञा दी; मांसम्—मांस; आनीयताम्—ले आओ; मेध्यम्—शुद्ध (शिकार करके); विकुक्षे—हे विकुक्षि; गच्छ—तुरन्त जाओ; मा चिरम्—बिना देर लगाये।

जनवरी, फरवरी तथा मार्च के महीनों में पितरों को दिये जाने वाली भेंटें अष्टका श्राद्ध कहलाती है। श्राद्ध महीने के कृष्णपक्ष में सम्पन्न किया जाता है। जब महाराज इक्ष्वाकु श्राद्ध मनाते हुए भेंटें दे रहे थे तो उन्होंने अपने पुत्र विकुक्षि को आदेश दिया कि वह तुरन्त जंगल में जाकर कुछ शुद्ध मांस

ले आये।

तथेति स वनं गत्वा मृगान्हत्वा क्रियार्हणान् ।
श्रान्तो बुभुक्षितो वीरः शशं चाददपस्मृतिः ॥ ७॥

शब्दार्थ

तथा—आदेशानुसार; इति—इस प्रकार; सः—विकुक्षि; वनम्—जंगल में; गत्वा—जाकर; मृगान्—पशुओं को; हत्वा—मारकर; क्रिया-अर्हणान्—श्राद्ध में यज्ञ करने के उपयुक्त; श्रान्तः—थका हुआ; बुभुक्षितः—तथा भूखा; वीरः—वीर पुरुष; शशम्—खरहे को; च—भी; आदत्—खाया; अपस्मृतिः—यह भूल गया (कि यह मांस श्राद्ध में भेंट के लिए है)।

तत्पश्चात् इक्ष्वाकु पुत्र विकुक्षि जंगल में गया और उसने श्राद्ध में भेंट देने के लिए अनेक पशु मारे। किन्तु जब वह थक गया और भूखा हुआ तो भूल से उसने मारे हुए एक खरगोश को खा लिया।

तात्पर्य : स्पष्ट है कि क्षत्रिय लोग जंगल में जाकर पशुओं का वध करते थे क्योंकि पशुओं का मांस विशेष प्रकार के यज्ञों में भेंट चढ़ाया जाता था। श्राद्ध में पूर्वजों को भेंटें चढ़ाना भी एक प्रकार का यज्ञ है। इस यज्ञ में जंगल में किए गए शिकार से प्राप्त किया गया मांस भेंट किया जाता था। लेकिन अधुना कलियुग में ऐसी भेंट चढ़ाना वर्जित है। *ब्रह्मवैवर्त पुराण* से उद्धरण देते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा—

अश्वमेधं गवालम्भं संन्यासं पलपैतृकम्।

देवरेण सुतोत्पत्तिं कलौ पञ्च विवर्जयेत्॥

"इस कलिकाल में पाँच कर्म वर्जित हैं—यज्ञ में घोड़े की बलि, यज्ञ में गाय की बलि, संन्यास आश्रम ग्रहण करना, पितरों को श्राद्ध में मांस भेंट करना तथा अपने अनुज की पत्नी से सन्तान उत्पन्न करना।" *पल-पैतृकम्* शब्द पितरों के श्राद्ध में मांस की भेंट चढ़ाने का सूचक है। पहले ऐसी भेंट की अनुमति दी जाती थी, किन्तु इस युग में यह वर्जित है। कलियुग में हर व्यक्ति पशु का शिकार करने में पटु है, किन्तु अधिकांश लोग क्षत्रिय न होकर शूद्र हैं। वैदिक आदेशानुसार क्षत्रिय ही शिकार कर सकते हैं जबकि शूद्रों को देवी काली या अन्य देवताओं के अर्चाविग्रह के समक्ष बकरे या अन्य नगण्य पशुओं की बलि देकर मांस खाने की अनुमति प्राप्त है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि मांस खाना सर्वथा वर्जित नहीं है; किसी विशेष श्रेणी के व्यक्तियों को विविध परिस्थितियों एवं आदेशों के अनुसार मांस खाने की अनुमति प्राप्त है। किन्तु जहाँ तक गोमांस खाने की बात है, यह सर्वथा वर्जित है। इसीलिए *भगवद्गीता* में कृष्ण

स्वयं गोरक्ष्यम् अर्थात् गोरक्षा की बात कहते हैं। मांस खाने वालों को विभिन्न स्थितियों एवं शास्त्रों के निर्देशानुसार मांस खाने की अनुमति मिली है लेकिन गोमांस की कदापि नहीं। गायों की पूरी तरह से रक्षा की जानी चाहिए।

शेषं निवेदयामास पित्रे तेन च तद्गुरुः ।
चोदितः प्रोक्षणायाह दुष्टमेतदकर्मकम् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

शेषम्—उच्छिष्ट; निवेदयाम् आस—उसने प्रदान किया; पित्रे—अपने पिता को; तेन—उसके द्वारा; च—भी; तत्-गुरुः—उनके गुरु ने; चोदितः—आग्रह किये जाने पर; प्रोक्षणाय—शुद्ध करने के लिए; आह—कहा; दुष्टम्—प्रदूषित; एतत्—यह मांस; अकर्मकम्—श्राद्ध में अर्पित करने के अयोग्य।

विकुक्षि ने शेष मांस राजा इक्ष्वाकु को लाकर दे दिया जिन्होंने उसे शुद्ध करने के लिए वसिष्ठ को दे दिया। लेकिन वसिष्ठ यह तुरन्त समझ गये कि उस मांस का कुछ भाग विकुक्षि ने पहले ही ग्रहण कर लिया है; अतएव उन्होंने कहा कि यह मांस श्राद्ध में प्रयुक्त होने केलिए अनुपयुक्त है।

तात्पर्य : यज्ञ में प्रयुक्त की जाने वाली किसी भी वस्तु को अर्चाविग्रह को भेंट किये बिना चखा नहीं जा सकता। हमारे मन्दिरों में यह नियम लागू है। जब तक भोजन अर्चाविग्रह को अर्पित नहीं कर दिया जाता तब तक कोई व्यक्ति रसोई से भोजन खा नहीं सकता। यदि अर्चाविग्रह को भेंट करने के पूर्व कुछ भी निकाल लिया जाता है तो सारा भोजन दूषित हो जाता है और उसे अर्चाविग्रह पर नहीं चढ़ाया जाता। जो लोग अर्चाविग्रह की पूजा करते हैं उन्हें इसे ठीक से जान लेना चाहिए जिससे वे अर्चाविग्रह पूजा में अपराध करने से बचे रहें।

ज्ञात्वा पुत्रस्य तत्कर्म गुरुणाभिहितं नृपः ।
देशान्निःसारयामास सुतं त्यक्तविधिं रुषा ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

ज्ञात्वा—जान लेने पर; पुत्रस्य—अपने पुत्र की; तत्—वह; कर्म—करनी; गुरुणा—गुरु (वसिष्ठ) द्वारा; अभिहितम्—सूचित किया गया; नृपः—राजा (इक्ष्वाकु) ने; देशात्—देश से; निःसारयाम् आस—निकाल दिया; सुतम्—पुत्र को; त्यक्त-विधिम्—क्योंकि उसने विधान का उल्लंघन किया था; रुषा—क्रोध में आकर।

जब राजा इक्ष्वाकु वसिष्ठ द्वारा बताये जाने पर समझ गये कि उनके पुत्र विकुक्षि ने क्या किया है तो वे अत्यन्त क्रुद्ध हुए। इस प्रकार उन्होंने विकुक्षि को देश छोड़ने की आज्ञा दे दी क्योंकि उसने

विधि-विधान का उल्लंघन किया था।

स तु विप्रेण संवादं ज्ञापकेन समाचरन् ।
त्यक्त्वा कलेवरं योगी स तेनावाप यत्परम् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

सः—महाराज इक्ष्वाकु; तु—निस्सन्देह; विप्रेण—ब्राह्मण (वसिष्ठ) के साथ; संवादम्—वार्तालाप; ज्ञापकेन—सूचना देने वाले के साथ; समाचरन्—तदनुसार करते हुए; त्यक्त्वा—त्यागकर; कलेवरम्—शरीर को; योगी—संन्यास लेकर भक्तियोगी बनकर; सः—राजा; तेन—ऐसे उपदेश से; अवाप—प्राप्त किया; यत्—वह पद जो; परम्—सर्वश्रेष्ठ।

महान् एवं विद्वान ब्राह्मण वसिष्ठ के साथ परम सत्य विषयक वार्तालाप के बाद उनके द्वारा उपदेश दिये जाने पर महाराज इक्ष्वाकु विरक्त हो गये। उन्होंने योगी के नियमों का पालन करते हुए भौतिक शरीर त्यागने के बाद परम सिद्धि प्राप्त की।

पितर्युपरतेऽभ्येत्य विकुक्षिः पृथिवीमिमाम् ।
शासदीजे हरिं यज्ञैः शशाद इति विश्रुतः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

पितरि—अपने पिता के; उपरते—राज्य छोड़ने पर; अभ्येत्य—वापस आकर; विकुक्षिः—विकुक्षि ने; पृथिवीम्—पृथ्वीलोक को; इमाम्—इस; शासत्—शासन करते हुए; ईजे—पूजा की; हरिम्—भगवान् की; यज्ञैः—यज्ञों के द्वारा; शश-अदः—शशाद (खरगोश खाने वाला); इति—इस प्रकार; विश्रुतः—विख्यात हुआ।

अपने पिता के चले जाने पर विकुक्षि अपने देश लौट आया और पृथ्वीलोक पर शासन करते हुए तथा भगवान् को प्रसन्न करने के लिए विविध यज्ञ करते हुए वह राजा बना। बाद में विकुक्षि शशाद नाम से विख्यात हुआ।

पुरञ्जयस्तस्य सुत इन्द्रवाह इतीरितः ।
ककुत्स्थ इति चाप्युक्तः शृणु नामानि कर्मभिः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

पुरम्-जयः—पुरञ्जय (पुर का विजेता); तस्य—उसका (विकुक्षि का); सुतः—पुत्र; इन्द्र-वाहः—इन्द्रवाह (इन्द्र जिसका वाहन है); इति—इस प्रकार; ईरितः—विख्यात; ककुत्स्थः—ककुत्स्थ (बैल के डिल्ले पर स्थित); इति—इस प्रकार; च—भी; अपि—निस्सन्देह; उक्तः—इस तरह ज्ञात; शृणु—सुनो; नामानि—सारे नाम; कर्मभिः—अपने-अपने कर्म के अनुसार।

शशाद का पुत्र पुरञ्जय हुआ जो इन्द्रवाह के रूप में और कभी-कभी ककुत्स्थ के नाम से विख्यात है। अब मुझसे यह सुनो कि उसने विभिन्न कार्यों के लिए भिन्न-भिन्न नाम किस तरह प्राप्त किये।

कृतान्त आसीत्समरो देवानां सह दानवैः ।
पार्ष्णिग्राहो वृतो वीरो देवैर्दैत्यपराजितैः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

कृत-अन्तः—विनाशकारी युद्ध; आसीत्—था; समरः—युद्ध; देवानाम्—देवताओं के; सह—के साथ; दानवैः—असुरों; पार्ष्णिग्राहः—अच्छा सहायक; वृतः—स्वीकार किया; वीरः—वीर; देवैः—देवताओं के द्वारा; दैत्य—दैत्यों के द्वारा; पराजितैः—जो हराये जा चुके थे।

पूर्वकाल में देवताओं तथा असुरों के मध्य एक घमासान युद्ध हुआ। पराजित होकर देवताओं ने पुरञ्जय को अपना सहायक बनाया और तब वे असुरों को पराजित कर सके। अतएव यह वीर पुरञ्जय कहलाता है अर्थात् जिसने असुरों के निवासों को जीत लिया है।

वचनाद्देवदेवस्य विष्णोर्विश्वात्मनः प्रभोः ।
वाहनत्वे वृतस्तस्य बभूवेन्द्रो महावृषः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

वचनात्—आदेश या वचनों से; देव-देवस्य—समस्त देवताओं के स्वामी; विष्णोः—भगवान् विष्णु का; विश्व-आत्मनः—सम्पूर्ण सृष्टि के परमात्मा; प्रभोः—भगवान् या नियन्ता का; वाहनत्वे—वाहन बनने के कारण; वृतः—लगा हुआ; तस्य—पुरञ्जय की सेवा में; बभूव—बन गया; इन्द्रः—इन्द्र; महा-वृषः—बड़ा सा बैल।

पुरञ्जय ने सारे असुरों को इस शर्त पर मारना स्वीकार किया कि इन्द्र उसका वाहन बनेगा। किन्तु गर्ववश इन्द्र ने यह प्रस्ताव पहले अस्वीकार कर दिया, किन्तु बाद में भगवान् विष्णु के आदेश से उसने इसे स्वीकार कर लिया और पुरञ्जय की सवारी के लिए वह बड़ा सा बैल बन गया।

स सन्नद्धो धनुर्दिव्यमादाय विशिखाञ्छितान् ।
स्तूयमानस्तमारुह्य युयुत्सुः ककुदि स्थितः ॥ १५ ॥
तेजसाप्यायितो विष्णोः पुरुषस्य महात्मनः ।
प्रतीच्यां दिशि दैत्यानां न्यरुणत्त्रिदशैः पुरम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

सः—पुरञ्जय; सन्नद्धः—पूरी तरह युक्त होकर; धनुः दिव्यम्—श्रेष्ठ या दिव्य धनुष; आदाय—लेकर; विशिखान्—तीरों को; शितान्—अत्यन्त पैने; स्तूयमानः—अत्यधिक प्रशंसित होकर; तम्—उस (बैल पर); आरुह्य—चढ़कर; युयुत्सुः—लड़ने के लिए तैयार होकर; ककुदि—बैल के डिल्ले पर; स्थितः—स्थित; तेजसा—बल से; आप्यायितः—कृपाप्राप्त; विष्णोः—विष्णु के; पुरुषस्य—परम पुरुष; महा-आत्मनः—परमात्मा; प्रतीच्याम्—पश्चिमी; दिशि—दिशा में; दैत्यानाम्—असुरों का; न्यरुणत्—कब्जे में कर लिया; त्रिदशैः—देवताओं को साथ लेकर; पुरम्—आवास को।

कवच से भलीभाँति सुरक्षित होकर और युद्ध करने की इच्छा से पुरञ्जय ने अपना दिव्य धनुष तथा अत्यन्त तीक्ष्ण बाण धारण किया और देवताओं द्वारा अत्यधिक प्रशंसित होकर वह बैल (इन्द्र)

की पीठ पर सवार हुआ तथा उसके डिल्ले पर बैठ गया। इसलिए वह ककुत्स्थ कहलाता है। परमात्मा तथा परम पुरुष भगवान् विष्णु से शक्ति प्राप्त करके पुरञ्जय उस बड़े बैल पर सवार हो गया, इसलिए वह इन्द्रवाह कहलाता है। देवताओं को साथ लेकर उसने पश्चिम में असुरों के निवासस्थानों पर आक्रमण कर दिया।

तैस्तस्य चाभूत्प्रधनं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
यमाय भल्लैरनयद्दैत्यानभिययुर्मृधे ॥ १७॥

शब्दार्थ

तैः—असुरों के साथ; तस्य—उसकी; च—भी; अभूत्—हुई; प्रधनम्—लड़ाई; तुमुलम्—घनघोर; लोम-हर्षणम्—जिसे सुनकर रोमांच हो जाता है; यमाय—यमराज के घर के लिए; भल्लैः—तीरों से; अनयत्—भेज दिया; दैत्यान्—असुरों को; अभिययुः—जो उसकी ओर आये; मृधे—उस युद्ध में।

असुरों तथा पुरञ्जय के मध्य घनघोर लड़ाई छिड़ गई। निस्सन्देह, यह इतनी भयानक थी कि सुनने वाले के रोंगटे खड़े हो जाते। जितने सारे असुर पुरञ्जय के समक्ष आने का साहस करते वे सभी उसके तीरों से तुरन्त यमराज के घर भेज दिये जाते।

तस्येषुपाताभिमुखं युगान्ताग्निमिवोल्बणम् ।
विसृज्य दुद्रुवुर्दैत्या हन्यमानाः स्वमालयम् ॥ १८॥

शब्दार्थ

तस्य—उसके (पुरञ्जय के); इषु-पात—तीर फेंकने; अभिमुखम्—के समक्ष; युग-अन्त—युग के अन्त में; अग्निम्—ज्वाला; इव—सदृश; उल्बणम्—भयानक; विसृज्य—आक्रमण करना छोड़कर; दुद्रुवुः—भग गये; दैत्याः—सारे असुर; हन्यमानाः—मारे जाकर (पुरञ्जय द्वारा); स्वम्—अपने; आलयम्—घर को।

इन्द्रवाह के अग्नि उगलते तीरों से अपने को बचाने के लिए वे असुर, जो अपनी सेना के मारे जाने के बाद बचे थे, तेजी से अपने-अपने घरों को भाग खड़े हुए क्योंकि यह अग्नि युग के अन्त में उठने वाली प्रलयाग्नि के समान थी।

जित्वा परं धनं सर्वं सस्त्रीकं वज्रपाणये ।
प्रत्ययच्छत्स राजर्षिरिति नामभिराहृतः ॥ १९॥

शब्दार्थ

जित्वा—जीतकर; परम्—दुश्मनों को; धनम्—धन को; सर्वम्—हर वस्तु; स-स्त्रीकम्—उनकी पत्नियों समेत; वज्र-पाणये—इन्द्र को जो वज्र धारण करता है; प्रत्ययच्छत्—लौटाकर दे दिया; सः—वह; राज-ऋषिः—सन्त राजा (पुरञ्जय); इति—इस प्रकार; नामभिः—नामों से; आहृतः—पुकारा जाता था।

शत्रु को जीतने के बाद सन्त राजा पुरञ्जय ने वज्रधारी इन्द्र को सब कुछ लौटा दिया जिसमें शत्रु का धन तथा पत्नियाँ सम्मिलित थीं। इसी हेतु वह पुरञ्जय नाम से विख्यात है। इस तरह पुरञ्जय अपने विविध कार्यकलापों के कारण विभिन्न नामों से जाना जाता है।

पुरञ्जयस्य पुत्रोऽभूदनेनास्तत्सुतः पृथुः ।
विश्वगन्धिस्ततश्चन्द्रो युवनाश्वस्तु तत्सुतः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

पुरञ्जयस्य—पुरञ्जय का; पुत्रः—पुत्र; अभूत्—हुआ; अनेनाः—अनेना नामक; तत्-सुतः—उसका पुत्र; पृथुः—पृथु; विश्वगन्धिः—विश्वगन्धि नामक; ततः—उसका पुत्र; चन्द्रः—चन्द्र; युवनाश्वः—युवनाश्व नामधारी; तु—निस्सन्देह; तत्-सुतः—उसका पुत्र।

पुरञ्जय का पुत्र अनेना कहलाया। अनेना का पुत्र पृथु था और पृथु का पुत्र विश्वगन्धि। विश्वगन्धि का पुत्र चन्द्र हुआ और चन्द्र का पुत्र युवनाश्व था।

श्रावस्तस्तत्सुतो येन श्रावस्ती निर्ममे पुरी ।
बृहदश्वस्तु श्रावस्तिस्ततः कुवलयाश्वकः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

श्रावस्तः—श्रावस्त नामक; तत्-सुतः—युवनाश्व का पुत्र; येन—जिसके द्वारा; श्रावस्ती—श्रावस्ती नामक; निर्ममे—निर्मित कराई गई; पुरी—नगरी; बृहदश्वः—बृहदश्व; तु—किन्तु; श्रावस्तिः—श्रावस्त से उत्पन्न; ततः—उससे; कुवलयाश्वकः—कुवलयाश्व नामधारी।

युवनाश्व का पुत्र श्रावस्त था जिसने श्रावस्ती नामक पुरी का निर्माण कराया। श्रावस्त का पुत्र बृहदश्व था और उसका पुत्र कुवलयाश्व था। इस तरह यह वंश बढ़ता रहा।

यः प्रियार्थमुतङ्कस्य धुन्धुनामासुरं बली ।
सुतानामेकविंशत्या सहस्रैरहनद्वृतः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; प्रिय-अर्थम्—संतोष के लिए; उतङ्कस्य—उतंक नामक ऋषि का; धुन्धु-नाम—धुन्धु नाम के; असुरम्—असुर को; बली—अत्यन्त शक्तिशाली (कुवलयाश्व); सुतानाम्—पुत्रों को; एक-विंशत्या—इक्कीस; सहस्रैः—हजार; अहनत्—मार डाला; वृतः—घिरा हुआ।

उतंक ऋषि को संतुष्ट करने के लिए परम शक्तिशाली कुवलयाश्व ने धुन्धु नामक असुर का वध किया। उसने अपने इक्कीस हजार पुत्रों की सहायता से ऐसा किया।

धुन्धुमार इति ख्यातस्तत्सुतास्ते च जज्वलुः ।
धुन्धोर्मुखाग्निना सर्वे त्रय एवावशेषिताः ॥ २३॥
दृढाश्वः कपिलाश्वश्च भद्राश्व इति भारत ।
दृढाश्वपुत्रो हर्यश्वो निकुम्भस्तत्सुतः स्मृतः ॥ २४॥

शब्दार्थ

धुन्धु-मारः—धुन्धु को मारने वाला; इति—इस प्रकार; ख्यातः—प्रसिद्ध; तत्-सुताः—उसके पुत्रों ने; ते—उन सभी; च—भी; जज्वलुः—जला दिया; धुन्धोः—धुन्धु के; मुख-अग्निना—मुख से निकलती अग्नि से; सर्वे—वे सभी; त्रयः—तीन; एव—केवल; अवशेषिताः—जीवित बचे; दृढाश्वः—दृढ़ाश्व; कपिलाश्वः—कपिलाश्व; च—तथा; भद्राश्वः—भद्राश्व; इति—इस प्रकार; भारत—हे महाराज परीक्षित; दृढाश्व-पुत्रः—दृढ़ाश्व का पुत्र; हर्यश्वः—हर्यश्व; निकुम्भः—निकुम्भ; तत्-सुतः—उसका पुत्र; स्मृतः—विख्यात।

हे महाराज परीक्षित, इस कारण से कुवलयाश्व धुन्धुमार कहलाता है। किन्तु उसके तीन पुत्रों को छोड़कर शेष सभी धुन्धु के मुख से निकलने वाली अग्नि से जलकर राख हो गये। बचे हुए पुत्रों के नाम हैं—दृढ़ाश्व, कपिलाश्व तथा भद्राश्व। दृढ़ाश्व के हर्यश्व नामक पुत्र हुआ जिसका पुत्र निकुम्भ नाम से विख्यात है।

बहुलाश्वो निकुम्भस्य कृशाश्वोऽथास्य सेनजित् ।
युवनाश्वोऽभवत्तस्य सोऽनपत्यो वनं गतः ॥ २५॥

शब्दार्थ

बहुलाश्वः—बहुलाश्व का; निकुम्भस्य—निकुम्भ का; कृशाश्वः—कृशाश्व; अथ—तत्पश्चात्; अस्य—कृशाश्व का; सेनजित्—सेनजित; युवनाश्वः—युवनाश्व; अभवत्—उत्पन्न हुआ; तस्य—सेनजित के; सः—वह; अनपत्यः—निःसन्तान; वनम् गतः—वानप्रस्थी बनकर जंगल चला गया।

निकुम्भ का पुत्र बहुलाश्व था, बहुलाश्व का पुत्र कृशाश्व और कृशाश्व का पुत्र सेनजित हुआ। सेनजित का पुत्र युवनाश्व था। युवनाश्व के कोई सन्तान नहीं थी इसलिए वह गृहस्थ जीवन त्यागकर जंगल चला गया।

भार्याशतेन निर्विण्ण ऋषयोऽस्य कृपालवः ।
इष्टिं स्म वर्तयां चक्रुरैन्द्रीं ते सुसमाहिताः ॥ २६॥

शब्दार्थ

भार्या-शतेन—एक सौ पत्नियों के साथ; निर्विण्णः—अत्यन्त खिन्न; ऋषयः—ऋषिगण; अस्य—उस पर; कृपालवः—अत्यन्त कृपालु; इष्टिम्—एक अनुष्ठान; स्म—भूतकाल में; वर्तयाम् चक्रुः—सम्पन्न करने लगा; ऐन्द्रीम्—इन्द्रयज्ञ; ते—वे सभी; सु-समाहिताः—अत्यन्त सावधान।

यद्यपि युवनाश्व अपनी एक सौ पत्नियों सहित जंगल में चला गया, किन्तु वे सभी अत्यन्त खिन्न थीं। तथापि जंगल के ऋषि राजा पर अत्यन्त दयालु थे, अतएव वे मनोयोगपूर्वक इन्द्रयज्ञ करने लगे

जिससे राजा के पुत्र उत्पन्न हो सके।

तात्पर्य : यदि कोई चाहे तो अपनी पत्नी के साथ वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश हो सकता है, किन्तु वानप्रस्थ आश्रम का अर्थ है गृहस्थ जीवन से पूर्ण विरक्ति। यद्यपि युवनाश्व गृहस्थ जीवन से विरक्त हो चुका था, किन्तु वे और उसकी पत्नियाँ कोई सन्तान न होने के कारण सदा खिन्न रहती थीं।

राजा तद्यज्ञसदनं प्रविष्टो निशि तर्षितः ।
दृष्ट्वा शयानान्विप्रांस्तान्पपौ मन्त्रजलं स्वयम् ॥ २७॥

शब्दार्थ

राजा—राजा (युवनाश्व); तत्-यज्ञ-सदनम्—यज्ञशाला में; प्रविष्टः—प्रवेश किया; निशि—रात में; तर्षितः—प्यासे होने के कारण; दृष्ट्वा—देखकर; शयानान्—लेटे हुए; विप्रान्—ब्राह्मणों को; तान्—उन सभी; पपौ—पी लिया; मन्त्र-जलम्—मंत्र द्वारा पवित्र किया हुआ जल; स्वयम्—खुद।

एक रात्रि को प्यासे होने के कारण राजा यज्ञशाला में घुस गया और जब उसने देखा कि सारे ब्राह्मण लेटे हुए हैं तो उसने अपनी पत्नी के पीने के लिए रखे हुए मंत्र से पवित्र किये गये जल को स्वयं पी लिया।

तात्पर्य : वैदिक अनुष्ठानों के अनुसार ब्राह्मणों द्वारा सम्पन्न यज्ञ इतने शक्तिशाली होते हैं कि वैदिक मंत्रों से पवित्र किया हुआ जल वांछित फल देने वाला हो सकता है। यहाँ पर ब्राह्मणों ने जल को पवित्र किया था जिससे राजा की पत्नी उसे यज्ञ में पी सके, किन्तु दैववश राजा रात में वहाँ गया और प्यासा होने के कारण वह वही जल पी गया।

उत्थितास्ते निशम्याथ व्युदकं कलशं प्रभो ।
पप्रच्छुः कस्य कर्मेदं पीतं पुंसवनं जलम् ॥ २८॥

शब्दार्थ

उत्थिताः—जगने पर; ते—वे सभी; निशम्य—देखकर; अथ—तत्पश्चात्; व्युदकम्—रिक्त, खाली; कलशम्—जलपात्र को; प्रभो—हे राजा परीक्षित; पप्रच्छुः—पूछा; कस्य—किसका; कर्म—करतूत; इदम्—यह; पीतम्—पिया हुआ; पुंसवनम्—सन्तान उत्पन्न करने वाला; जलम्—जल।

जब सारे ब्राह्मण जगे और उन्होंने देखा कि जलपात्र खाली है तो उन्होंने पूछा कि संतान उत्पन्न करने वाले जल को किसने पिया है?

राज्ञा पीतं विदित्वा वै ईश्वरप्रहितेन ते ।
ईश्वराय नमश्चक्रुरहो दैवबलं बलम् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

राज्ञा—राजा द्वारा; पीतम्—पिया गया; विदित्वा—यह जानकर; वै—निस्सन्देह; ईश्वर-प्रहितेन—विधाता द्वारा प्रेरित; ते—उन सबों ने; ईश्वराय—ईश्वर को; नमः चक्रुः—नमस्कार किया; अहो—ओह; दैव-बलम्—दैवी शक्ति; बलम्—वास्तविक बल है।

जब ब्राह्मणों को यह ज्ञात हुआ कि ईश्वर द्वारा प्रेरित होकर राजा ने जल पी लिया है तो उन्होंने विस्मित होकर कहा, ''ओह! विधाता की शक्ति ही असली शक्ति है। ईश्वर की शक्ति का कोई भी निराकरण नहीं कर सकता।'' इस तरह उन्होंने भगवान् को सादर नमस्कार किया।

ततः काल उपावृत्ते कुक्षिं निर्भिद्य दक्षिणम् ।
युवनाश्वस्य तनयश्चक्रवर्ती जजान ह ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; काले—समय; उपावृत्ते—पूरा हो जाने पर; कुक्षिम्—उदर का निचला भाग; निर्भिद्य—भेदकर; दक्षिणम्—दाहिनी ओर का; युवनाश्वस्य—राजा युवनाश्व का; तनयः—पुत्र; चक्रवर्ती—राजा के सारे उत्तम लक्षणों से युक्त; जजान—उत्पन्न किया; ह—भूतकाल में।

तत्पश्चात् कालक्रम से राजा युवनाश्व के उदर के दाहिनी ओर के निचले भाग से चक्रवर्ती राजा के उत्तम लक्षणों से युक्त एक पुत्र उत्पन्न हुआ।

कं धास्यति कुमारोऽयं स्तन्ये रोरूयते भृशम् ।
मां धाता वत्स मा रोदीरितीन्द्रो देशिनीमदात् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

कम्—किसके द्वारा; धास्यति—स्तन का दूध पिलाकर पाला जायेगा; कुमारः—बालक; अयम्—यह; स्तन्ये—स्तन का दूध पीने के लिए; रोरूयते—रो रहा है; भृशम्—अत्यधिक; माम् धाता—मुझको पियो; वत्स—प्यारे बेटे; मा रोदीः—मत रोओ; इति—इस प्रकार; इन्द्रः—इन्द्र ने; देशिनीम्—तर्जनी अँगुली; अदात्—चूसने के लिए दे दी।

वह बालक स्तन के दूध के लिए इतना अधिक रोया कि सारे ब्राह्मण चिन्तित हो उठे। उन्होंने कहा ''इस बालक को कौन पालेगा?'' तब उस यज्ञ में पूजित इन्द्र आये और उन्होंने बालक को सान्त्वना दी ''मत रोओ।'' फिर इन्द्र ने उस बालक के मुँह में अपनी तर्जनी अँगुली डालकर कहा ''तुम मुझे पी सकते हो।''

न ममार पिता तस्य विप्रदेवप्रसादतः ।
युवनाश्वोऽथ तत्रैव तपसा सिद्धिमन्वगात् ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; ममार—मरा; पिता—पिता; तस्य—बालक का; विप्र-देव-प्रसादतः—ब्राह्मणों की कृपा तथा आशीर्वाद से; युवनाश्वः—राजा युवनाश्व; अथ—तत्पश्चात्; तत्र एव—वहीं; तपसा—तपस्या द्वारा; सिद्धिम्—सिद्धि; अन्वगात्—प्राप्त की।

चूँकि उस बालक के पिता युवनाश्व को ब्राह्मणों का आशीर्वाद प्राप्त था अतः वह मृत्यु का शिकार नहीं हुआ। इस घटना के बाद उसने कठिन तपस्या की और उसी स्थान पर सिद्धि प्राप्त की।

त्रसद्दस्युरितीन्द्रोऽङ्ग विदधे नाम यस्य वै ।
यस्मात्त्रसन्ति ह्युद्विग्ना दस्यवो रावणादयः ॥ ३३ ॥
यौवनाश्वोऽथ मान्धाता चक्रवर्त्यवनीं प्रभुः ।
सप्तद्वीपवतीमेकः शशासाच्युततेजसा ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

त्रसत्-दस्युः—त्रसद्दस्यु नाम का (जो चोरों उचक्कों को धमकाये); इति—इस प्रकार; इन्द्रः—इन्द्र; अङ्ग—हे राजा; विदधे—दिया; नाम—नाम; यस्य—जिसका; वै—निस्सन्देह; यस्मात्—जिससे; त्रसन्ति—डरे हुए; हि—निश्चय ही; उद्विग्नाः—चिन्ता का कारण; दस्यवः—चोर-उचक्के; रावण-आदयः—रावण इत्यादि राक्षस; यौवनाश्वः—युवनाश्व का पुत्र; अथ—इस प्रकार; मान्धाता—मान्धाता नाम से विख्यात; चक्रवर्ती—सारे विश्व का सम्राट; अवनीम्—पृथ्वी पर; प्रभुः—स्वामी; सप्त-द्वीप-वतीम्—सात द्वीपों वाली; एकः—एकमात्र; शशास—शासन किया; अच्युत-तेजसा—भगवान् की कृपा से अत्यन्त शक्तिशाली होने से।

युवनाश्व-पुत्र मान्धाता, रावण तथा चिन्ता उत्पन्न करने वाले अन्य चोर उचक्कों के लिए भय का कारण बना था। हे राजा परीक्षित, चूँकि वे सब उससे भयभीत रहते थे, अतएव युवनाश्व का पुत्र त्रसद्दस्यु कहलाता था। यह नाम इन्द्र द्वारा रखा गया था। भगवान् की कृपा से युवनाश्व-पुत्र इतना शक्तिशाली था कि जब वह सम्राट बना तो उसने सात द्वीपों से युक्त सारे विश्व पर शासन किया। वह अद्वितीय शासक था।

ईजे च यज्ञं क्रतुभिरात्मविद्भूरिदक्षिणैः ।
सर्वदेवमयं देवं सर्वात्मकमतीन्द्रियम् ॥ ३५ ॥
द्रव्यं मन्त्रो विधिर्यज्ञो यजमानस्तथर्त्विजः ।
धर्मो देशश्च कालश्च सर्वमेतद्यदात्मकम् ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

ईजे—उसने पूजा की; च—भी; यज्ञम्—यज्ञों के स्वामी की; क्रतुभिः—कर्मकाण्डों द्वारा; आत्म-वित्—आत्म-साक्षात्कार के द्वारा पूर्णतया अभिज्ञ; भूरि-दक्षिणैः—ब्राह्मणों को प्रचुर दक्षिणा देकर; सर्व-देव-मयम्—सारे देवताओं से युक्त; देवम्—भगवान् को; सर्व-आत्मकम्—सबों के परमात्मा; अति-इन्द्रियम्—दिव्य रूप से स्थित; द्रव्यम्—अवयव; मन्त्रः—वैदिक स्तोत्रों का उच्चारण; विधिः—विधान; यज्ञः—पूजन; यजमानः—यज्ञ करने वाला; तथा—सहित; ऋत्विजः—पुरोहित; धर्मः—धार्मिक नियम; देशः—देश; च—तथा; कालः—समय; च—भी; सर्वम्—हर वस्तु; एतत्—ये सब; यत्—जो है; आत्मकम्—आत्म-साक्षात्कार के लिए उपयुक्त।

भगवान् महान् यज्ञों के कल्याणकारी पक्षो से—यथा यज्ञ की सामग्री, वैदिक स्तोत्रों का

उच्चारण, विधि-विधान, यज्ञकर्ता, पुरोहित, यज्ञ-फल, यज्ञ-शाला, यज्ञ के समय, इत्यादि से भिन्न नहीं हैं। मान्धाता ने आत्म-साक्षात्कार के नियमों को जानते हुए दिव्य पद पर स्थित परमात्मा स्वरूप उन भगवान् विष्णु की पूजा की जो समस्त देवताओं से युक्त हैं। उसने ब्राह्मणों को भी प्रचुर दान दिया और इस तरह उसने भगवान् की पूजा करने के लिए यज्ञ किया।

यावत्सूर्य उदेति स्म यावच्च प्रतितिष्ठति ।
तत्सर्वं यौवनाश्वस्य मान्धातुः क्षेत्रमुच्यते ॥ ३७॥

शब्दार्थ

यावत्—जब तक; सूर्यः—सूर्य; उदेति—उदय होता है; स्म—भूतकाल में; यावत्—जब तक; च—भी; प्रतितिष्ठति—रहता है; तत्—उपर्युक्त वस्तुएँ; सर्वम्—सभी; यौवनाश्वस्य—युवनाश्व के पुत्र; मान्धातुः—मान्धाता के; क्षेत्रम्—स्थान; उच्यते—कहलाता है।

क्षितिज में जहाँ से सूर्य उदय होकर चमकता है और जहाँ सूर्य अस्त होता है वे सारे स्थान युवनाश्व के पुत्र विख्यात मान्धाता के अधिकार में माने जाते हैं।

शशबिन्दोर्दुहितरि बिन्दुमत्यामधान्नृपः ।
पुरुकुत्समम्बरीषं मुचुकुन्दं च योगिनम् ।
तेषां स्वसारः पञ्चाशत्सौभरिं वव्रिरे पतिम् ॥ ३८॥

शब्दार्थ

शशबिन्दोः—शशबिन्दु राजा की; दुहितरि—पुत्री; बिन्दुमत्याम्—बिन्दुमती से; अधात्—उत्पन्न किया; नृपः—राजा (मान्धाता) ने; पुरुकुत्सम्—पुरुकुत्स को; अम्बरीषम्—अम्बरीष को; मुचुकुन्दम्—मुचुकुन्द को; च—तथा; योगिनम्—योगी; तेषाम्—उनमें से; स्वसारः—बहनों ने; पञ्चाशत्—पचास; सौभरिम्—सौभरि ऋषि को; वव्रिरे—स्वीकार किया; पतिम्—पति रूप में।

शशबिन्दु की पुत्री बिन्दुमती के गर्भ से मान्धाता को तीन पुत्र उत्पन्न हुए। इनके नाम थे पुरुकुत्स, अम्बरीष तथा महान् योगी मुचुकुन्द। इन तीनों भाइयों के पचास बहिनें थीं जिन्होंने सौभरि ऋषि को अपना पति चुना।

यमुनान्तर्जले मग्नस्तप्यमानः परं तपः ।
निर्वृतिं मीनराजस्य दृष्ट्वा मैथुनधर्मिणः ॥ ३९॥
जातस्पृहो नृपं विप्रः कन्यामेकामयाचत ।
सोऽप्याह गृह्यतां ब्रह्मन्कामं कन्या स्वयंवरे ॥ ४०॥

शब्दार्थ

यमुना-अन्तः-जले—यमुना नदी के गहरे जल में; मग्नः—पूरी तरह डूबकर; तप्यमानः—तपस्या करते हुए; परम्—असामान्य; तपः—तपस्या; निर्वृतिम्—आनन्द, सुख; मीन-राजस्य—बड़ी मछली का; दृष्ट्वा—देखकर; मैथुन-धर्मिणः—मैथुनरत; जात-स्पृहः—मन

चलायमान हो उठा; नृपम्—राजा (मान्धाता) के पास; विप्रः—ब्राह्मण (सौभरि ऋषि); कन्याम् एकाम्—इकलौती कन्या; अयाचत—माँगा; सः—उस, राजा ने; अपि—भी; आह—कहा; गृह्यताम्—आप ले सकते हैं; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; कामम्—चाहती है; कन्या—पुत्री; स्वयंवरे—स्वयं चुनाव में, स्वयंवर में।

सौभरि ऋषि यमुना नदी के गहरे जल में तपस्या में तल्लीन थे कि उन्होंने मछलियों के एक जोड़े को संभोगरत देखा। इस तरह उन्होंने विषयी जीवन का सुख अनुभव किया जिससे प्रेरित होकर वे राजा मान्धाता के पास गये और उनसे उनकी एक कन्या की याचना की। इस याचना के उत्तर में राजा ने कहा, ''हे ब्राह्मण, मेरी कोई भी पुत्री अपनी इच्छा से किसी को भी पति चुन सकती है।''

तात्पर्य : यहाँ सौभरि ऋषि की कहानी का शुभारम्भ होता है। विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार मान्धाता मथुरा का राजा था और सौभरि ऋषि यमुना नदी के गहरे जल में तपस्या कर रहे थे। जब ऋषि में कामेच्छा जगी तो वे जल से बाहर निकले और राजा मान्धाता के पास जाकर उन्होंने कहा कि वे अपनी एक पुत्री का विवाह उनसे कर दें।

स विचिन्त्याप्रियं स्त्रीणां जरठोऽहमसन्मतः ।
वलीपलित एजत्क इत्यहं प्रत्युदाहृतः ॥ ४१ ॥
साधयिष्ये तथात्मानं सुरस्त्रीणामभीप्सितम् ।
किं पुनर्मनुजेन्द्राणामिति व्यवसितः प्रभुः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

सः—उस, सौभरि मुनि ने; विचिन्त्य—अपने आप सोचकर; अप्रियम्—अच्छा न लगने वाला; स्त्रीणाम्—स्त्रियों के द्वारा; जरठः—वृद्ध होने के कारण अशक्त; अहम्—मैं; असत्-मतः—उनके द्वारा अनिच्छित; वली—झुर्री पड़ा; पलितः—सफेद बालों वाला; एजत्-कः—सदा सिर हिलता हुआ; इति—इस प्रकार; अहम्—मैं; प्रत्युदाहृतः—त्यक्त; साधयिष्ये—मैं इस तरह करूँगा; तथा—जिस तरह; आत्मानम्—मेरा शरीर; सुर-स्त्रीणाम्—स्वर्ग की स्त्रियों की; अभीप्सितम्—इच्छित; किम्—क्या कहूँ; पुनः—फिर भी; मनुज-इन्द्राणाम्—संसार के राजाओं की कन्याओं का; इति—इस तरह; व्यवसितः—निश्चित; प्रभुः—शक्तिशाली योगी सौभरि ने।

सौभरि मुनि ने सोचा: मैं वृद्धावस्था के कारण अब निर्बल हो गया हूँ। मेरे बाल सफेद हो चुके हैं, मेरी चमड़ी झूल रही है और मेरा सिर सदा हिलता रहता है। इसके अतिरिक्त मैं योगी हूँ। अतएव ये स्त्रियाँ मुझे पसन्द नहीं करतीं। चूँकि राजा ने मुझे तिरस्कृत कर दिया है अतएव मैं अपने शरीर को ऐसा बनाऊँगा कि मैं संसारी राजाओं की कन्याओं का ही नहीं अपितु सुर-सुन्दरियों के लिए भी अभीष्ट बन जाऊँ।

मुनिः प्रवेशितः क्षत्रा कन्यान्तःपुरमृद्धिमत् ।

वृतः स राजकन्याभिरेकं पञ्चाशता वरः ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

मुनिः—सौभरि मुनि; प्रवेशितः—भीतर ले जाये गये; क्षत्रा—महल के दूत द्वारा; कन्या-अन्तःपुरम्—राजकुमारियों के रिहायशी मकान में; ऋद्धि-मत्—सभी प्रकार से अत्यन्त ऐश्वर्यमय; वृतः—स्वीकार किया; सः—उसने; राज-कन्याभिः—सारी राजकुमारियों द्वारा; एकम्—अकेला वह; पञ्चाशता—पचासों द्वारा; वरः—पति।

तत्पश्चात् जब सौभरि मुनि तरुण और रूपवान हो गये तब राजप्रासाद का दूत उन्हें राजकुमारियों के अन्तःपुर में ले गया जो अत्यन्त ऐश्वर्यमय था। तत्पश्चात् उन पचासों राजकुमारियों ने उस अकेले व्यक्ति को अपना पति बना लिया।

तासां कलिरभूद्भूयांस्तदर्थेऽपोह्य सौहृदम् ।
ममानुरूपो नायं व इति तद्गतचेतसाम् ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

तासाम्—सारी राजकुमारियों में; कलिः—कलह तथा वैर; अभूत्—हो गया; भूयान्—अत्यधिक; तत्-अर्थे—सौभरि मुनि को लेकर; अपोह्य—त्यागकर; सौहृदम्—अच्छे सम्बन्ध; मम—मेरे; अनुरूपः—उपयुक्त व्यक्ति; न—नहीं; अयम्—यह; वः—तुम्हारा; इति—इस प्रकार; तत्-गत-चेतसाम्—उससे आकृष्ट होकर।

तत्पश्चात् राजकुमारियाँ सौभरि मुनि द्वारा आकृष्ट होकर अपना बहिन का नाता भूल गईं और परस्पर यह कहकर झगड़ने लगीं "यह व्यक्ति मेरे योग्य है, तुम्हारे योग्य नहीं।" इस तरह से उन सबों में काफी विरोध उत्पन्न हो गया।

स बह्वृचस्ताभिरपारणीय
तपःश्रियानर्घ्यपरिच्छदेषु ।
गृहेषु नानोपवनामलाम्भः
सरःसु सौगन्धिककाननेषु ॥ ४५ ॥
महार्हशय्यासनवस्त्रभूषण
स्नानानुलेपाभ्यवहारमाल्यकैः ।
स्वलङ्कृतस्त्रीपुरुषेषु नित्यदा
रेमेऽनुगायद्द्विजभृङ्गवन्दिषु ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

सः—वह, सौभरि ऋषि; बहु-ऋचः—वैदिक मंत्रों का उपयोग करने में पटु; ताभिः—अपनी पत्नियों के साथ; अपारणीय—असीम; तपः—तपस्या का फल; श्रिया—ऐश्वर्य से; अनर्घ्य—भोग की सामग्री; परिच्छदेषु—विभिन्न वस्त्रों से सज्जित; गृहेषु—घर में; नाना—तरह-तरह के; उपवन—पार्क; अमल—स्वच्छ; अम्भः—जल; सरःसु—झीलों में; सौगन्धिक—अत्यन्त सुगन्धित; काननेषु—बगीचों में; महा-अर्ह—अत्यन्त कीमती; शय्या—बिस्तर; आसन—बैठने के स्थान; वस्त्र—वस्त्र; भूषण—गहने; स्नान—स्नानागार; अनुलेप—चंदन; अभ्यवहार—व्यंजन; माल्यकैः—तथा मालाओं से; सु-अलङ्कृत—भलीभाँति सज्जित; स्त्री—स्त्रियाँ; पुरुषेषु—

पुरुषों सहित; नित्यदा—निरन्तर; रेमे—भोग किया; अनुगायत्—गायन के साथ; द्विज—पक्षी; भृङ्ग—भौंरे; वन्दिषु—तथा बन्दीजन, पेशेवर गवैये।

चूँकि सौभरि मुनि मंत्रोचारण करने में पूर्णरूपेन पटु थे अतएव उनकी कठिन तपस्या से ऐश्वर्यशाली घर, वस्त्र, गहने, सुसज्जित दास तथा दासियाँ स्वच्छ जलवाली झीलें, उद्यानों से युक्त विविध बगीचे उत्पन्न हो गये। उद्यानों में विविध प्रकार के सुगन्धित फूल, चहकते पक्षी तथा गुनगुनाते भौंरे थे और मुनि पेशेवर गायकों से घिरे थे। सौभरि मुनि के घर में मूल्यवान बिस्तर, आसन, गहने, स्नानागार और तरह-तरह के चन्दनलेप, फूलमालाएँ तथा स्वादिष्ट व्यंजन थे। इस प्रकार ऐश्वर्यशाली साज-सामान से घिरे हुए सौभरि मुनि अपनी अनेक पत्नियों के साथ गृहकार्यों में व्यस्त हो गये।

तात्पर्य : सौभरि ऋषि महान् योगी थे। योग-सिद्धियों से आठ प्रकार के भौतिक ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं—अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व तथा कामावसायिता। सौभरि मुनि ने अपनी योग-सिद्धियों के बल पर अतिश्रेष्ठ भौतिक ऐश्वर्य का भोग किया। *बह्वृच* शब्द का अर्थ है ''मंत्रोचारण में पटु।'' जिस प्रकार सामान्य भौतिक साधनों से भौतिक ऐश्वर्य प्राप्त किया जा सकता है उसी प्रकार मंत्रों की सूक्ष्म विधि से भी ऐश्वर्य प्राप्त किया जा सकता है। सौभरि मुनि ने मंत्रोच्चार के बल पर भौतिक ऐश्वर्य की व्यवस्था कर दी, किन्तु यह जीवन की सिद्धि नहीं थी। जैसा कि आगे देखा जायेगा, सौभरि मुनि भौतिक ऐश्वर्य से ऊब उठे और हर वस्तु त्यागकर वे वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण कर फिर जंगल में चले गये। वहाँ उन्होंने अन्तिम सिद्धि प्राप्त की। जो लोग आत्मतत्त्ववित् नहीं हैं अर्थात् जीवन का आध्यात्मिक मूल्य नहीं जानते हैं, वे बाहरी भौतिक ऐश्वर्य से सन्तुष्ट हो सकते हैं, किन्तु आत्मतत्त्ववित् सन्तुष्ट नहीं होते। सौभरि मुनि के जीवन तथा कार्यों से हम यही शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

यद्गार्हस्थ्यं तु संवीक्ष्य सप्तद्वीपवतीपतिः ।
विस्मितः स्तम्भमजहात्सार्वभौमश्रियान्वितम् ॥ ४७॥

शब्दार्थ

यत्—जो; गार्हस्थ्यम्—गृहस्थ जीवन को; तु—लेकिन; संवीक्ष्य—देखकर; सप्त-द्वीप-वती-पतिः—सात द्वीप वाले समस्त जगत का राजा मान्धाता; विस्मितः—आश्चर्यचकित; स्तम्भम्—गौरवशाली पद के कारण घमंड; अजहात्—त्याग दिया; सार्व-भौम—सारे जगत का सम्राट; श्रिया-अन्वितम्—सभी प्रकार के ऐश्वर्यों से युक्त।

सप्तद्वीपमय जगत के राजा मान्धाता ने जब सौभरि मुनि के घरेलू ऐश्वर्य को देखा तो वे आश्चर्यचकित रह गये। उन्होंने जगत के सम्राट के रूप में अपनी झूठी प्रतिष्ठा छोड़ दी।

तात्पर्य : हर एक को अपने पद का गर्व होता है, किन्तु यहाँ पर एक विचित्र अनुभव हुआ। सम्पूर्ण जगत के एक सम्राट ने सौभरि मुनि के ऐश्वर्य को देखकर भौतिक सुखों में अपने आपको पराजित अनुभव किया।

एवं गृहेष्वभिरतो विषयान्विविधैः सुखैः ।
सेवमानो न चातुष्यदाज्यस्तोकैरिवानलः ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; गृहेषु—घरेलू कार्यों में; अभिरतः—सदैव व्यस्त; विषयान्—भौतिक साज-सामग्री; विविधैः—नाना प्रकार के; सुखैः—सुख से; सेवमानः—सेवित होकर; न—नहीं; च—भी; अतुष्यत्—सन्तुष्ट हुआ; आज्य-स्तोकैः—घी की बूँदों से; इव—सदृश; अनलः—अग्नि।

इस प्रकार सौभरि मुनि इस भौतिक जगत में इन्द्रियतृप्ति करते रहे, किन्तु वे तनिक भी सन्तुष्ट नहीं थे जिस प्रकार निरन्तर घी की बूँदें पाते रहने से अग्नि कभी जलना बन्द नहीं करती।

तात्पर्य : भौतिक इच्छा जलती आग के समान है। यदि आग को निरन्तर घी की बूँदें मिलती रहें तो आग बढ़ती ही जायेगी, और कभी नहीं बुझेगी। अतएव भौतिक इच्छाओं की पूर्ति करते रहने की नीति से सफलता मिलने वाली नहीं है। आधुनिक सभ्यता में हर व्यक्ति आर्थिक विकास में लगा हुआ है जो भौतिक अग्नि को निरन्तर घी की बूँदें प्रदान करने के तुल्य है। पाश्चात्य देश भौतिक सभ्यता की पराकाष्ठा प्राप्त कर चुके हैं, किन्तु तो भी लोग असन्तुष्ट हैं। असली सन्तोष तो कृष्णभावनामृत है। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (५.२९) में हुई है जहाँ कृष्ण यह कहते हैं—

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

"साधुजन मुझे समस्त यज्ञों, तपस्याओं का चरम लक्ष्य, समस्त लोकों तथा देवताओं का परम प्रभु एवं समस्त जीवों का उपकारी एवं हितैषी जानकर भौतिक कष्टों से शान्ति प्राप्त करते हैं।" अतएव मनुष्य को चाहिए कि कृष्णभावनामृत ग्रहण करे और अनुष्ठानपूर्वक कार्य करते हए कृष्णभावनामृत में प्रगति करे। तभी मनुष्य को शान्ति तथा ज्ञानमय नित्य आनन्दपूर्ण जीवन प्राप्त हो सकता है।

स कदाचिदुपासीन आत्मापह्नवमात्मनः ।

ददर्श बह्वृचाचार्यो मीनसङ्गसमुत्थितम् ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

सः—वह, सौभरि मुनि; कदाचित्—एक दिन; उपासीनः—बैठा हुआ; आत्म-अपह्नवम्—तपस्या के पद से च्युत होकर; आत्मनः—स्वयं; ददर्श—देखा; बहु-ऋच-आचार्यः—मंत्रों के उच्चारण में पटु सौभरि मुनि; मीन-सङ्ग—मछली का मैथुन; समुत्थितम्—इस घटना से उत्पन्न।

तत्पश्चात् मंत्रोच्चार करने में पटु सौभरि मुनि एक दिन जब एकान्त स्थान में बैठे थे, तो उन्होंने अपने पतन के कारण के विषय में सोचा। कारण यही था कि उन्होंने एक मछली के मैथुन से अपने आपको सम्बद्ध कर दिया था।

तात्पर्य : विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की टीका है कि सौभरि मुनि का उनकी तपस्या से पतन *वैष्णव अपराध* के कारण हुआ था। कथा इस प्रकार है कि जब गरुड़ ने मछली को खाना चाहा तो सौभरि मुनि ने बिना कारण उस मछली को अपनी शरण में रख लिया। चूँकि गरुड़ उस मछली को न खा पाने से निराश हुआ, इसलिए सौभरि मुनि ने एक वैष्णव के प्रति एक घोर अपराध किया था। इस वैष्णव अपराध के कारण सौभरि मुनि का योग तपस्या के उच्च पद से पतन हुआ। अतएव मनुष्य को चाहिए कि वैष्णव के कार्य में बाधा न डाले। हमें सौभरि मुनि से सम्बन्धित इस घटना से यही शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

अहो इमं पश्यत मे विनाशं
तपस्विनः सच्चरितव्रतस्य ।
अन्तर्जले वारिचरप्रसङ्गात्
प्रच्यावितं ब्रह्म चिरं धृतं यत् ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

अहो—ओह; इमम्—यह; पश्यत—जरा देखो तो; मे—मेरा; विनाशम्—पतन; तपस्विनः—तपस्वी; सत्-चरित—अच्छे चरित्र वाला; व्रतस्य—व्रत धारण करने वाले का; अन्तः-जले—जल के भीतर; वारि-चर-प्रसङ्गात्—जलचरों के मैथुन कार्य से; प्रच्यावितम्—गिरा हुआ; ब्रह्म—ब्रह्म-साक्षात्कार या तपस्या के कार्यों से; चिरम्—दीर्घकाल तक; धृतम्—किये गये; यत्—जो।

ओह! गम्भीर जल के भीतर तपस्या करने पर भी तथा साधु पुरुषों द्वारा अभ्यास किये जाने वाले सारे विधि-विधानों का पालन करते हुए भी मैंने मात्र मछली के मैथुन-सान्निध्य के कारण अपनी दीर्घकालीन तपस्या का फल हाथों से जाने दिया। हर एक को इस पतन को देखकर इससे सीख लेनी चाहिए।

सङ्गं त्यजेत मिथुनव्रतीनां मुमुक्षुः

सर्वात्मना न विसृजेद्बहिरिन्द्रियाणि ।
एकश्चरन्रहसि चित्तमनन्त ईशे
युञ्जीत तद्व्रतिषु साधुषु चेत्प्रसङ्गः ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

सङ्गम्—संगति; त्यजेत—छोड़ देना चाहिए; मिथुन-व्रतीनाम्—वैध या अवैध मैथुन कार्यों में लगे रहने वाले व्यक्तियों का; मुमुक्षुः—मोक्ष चाहने वाले व्यक्ति; सर्व-आत्मना—सभी प्रकार से; न—नहीं; विसृजेत्—काम में लगाये; बहिः-इन्द्रियाणि—बाहरी इन्द्रियों को; एकः—अकेले; चरन्—घूमते हुए; रहसि—एकान्त स्थान में; चित्तम्—मन; अनन्ते ईशे—असीम भगवान् के चरणकमलों पर स्थिर; युञ्जीत—लगाये; तत्-व्रतिषु—एक ही कोटि के लोगों के साथ (जो भवबन्धन से मोक्ष के कामी हों); साधुषु—ऐसे पुरुषों की; चेत्—यदि; प्रसङ्गः—संगति।

भवबन्धन से मोक्ष की कामना करने वाले पुरुष को वासनामय जीवन में रुचि रखने वाले व्यक्तियों की संगति छोड़ देनी चाहिए और अपनी इन्द्रियों को किसी बाह्यकर्म में (देखने, सुनने, बोलने, चलने इत्यादि) नहीं लगाना चाहिए। उसे सदैव एकान्त स्थान में ठहरना चाहिए और मन को अनन्त भगवान् के चरणकमलों पर पूर्णतः स्थिर करना चाहिए। यदि कोई संगति करनी भी हो तो उसे उसी प्रकार के कार्य में लगे पुरुषों की संगति करनी चाहिए।

तात्पर्य : सौभरि मुनि अपने अनुभव से प्राप्त निष्कर्षों को हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हुए उपदेश देते हैं कि भवसागर को पार करने की इच्छा रखने वाले मनुष्यों को वासनामय जीवन और धन-संग्रह में व्यस्त रहने वाले मनुष्यों की संगति त्याग देनी चाहिए। श्री चैतन्य महाप्रभु ने भी यही उपदेश दिया है :

निष्किञ्चनस्य भगवद्भजनोन्मुखस्य

पारं परं जिगमिषोर्भवसागरस्य।

सन्दर्शनं विषयिणामथ योषितां च

हा हन्त हन्त विषभक्षणतोऽप्यसाधु॥

(*चैतन्य चन्द्रोदय नाटक ८.२७*)

"ओह! भवसागर को पार करने की तथा बिना किसी कामना के भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में व्यस्त रहने की सच्ची इच्छा रखने वाले के लिए इन्द्रियतृप्ति में लगे भौतिकतावादी को देखना तथा इसी प्रकार की रुचि वाली स्त्री को देखना जानबूझ कर विषपान करने से भी घृणित है।"

जो व्यक्ति भवबन्धन से पूर्ण छुटकारा पाना चाहता है उसे भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में लगना चाहिए। उसे विषयी पुरुषों की संगति नहीं करनी चाहिए। हर भौतिकतावादी व्यक्ति काम-वासना में रुचि

रखता है। इस तरह सीधे-सादे शब्दों में यह सलाह दी गई है कि उच्च साधुपुरुष को भौतिकतावादी प्रवृत्ति वाले लोगों की संगति से बचकर रहना चाहिए। श्रील नरोत्तम दास ठाकुर भी आचार्यों की सेवा करने के लिए संस्तुति करते हैं और यदि किसी की संगति करनी ही है तो भक्तों की संगति करनी चाहिए (*तांदेर चरण सेवि भक्त-सने वास*)। कृष्णभावनामृत आन्दोलन भक्त उत्पन्न करने के लिए अपने अनेक केन्द्रों की स्थापना कर रहा है जिससे ऐसे केन्द्रों के सदस्यों से सम्पर्क बढ़ाने से लोगों को भौतिक कार्यों में स्वत: अरुचि होने लगे। यद्यपि यह अत्यन्त महत्त्वाकांक्षी प्रस्ताव है, किन्तु यह संघटन भगवान् चैतन्य महाप्रभु की दया से प्रभावशाली सिद्ध हो रहा है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सदस्यों की क्रमश: संगति करने, केवल प्रसाद ग्रहण करने तथा हरे कृष्णमंत्र का कीर्तन करने से सामान्य लोग काफी ऊँचे उठ जाते हैं। सौभरि मुनि को पश्चात्ताप हो रहा है कि अत्यंत गहरे जल में भी वे बुरी संगति में रहे और मैथुनरत मछली की कुसंगति से उनका पतन हुआ। एकान्त स्थान भी तब तक सुरक्षित नहीं होता जब तक वहाँ अच्छी संगति न मिले।

एकस्तपस्व्यहमथाम्भसि मत्स्यसङ्गात्
पञ्चाशदासमुत पञ्चसहस्रसर्गः ।
नान्तं व्रजाम्युभयकृत्यमनोरथानां
मायागुणैर्हृतमतिर्विषयेऽर्थभावः ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

एकः—एकमात्र; तपस्वी—मुनि; अहम्—मैंने; अथ—इस प्रकार; अम्भसि—गहरे जल में; मत्स्य-सङ्गात्—मछली की संगति में रहने से; पञ्चाशत्—पचास; आसम्—पत्नियाँ प्राप्त कीं; उत—हर एक से सौ-सौ पुत्र उत्पन्न करना दूर रहा; पञ्च-सहस्र-सर्गः—पाँच हजार सन्ताने; न अन्तम्—कोई अन्त नहीं; व्रजामि—ढूँढ सकता हूँ; उभय-कृत्य—इस जन्म तथा अगले जन्म के कार्य; मनोरथानाम्—मनोरथ; माया-गुणैः—प्रकृति के गुणों द्वारा प्रभावित; हृत—खोया हुआ; मतिः विषये—भौतिक वस्तुओं के लिए विशेष आकर्षण; अर्थ-भावः—स्वार्थ की बातें।

शुरू में मैं अकेला था और योग की तपस्या करता रहता था, किन्तु बाद में मैथुनरत मछली की संगति के कारण मुझमें विवाह करने की इच्छा जगी। तब मैं पचास पत्नियों का पति बन गया और हर एक ने एक एक सौ पुत्र उत्पन्न किये। इस तरह मेरे परिवार में पाँच हजार सदस्य हो गये। प्रकृति के गुणों से प्रभावित होकर मेरा पतन हुआ और मैंने सोचा कि भौतिक जीवन में मैं सुखी रहूँगा। इस तरह इस जीवन तथा अगले जीवन में भोग के लिए मेरी इच्छाओं का कोई अन्त नहीं है।

एवं वसन्गृहे कालं विरक्तो न्यासमास्थितः ।

वनं जगामानुययुस्तत्पत्न्यः पतिदेवताः ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस तरह; वसन्—रहते हुए; गृहे—घर पर; कालम्—समय बिताकर; विरक्तः—विरक्त हो गया; न्यासम्—वानप्रस्थ आश्रम में; आस्थितः—स्थित हो गया; वनम्—जंगल में; जगाम—वह चला गया; अनुययुः—उसके पीछे-पीछे; तत्-पत्न्यः—उसकी सारी पत्नियाँ; पति-देवताः—क्योंकि पति ही उनका एकमात्र आराध्य था।

इस तरह उसने कुछ काल तक घरेलू कार्यों में अपना जीवन बिताया लेकिन बाद में वह भौतिक भोग से विरक्त हो गया। उसने भौतिक संगति का परित्याग करने के लिए वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण किया और फिर वह जंगल में चला गया। पतिपरायणा पत्नियों ने उसका अनुसरण किया क्योंकि अपने पति के अतिरिक्त उनका कोई आश्रय न था।

तत्र तप्त्वा तपस्तीक्ष्णमात्मदर्शनमात्मवान् ।
सहैवाग्निभिरात्मानं युयोज परमात्मनि ॥ ५४ ॥

शब्दार्थ

तत्र—जंगल में; तप्त्वा—तपस्या करते हुए; तपः—तपस्या के नियम; तीक्ष्णम्—अत्यन्त कठोर; आत्म-दर्शनम्—आत्म-साक्षात्कार में सहायक; आत्मवान्—आत्म से अभिज्ञ; सह—साथ में; एव—निश्चय ही; अग्निभिः—अग्नियों के; आत्मानम्—स्वयं को; युयोज—लगाया; परम-आत्मनि—परमात्मा में।

जब आत्मवान सौभरि मुनि जंगल में चले गये तो उन्होंने कठोर तपस्याएँ की। इस तरह अन्ततः मृत्यु के समय उन्होंने अग्नि में स्वयं को भगवान् की सेवा में लगा दिया।

तात्पर्य : मृत्यु के समय अग्नि स्थूल शरीर को जला डालती है और यदि भौतिक भोग की कोई इच्छा नहीं होती तो सूक्ष्म शरीर का भी अन्त हो जाता है, केवल शुद्ध आत्मा बचा रहता है। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* में हुई है (*त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति*)। यदि मनुष्य स्थूल तथा सूक्ष्म दोनों प्रकार के भौतिक देहों के बन्धन से मुक्त होता है और शुद्ध आत्मा बना रहता है तो वह भगवान् की सेवा करने के लिए भगवद्धाम वापस जाता है। *त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति*—वह भगवद्धाम को वापस जाता है। इस तरह ऐसा लगता है कि सौभरि मुनि को वह पूर्ण अवस्था प्राप्त हुई थी।

ताः स्वपत्युर्महाराज निरीक्ष्याध्यात्मिकीं गतिम् ।
अन्वीयुस्तत्प्रभावेण अग्निं शान्तमिवार्चिषः ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ

ताः—सौभरि की सारी पत्नियाँ; **स्व-पत्युः**—अपने पति के साथ; **महाराज**—हे राजा परीक्षित; **निरीक्ष्य**—देखकर; **अध्यात्मिकीम्**—आध्यात्मिक; **गतिम्**—प्रगति; **अन्वीयुः**—अनुसरण किया; **तत्-प्रभावेण**—यद्यपि वे अयोग्य थीं किन्तु अपने पति के प्रभाव से, वे भी आध्यात्मिक लोक को चली गईं; **अग्निम्**—अग्नि; **शान्तम्**—पूर्णतया एकाकार; **इव**—सदृश; **अर्चिषः**—लपटें।

हे महाराज परीक्षित, अपने पति को आध्यात्मिक जगत की ओर प्रगति करते देखकर सौभरि मुनि की पत्नियाँ भी मुनि की आध्यात्मिक शक्ति से वैकुण्ठलोक में प्रवेश करने में समर्थ हुईं जिस तरह अग्नि बुझाने पर अग्नि की ज्वालाएँ शमित हो जाती हैं।

तात्पर्य : जैसा कि *भगवद्गीता* (९.३२) में कहा गया है—*स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्*। आध्यात्मिक नियमों का पालन करने में स्त्रियाँ पर्याप्त बलशाली नहीं मानी जातीं, किन्तु यदि कोई इतनी भाग्यशाली हो कि उसे ऐसा पति मिले जो अध्यात्म विद्या में बढ़ा-चढ़ा हो और यदि वह उसकी सेवा करती हो तो उसे भी अपने पति के समान लाभ मिलता है। यहाँ यह स्पष्ट तौर पर कहा गया है कि सौभरि मुनि की पत्नियाँ भी अपने पति के प्रभाव से वैकुण्ठलोक में प्रवेश कर गईं। सौभरि की पत्नियाँ अयोग्य थीं, किन्तु अपने पति की आज्ञाकारिणी होने से वे भी उसके साथ वैकुण्ठलोक में प्रविष्ट हुईं। इस तरह स्त्री को अपने पति की आज्ञाकारिणी दासी होना चाहिए और यदि पति आध्यात्मवादी है तो स्त्री को भी वैकुण्ठ जाने का अवसर स्वयमेव मिल जायेगा।

इस प्रकार *श्रीमद्भागवत* के नवम स्कन्ध के अन्तर्गत "सौभरि मुनि का पतन" नामक छठे अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter सात

राजा मान्धाता के वंशज

इस अध्याय में मान्धाता के वंशजों का वर्णन हुआ है और उसी प्रसंग में पुरुकुत्स तथा हरिश्चन्द्र की भी कथाएँ दी गई हैं।

मान्धाता का सबसे प्रसिद्ध पुत्र अम्बरीष था जिसका पुत्र यौवनाश्व हुआ और यौवनाश्व का पुत्र हारीत हुआ। ये तीनों पुरुष मान्धाता के वंश में सर्वश्रेष्ठ थे। मान्धाता के दूसरे पुत्र पुरुकुत्स ने सर्पगण की बहिन नर्मदा से विवाह किया। उसका पुत्र त्रसद्दस्यु हुआ जिसका पुत्र अनरण्य था। अनरण्य का पुत्र हर्यश्व हुआ और हर्यश्व का पुत्र प्रारुण था। प्रारुण का पुत्र त्रिबन्धन हुआ जिसका पुत्र सत्यव्रत हुआ जो त्रिशंकु भी कहलाता था। जब त्रिशंकु ने एक ब्राह्मणपुत्री का अपहरण किया तो उसके पिता ने इस पापकर्म के लिए उसे शाप दिया जिससे वह शूद्र से भी अधम एक चण्डाल बन गया। बाद में विश्वामित्र के प्रभाव से वह स्वर्ग लाया गया, किन्तु देवताओं के प्रभाव के कारण उसे पुन: नीचे गिरना पड़ा। तो भी विश्वामित्र ने उसे नीचे गिरते हुए बीच में ही रोक दिया। त्रिशंकु का पुत्र हरिश्चन्द्र था जिसने एक बार राजसूय यज्ञ किया, किन्तु विश्वामित्र ने चालाकी से उसकी सारी सम्पत्ति दक्षिणा में ले ली और उसे अनेक प्रकार से प्रताड़ित किया। इससे विश्वामित्र तथा वसिष्ठ में झगड़ा उठ खड़ा हुआ। हरिश्चन्द्र के कोई सन्तान न थी लेकिन नारद के कहने पर जब उसने वरुण की उपासना की तो उसके रोहित नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। हरिश्चन्द्र ने वचन दिया था कि वरुण यज्ञ के लिए रोहित की बलि दी जायेगी। वरुण ने हरिश्चन्द्र को इस यज्ञ के लिए बारम्बार स्मरण कराया, किन्तु पुत्र-स्नेह के कारण उसकी बलि देने से बचने के लिए वह बहाने बनाता रहा। इस तरह समय बीतता गया और उसका पुत्र धीरे-धीरे बड़ा हो गया। तब वह लड़का हाथ में धनुषबाण लेकर अपने जीवन की रक्षा करने के लिए जंगल चला गया। इसी बीच हरिश्चन्द्र को वरुण के आक्रमण के फलस्वरूप जलोदर हो गया। जब रोहित को अपने पिता की बीमारी का पता लगा तो वह राजधानी में वापस आना चाहता था, किन्तु इन्द्र ने ऐसा करने से मना कर दिया। इन्द्र के कहने से रोहित जंगल में छ: वर्षों तक रहा और फिर घर लौटा। उसने अजीगर्त के द्वितीय पुत्र शुन:शेफ को खरीदकर उसे अपने पिता को दे दिया जिससे उसकी पशु-बलि चढ़ सके। इस तरह यज्ञ सम्पन्न हुआ, वरुण तथा अन्य देवता शान्त

हुए और हरिश्चन्द्र रोगमुक्त हो गया। इस यज्ञ में विश्वामित्र होता पुरोहित थे, जमदग्नि अध्वर्यु थे, वसिष्ठ ब्रह्मा थे और अयास्य उद्गाता थे। इन्द्र ने इस यज्ञ से परम प्रसन्न होकरहरिश्चन्द्र को सुनहला रथ दिया और विश्वामित्र ने उसे दिव्य ज्ञान प्रदान किया। इस प्रकार शुकदेव गोस्वामी ने इसका वर्णन किया है कि हरिश्चन्द्र ने किस तरह सिद्धि प्राप्त की।

श्रीशुक उवाच
मान्धातुः पुत्रप्रवरो योऽम्बरीषः प्रकीर्तितः ।
पितामहेन प्रवृतो यौवनाश्वस्तु तत्सुतः ।
हारीतस्तस्य पुत्रोऽभून्मान्धातृप्रवरा इमे ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; मान्धातुः—मान्धाता का; पुत्र-प्रवरः—प्रमुख पुत्र; यः—जो; अम्बरीषः—अम्बरीष; प्रकीर्तितः—विख्यात; पितामहेन—अपने बाबा युवनाश्व द्वारा; प्रवृतः—स्वीकृत; यौवनाश्वः—यौवनाश्व; तु—तथा; तत्-सुतः—अम्बरीष का पुत्र; हारीतः—हारीत; तस्य—यौवनाश्व का; पुत्रः—पुत्र; अभूत्—हुआ; मान्धातृ—मान्धाता के वंश में; प्रवराः—अत्यन्त प्रमुख; इमे—ये सभी।.

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : मान्धाता का सर्वप्रमुख पुत्र अम्बरीष नाम से विख्यात हुआ। अम्बरीष को उसके बाबा युवनाश्व ने पुत्र रूप में स्वीकार किया। अम्बरीष का पुत्र यौवनाश्व हुआ और यौवनाश्व का पुत्र हारीत था। मान्धाता के वंश में अम्बरीष, हारीत तथा यौवनाश्व अत्यन्त प्रमुख थे।

नर्मदा भ्रातृभिर्दत्ता पुरुकुत्साय योरगैः ।
तया रसातलं नीतो भुजगेन्द्रप्रयुक्तया ॥ २ ॥

शब्दार्थ

नर्मदा—नर्मदा नामक; भ्रातृभिः—अपने भाइयों से; दत्ता—दान में दी गई; पुरुकुत्साय—पुरुकुत्स को; या—जो; उरगैः—सर्पों (सर्पगण) द्वारा; तया—उसके द्वारा; रसातलम्—ब्रह्माण्ड के निम्न भागों को; नीतः—ले जाया गया; भुजग-इन्द्र-प्रयुक्तया—सर्पों के राजा वासुकि द्वारा लगाया गया।.

नर्मदा के सर्प-भाइयों ने उसे पुरुकुत्स को दे दिया। वासुकि द्वारा भेजे जाने पर नर्मदा पुरुकुत्स को ब्रह्माण्ड के निम्न भाग (रसातल) में ले गई।

तात्पर्य : शुकदेव गोस्वामी मान्धाता के पुत्र पुरुकुत्स के वंशजों का वर्णन करने से पूर्व सर्वप्रथम यह बतलाते हैं कि पुरुकुत्स नर्मदा से किस तरह ब्याहा गया जिसे उसे रसातल ले जाने के लिए प्रेरित किया गया।

गन्धर्वानवधीत्तत्र वध्यान्वै विष्णुशक्तिधृक् ।
नागाल्लब्धवरः सर्पादभयं स्मरतामिदम् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

गन्धर्वान्—गन्धर्वलोक के निवासियों को; अवधीत्—मार डाला; तत्र—वहाँ (रसातल में); वध्यान्—वध करने के योग्य; वै—निस्सन्देह; विष्णु-शक्ति-धृक्—भगवान् विष्णु द्वारा शक्ति प्रदत्त; नागात्—नागों से; लब्ध-वरः—वर प्राप्त करके; सर्पात्—सर्पों से; अभयम्—आश्वासन; स्मरताम्—स्मरण करने वालों को; इदम्—यह घटना।

रसातल में भगवान् विष्णु द्वारा शक्ति प्रदान किये जाने के कारण पुरुकुत्स मारे जाने के योग्य सभी गन्धर्वों का वध करने में समर्थ हो गया। पुरुकुत्स को सर्पों से यह वर प्राप्त हुआ कि जो कोई नर्मदा द्वारा रसातल में उसके लाये जाने के इतिहास को स्मरण करेगा उसे सर्पों के आक्रमण से सुरक्षा प्रदान की जायेगी।

त्रसद्दस्युः पौरुकुत्सो योऽनरण्यस्य देहकृत् ।
हर्यश्वस्तत्सुतस्तस्मात्प्रारुणोऽथ त्रिबन्धनः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

त्रसद्दस्युः—त्रसद्दस्यु नामक; पौरुकुत्सः—पुरुकुत्स का पुत्र; यः—जो; अनरण्यस्य—अनरण्य का; देह-कृत्—पिता; हर्यश्वः—हर्यश्व; तत्-सुतः—अनरण्य का पुत्र; तस्मात्—उस (हर्यश्व) से; प्रारुणः—प्रारुण; अथ—तब, प्रारुण से; त्रिबन्धनः—उसका पुत्र त्रिबन्धन।

पुरुकुत्स का पुत्र त्रसद्दस्यु हुआ जो अनरण्य का पिता था। अनरण्य का पुत्र हर्यश्व हुआ जो प्रारुण का पिता बना। प्रारुण का पुत्र त्रिबन्धन हुआ।

तस्य सत्यव्रतः पुत्रस्त्रिशङ्कुरिति विश्रुतः ।
प्राप्तश्चाण्डालतां शापाद्गुरोः कौशिकतेजसा ॥ ५ ॥
सशरीरो गतः स्वर्गमद्यापि दिवि दृश्यते ।
पातितोऽवाक्शिरा देवैस्तेनैव स्तम्भितो बलात् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

तस्य—त्रिबन्धन का; सत्यव्रतः—सत्यव्रत; पुत्रः—पुत्र; त्रिशङ्कुः—त्रिशंकु; इति—इस प्रकार; विश्रुतः—विख्यात; प्राप्तः—प्राप्त किया था; चाण्डालताम्—चण्डाल के गुण, जो शूद्र से भी अधम होता है; शापात्—शाप से; गुरोः—अपने गुरु के; कौशिक-तेजसा—कौशिक (विश्वामित्र) की शक्ति से; सशरीरः—इस शरीर सहित; गतः—गया; स्वर्गम्—स्वर्गलोक को; अद्य अपि—आज भी; दिवि—आकाश में; दृश्यते—देखा जा सकता है; पातितः—गिराया जाकर; अवाक्-शिराः—सिर नीचे किये लटकता हुआ; देवैः—देवताओं की शक्ति से; तेन—विश्वामित्र द्वारा; एव—निस्सन्देह; स्तम्भितः—स्थिर; बलात्—बल से।

त्रिबन्धन का पुत्र सत्यव्रत था जो त्रिशंकु नाम से विख्यात है। चूँकि उसने विवाह-मण्डप से एक ब्राह्मणपुत्री का अपहरण कर लिया था इसलिए उसके पिता ने उसे चण्डाल बनने का शाप दे दिया जो शूद्र से भी नीचे होता है। तत्पश्चात् विश्वामित्र के प्रभाव से वह सदेह स्वर्गलोक गया, किन्तु

देवताओं के पराक्रम से वह पुनः नीचे गिर गया। तो भी विश्वामित्र की शक्ति से वह एकदम नीचे नहीं गिरा। आज भी वह आकाश में सिर के बल लटकता देखा जा सकता है।

त्रैशङ्कवो हरिश्चन्द्रो विश्वामित्रवसिष्ठयोः ।
यन्निमित्तमभूद्युद्धं पक्षिणोर्बहुवार्षिकम् ॥ ७॥

शब्दार्थ

त्रैशङ्कवः—त्रिशंकु का पुत्र; **हरिश्चन्द्रः**—हरिश्चन्द्र; **विश्वामित्र-वसिष्ठयोः**—विश्वामित्र तथा वसिष्ठ के मध्य; **यत्-निमित्तम्**—हरिश्चन्द्र को लेकर; **अभूत्**—हुआ; **युद्धम्**—भीषण लड़ाई; **पक्षिणोः**—दोनों पक्षी के रूप में बदल दिये गये थे; **बहु-वार्षिकम्**—अनेक वर्षों तक।

त्रिशंकु का पुत्र हरिश्चन्द्र हुआ। हरिश्चन्द्र को लेकर विश्वामित्र तथा वसिष्ठ में युद्ध हुआ। वे दोनों पक्षी के रूप में बदले जाकर वर्षों तक लड़ते रहे।

तात्पर्य : विश्वामित्र तथा वसिष्ठ सदा एक दूसरे के शत्रु बने रहे। पहले विश्वामित्र क्षत्रिय थे और अपनी कठोर तपस्या द्वारा ब्राह्मण बनना चाहते थे, किन्तु वसिष्ठ उसे स्वीकार नहीं करना चाहते थे। इस तरह दोनों में नित्य विरोध उत्पन्न होता रहा। किन्तु बाद में विश्वामित्र के क्षमा माँगने पर वसिष्ठ ने उसे स्वीकार कर लिया। एक बार हरिश्चन्द्र ने एक यज्ञ किया जिसके पुरोहित विश्वामित्र बने। किन्तु अप्रसन्न होने के कारण विश्वामित्र ने हरिश्चन्द्र की सारी सम्पत्ति दक्षिणा के रूप में माँग ली। यह वसिष्ठ को अच्छा नहीं लगा अतएव वसिष्ठ तथा विश्वामित्र में युद्ध हुआ। इस घोर युद्ध में उन्होंने एक दूसरे को शाप दे डाला। एक ने कहा "तुम पक्षी बन जाओ" और दूसरे ने कहा "तुम बत्तख बन जाओ।" इस तरह दोनों पक्षी बनकर वर्षों तक हरिश्चन्द्र के कारण लड़ते रहे। हम देखते हैं कि सौभरि जैसा महान् योगी काम-वासना का शिकार बना और वसिष्ठ तथा विश्वामित्र जैसे महर्षि पक्षी बने। यही तो भौतिक संसार है। *आब्रह्म भुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।* इस भौतिक जगत में या इस ब्रह्माण्ड में कोई भौतिक गुणों में कितना ही महान् क्यों न हो उसे जन्म, मृत्यु, जरा तथा रोग सहने पड़ते हैं (*जन्ममृत्युजराव्याधि*)। इसीलिए कृष्ण कहते हैं कि यह संसार मात्र कष्टमय है (*दुःखालयमशाश्वतम्*)। *भागवत* का कथन है—*पदं पदं यद्विपदाम्*—यहाँ प्रत्येक पग पर संकट है। अतएव कृष्णभावनामृत आन्दोलन मनुष्य को हरे कृष्ण मंत्र के कीर्तन मात्र से इस भौतिक जगत से बाहर निकलने का अवसर प्रदान करने के कारण मानव समाज के लिए सर्वोच्च वर है।

सोऽनपत्यो विषण्णात्मा नारदस्योपदेशतः ।
वरुणं शरणं यातः पुत्रो मे जायतां प्रभो ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; अनपत्यः—सन्तानहीन; विषण्ण-आत्मा—अत्यन्त खिन्न; नारदस्य—नारद के; उपदेशतः—उपदेश से; वरुणम्—वरुण की; शरणम् यातः—शरण में गया; पुत्रः—पुत्र; मे—मेरे; जायताम्—उत्पन्न हो; प्रभो—हे प्रभु।

हरिश्चन्द्र के कोई पुत्र न था; अतएव वह अत्यन्त खिन्न रहता था। अतएव एक बार नारद मुनि के उपदेश से उसने वरुण की शरण ग्रहण की और उनसे कहा ''हे प्रभु, मेरे कोई पुत्र नहीं है। क्या आप मुझे एक पुत्र दे सकेंगे?''

यदि वीरो महाराज तेनैव त्वां यजे इति ।
तथेति वरुणेनास्य पुत्रो जातस्तु रोहितः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

यदि—यदि; वीरः—पुत्र होगा; महाराज—हे महाराज परीक्षित; तेन एव—उस पुत्र से भी; त्वाम्—तुमको; यजे—मैं यज्ञ करूँगा; इति—इस प्रकार; तथा—जैसी तुम्हारी इच्छा; इति—इस प्रकार स्वीकार किया गया; वरुणेन—वरुण द्वारा; अस्य—महाराज हरिश्चन्द्र का; पुत्रः—पुत्र; जातः—उत्पन्न हुआ; तु—निस्सन्देह; रोहितः—रोहित नामक।

हे राजा परीक्षित, हरिश्चन्द्र ने वरुण से याचना की, ''हे प्रभु, यदि मेरे पुत्र उत्पन्न होगा तो मैं आपकी तुष्टि के लिए उसी से एक यज्ञ करूँगा।'' जब हरिश्चन्द्र ने यह कहा तो वरुण ने उत्तर दिया ''एवमस्तु,'' वरुण के आशीर्वाद से हरिश्चन्द्र के रोहित नाम का पुत्र हुआ।

जातः सुतो ह्यनेनाङ्ग मां यजस्वेति सोऽब्रवीत् ।
यदा पशुर्निर्दशः स्यादथ मेध्यो भवेदिति ॥ १० ॥

शब्दार्थ

जातः—उत्पन्न हो गया; सुतः—पुत्र; हि—निस्सन्देह; अनेन—इस पुत्र से; अङ्ग—हे हरिश्चन्द्र; माम्—मुझको; यजस्व—यज्ञ करना; इति—इस प्रकार; सः—वह (वरुण); अब्रवीत्—कहा; यदा—जब; पशुः—पशु; निर्दशः—दस दिन बीतें; स्यात्—हो जाये; अथ—तब; मेध्यः—यज्ञ में भेंट करने योग्य; भवेत्—हो जाये; इति—इस प्रकार (हरिश्चन्द्र ने कहा)।

अतः, जब पुत्र उत्पन्न हो गया तो वरुण ने हरिश्चन्द्र के पास आकर कहा ''अब तुम्हारे पुत्र हो गया है। तुम इस पुत्र से मेरा यज्ञ कर सकते हो।'' इसके उत्तर में हरिश्चन्द्र ने कहा ''पशु अपने जन्म के दस दिन बाद ही यज्ञ (बलि दिये जाने) के योग्य होता है।''

निर्दशे च स आगत्य यजस्वेत्याह सोऽब्रवीत् ।
दन्ताः पशोर्यज्जायेरन्नथ मेध्यो भवेदिति ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

निर्दशे—दस दिन बाद; च—भी; सः—वह, वरुण; आगत्य—यहाँ आकर; यजस्व—अब यज्ञ करो; इति—इस प्रकार; आह—कहा; सः—उसने, हरिश्चन्द्र ने; अब्रवीत्—उत्तर दिया; दन्ताः—दाँत; पशोः—पशु के; यत्—जब; जायेरन्—प्रकट हो जाएँ; अथ—तब; मेध्यः—बलि देने के योग्य; भवेत्—हो जायेगा; इति—इस प्रकार।

दस दिन बाद वरुण पुनः आया और हरिश्चन्द्र से कहा "अब तुम यज्ञ कर सकते हो।" हरिश्चन्द्र ने उत्तर दिया, "जब पशु के दाँत आ जाते हैं तो वह बलि देने के योग्य शुद्ध बनता है।"

दन्ता जाता यजस्वेति स प्रत्याहाथ सोऽब्रवीत् ।
यदा पतन्त्यस्य दन्ता अथ मेध्यो भवेदिति ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

दन्ताः—दाँत; जाताः—उग आये; यजस्व—अब बलि दो; इति—इस प्रकार; सः—वह वरुण; प्रत्याह—बोला; अथ—तत्पश्चात्; सः—उसने, हरिश्चन्द्र ने; अब्रवीत्—उत्तर दिया; यदा—जब; पतन्ति—गिरते हैं; अस्य—उसके; दन्ताः—दाँत; अथ—तब; मेध्यः—बलि के योग्य; भवेत्—हो जायेगा; इति—इस प्रकार।

जब दाँत उग आये तो वरुण ने आकर हरिश्चन्द्र से कहा, "अब पशु के दाँत उग आये हैं। तुम यज्ञ कर सकते हो।" हरिश्चन्द्र ने उत्तर दिया, "जब इसके सारे दाँत गिर जायेंगे तो यह बलि के योग्य हो जायेगा।"

पशोर्निपतिता दन्ता यजस्वेत्याह सोऽब्रवीत् ।
यदा पशोः पुनर्दन्ता जायन्तेऽथ पशुः शुचिः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

पशोः—पशु के; निपतिताः—गिर चुके हैं; दन्ताः—दाँत; यजस्व—अब यज्ञ करो; इति—इस प्रकार; आह—कहा; सः—उसने, हरिश्चन्द्र ने; अब्रवीत्—उत्तर दिया; यदा—जब; पशोः—पशु के; पुनः—फिर; दन्ताः—दाँत; जायन्ते—उगते हैं; अथ—तब; पशुः—पशु; शुचिः—बलि देने के लिए पवित्र होता है।

जब दाँत गिर चुके तो वरुण फिर आया और हरिश्चन्द्र से बोला "अब पशु के दाँत गिर चुके हैं और तुम यज्ञ कर सकते हो।" किन्तु हरिश्चन्द्र ने उत्तर दिया, "जब पशु के दाँत फिर से उग आयेंगे तो वह बलि देने के लिए अत्यन्त शुद्ध होगा।"

पुनर्जाता यजस्वेति स प्रत्याहाथ सोऽब्रवीत् ।
सान्नाहिको यदा राजन्राजन्योऽथ पशुः शुचिः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

पुनः—फिर से; जाताः—उग आये हैं; यजस्व—बलि चढ़ाओ; इति—इस प्रकार; सः—उसने, वरुण ने; प्रत्याह—उत्तर दिया; अथ—तत्पश्चात्; सः—वह, हरिश्चन्द्र; अब्रवीत्—बोला; सान्नाहिकः—ढाल से अपने को सजाने में समर्थ; यदा—जब; राजन्—हे राजा वरुण; राजन्यः—क्षत्रिय; अथ—तब; पशुः—बलि पशु; शुचिः—पवित्र हो जाता है।

जब दाँत फिर से उग आये तो वरुण फिर आया और हरिश्चन्द्र से बोला, ''अब तुम यज्ञ कर सकते हो।'' किन्तु तब हरिश्चन्द्र ने कहा, ''हे राजा, जब बलि का पशु क्षत्रिय बन जाता है और वह अपने शत्रु से अपनी रक्षा करने में समर्थ हो जाता है, तभी वह शुद्ध बनेगा।''

इति पुत्रानुरागेण स्नेहयन्त्रितचेतसा ।
कालं वञ्चयता तं तमुक्तो देवस्तमैक्षत ॥ १५॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; पुत्र-अनुरागेण—अपने पुत्र-स्नेह के कारण; स्नेह-यन्त्रित-चेतसा—मन ऐसे स्नेह के वशीभूत होकर; कालम्—समय को; वञ्चयता—ठगते हुए; तम्—उसको; तम्—वह; उक्तः—कहा; देवः—वरुण देव; तम्—उसको, हरिश्चन्द्र को; ऐक्षत—अपना वचन पालन किये जाने की प्रतीक्षा करता रहा।

हरिश्चन्द्र अपने पुत्र के प्रति अत्यधिक अनुरक्त था। इस स्नेह के कारण उसने वरुण देव से प्रतीक्षा करने के लिए कहा। इस तरह वरुण समय आने की प्रतीक्षा करता रहा।

रोहितस्तदभिज्ञाय पितुः कर्म चिकीर्षितम् ।
प्राणप्रेप्सुर्धनुष्पाणिररण्यं प्रत्यपद्यत ॥ १६॥

शब्दार्थ

रोहितः—हरिश्चन्द्र का पुत्र; तत्—यह तथ्य; अभिज्ञाय—ठीक से समझकर; पितुः—पिता का; कर्म—काम; चिकीर्षितम्—जिसे वह व्यावहारिक रूप से कर रहा था; प्राण-प्रेप्सुः—जीवन बचाने की इच्छा से; धनुः-पाणिः—अपना धनुष बाण लेते हुए; अरण्यम्—जंगल; प्रत्यपद्यत—चला गया।

रोहित समझ गया कि उसके पिता उसे बलि का पशु बनाना चाहते हैं। अतएव मृत्यु से बचने के लिए उसने धनुष-बाण से अपने आपको सज्जित किया और वह जंगल में चला गया।

पितरं वरुणग्रस्तं श्रुत्वा जातमहोदरम् ।
रोहितो ग्राममेयाय तमिन्द्रः प्रत्यषेधत ॥ १७॥

शब्दार्थ

पितरम्—अपने पिता के विषय में; वरुण-ग्रस्तम्—वरुण द्वारा जलोदर रोग से आक्रमण किया गया; श्रुत्वा—सुनकर; जात—बढ़ गया था; महा-उदरम्—फूला पेट; रोहितः—उसके पुत्र रोहित ने; ग्रामम् एयाय—राजधानी आना चाहता था; तम्—उसको; इन्द्रः—राजा इन्द्र ने; प्रत्यषेधत—वहाँ जाने से मना कर दिया।

जब रोहित ने सुना कि वरुण के कारण उसके पिता को जलोदर रोग हो गया है और उसका पेट फूल गया है तो वह राजधानी लौट आना चाहता था लेकिन राजा इन्द्र ने ऐसा करने से उसे मना कर दिया।

भूमेः पर्यटनं पुण्यं तीर्थक्षेत्रनिषेवणैः ।
रोहितायादिशच्छक्रः सोऽप्यरण्येऽवसत्समाम् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

भूमेः—संसार भर का; पर्यटनम्—भ्रमण; पुण्यम्—पवित्र स्थानों को; तीर्थ-क्षेत्र—तीर्थ स्थल; निषेवणैः—ऐसे स्थानों में सेवा करने या आने जाने से; रोहिताय—रोहित को; आदिशत्—आज्ञा दी; शक्रः—इन्द्र ने; सः—वह, रोहित; अपि—भी; अरण्ये—जंगल में; अवसत्—रहता रहा; समाम्—एक वर्ष तक।

राजा इन्द्र ने रोहित को सलाह दी कि वह विभिन्न तीर्थस्थानों तथा पवित्र स्थलों की यात्रा करे क्योंकि ऐसे कार्य पवित्र होते हैं। इस आदेश का पालन करते हुए रोहित एक वर्ष के लिए जंगल में चला गया।

एवं द्वितीये तृतीये चतुर्थे पञ्चमे तथा ।
अभ्येत्याभ्येत्य स्थविरो विप्रो भूत्वाह वृत्रहा ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; द्वितीये—दूसरे वर्ष; तृतीये—तीसरे वर्ष; चतुर्थे—चौथे वर्ष; पञ्चमे—पाँचवें वर्ष; तथा—और; अभ्येत्य—उसके सामने आकर; अभ्येत्य—फिर से उसके सामने आकर; स्थविरः—अत्यन्त वृद्ध पुरुष; विप्रः—ब्राह्मण; भूत्वा—बनकर; आह—कहा; वृत्र-हा—इन्द्र ने।

इस तरह द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ तथा पंचम वर्षों के अन्त में जब-जब रोहित अपनी राजधानी लौटना चाहता तो इन्द्र एक वृद्ध ब्राह्मण के वेश में उसके पास पहुँचता और वापस जाने के लिए उसे मना करता। वह गत वर्ष जैसे ही शब्दों को फिर से दुहराता।

षष्ठं संवत्सरं तत्र चरित्वा रोहितः पुरीम् ।
उपव्रजन्नजीगर्तादक्रीणान्मध्यमं सुतम् ।
शुनःशेफं पशुं पित्रे प्रदाय समवन्दत ॥ २० ॥

शब्दार्थ

षष्ठम्—छठवें; संवत्सरम्—वर्ष; तत्र—उस जंगल में; चरित्वा—घूमकर; रोहितः—हरिश्चन्द्र का पुत्र; पुरीम्—अपनी राजधानी में; उपव्रजन्—वहाँ जाकर; अजीगर्तात्—अजीगर्त से; अक्रीणात्—मोल लिया; मध्यमम्—दूसरा; सुतम्—पुत्र; शुनःशेफम्—जिसका नाम शुनःशेफ था; पशुम्—बलि-पशु के रूप में; पित्रे—अपने पिता को; प्रदाय—देते हुए; समवन्दत—सादर नमस्कार किया।

तत्पश्चात् छठे वर्ष जंगल में घूमने के बाद रोहित अपने पिता की राजधानी में लौट आया। उसने अजीगर्त से उसके दूसरे पुत्र शुनःशेफ को मोल लिया। फिर उसे लाकर अपने पिता हरिश्चन्द्र को भेंट किया जिससे वह बलि-पशु के रूप में प्रयुक्त किया जा सके। उसने हरिश्चन्द्र को सादर नमस्कार

किया।

तात्पर्य : ऐसा प्रतीत होता है कि उन दिनों मनुष्य को किसी भी कार्य के लिए खरीदा जा सकता था। हरिश्चन्द्र को ऐसे व्यक्ति की खोज थी जिसकी बलि यज्ञ में पशु के रूप में दी जा सके और इस तरह वरुण को दिया गया वचन पूरा किया जा सके। इसके लिए किसी अन्य व्यक्ति से एक मनुष्य खरीदा गया। लाखों वर्ष पूर्व पशु-बलि तथा दास-व्यापार दोनों प्रचलित थे। वास्तव में ये अनन्त काल से चले आ रहे हैं।

ततः पुरुषमेधेन हरिश्चन्द्रो महायशाः ।
मुक्तोदरोऽयजद्देवान्वरुणादीन्महत्कथः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; पुरुष-मेधेन—यज्ञ में मनुष्य की बलि देने से; हरिश्चन्द्रः—राजा हरिश्चन्द्र; महा-यशाः—अत्यन्त विख्यात; मुक्त-उदरः—जलोदर रोग से मुक्त हो गया; अयजत्—यज्ञ किया; देवान्—देवताओं को; वरुण-आदीन्—वरुण तथा अन्यों को; महत्-कथः—अन्य महापुरुषों के साथ इतिहास प्रसिद्ध।

तत्पश्चात् इतिहास के महापुरुष एवं सुप्रसिद्ध राजा हरिश्चन्द्र ने एक मनुष्य की बलि देकर महान् यज्ञ सम्पन्न किया और सारे देवताओं को प्रसन्न किया। इस प्रकार वरुण द्वारा उत्पन्न किया गया उसका जलोदर रोग जाता रहा।

विश्वामित्रोऽभवत्तस्मिन्होता चाध्वर्युरात्मवान् ।
जमदग्निरभूद्ब्रह्मा वसिष्ठोऽयास्यः सामगः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

विश्वामित्रः—ऋषि तथा योगी विश्वामित्र; अभवत्—बना; तस्मिन्—उस महान् यज्ञ में; होता—आहुति डालने वाला मुख्य पुरोहित; च—भी; अध्वर्युः—यजुर्वेद से स्तोत्र गाने वाला तथा कर्मकाण्ड कराने वाला व्यक्ति; आत्मवान्—पूर्णतया स्वरूपसिद्ध; जमदग्निः—जमदग्नि; अभूत्—बना; ब्रह्मा—मुख्य ब्राह्मण के रूप में; वसिष्ठः—एक मुनि; अयास्यः—अयास्य मुनि; साम-गः—सामवेद मंत्रों को गाने में लगा हुआ।

उस पुरुषमेध यज्ञ में विश्वामित्र होता थे, आत्मवान जमदग्नि अध्वर्यु थे, वसिष्ठ ब्रह्मा थे और अयास्य मुनि साम-गायक थे।

तस्मै तुष्टो ददाविन्द्रः शातकौम्भमयं रथम् ।
शुनःशेफस्य माहात्म्यमुपरिष्टात्प्रचक्ष्यते ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

तस्मै—राजा हरिश्चन्द्र को; तुष्टः—अत्यन्त प्रसन्न होकर; ददौ—प्रदान किया; इन्द्रः—इन्द्र ने; शातकौम्भ-मयम्—स्वर्णनिर्मित; रथम्—रथ; शुनःशेफस्य—शुनःशेफ का; माहात्म्यम्—ख्याति; उपरिष्टात्—विश्वामित्र के पुत्रों का वर्णन करते समय; प्रचक्ष्यते—वर्णन किया जायेगा।

हरिश्चन्द्र से अत्यन्त प्रसन्न होकर राजा इन्द्र ने उसे सोने का रथ दान में दिया। शुनःशेफ की महिमाओं का वर्णन विश्वामित्र के पुत्र के वर्णन के साथ-साथ प्रस्तुत किया जायेगा।

सत्यं सारं धृतिं दृष्ट्वा सभार्यस्य च भूपतेः ।
विश्वामित्रो भृशं प्रीतो ददावविहतां गतिम् ॥ २४॥

शब्दार्थ

सत्यम्—सत्य; सारम्—दृढ़ता; धृतिम्—सहनशीलता; दृष्ट्वा—देखकर; स-भार्यस्य—अपनी पत्नी सहित; च—तथा; भूपतेः—महाराज हरिश्चन्द्र का; विश्वामित्रः—मुनि विश्वामित्र; भृशम्—अत्यधिक; प्रीतः—प्रसन्न होकर; ददौ—उसे दिया; अविहताम् गतिम्—अक्षय ज्ञान।

विश्वामित्र ने देखा कि महाराज हरिश्चन्द्र अपनी पत्नी सहित सत्यप्रिय, सहिष्णु तथा दृढ़ था। इस तरह उन्होंने मानव उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्हें अक्षय ज्ञान प्रदान किया।

मनः पृथिव्यां तामद्भिस्तेजसापोऽनिलेन तत् ।
खे वायुं धारयंस्तच्च भूतादौ तं महात्मनि ।
तस्मिञ्ज्ञानकलां ध्यात्वा तयाज्ञानं विनिर्दहन् ॥ २५ ॥
हित्वा तां स्वेन भावेन निर्वाणसुखसंविदा ।
अनिर्देश्याप्रतर्क्येण तस्थौ विध्वस्तबन्धनः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

मनः—मन (जो खाने, सोने, मैथुन करने तथा रक्षा करने की इच्छाओं से पूर्ण रहता है); पृथिव्याम्—पृथ्वी में; ताम्—उस; अद्भिः—जल से; तेजसा—तथा अग्नि से; अपः—जल; अनिलेन—अग्नि से; तत्—उस; खे—आकाश में; वायुम्—हवा; धारयन्—मिलाकर; तत्—वह; च—भी; भूत-आदौ—मिथ्या अहंकार में, जो संसार का उद्गम है; तम्—उस (मिथ्या अहंकार); महा-आत्मनि—महत् तत्त्व में; तस्मिन्—समग्र भौतिक शक्ति (महत्-तत्त्व) में; ज्ञान-कलाम्—आध्यात्मिक ज्ञान तथा इसकी विभिन्न शाखाएँ; ध्यात्वा—ध्यान द्वारा; तया—इस विधि से; अज्ञानम्—अज्ञान को; विनिर्दहन्—विशेष रूप से दमित; हित्वा—त्यागकर; ताम्—भौतिक इच्छा को; स्वेन—आत्म-साक्षात्कार के द्वारा; भावेन—भक्ति में; निर्वाण-सुख-संविदा—संसार का अन्त करके दिव्य आनन्द द्वारा; अनिर्देश्य—अवर्णनीय; अप्रतर्क्येण—अचिन्त्य; तस्थौ—रहता रहा; विध्वस्त—पूर्णतया मुक्त; बन्धनः—भौतिक बन्धन से।

इस प्रकार महाराज हरिश्चन्द्र ने पहले भौतिक भोग से पूर्ण अपने मन को पृथ्वी के साथ मिलाकर शुद्ध किया। तब उसने पृथ्वी को जल के साथ, जल को अग्नि के साथ, अग्नि को वायु के साथ तथा वायु को आकाश के साथ मिला दिया। तत्पश्चात् उसने आकाश को महत्-तत्त्व से और महत्-तत्त्व को आध्यात्मिक ज्ञान से मिला दिया। यह आध्यात्मिक ज्ञान अपने आपको भगवान् के अंश रूप में अनुभव करना है। जब स्वरूपसिद्ध जीव भगवान् की सेवा में लगता है तो वह नित्य रूप से

अवर्णनीय तथा अचिन्त्य होता है। इस प्रकार आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त हो जाने पर वह भव-बन्धन से पूर्णतः मुक्त हो जाता है।

इस प्रकार *श्रीमद्भागवत* के नवम स्कन्ध के अन्तर्गत "राजा मान्धाता के वंशज" नामक सातवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter आठ

भगवान् कपिलदेव से सगर-पुत्रों की भेंट

इस अध्याय में रोहित के वंशजों का वर्णन मिलता है। रोहित के वंश में सगर नाम का एक राजा हुआ जिसकी कथा कपिलदेव तथा सगर के पुत्रों के विनाश के सम्बन्ध में वर्णित है।

रोहित का पुत्र हरित के नाम से जाना जाता था। हरित का पुत्र चम्प था जिसने चम्पापुरी नगरी का निर्माण कराया। चम्प का पुत्र सुदेव था, सुदेव का पुत्र विजय हुआ जिसका पुत्र भरुक था। भरुक का पुत्र वृक था। वृक का पुत्र बाहुक अपने शत्रुओं के कारण अत्यन्त क्षुब्ध था; अतएव उसने अपनी पत्नी सहित अपना घर छोड़ दिया और दोनों जंगल में चले गये। जब वहाँ उसकी मृत्यु हो गई तो उसकी पत्नी ने अपने पति के साथ सती होना चाहा, किन्तु जब वह मरने जा रही थी तो और्व नामक मुनि ने देखा कि वह गर्भवती है; अतएव उस मुनि ने उसे सती होने से मना किया। इस पत्नी की सौतों ने उसे भोजन के साथ विष खिला दिया, किन्तु फिर भी उसका पुत्र विष के साथ पैदा हुआ। इसलिए यह पुत्र सगर कहलाया *स*—सहित तथा *गर*—गरल (विष)। मुनि और्व के आदेशों का पालन करते हुए राजा सगर ने यवन, शक, हैहय तथा बर्बर जातियों का उद्धार किया। राजा ने इन सब जातियों का वध नहीं किया अपितु उनका सुधार किया। सगर ने और्व के आदेशों के अनुसार अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न किये, किन्तु इस यज्ञ के लिए जिस घोड़े की आवश्यकता थी उसे इन्द्र ने चुरा लिया। राजा सगर के दो पत्नियाँ थीं—सुमति तथा केशिनी। इस घोड़े की खोज करते हुए सुमति के पुत्रों ने पृथ्वी की सतह बहुत दूर तक खोद डाली और इस तरह एक खाई बन गई जो बाद में सागर कहलायी। इस खोज के दौरान उनकी भेंट महापुरुष कपिलदेव से हुई। उन्होंने सोचा कि इसी व्यक्ति ने घोड़े को चुराया है। ऐसे अपराधपूर्ण विचार से उन्होंने उन पर आक्रमण कर दिया किन्तु वे सभी जलकर क्षार हो गये। राजा सगर की द्वितीय पत्नी केशिनी के एक पुत्र था जिस का नाम असमञ्जस था जिसके पुत्र अंशुमान ने बाद में घोड़े की खोज की और अपने चचेरे भाइयों को छुड़वाया। कपिलदेव के पास जाकर अंशुमान ने देखा कि एक ओर यज्ञ का घोड़ा है और दूसरी ओर राख का ढेर है। अंशुमान ने कपिलदेव की स्तुति की। इससे प्रसन्न होकर कपिलदेव ने उसका घोड़ा लौटा दिया। किन्तु घोड़ा वापस पाने के बाद भी अंशुमान कपिलदेव के समक्ष खड़ा रहा। कपिलदेव समझ गये कि अंशुमान अपने

पितरों के उद्धार के लिए प्रार्थना कर रहा है। इस प्रकार कपिलदेव ने उन्हें बताया कि वे गंगा के जल से उद्धार पा सकते हैं। तब अंशुमान ने कपिलदेव को सादर नमस्कार किया, उनकी प्रदक्षिणा की और घोड़ा लेकर यज्ञस्थल की ओर कूच किया। राजा सगर ने यज्ञ समाप्त करने के बाद अपना राज्य अंशुमान को सौंप दिया और और्व के उपदेशों का पालन करते हुए मोक्ष प्राप्त किया।

श्रीशुक उवाच
हरितो रोहितसुतश्चम्पस्तस्माद्विनिर्मिता ।
चम्पापुरी सुदेवोऽतो विजयो यस्य चात्मजः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; हरितः—हरित नामक; रोहित-सुतः—रोहित का पुत्र; चम्पः—चम्प नामक; तस्मात्—हरित से; विनिर्मिता—बनवाया गया; चम्पा-पुरी—चम्पापुरी नामक नगर; सुदेवः—सुदेव; अतः—तत्पश्चात् (चम्प से); विजयः—विजय नामक; यस्य—जिसका (सुदेव का); च—भी; आत्म-जः—पुत्र।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : रोहित का पुत्र हरित हुआ और हरित का पुत्र चम्प हुआ जिसने चम्पापुरी नामक नगर का निर्माण कराया। चम्प का पुत्र सुदेव हुआ और सुदेव का पुत्र विजय था।

भरुकस्तत्सुतस्तस्माद्वृकस्तस्यापि बाहुकः ।
सोऽरिभिर्हृतभू राजा सभार्यो वनमाविशत् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

भरुकः—भरुक नामक; तत्-सुतः—विजय का पुत्र; तस्मात्—उससे (बहक); वृकः—वृक; तस्य—उसका; अपि—भी; बाहुकः—बाहुक; सः—वह; अरिभिः—अपने शत्रुओं द्वारा; हृत-भूः—जिसकी धरती छीन ली गई है; राजा—राजा (बाहुक); स-भार्यः—पत्नी सहित; वनम्—जंगल में; आविशत्—प्रविष्ट हुआ।

विजय का पुत्र भरुक, भरुक का पुत्र वृक और उसका पुत्र बाहुक हुआ। राजा बाहुक के शत्रुओं ने उसकी सारी सम्पत्ति छीन ली जिससे उसने वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण कर लिया और अपनी पत्नी सहित वन में चला गया।

वृद्धं तं पञ्चतां प्राप्तं महिष्यनुमरिष्यती ।
और्वेण जानतात्मानं प्रजावन्तं निवारिता ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

वृद्धम्—वृद्ध को; तम्—उस; पञ्चताम्—मृत्यु; प्राप्तम्—प्राप्त हुए; महिषी—रानी; अनुमरिष्यती—सती होना चाहती थी; और्वेण—और्व मुनि द्वारा; जानता—समझते हुए; आत्मानम्—रानी का शरीर; प्रजा-वन्तम्—गर्भ में शिशु है; निवारिता—मना किया गया।

जब बाहुक वृद्ध होकर मर गया तो उसकी एक पत्नी उसके साथ सती होना चाहती थी। किन्तु

उस समय और्व मुनि ने यह जानते हुए कि वह गर्भवती है उसे सती होने से मना किया।

आज्ञायास्यै सपत्नीभिर्गरो दत्तोऽन्धसा सह ।
सह तेनैव सञ्जातः सगराख्यो महायशाः ।
सगरश्चक्रवर्त्यासीत्सागरो यत्सुतैः कृतः ॥ ४॥

शब्दार्थ

आज्ञाय—(यह) जानते हुए; अस्यै—गर्भवती रानी को; सपत्नीभिः—बाहुक की अन्य पत्नियों के द्वारा; गरः—विष; दत्तः—दिया गया; अन्धसा सह—उसके भोजन के साथ; सह तेन—उस विष के साथ; एव—भी; सञ्जातः—उत्पन्नहुआ; सगर-आख्यः—सगर नाम से विख्यात; महा-यशाः—अत्यन्त ख्याति वाला; सगरः—राजा सगर; चक्रवर्ती—सम्राट; आसीत्—हुआ; सागरः—गंगासागर नामक स्थान; यत्-सुतैः—जिसके पुत्रों द्वारा; कृतः—खोदा गया था।

यह जानते हुए कि वह गर्भवती थी, उसकी सौतों ने उसको भोजन के साथ विष देने की मंत्रणा की लेकिन यह फलीभूत नहीं हुई। किन्तु इस विष सहित एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो सगर (विष सहित) कहलाया। बाद में सगर सम्राट बना। गंगासागर नामक स्थान उसके पुत्रों द्वारा खोदा गया था।

यस्तालजङ्घान्यवनाञ्छकान्हैहयबर्बरान् ।
नावधीद्गुरुवाक्येन चक्रे विकृतवेषिणः ॥ ५॥
मुण्डाञ्छ्मश्रुधरान्कांश्चिन्मुक्तकेशार्धमुण्डितान् ।
अनन्तर्वाससः कांश्चिदबहिर्वाससोऽपरान् ॥ ६॥

शब्दार्थ

यः—जो, महाराज सगर; तालजङ्घान्—तालजंघ नामक असभ्य जाति; यवनान्—वैदिक साहित्य को न मानने वाले; शकान्—अन्य नास्तिक जाति; हैहय—असभ्य; बर्बरान्—तथा बर्बरों को; न—नहीं; अवधीत्—मारा; गुरु-वाक्येन—अपने गुरु के आदेश से; चक्रे—उन्हें बनाया; विकृत-वेषिणः—बेढंगे वस्त्र पहने; मुण्डान्—सिर घुटवाये; श्मश्रु-धरान्—मूँछों वाले; कांश्चित्—उनमें से कुछ; मुक्त-केश—बिखरे बाल; अर्ध-मुण्डितान्—आधा सिर घुटवाये; अनन्तः-वाससः—बिना भीतरी वस्त्र के; कांश्चित्—उनमें से कुछ; अबहिः-वाससः—बाहरी वस्त्रों के बिना; अपरान्—अन्यों को।

सगर महाराज ने अपने गुरु और्व के आदेशानुसार तालजंघ, यवन, शक, हैहय तथा बर्बर जातियों के असभ्य लोगों का वध नहीं किया अपितु उनमें से कुछ को भद्दे वस्त्र पहनने को बाध्य कर दिया, कुछ के सिर घुटवा दिये लेकिन मूँछें रखने दीं, कुछ के बालों को खुलवा दिया, कुछ के सिर आधे घुटवा दिए, कुछ को बिना भीतरी वस्त्र के कर दिया और कुछ को निर्वस्त्र करा दिया। इस प्रकार ये जातियाँ भिन्न-भिन्न वस्त्र धारण करने के लिए बाध्य की गईं, किन्तु राजा सगर ने इन्हें मारा नहीं।

सोऽश्वमेधैरयजत सर्ववेदसुरात्मकम् ।
और्वोपदिष्टयोगेन हरिमात्मानमीश्वरम् ।
तस्योत्सृष्टं पशुं यज्ञे जहाराश्वं पुरन्दरः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

सः—उसने; अश्वमेधैः—अश्वमेध यज्ञ करके; अयजत—पूजा की; सर्व-वेद—सारे वैदिक ज्ञान का; सुर—तथा सारे विद्वान् साधुओं का; आत्मकम्—परमात्मा; और्व-उपदिष्ट-योगेन—और्व की योग विधि द्वारा; हरिम्—भगवान् को; आत्मानम्—परमात्मा को; ईश्वरम्—ईश्वर को; तस्य—उसका (सगर का); उत्सृष्टम्—बलि के निमित्त; पशुम्—बलि पशु को; यज्ञे—यज्ञ में; जहार—चुरा लिया; अश्वम्—घोड़े को; पुरन्दरः—स्वर्ग के राजा इन्द्रने।

और्व मुनि के आदेशानुसार सगर महाराज ने अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न किया और इस तरह भगवान् को प्रसन्न किया जो परम नियन्ता, समस्त विद्वानों के परमात्मा तथा सभी वेदों के ज्ञाता हैं। किन्तु स्वर्ग के राजा इन्द्र ने यज्ञ में बलि दिये जाने वाले घोड़े को चुरा लिया।

सुमत्यास्तनया दृप्ताः पितुरादेशकारिणः ।
हयमन्वेषमाणास्ते समन्तान्न्यखनन्महीम् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

सुमत्याः तनयाः—रानी सुमति से उत्पन्न पुत्र; दृप्ताः—अपने पराक्रम तथा प्रभाव से गर्वित; पितुः—अपने पिता (सगर) का; आदेश-कारिणः—आदेश का पालन करते हुए; हयम्—(इन्द्र द्वारा चुराये) घोड़े को; अन्वेषमाणाः—ढूँढते हुए; ते—वे सब; समन्तात्—सर्वत्र; न्यखनन्—खोद डाला; महीम्—पृथ्वी को।

(राजा सगर के दो पत्नियाँ थीं—सुमति तथा केशिनी)। सुमति के पुत्रों ने, जिन्हें अपने पराक्रम तथा प्रभाव पर गर्व था, अपने पिता के आदेशानुसार खोये हुए घोड़े को सर्वत्र ढूँढा। ऐसा करते हुए उन्होंने पृथ्वी को बहुत दूर तक खोद डाला।

प्रागुदीच्यां दिशि हयं ददृशुः कपिलान्तिके ।
एष वाजिहरश्चौर आस्ते मीलितलोचनः ॥ ९ ॥
हन्यतां हन्यतां पाप इति षष्टिसहस्त्रिणः ।
उदायुधा अभिययुरुन्मिमेष तदा मुनिः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

प्राक्-उदीच्याम्—उत्तरपूर्व; दिशि—दिशा में; हयम्—घोड़े को; ददृशुः—देखा; कपिल-अन्तिके—कपिल के आश्रम के निकट; एषः—यह रहा; वाजि-हरः—घोड़ा चुराने वाला; चौरः—चोर; आस्ते—स्थित; मीलित-लोचनः—आँखें बन्द किये; हन्यताम् हन्यताम्—मारो मारो; पापः—पापी पुरुष; इति—इस प्रकार; षष्टि-सहस्त्रिणः—सगर के साठ हजार पुत्र; उदायुधाः—अपने-अपने हथियार लिए; अभिययुः—पास आये; उन्मिमेष—अपनी आँखें खोलीं; तदा—उस समय; मुनिः—कपिल मुनि ने।

तत्पश्चात् जब उन्होंने उत्तरपूर्व दिशा में कपिल मुनि के आश्रम के निकट घोड़े को देखा तो वे

बोल उठे "यह रहा घोड़ाचोर! यह आँखें बन्द किये बैठा है। यह निश्चय ही बड़ा पापी है। इसे मारो, मारो।" इस प्रकार चिल्लाते हुए सगर के साठ हजार पुत्रों ने एकसाथ अपने हथियार उठा लिये। जब वे मुनि के निकट पहुँचे तो मुनि ने अपनी आँखें खोलीं।

स्वशरीराग्निना तावन्महेन्द्रहृतचेतसः ।
महद्व्यतिक्रमहता भस्मसादभवन्क्षणात् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

स्व-शरीर-अग्निना—अपने शरीरों से निकली अग्नि से; तावत्—तुरन्त; महेन्द्र—इन्द्र की चाल से; हृत-चेतसः—जिनकी बुद्धि हर ली गई है; महत्—महापुरुष; व्यतिक्रम-हताः—अपमान के कारण पराजित; भस्मसात्—जलकर राख; अभवन्—हो गये; क्षणात्—क्षणभर में।

स्वर्ग के राजा इन्द्र के प्रभाव से सगर के पुत्रों की बुद्धि मारी गई जिससे उन्होंने एक महापुरुष का अपमान कर दिया। फलस्वरूप उनके शरीरों से अग्नि निकलने लगी और वे तुरन्त जलकर राख हो गये।

तात्पर्य : यह भौतिक शरीर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश का मेल है। शरीर के भीतर पहले से अग्नि रहती है और हमें इसका अनुभव है कि इस अग्नि का ताप घटता-बढ़ता रहता है। सगर महाराज के पुत्रों के शरीरों के भीतर की अग्नि इतनी दग्ध हो उठी कि वे सब भस्म हो गए। एक महापुरुष के प्रति दुर्व्यवहार के कारण अग्नि का ताप बढ़ गया था। ऐसा दुर्व्यवहार *महद्-व्यतिक्रम* कहलाता है। वे सभी अपने शरीरों की अग्नि से मर गए क्योंकि उन्होंने महापुरुष का अपमान किया था।

न साधुवादो मुनिकोपभर्जिता
नृपेन्द्रपुत्रा इति सत्त्वधामनि ।
कथं तमो रोषमयं विभाव्यते
जगत्पवित्रात्मनि खे रजो भुवः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; साधु-वादः—विद्वान पुरुषों का मत; मुनि-कोप—कपिल मुनि के क्रोध से; भर्जिताः—जल कर राख हो गए; नृपेन्द्र-पुत्राः—सगर महाराज के सारे पुत्र; इति—इस प्रकार; सत्त्व-धामनि—कपिल मुनि में, जिनमें सतोगुण प्रधान था; कथम्—कैसे; तमः—तमोगुण; रोष-मयम्—क्रोध के रूप में; विभाव्यते—प्रकट हो सकता है; जगत्-पवित्र-आत्मनि—उसमें, जिसका शरीर सारे संसार को पवित्र कर सकता है; खे—आकाश में; रजः—धूल; भुवः—पार्थिव।

कभी-कभी यह तर्क दिया जाता है कि राजा सगर के सारे पुत्र कपिल मुनि की आँखों से निकली अग्नि से भस्मसात् हुए थे। लेकिन विद्वान पुरुष इस मत की पुष्टि नहीं करते क्योंकि कपिल

मुनि का शरीर नितान्त सात्विक था अतएव उससे क्रोध के रूप में तमोगुण प्रकट नहीं हो सकता जिस तरह निर्मल आकाश को पृथ्वी की धूल दूषित नहीं कर सकती।

यस्येरिता साङ्ख्यमयी दृढेह नौ-
र्यया मुमुक्षुस्तरते दुरत्ययम् ।
भवार्णवं मृत्युपथं विपश्चितः
परात्मभूतस्य कथं पृथङ्मतिः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

यस्य—जिसके द्वारा; ईरिता—बतलाया गया; साङ्ख्य-मयी—भौतिक संसार का विश्लेषण करते हुए सांख्य दर्शन के रूप में; दृढा—अत्यन्त प्रबल (इस जगत से लोगों का उद्धार करने के लिए); इह—इस जगत में; नौः—नाव; यया—जिससे; मुमुक्षुः—मोक्ष की कामना करने वाला व्यक्ति; तरते—पार कर सकता है; दुरत्ययम्—दुर्लंघ्य; भव-अर्णवम्—अज्ञान के समुद्र को; मृत्यु-पथम्—बारम्बार जन्म-मृत्यु का जीवन; विपश्चितः—विद्वान पुरुष का; परात्म-भूतस्य—दिव्य पद को प्राप्त; कथम्—कैसे; पृथक्-मतिः—(मित्र तथा शत्रु का) भेदभाव।.

कपिल मुनि ने इस जगत में सांख्य दर्शन का प्रवर्तन किया जो अज्ञानरूपी सागर को पार करने के लिए दृढ़ नाव है। निस्सन्देह, भवसागर को पार करने के इच्छुक व्यक्ति को इस दर्शन का आश्रय ग्रहण करना चाहिए। ऐसे महापुरुष में, जो अध्यात्म के उच्चपद को प्राप्त हो, एक मित्र तथा शत्रु में कोई अन्तर कैसे हो सकता है?

तात्पर्य : जो दिव्य पद को प्राप्त होता है (*ब्रह्मभूत*) वह सदैव प्रसन्न रहता है (*प्रसन्नात्मा*)। वह इस संसार में अच्छे तथा बुरे के मिथ्या अन्तर से अप्रभावित रहता है। अतएव ऐसा महान् पुरुष *समः सर्वेषु भूतेषु* होता है। वह प्रत्येक व्यक्ति के साथ समता का व्यवहार करता है और मित्र एवं शत्रु के बीच भेदभाव नहीं बर्तता। चूँकि वह भौतिक कल्मष से रहित परम पद पर होता है इसलिए वह *परात्म-भूत* या *ब्रह्मभूत* कहलाता है। इसलिए कपिल मुनि महाराज सगर के पुत्रों पर तनिक भी क्रुद्ध नहीं थे; प्रत्युत वे सभी अपने शरीर के ताप से भस्मसात् हो गये।

योऽसमञ्जस इत्युक्तः स केशिन्या नृपात्मजः ।
तस्य पुत्रोऽंशुमान्नाम पितामहहिते रतः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

यः—सगर का एक पुत्र, जो; असमञ्जसः—असमंजस नामक; इति—इस तरह; उक्तः—ज्ञात; सः—वह; केशिन्याः—राजा सगर की अन्य पत्नी केशिनी के गर्भ से; नृप-आत्मजः—राजा का पुत्र; तस्य—उसका; पुत्रः—पुत्र; अंशुमान् नाम—अंशुमान के रूप में ज्ञात था; पितामह-हिते—अपने बाबा सगर महाराज के हित में; रतः—सदा लगा हुआ।.

महाराज सगर के पुत्रों में एक का नाम असमंजस था जो राजा की दूसरी पत्नी केशिनी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। असंमजस का पुत्र अंशुमान था और वह अपने बाबा सगर महाराज के कल्याण-कार्य में सदैव लगा रहता था।

असमञ्जस आत्मानं दर्शयन्नसमञ्जसम् ।
जातिस्मरः पुरा सङ्गाद्योगी योगाद्विचालितः ॥ १५ ॥
आचरन्गर्हितं लोके ज्ञातीनां कर्म विप्रियम् ।
सरय्वां क्रीडतो बालान्प्रास्यदुद्वेजयञ्जनम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

असमञ्जसः—सगर महाराज का पुत्र; आत्मानम्—स्वयं; दर्शयन्—प्रकट करते हुए; असमञ्जसम्—अत्यन्त विक्षुब्धकारी; जाति-स्मरः—अपने विगत जीवन को स्मरण रखने में समर्थ; पुरा—प्राचीन काल में; सङ्गात्—बुरी संगति से; योगी—योगी होते हुए भी; योगात्—योग पथ से; विचालितः—नीचे गिर गया; आचरन्—आचरण; गर्हितम्—अशोभनीय; लोके—समाज में; ज्ञातीनाम्—अपने सम्बन्धियों का; कर्म—कार्य; विप्रियम्—अधिक अनुकूल नहीं; सरय्वाम्—सरयू नदी में; क्रीडतः—खेल में रत; बालान्—सारे लड़कों को; प्रास्यत्—फेंक देता; उद्वेजयन्—कष्ट देता हुआ; जनम्—सामान्य लोगों को।

पिछले जन्म में असमंजस एक महान् योगी था, किन्तु कुसंगति के कारण वह अपने उच्चपद से नीचे गिर गया था। अब, इस जन्म में वह राजपरिवार में उत्पन्न हुआ था और जाति-स्मर था अर्थात् वह अपने पूर्वजन्म को स्मरण करने में समर्थ था। फिर भी वह अपने आपको दुर्जन के रूप में दिखलाना चाहता था; अतएव वह ऐसा कार्य किया करता था जो जनता तथा उसके परिजनों की दृष्टि में गर्हित तथा प्रतिकूल होता। वह सरयू नदी में खेल करते बालकों को गहरे जल में फेंककर उन्हे तगं करता रहता था।

एवं वृत्तः परित्यक्तः पित्रा स्नेहमपोह्य वै ।
योगैश्वर्येण बालांस्तान्दर्शयित्वा ततो ययौ ॥ १७॥

शब्दार्थ

एवम् वृत्तः—इस प्रकार (गर्हित कार्यों में) व्यस्त; परित्यक्तः—निकाला हुआ; पित्रा—पिता द्वारा; स्नेहम्—स्नेह; अपोह्य—त्यागकर; वै—निस्सन्देह; योग-ऐश्वर्येण—योगशक्ति से; बालान् तान्—उन बालकों को जो जल में गिराए गए थे और मारे गए थे; दर्शयित्वा—उनके माता पिता को फिर से दिखलाकर; ततः ययौ—उस स्थान से चला गया।

चूँकि असमंजस ऐसे गर्हित कार्यों में लगा रहता था अतएव उसके पिता ने उससे स्नेह करना छोड़ दिया और उसे घर से निकाल दिया। तब असमंजस ने उन बालकों को जीवित करके उन्हें राजा तथा उनके माता-पिताओं को दिखलाकर अपनी योगशक्ति का प्रदर्शन किया। तत्पश्चात् असमंजस ने

अयोध्या छोड़ दिया।

तात्पर्य : असमंजस जातिस्मर था। उसे अपनी योगशक्ति से अपनी पूर्वचेतना भूली नहीं थी। अतएव वह मृत को जिला सकता था। मृत बालकों के प्रति अद्‌भुत कृत्य करके उसने निश्चय ही, राजा तथा जनता का ध्यान आकृष्ट किया और फिर तुरन्त वहाँ से चला गया।

अयोध्यावासिनः सर्वे बालकान्पुनरागतान् ।
दृष्ट्वा विसिस्मिरे राजन्राजा चाप्यन्वतप्यत ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

अयोध्या-वासिनः—अयोध्या के निवासी; सर्वे—सारे; बालकान्—उनके पुत्र; पुनः—फिर; आगतान्—पुनः जीवित होकर; दृष्ट्वा—इसे देखकर; विसिस्मिरे—स्तम्भित हो गये; राजन्—हे राजा परीक्षित; राजा—राजा सगर ने; च—भी; अपि—निस्सन्देह; अन्वतप्यत—(अपने पुत्र की अनुपस्थिति के लिए) अत्यन्त शोक किया।

हे राजा परीक्षित, जब सारे अयोध्यावासियों ने देखा कि उनके लड़के पुनः जीवित हो उठे हैं तो वे स्तम्भित रह गये और राजा सगर को अपने पुत्र की अनुपस्थिति पर अत्यधिक पश्चाताप हुआ।

अंशुमांश्चोदितो राज्ञा तुरगान्वेषणे ययौ ।
पितृव्यखातानुपथं भस्मान्ति ददृशे हयम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

अंशुमान्—असमंजस का पुत्र; चोदितः—आदेश पाकर; राज्ञा—राजा से; तुरग—घोड़ा; अन्वेषणे—खोजने के लिए; ययौ—बाहर चला गया; पितृव्य-खात—जैसा कि चाचा लोगों ने वर्णन किया था; अनुपथम्—उस रास्ते से जाकर; भस्म-अन्ति—राख के ढेर के निकट; ददृशे—उसने देखा; हयम्—घोड़े को।

तत्पश्चात् महाराज सगर ने अपने पौत्र अंशुमान को घोड़ा ढूँढ लाने का आदेश दिया। अंशुमान अपने चाचाओं के पथ से होकर धीरे-धीरे राख के ढेर तक पहुँचा और उसने उसी के निकट घोड़े को पाया।

तत्रासीनं मुनिं वीक्ष्य कपिलाख्यमधोक्षजम् ।
अस्तौत्समाहितमनाः प्राञ्जलिः प्रणतो महान् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; आसीनम्—आसन ग्रहण किये; मुनिम्—मुनि को; वीक्ष्य—देखकर; कपिल-आख्यम्—कपिल मुनि के रूप में ज्ञात; अधोक्षजम्—विष्णु के अवतार; अस्तौत्—प्रार्थना की; समाहित-मनाः—बड़े ध्यान से; प्राञ्जलिः—हाथ जोड़कर; प्रणतः—नीचे गिरकर, नमस्कार करते हुए; महान्—महापुरुष अंशुमान ने।

महान् अंशुमान ने विष्णु अवतार कपिल नामक मुनि को देखा जो घोड़े के निकट आसीन थे।

अंशुमान ने उन्हें हाथ जोड़कर नमस्कार किया और दत्तचित्त होकर उनकी प्रार्थना की।

अंशुमानुवाच
न पश्यति त्वां परमात्मनोऽजनो
न बुध्यतेऽद्यापि समाधियुक्तिभिः ।
कुतोऽपरे तस्य मनःशरीरधी-
विसर्गसृष्टा वयमप्रकाशाः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

अंशुमान् उवाच—अंशुमान ने कहा; न—नहीं; पश्यति—देख सकता है; त्वाम्—आपको; परम्—दिव्य; आत्मनः—हम जीवों का; अजनः—ब्रह्मा; न—नहीं; बुध्यते—समझ सकता है; अद्य अपि—आज भी; समाधि—ध्यान से; युक्तिभिः—या चिन्तन से; कुतः—कैसे; अपरे—अन्य; तस्य—उसका; मनः-शरीर-धी—जो शरीर या मन को स्वयं (आत्मा) मानते हैं; विसर्ग-सृष्टाः—इस संसार के प्राणी; वयम्—हम; अप्रकाशाः—दिव्य ज्ञान से रहित।

अंशुमान ने कहा : हे भगवान्, आज तक ब्रह्माजी भी आपके अगम्य पद को ध्यान या चिन्तन द्वारा समझ पाने में असमर्थ हैं तो हम जैसों की कौन कहे जो ब्रह्मा द्वारा देवता, पशु, मनुष्य, पक्षी तथा पशु इत्यादि के विविध रूपों में उत्पन्न किये गये हैं? हम पूरी तरह अज्ञान में हैं। अतएव हम साक्षात् ब्रह्म स्वरूप आपको कैसे जान सकते हैं?

तात्पर्य : इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत।

सर्वभूतानि सम्मोहं सर्गे यान्ति परन्तप॥

"हे भरतवंशी (अर्जुन), हे शत्रु के विजेता! सारे जीव मोह में उत्पन्न होते हैं, वे इच्छा तथा घृणा के द्वैत से पराजित होते हैं।" (*भगवद्गीता* ७.२७)। इस जगत के सारे जीव प्रकृति के तीन गुणों से प्रभावित होते हैं। यहाँ तक कि ब्रह्माजी भी सतोगुणी हैं। इसी प्रकार देवता प्रायः रजोगुणी हैं तथा देवताओं से नीचे के जीव यथा मनुष्य तथा पशु तमोगुणी या सतो, रजो और तमो गुणों के मिश्रण होते हैं। अतएव अंशुमान बताना चाहता था कि उनके सारे चचा जो भस्म हो गये थे, प्रकृति के गुणों के अधीन होने के कारण कपिलदेव मुनि को समझ नहीं पाये। उसने प्रार्थना की "चूँकि आप ब्रह्माजी की प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष बुद्धि से भी परे हैं अतएव जब तक आप हमें ज्ञान न दें हम आपको समझने में असमर्थ हैं।"

अथापि ते देव पदाम्बुजद्वयप्रसादलेशानुगृहीत एव हि।

जानाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन्॥

"हे प्रभु! जिस पर आपके चरणकमलों की किञ्चिन्मात्र भी कृपा हो जाती है वह आपकी महानता को

समझ सकता है। किन्तु जो भगवान् को समझने के लिए चिन्तन करते हैं वे चाहे वेदों का वर्षों तक अध्ययन क्यों न करें आपको समझ नहीं पाते।" (*भागवत* १०.१४.२९)। भगवान् को वही समझ सकता है जिस पर उनकी कृपा हो; अन्य लोग उन्हें नहीं समझ सकते।

ये देहभाजस्त्रिगुणप्रधाना
गुणान्विपश्यन्त्युत वा तमश्च ।
यन्मायया मोहितचेतसस्त्वां
विदुः स्वसंस्थं न बहिःप्रकाशाः ॥ २२॥

शब्दार्थ

ये—जिन पुरुषों ने; देह-भाजः—भौतिक शरीर धारण किया है; त्रि-गुण-प्रधानाः—भौतिक प्रकृति के तीनों गुणों द्वारा प्रभावित; गुणान्—तीनों गुणों की अभिव्यक्ति; विपश्यन्ति—केवल देख सकते हैं; उत—ऐसा कहा जाता है; वा—अथवा; तमः—तमोगुण; च—और; यत्-मायया—जिसकी माया से; मोहित—मोहित; चेतसः—जिनके हृदय; त्वाम्—आपको; विदुः—जानते हैं; स्व-संस्थम्—अपने शरीर में स्थित; न—नहीं; बहिः-प्रकाशाः—जो केवल बहिरंगा शक्ति के फलों को देख पाते हैं।

हे स्वामी, आप सबों के हृदयों मे भलीभाँति स्थित हैं, किन्तु भौतिक शरीर से आवृत सारे जीव आपको नहीं देख पाते क्योंकि वे त्रिगुणमयी माया द्वारा प्रेरित बहिरंगा शक्ति के द्वारा प्रभावित रहते हैं। उनकी बुद्धि सतो, रजो तथा तमो गुणों से ढकी होने से वे प्रकृतिके इन तीनों गुणों की क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं को ही देख पाते हैं। तमोगुण की क्रिया-प्रतिक्रियाओं के कारण जाग्रत या सुप्त जीव प्रकृति की कार्यविधि को ही देख पाते हैं; वे आप (भगवान्) को नहीं देख सकते।

तात्पर्य : भगवान् की प्रेमाभक्ति में स्थित हुए बिना प्रत्येक मनुष्य भगवान् को समझने में असमर्थ रहता है। भगवान् हरएक के हृदय में स्थित हैं। किन्तु बद्धजीव प्रकृति द्वारा प्रभावित होने के कारण उसके कर्मों तथा फलों को ही देख पाते हैं, भगवान् को नहीं। अतएव मनुष्य को भीतर-बाहर से अपने आपको पवित्र बनाना चाहिए।

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।

यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

अपने आप को बाहर से स्वच्छ रखने के लिए हमें तीन बार स्नान करना चाहिए और आन्तरिक शुद्धि के लिए हमें हरे कृष्ण मंत्र का कीर्तन करके अपने हृदय को शुद्ध करना चाहिए। कृष्णभावनामृत आन्दोलन के सारे सदस्यों को इस नियम (*बाह्याभ्यन्तर शुचिः*) का सदैव पालन करना चाहिए। तभी एक दिन

भगवान् का साक्षात्कार हो सकेगा।

तं त्वां अहं ज्ञानघनं स्वभाव-
प्रध्वस्तमायागुणभेदमोहैः ।
सनन्दनाद्यैर्मुनिभिर्विभाव्यं
कथं विमूढः परिभावयामि ॥ २३॥

शब्दार्थ

तम्—उस; त्वाम्—आपको; अहम्—मैं; ज्ञान-घनम्—घनीभूत ज्ञान स्वरूप आप; स्वभाव—स्वभाव से; प्रध्वस्त—कल्मषरहित; माया-गुण—तीन गुणों से उत्पन्न; भेद-मोहैः—भेदरूपी मोह के प्रदर्शन द्वारा; सनन्दन-आद्यैः—चारों कुमारों जैसे व्यक्तियों द्वारा; मुनिभिः—ऐसे मुनियों द्वारा; विभाव्यम्—पूज्य; कथम्—कैसे; विमूढः—प्रकृति द्वारा मूर्ख बनाया गया; परिभावयामि—आपके विषय में सोच सकता हूँ।.

हे प्रभु, प्रकृति के तीनों गुणों के प्रभाव से मुक्त हुए साधुपुरुष, यथा चारों कुमार (सनत्, सनक, सनन्दन तथा सनातन) ही ज्ञान के पुंज आपके विषय में सोच सकते हैं। भला मुझ जैसा अज्ञानी व्यक्ति आपके विषय में कैसे सोच सकता है?

तात्पर्य : स्वभाव शब्द किसी के निजी आध्यात्मिक स्वभाव या मूल स्थिति को बताता है। अपनी मूल स्थिति पर रहकर जीव प्रकृति के गुणों से अप्रभावित रहता है। *स गुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते* (*भगवद्गीता* १४.२६)। तीनों गुणों के प्रभाव से मुक्त होते ही वह ब्रह्म पद पर आसीन हो जाता है। चारों कुमार तथा नारद इसी प्रकार के पद पर स्थित पुरुषों के स्पष्ट उदाहरण हैं। ऐसे महापुरुष स्वभाव से भगवान् की स्थिति को समझ सकते हैं लेकिन प्रकृति के प्रभाव से मुक्त न होने के कारण बद्धजीव ब्रह्म की अनुभूति नहीं कर सकता। इसीलिए *भगवद्गीता* (२.४५) में कृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हैं—*त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन*—मनुष्य को तीनों गुणों के प्रभाव से ऊपर उठना चाहिए। जो तीनों गुणों के प्रभाव में बना रहता है वह भगवान् को समझने में असमर्थ रहता है।

प्रशान्त मायागुणकर्मलिङ्ग-
मनामरूपं सदसद्विमुक्तम् ।
ज्ञानोपदेशाय गृहीतदेहं
नमामहे त्वां पुरुषं पुराणम् ॥ २४॥

शब्दार्थ

प्रशान्त—हे पूर्णतया शान्त; माया-गुण—प्रकृति के गुण; कर्म-लिङ्गम्—सकाम कर्मों से जाना जाने वाला; अनाम-रूपम्—जिसके कोई नाम या रूप न हो; सत्-असत्-विमुक्तम्—प्रकृति के व्यक्त तथा अव्यक्त गुणों से परे; ज्ञान-उपदेशाय—दिव्य ज्ञान (यथा

भगवद्‌गीता का) वितरित करने के लिए; गृहीत-देहम्—जिसने शरीर धारण किया है; नमामहे—मैं नमस्कार करता हूँ; त्वाम्—तुमको; पुरुषम्—परमपुरुष को; पुराणम्—आदि।

हे परम शान्तिमय स्वामी, यद्यपि यह प्रकृति, सारे सकाम कर्म तथा उनके फलस्वरूप भौतिक नाम तथा रूप आपकी सृष्टि हैं, तथापि आप उनसे अप्रभावित रहते हैं। अतएव आपका दिव्य नाम भौतिक नामों से भिन्न है और आपका स्वरूप भौतिक स्वरूपों से भिन्न है। आप *भगवद्‌गीता* जैसे ज्ञान का हमें उपदेश देने के लिए ही भौतिक शरीर के ही समान रूप धारण करते हैं लेकिन वस्तुतः आप रहते हैं परम आदि पुरुष ही। अतएव मैं आपको सादर नमस्कार करता हूँ।

तात्पर्य : श्रील यामुनाचार्य ने अपने *स्तोत्र-रत्न* में (४३) निम्नलिखित श्लोक दिया है—

भवन्तम् एवानुचरन् निरन्तरः

प्रशान्तनिःशेषमनोरथान्तरः ।

कदाहमैकान्तिकनित्यकिंकरः

प्रहर्षयिष्यामि सनाथजीवितम् ॥

"आपकी नित्य सेवा करने से मनुष्य सभी भौतिक इच्छाओं से मुक्त हो जाता है और पूर्णतया शान्त रहता है। हे भगवान्! वह समय कब आयेगा जब मैं आपका स्थायी नौकर बनकर और आप जैसा उपयुक्त स्वामी पाकर सदैव प्रसन्न रह सकूँगा?"

मनोरथेनासति धावतो बहिः—जो मनोरथ स्तर पर कर्म करता है उसे भौतिक कार्यकलापों पर उतरकर आना होगा। किन्तु भगवान् तथा उनके शुद्ध भक्तों में भौतिक कल्मष सर्वथा अनुपस्थित रहता है। इसीलिए भगवान् को *प्रशान्त*—भौतिक स्तर के अवरोधों से पूर्णतया मुक्त—कहकर सम्बोधित किया गया है। परमेश्वर का कोई भौतिक नाम या रूप नहीं है, केवल मूर्ख ही सोचते हैं कि भगवान् का नाम और रूप भौतिक है (*अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्*)। भगवान् की पहचान तो इतनी ही है कि वे आदि पुरुष हैं; तो भी अल्पज्ञानी सोचते हैं कि भगवान् रूपहीन हैं। वे भौतिक दृष्टि से रूपहीन हैं, किन्तु उनका रूप दिव्य है (*सच्चिदानन्दविग्रह*)।

त्वन्मायारचिते लोके वस्तुबुद्ध्या गृहादिषु ।
भ्रमन्ति कामलोभेर्ष्यामोहविभ्रान्तचेतसः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

त्वत्-माया—आपकी माया से; रचिते—निर्मित; लोके—इस जगत में; वस्तु-बुद्ध्या—वास्तविक मानते हुए; गृह-आदिषु—घर आदि में.; भ्रमन्ति—घूमते हैं; काम—विषयवासनाओं से; लोभ—लालच से; ईर्ष्या—द्वेष से; मोह—तथा मोह से; विभ्रान्त—मोहग्रस्त; चेतसः—जिनके हृदय।

हे भगवन्, जिनके मन काम, लोभ, ईर्ष्या तथा मोह से मोहित हैं वे आपकी माया द्वारा सृजित इस जगत में झूठे ही घर, गृहस्थी आदि में रुचि रखते हैं। वे घर, पत्नी तथा सन्तान में आसक्त रहकर इसी जगत में निरन्तर घूमते रहते हैं।

अद्य नः सर्वभूतात्मन्कामकर्मेन्द्रियाशयः ।
मोहपाशो दृढश्छिन्नो भगवंस्तव दर्शनात् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

अद्य—आज; नः—हमारा; सर्व-भूत-आत्मन्—हे परमात्मा स्वरूप; काम-कर्म-इन्द्रिय-आशयः—कामवासनाओं तथा सकाम कर्मों के अधीन रहकर; मोह-पाशः—मोह की यह कठिन ग्रन्थि; दृढः—अत्यन्त प्रबल; छिन्नः—टूट गई; भगवन्—हे भगवान्; तव दर्शनात्—आपके दर्शन मात्र से।

हे समस्त जीवों के परमात्मा, हे भगवान्, मैं अब आपके दर्शनमात्र से सारी कामवासनाओं से मुक्त हो गया हूँ जो दुर्लंघ्य मोह तथा संसार-बन्धन के मूल कारण हैं।

श्रीशुक उवाच
इत्थं गीतानुभावस्तं भगवान्कपिलो मुनिः ।
अंशुमन्तमुवाचेदमनुग्राह्य धिया नृप ॥ २७॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इत्थम्—इस तरह; गीत-अनुभावः—जिनकी महिमा का वर्णन किया जाता है; तम्—उस; भगवान्—भगवान्; कपिलः—कपिल ने; मुनिः—महान् साधु; अंशुमन्तम्—अंशुमान से; उवाच—कहा; इदम्—यह; अनुग्राह्य—दयालु होकर; धिया—ज्ञान के मार्ग सहित; नृप—राजा परीक्षित।

हे राजा परीक्षित, जब अंशुमान ने भगवान् का इस प्रकार महिमागायन किया तो महामुनि कपिल ने, जो विष्णु के सशक्त अवतार हैं, उस पर कृपालु होकर उसे ज्ञान का मार्ग बतलाया।

श्रीभगवानुवाच
अश्वोऽयं नीयतां वत्स पितामहपशुस्तव ।
इमे च पितरो दग्धा गङ्गाम्भोऽर्हन्ति नेतरत् ॥ २८॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—कपिल मुनि ने कहा; अश्वः—घोड़ा; अयम्—यह; नीयताम्—ले लो; वत्स—हे पुत्र; पितामह—अपने बाबा का; पशुः—यह पशु; तव—तुम्हारे; इमे—ये सारे; च—भी; पितरः—पूर्वजों के शरीर; दग्धाः—भस्म हुए; गङ्गा-अम्भः—गंगाजल; अर्हन्ति—उबारे जा सकते हैं; न—नहीं; इतरत्—किसी अन्य साधन से।

भगवान् कपिल ने कहा : हे प्रिय अंशुमान, यह रहा तुम्हारे बाबा द्वारा खोजा जा रहा यज्ञ-पशु। इसे लो। दग्ध हुए तुम्हारे इन पुरखों का उद्धार केवल गंगाजल से हो सकता है, किसी अन्य साधन से नहीं।

तं परिक्रम्य शिरसा प्रसाद्य हयमानयत् ।
सगरस्तेन पशुना यज्ञशेषं समापयत् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस मुनि की; परिक्रम्य—परिक्रमा लगाकर; शिरसा—सिर के बल (प्रणाम करके); प्रसाद्य—उसे सन्तुष्ट करके; हयम्—घोड़े को; आनयत्—वापस ले आया; सगरः—राजा सगर ने; तेन—उस; पशुना—पशु से; यज्ञ-शेषम्—यज्ञ का अन्तिम संस्कार; समापयत्—सम्पन्न किया।

तत्पश्चात् अंशुमान ने कपिल मुनि की परिक्रमा की और अपना सिर झुकाकर उन्हें सादर नमस्कार किया। इस तरह उन्हें पूरी तरह सन्तुष्ट करके अंशुमान यज्ञ-पशु को वापस ले आया और महाराज सगर ने इस घोड़े से यज्ञ का शेष अनुष्ठान सम्पन्न किया।

राज्यमंशुमते न्यस्य निःस्पृहो मुक्तबन्धनः ।
और्वोपदिष्टमार्गेण लेभे गतिमनुत्तमाम् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

राज्यम्—अपना राज्य; अंशुमते—अंशुमान को; न्यस्य—देकर; निःस्पृहः—इच्छारहित; मुक्त-बन्धनः—भवबन्धन से पूरी तरह मुक्त; और्व-उपदिष्ट—और्व मुनि द्वारा आदेशित; मार्गेण—उस मार्ग का अनुसरण करके; लेभे—प्राप्त किया; गतिम्—गन्तव्य; अनुत्तमाम्—परम।

अंशुमान को अपने राज्य की बागडोर देकर तथा सारी भौतिक चिन्ता एवं बन्धन से मुक्त होकर सगर महाराज ने और्व मुनि के द्वारा उपदिष्ट साधनों का पालन करते हुए परम गति प्राप्त की।

इस प्रकार *श्रीमद्भागवत* के नवम स्कन्ध के अन्तर्गत ''भगवान् कपिलदेव से सगरपुत्रों की भेंट'' नामक आठवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter नौ

अंशुमान की वंशावली

इस अध्याय में अंशुमान से खट्वांग तक का इतिहास दिया गया है और यह भी बतलाया गया है कि भगीरथ किस तरह इस धरती पर गंगाजी को लाये।

महाराज अंशुमान का पुत्र दिलीप था जिसने गंगा को इस जगत में लाने का प्रयास किया, किन्तु वह बिना सफलता के चल बसा। दिलीप के बेटे भगीरथ ने गंगा को इस जगत में लाने का दृढ़ संकल्प किया जिसके लिए उसे कठोर तपस्या करनी पड़ी। माता गंगा उसकी तपस्या से पूर्णतया संतुष्ट हुईं तो उन्होंने उसे दर्शन दिया और वर देना चाहा। तब भगीरथ ने उनसे अपने पितरों का उद्धार करने की प्रार्थना की। माता गंगा ने पृथ्वी पर आने के लिए दो शर्तें रखीं—एक तो यह कि उनकी तरंगों को वश में करने वाला कोई उपयुक्त पुरुष हो और दूसरी यह कि सारे पापी गंगा में स्नान करके अपने पापकर्मों के फलों से तो मुक्त हो जायेंगे, किन्तु माता गंगा उन सबके पापकर्मों के फलों को अपने अन्दर रखना नहीं चाहती थीं। इन दोनों शर्तों पर विचार किया जाना था। भगीरथ ने माता गंगा से कहा, ''भगवान् शिव आपके जल की लहरों को पूरी तरह वश में कर सकेंगे और जब शुद्ध भक्तगण आपके जल में स्नान करेंगे तो पापियों द्वारा छोड़े गये पापों के फलों का निराकरण हो जायेगा।'' तत्पश्चात् भगीरथ ने शिवजी को प्रसन्न करने के लिए तपस्या की। शिवजी आशुतोष कहलाते हैं क्योंकि वे सरलता से प्रसन्न किये जा सकते हैं। शिवजी ने गंगा के वेग को रोकने का भगीरथ का प्रस्ताव मान लिया। इस तरह गंगा के स्पर्शमात्र से भगीरथ के पूर्वज तर गये और स्वर्गलोक को चले गये।

भगीरथ का पुत्र श्रुत था, श्रुत का पुत्र नाभ और नाभ का पुत्र सिंधुद्वीप हुआ। उसका पुत्र अयुतायु हुआ जिसका पुत्र ऋतूपर्ण था जो नल का मित्र था। ऋतूपर्ण ने ही नल को द्यूतविद्या सिखलाई और उससे अश्वविद्या सीखी। ऋतूपर्ण का पुत्र सर्वकाम, सर्वकाम का पुत्र सुदास और सुदास का पुत्र सौदास हुआ। सौदास की पत्नी का नाम दमयन्ती या मदयन्ती था। सौदास का अन्य नाम कल्माषपाद था। उसके सकाम कर्मों में किसी त्रुटि के कारण वसिष्ठ ने उसे राक्षस बनने का शाप दे दिया था। एक जंगल में से गुजरते हुए उसने एक ब्राह्मण और उसकी पत्नी को संभोगरत देखा। क्योंकि वह राक्षस बन चुका था, अत: उसने उस

ब्राह्मण को खा जाना चाहा। यद्यपि ब्राह्मणपत्नी ने सौदास से बहुत अनुनय-विनय की, किन्तु वह ब्राह्मण को खा गया। फलत: उसकी पत्नी ने उस राक्षस को शाप दिया, ''तुम संभोगरत होते ही मर जाओगे।'' इस तरह बारह वर्ष बाद वसिष्ठ के शाप से मुक्त होने पर भी सौदास नि:सन्तान रहा। तब सौदास की अनुमति से वसिष्ठ ने उसकी पत्नी मदयन्ती को गर्भवती बनाया। किन्तु जब वर्षों गर्भधारण करते रहने पर भी मदयन्ती के सन्तान नहीं हुई तो वसिष्ठ ने उसके उदर पर पत्थर से प्रहार किया। इस प्रकार एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम था अश्मक।

अश्मक का पुत्र बालिक कहलाया। वह परशुराम के शाप से इसलिए बच गया क्योंकि वह अनेक स्त्रियों से घिरा हुआ था। इसीलिए वह नारीकवच भी कहलाता है। जब सारा जगत क्षत्रियविहीन हो गया था तो उसने अनेक क्षत्रियों को जन्म दिया। इसीलिए वह कभी-कभी मूलक भी कहलाता है। बालिक का पुत्र दशरथ हुआ और दशरथ का पुत्र ऐडविडि हुआ जिसका पुत्र विश्वसह हुआ। इसी विश्वसह के पुत्र-रूप में महाराज खट्वांग हुए। उन्होंने देवताओं के साथ मिलकर असुरों से युद्ध किया और विजय प्राप्त की। फलत: देवताओं ने उन्हें वर देना चाहा। इस पर उन्होंने पूछा कि वे कितने काल तक जीवित रहेंगे? और जब उन्हें ज्ञात हुआ कि उनका जीवन कुछ ही क्षण बाकी है तो वे स्वर्ग छोड़कर विमान से अपने धाम चले आये। वे यह समझ गये कि इस जगत की हर वस्तु तुच्छ है अत: वे पूरी तरह से भगवान् हरि की पूजा में लग गये।

श्रीशुक उवाच
अंशुमांश्च तपस्तेपे गङ्गानयनकाम्यया ।
कालं महान्तं नाशक्नोत्ततः कालेन संस्थितः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; अंशुमान्—अंशुमान राजा ने; च—भी; तपः तेपे—तपस्या की; गङ्गा—गंगा नदी; आनयन-काम्यया—अपने पूर्वजों का उद्धार करने के लिए गंगा को इस भौतिक जगत में लाने की इच्छा से; कालम्—काल; महान्तम्—दीर्घकाल तक; न—नहीं; अशक्नोत्—सफल हुआ; ततः—तत्पश्चात्; कालेन—समय आने पर; संस्थितः—मर गया।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : राजा अंशुमान ने अपने पितामह की तरह दीर्घकाल तक तपस्या की तो भी वह गंगा नदी को इस भौतिक जगत में न ला सका और उसके बाद कालक्रम में उसका देहान्त हो गया।

दिलीपस्तत्सुतस्तद्वदशक्तः कालमेयिवान् ।
भगीरथस्तस्य सुतस्तेपे स सुमहत्तपः ॥ २॥

शब्दार्थ

दिलीपः—दिलीप; तत्-सुतः—अंशुमान का पुत्र; तत्-वत्—अपने पिता की भाँति; अशक्तः—गंगा को इस जगत में ला सकने में असमर्थ; कालम् एयिवान्—काल का शिकार हुआ और मर गया; भगीरथः तस्य सुतः—उसके पुत्र भगीरथ ने; तेपे—तपस्या की; सः—वह; सु-महत्—बहुत बड़ी; तपः—तपस्या।

अंशुमान की भाँति उसका पुत्र दिलीप भी गंगा को इस भौतिक जगत में ला पाने में असमर्थ रहा और कालक्रम में उसकी भी मृत्यु हो गई। तत्पश्चात् दिलीप के पुत्र भगीरथ ने गंगा को इस भौतिक जगत में लाने के लिए अत्यन्त कठिन तपस्या की।

दर्शयामास तं देवी प्रसन्ना वरदास्मि ते ।
इत्युक्तः स्वमभिप्रायं शशंसावनतो नृपः ॥ ३॥

शब्दार्थ

दर्शयाम् आस—प्रकट हुई; तम्—उसको, भगीरथ को; देवी—माता गंगा; प्रसन्ना—अत्यन्त प्रसन्न होकर; वरदा अस्मि—मैं वर दूँगी; ते—तुमको; इति उक्तः—इस प्रकार सम्बोधित करके; स्वम्—अपनी; अभिप्रायम्—इच्छा; शशंस—बतलायी; अवनतः—आदरपूर्वक झुककर प्रणाम करके; नृपः—राजा (भगीरथ) ने।

तत्पश्चात् माता गंगा राजा भगीरथ के समक्ष प्रकट होकर बोलीं, ''मैं तुम्हारी तपस्या से अत्यधिक प्रसन्न हूँ और तुम्हें मुँहमाँगा वर देने को तैयार हूँ।'' गंगादेवी द्वारा इस प्रकार सम्बोधित हुए राजा ने उनके समक्ष अपना सिर झुकाया और अपना मन्तव्य बतलाया।

तात्पर्य : राजा का मन्तव्य अपने उन पूर्वजों का उद्धार कराना था जो कपिल मुनि का अनादर करने के कारण भस्म हो गये थे।

कोऽपि धारयिता वेगं पतन्त्या मे महीतले ।
अन्यथा भूतलं भित्त्वा नृप यास्ये रसातलम् ॥ ४॥

शब्दार्थ

कः—वह कौन व्यक्ति है; अपि—निस्सन्देह; धारयिता—धारण कर सकता है; वेगम्—तरंगों के वेग को; पतन्त्याः—नीचे गिरती हुई; मे—मेरे; मही-तले—पृथ्वी पर; अन्यथा—अन्यथा; भू-तलम्—पृथ्वी की सतह; भित्त्वा—भेदकर; नृप—हे राजा; यास्ये—नीचे चली जाऊँगी; रसातलम्—पाताल।

माता गंगा ने उत्तर दिया: जब मैं आकाश से पृथ्वीलोक के धरातल पर गिरूँगी तो मेरा जल अत्यन्त वेगवान होगा। इस वेग को कौन धारण कर सकेगा? यदि कोई मुझे धारण नहीं कर सकेगा

तो मैं पृथ्वी की सतह को भेदकर रसातल में अर्थात् ब्रह्माण्ड के पाताल क्षेत्र में चली जाऊँगी।

किं चाहं न भुवं यास्ये नरा मय्यामृजन्त्यघम् ।
मृजामि तदघं क्वाहं राजंस्तत्र विचिन्त्यताम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

किम् च—भी; अहम्—मैं; न—नहीं; भुवम्—पृथ्वीलोक को; यास्ये—जाऊँगी; नराः—लोग; मयि—मुझमें, मेरे जल में; आमृजन्ति—धोते हैं; अघम्—पापकर्मों के फल; मृजामि—धो सकूँ; तत्—वह; अघम्—पाकर्मों के फलों का संग्रह; क्व—किसको; अहम्—मैं; राजन्—हे राजा; तत्र—इस बात पर; विचिन्त्यताम्—ध्यान से विचार करके निर्णय करो।

हे राजा, मैं पृथ्वीलोक पर नहीं उतरना चाहती क्योंकि सभी लोग अपने पापकर्मों के फलों को धोने के लिए मुझमें स्नान करेंगे। जब ये सारे पापकर्मों के फल मुझमें एकत्र हो जायेंगे तो मैं उनसे किस तरह मुक्त हो सकूँगी? तुम इस पर ध्यानपूर्वक विचार करो।

तात्पर्य : स्वंय भगवान् का कथन है (*भगवद्गीता* १८.६६)—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

''सारे धर्मों का परित्याग करके मेरी शरण में आओ। मैं सारे पापों से तुम्हारा उद्धार कर दूँगा। डरो मत।'' भगवान् किसी भी व्यक्ति के पापों के फलों को ग्रहण करके उनका निराकरण कर सकते हैं क्योंकि वे सूर्य के समान पवित्र हैं जो कभी भी सांसारिक स्पर्श से दूषित नहीं होता। *तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा* (*भागवत* १०.३३.२९)। जो अत्यन्त शक्तिमान है वह किसी पापकर्म से दूषित नहीं होता। किन्तु यहाँ हम देखते हैं कि माता गंगा उन लोगों के पाप से बोझिल होने से भयभीत हैं जो गंगाजल में स्नान करेंगे। इससे सूचित होता है कि भगवान् के अतिरिक्त अन्य कोई भी व्यक्ति अपने या अन्यों के पापकर्मों के फलों को दूर करने में समर्थ नहीं है। कभी-कभी गुरु को शिष्य बनाने के बाद उस के विगत पापकर्मों का भार ग्रहण करना पड़ता है; फलस्वरूप पापों से बोझिल हो जाने के कारण उसे कष्ट भोगना पड़ता है—पूरी तरह नहीं तो आंशिक रूप में—अतएव शिष्य को चाहिए कि दीक्षा ग्रहण करने के बाद पापकर्म करने के प्रति सतर्क रहे। बेचारा गुरु शिष्य को स्वीकार करते समय अत्यन्त कृपालु रहता है और शिष्य के पापकर्मों को अंशतः भोगता है, किन्तु भगवान् अपने दास पर कृपालु होने के कारण उस दास के पापकृत्यों के फलों का निराकरण कर देते हैं जो उनकी महिमा का प्रचार करने में लगा रहता है। माता गंगा

भी लोगों के पापों के फलों से भयभीत होने के कारण चिन्तित थीं कि वे इन पापों के भार को किस तरह वहन कर सकेंगी।

श्रीभगीरथ उवाच
साधवो न्यासिनः शान्ता ब्रह्मिष्ठा लोकपावनाः ।
हरन्त्यघं तेऽङ्गसङ्गात्तेष्वास्ते ह्यघभिद्धरिः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगीरथः उवाच—भगीरथ ने कहा; साधवः—सन्तपुरुष; न्यासिनः—संन्यासीजन; शान्ताः—शान्त, भौतिक झंझटों से मुक्त; ब्रह्मिष्ठाः—वैदिक शास्त्रों के अनुष्ठानों का पालन करने में पटु; लोक-पावनाः—पतित अवस्था से लोगों का उद्धार करने में संलग्न; हरन्ति—दूर करेंगे; अघम्—पाप के फल; ते—तुम्हारा (गंगा का); अङ्ग-सङ्गात्—गंगाजल में नहाने से; तेषु—अपने में; आस्ते—है; हि—निस्सन्देह; अघ-भित्—सारे पापों को हरने वाले; हरिः—भगवान्।

भगीरथ ने कहा : जो भक्ति के कारण सन्त प्रकृति के हैं और भौतिक इच्छाओं से मुक्त संन्यासी बन चुके हैं, तथा जो वेदवर्णित अनुष्ठानों का पालन करने में पटु हैं और शुद्ध भक्त हैं वे सर्वदा महिमामंडित हैं और शुद्धाचरण वाले हैं तथा सभी पतितात्माओं का उद्धार करने में समर्थ हैं। जब ऐसे शुद्ध भक्त आपके जल में स्नान करेंगे तो अन्य लोगों के संचित पापों के फलों का निश्चय ही निराकरण हो सकेगा क्योंकि ऐसे भक्तगण उन भगवान् को अपने हृदयों में सदा धारण करते हैं जो सारे पापों को दूर कर सकते हैं।

तात्पर्य : माता गंगा स्नान के लिए सबों को सुलभ हैं। अतएव गंगाजल में न केवल पापी लोग स्नान करेंगे अपितु हरद्वार तथा अन्य तीर्थस्थलों में जहाँ से होकर गंगा बहती हैं, सन्तजन तथा भक्तगण भी गंगाजल में स्नान करेंगे। भक्तगण तथा संन्यासीजन गंगा तक का उद्धार कर सकतेहैं। *तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तःस्थेन गदाभृता* (*भागवत* १.१३.१०)। चूँकि सन्त भक्तजन सदैव भगवान् को अपने हृदय में धारण करते हैं अतएव वे तीर्थस्थानों को, सारे पापों के फलों को पूरी तरह धो कर, शुद्ध कर सकते हैं। अतएव सामान्य लोगों को चाहिए कि सन्तपुरुषों का सदैव आदर करें। ऐसा आदेश है कि किसी भी वैष्णव या संन्यासी का दर्शन होने पर उनका तुरंत आदर किया जाय। यदि आदर करने में भूल हो जाय तो उस दिन उपवास रखा जाय। यह वैदिक आदेश है। मनुष्य को चाहिए कि भक्त या सन्त के चरणकमलों के प्रति अपराध करने से अत्यन्त सतर्क रहे।

यद्यपि प्रायश्चित्त की विधियाँ हैं, किन्तु वे पापों के फलों को धोने में अपर्याप्त हैं। मनुष्य केवल भक्ति

द्वारा सारे पापों के फलों से छूट सकता है जैसा कि अजामिल की कथा में कहा गया है—

केचित् केवलया भक्त्या वासुदेवपरायणा:।

अघं धुन्वन्ति कार्त्स्न्येन नीहारं इव भास्कर:॥

''केवल ऐसा व्यक्ति, जिसने कृष्ण की अनन्य भक्ति ग्रहण की होती है, पापकर्म रूपी खरपतवारों को समूल नष्ट कर सकता है ताकि वे पुन: न उभर आएँ। जिस तरह सूर्य अपनी किरणों से कुहरे को तुरन्त विनष्ट कर देता है उसी प्रकार मनुष्य भक्ति के द्वारा ऐसा कर सकता है।'' (*भागवत* ६.१.१५)। यदि कोई व्यक्ति किसी भक्त के प्रश्रय में रहता है और निष्ठापूर्वक उसकी सेवा करता है तो वह भक्तियोग के द्वारा सारे पापकर्मों के फलों को नष्ट कर सकने में समर्थ होता है।''

धारयिष्यति ते वेगं रुद्रस्त्वात्मा शरीरिणाम् ।
यस्मिन्नोतमिदं प्रोतं विश्वं शाटीव तन्तुषु ॥ ७॥

शब्दार्थ

धारयिष्यति—धारण करेगा; ते—तुम्हारे; वेगम्—तरंगों के वेग को; रुद्र:—शिवजी; तु—निस्सन्देह; आत्मा—परमात्मा; शरीरिणाम्—समस्त शरीरधारियों का; यस्मिन्—जिसमें; ओतम्—देशान्तर, ताना; इदम्—यह सारा ब्रह्माण्ड; प्रोतम्—अंक्षाश बाना; विश्वम्—सारा विश्व; शाटी—वस्त्र; इव—सदृश; तन्तुषु—डोरों में।

जिस प्रकार वस्त्र के सारे डोरे लम्बाई तथा चौाई में गुँथे रहते हैं, उसी तरह यह समग्र विश्व अपने अक्षांश-देशान्तरों सहित भगवान् की विभिन्न शक्तियों में स्थित है। शिवजी भी भगवान् के अवतार हैं अतएव वे देहधारी जीव में परमात्मा का प्रतिनिधित्व करते हैं।वे अपने सिर पर आपकी वेगवान तरंगों को धारण कर सकते हैं।

तात्पर्य : गंगाजल भगवान् शिव के सिर पर स्थित माना जाता है। शिवजी भगवान् के अवतार हैं जो विभिन्न शक्तियों से सारे विश्व को धारण करते हैं। *ब्रह्म-संहिता* में (५.४५) शिवजी का वर्णन इस प्रकार हुआ है—

क्षीरं यथा दधि विकारविशेषयोगात्

सञ्जायते न हि तत: पृथगस्ति हेतो:।

य: शम्भुतामपि तथा समुपैति कार्याद्

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

"जब दूध में जामन डाला जाता है तो यह दही में बदल जाता है, किन्तु वास्तव में यह दही दूध के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। इसी प्रकार भगवान् गोविन्द भौतिक व्यवहार के निमित्त भगवान् शिव का रूप धारण करते हैं। मैं भगवान् गोविन्द के चरणकमलों को सादर नमस्कार करता हूँ।" शिवजी उसी प्रकार भगवान् हैं जिस प्रकार दही दूध भी है और नहीं भी है। भौतिक जगत के पालन हेतु ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर (शिव)—ये तीन अवतार हैं। शिवजी विष्णु के तमोगुणी अवतार हैं। यह जगत प्रधानतः तमोगुणी है। इसीलिए शिवजी की उपमा यहाँ सारे विश्व के अक्षांश-देशान्तर से दी गई है जो वस्त्र के तानों-बानों के समान होते हैं।

इत्युक्त्वा स नृपो देवं तपसातोषयच्छिवम् ।
कालेनाल्पीयसा राजंस्तस्येशश्चाश्वतुष्यत ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

इति उक्त्वा—यह कहकर; सः—उस; नृपः—राजा (भगीरथ) ने; देवम्—शिव को; तपसा—तपस्या द्वारा; अतोषयत्—प्रसन्न किया; शिवम्—सर्वकल्याणकारी शिव को; कालेन—समय आने पर; अल्पीयसा—अल्पकालीन; राजन्—हे राजा; तस्य—उस (भगीरथ) का; ईशः—शिवजी; च—निस्सन्देह; आशु—तुरन्त; अतुष्यत—तुष्ट हो गये।

ऐसा कहने के बाद भगीरथ ने तपस्या करके शिवजी को प्रसन्न किया। हे राजा परीक्षित, शिवजी शीघ्र ही भगीरथ से तुष्ट हो गये।

तात्पर्य : *आश्वतुष्यत* शब्द सूचित करता हैं कि शिवजी तुरन्त तुष्ट हो गये; इसीलिए शिवजी का अन्य नाम आशुतोष है। भौतिकतावादी लोग शिवजी के प्रति इतने अनुरक्त इसीलिए रहते हैं क्योंकि वे भक्तों के सुख-दुख का विचार किये बिना तुरन्त ही हर एक को वर दे देते हैं। यद्यपि भौतिकतावादी लोग यह जानते हैं कि भौतिक सुख एवं दुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं फिर भी वे सुख की कामना करते हैं और इसे तुरन्त पाने के लिए शिवजी को पूजते हैं। हम देखते हैं कि ऐसे भौतिकतावादी लोग सामान्यतया अनेक देवताओं की, विशेष रूप से शिवजी तथा माता दुर्गा की, पूजा करते हैं। वे आध्यात्मिक सुख की कामना नहीं करते क्योंकि यह उनको लगभग अज्ञात है। किन्तु यदि कोई सचमुच आध्यात्मिक सुख चाहता है तो उसे भगवान् विष्णु की शरण ग्रहण करनी चाहिए क्योंकि स्वयं भगवान् चाहते हैं कि—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

''सारे धर्मों का परित्याग करके मेरी शरण ग्रहण करो। मैं सारे पापों से तुम्हारा उद्धार करूँगा। तुम डरो मत।'' (*भगवद्गीता* १८.६६)

तथेति राज्ञाभिहितं सर्वलोकहितः शिवः ।
दधारावहितो गङ्गां पादपूतजलां हरेः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

तथा—एवमस्तु; इति—इस प्रकार; राज्ञा अभिहितम्—राजा द्वारा कहे जाने पर; सर्व-लोक-हितः—भगवान् जो सबों का कल्याण करने वाले हैं; शिवः—भगवान् शिव ने; दधार—धारण किया; अवहितः—ध्यानपूर्वक; गङ्गाम्—गंगा को; पाद-पूत-जलाम् हरेः—भगवान् विष्णु के अँगूठे से निकलने के कारण, जिसका जल दिव्य रूप से शुद्ध है।

जब राजा भगीरथ शिवजी के पास गये और उनसे गंगा की वेगवान लहरों को धारण करने के लिए प्रार्थना की तो शिवजी ने एवमस्तु कहते हुए प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। तब उन्होंने अत्यन्त ध्यानपूर्वक गंगा को अपने सिर पर धारण कर लिया क्योंकि भगवान् विष्णु के अँगूठे से निकलने के कारण गंगा का जल शुद्ध करने वाला है।

भगीरथः स राजर्षिर्निन्ये भुवनपावनीम् ।
यत्र स्वपितॄणां देहा भस्मीभूताः स्म शेरते ॥ १० ॥

शब्दार्थ

भगीरथः—भगीरथ; सः—वह; राज-ऋषिः—सन्त राजा; निन्ये—ले गया या लाया; भुवन-पावनीम्—सारे ब्रह्माण्ड का उद्धार करने वाली गंगा को; यत्र—जिस स्थान पर; स्व-पितॄणाम्—अपने पितरों के; देहाः—शरीर; भस्मीभूताः—जलकर राख हुए; स्म शेरते—पड़े हुए थे।

महान् एवं साधु राजा भगीरथ समस्त पतितात्माओं का उद्धार करने वाली गंगाजी को पृथ्वी पर उस स्थान में ले गये जहाँ उनके पितरों के शरीर भस्म होकर पड़े हुए थे।

रथेन वायुवेगेन प्रयान्तमनुधावती ।
देशान्पुनन्ती निर्दग्धानासिञ्चत्सगरात्मजान् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

रथेन—रथ पर; वायु-वेगेन—हवा की गति से चलते हुए; प्रयान्तम्—आगे-आगे चलते महाराज भगीरथ; अनुधावती—पीछे-पीछे दौड़ती; देशान्—सारे देशों को; पुनन्ती—पवित्र बनाती; निर्दग्धान्—जलकर राख हुए; आसिञ्चत्—ऊपर जल छिड़का; सगर-आत्मजान्—सगर के पुत्रों को।

भगीरथ एक तेज रथ पर सवार हुए और गंगा माता के आगे-आगे चले जो अनेक देशों को शुद्ध करती हुई उनके पीछे पीछे चलती हुई उस स्थान पर पहुँचीं जहाँ सगर के पुत्र भगीरथ के पितृगण की

भस्म पड़ी थी। इस पर गंगा का जल छिड़का गया।

यज्जलस्पर्शमात्रेण ब्रह्मदण्डहता अपि ।
सगरात्मजा दिवं जग्मुः केवलं देहभस्मभिः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

यत्-जल—जिसका पानी; स्पर्श-मात्रेण—केवल स्पर्श करने से; ब्रह्म-दण्ड-हताः—जो लोग ब्रह्म (आत्म) का अपमान करने के कारण दण्डित हुए; अपि—यद्यपि; सगर-आत्मजाः—सगर के पुत्र; दिवम्—स्वर्गलोक को; जग्मुः—गये; केवलम्—मात्र; देह-भस्मभिः—अपने भस्म हुए शरीरों की बची राख से।

चूँकि सगर महाराज के पुत्रों ने महापुरुष का अपमान किया था अतएव उनके शरीर का ताप बढ़ गया था और वे जलकर भस्म हो गये थे। किन्तु मात्र गंगाजल के छिड़कने से वे सभी स्वर्गलोक जाने के पात्र बन गये। अतएव जो लोग गंगा की पूजा करने के लिए गंगाजल का प्रयोग करते हैं उनके विषय में क्या कहा जाए? है?

तात्पर्य : गंगा मइया की पूजा गंगाजल से की जाती है—भक्त थोड़ा सा गंगाजल लेकर पुनः उस गंगा में चढ़ा देता है। जब भक्त गंगा में से जल लेता है तो गंगा मइया की न तो कुछ हानि होती है और न ही, जब भक्त उस जल को गंगा में डाल देता है, कोई वृद्धि होती है, किन्तु इस प्रकार गंगा के आराधक लाभान्वित होते हैं। इसी प्रकार जब भक्त भगवान् को भक्तिपूर्वक *पत्रं पुष्पं फलं तोयम्* अर्थात् पत्र, फूल, फल तथा जल चढ़ाता है तो हर वस्तु भगवान् की होने से, न तो कोई त्यागने का प्रश्न उठता है और न स्वीकारने का। मनुष्य को मात्र भक्तियोग का लाभ उठाना चाहिए क्योंकि इसका पालन करने से किसी का कुछ जाता नहीं प्रत्युत परमपुरुष की कृपा प्राप्त होती है।

भस्मीभूताङ्गसङ्गेन स्वर्याताः सगरात्मजाः ।
किं पुनः श्रद्धया देवीं सेवन्ते ये धृतव्रताः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

भस्मीभूत-अङ्ग—जलकर राख हुए शरीरों से; सङ्गेन—गंगाजल के स्पर्श से; स्वः याताः—स्वर्गलोक चले गये; सगर-आत्मजाः—सगर के पुत्र; किम्—क्या कहा जाय; पुनः—फिर; श्रद्धया—श्रद्धा तथा भक्ति से; देवीम्—माता गंगा की; सेवन्ते—पूजा करते हैं; ये—जो व्यक्ति; धृत-व्रताः—संकल्प लेकर।

भस्म शरीरों की राखों का गंगाजल के साथ सम्पर्क होने से सगर महाराज के पुत्र स्वर्गलोक चले गये। अतएव उन लोगों के विषय में क्या कहा जाय जो संकल्प लेकर श्रद्धापूर्वक गंगा मइया की

पूजा करते हैं? ऐसे भक्तों को मिलने वाले लाभ की मात्र कल्पना की जा सकती है।

न ह्येतत्परमाश्चर्यं स्वर्धुन्या यदिहोदितम् ।
अनन्तचरणाम्भोजप्रसूताया भवच्छिदः ॥ १४॥

शब्दार्थ

न—नहीं; हि—निस्सन्देह; एतत्—यह; परम्—चरम; आश्चर्यम्—आश्चर्यजनक वस्तु; स्वर्धुन्याः—गंगाजल का; यत्—जो; इह—यहाँ पर; उदितम्—कहा गया है; अनन्त—भगवान् का; चरण-अम्भोज—चरणकमलों से; प्रसूतायाः—निकलने वाले का; भव-छिदः—भवबन्धन से छुड़ाने में समर्थ।

चूँकि गंगामाता भगवान् अनन्तदेव के चरणकमल के अँगूठे से निकलती हैं, अतएव वे मनुष्य को भवबन्धन से मुक्त करने में सक्षम हैं। इसलिए यहाँ पर उनके विषय में जो कुछ बतलाया जा रहा है वह तनिक भी आश्चर्यजनक नहीं है।

तात्पर्य : यह वास्तव में देखा गया है कि जो व्यक्ति नियमित रूप से गंगास्नान करके गंगाजी की पूजा करता है उसका स्वास्थ्य ठीक रहता है और वह धीरे-धीरे भगवद्भक्त बन जाता है। यह गंगाजल में स्नान करने का प्रभाव है। सारे वैदिक शास्त्रों में गंगा में स्नान करने की संस्तुति की गई है; अतएव जो भी इस पथ को ग्रहण करेगा वह सारे पापफलों से पूर्णतया छूट जायेगा। इसके ज्वलन्त प्रमाण महाराज सगर के भस्मीभूत पुत्र हैं जो गंगाजल के स्पर्शमात्र से स्वर्गलोक को प्राप्त हुए।

सन्निवेश्य मनो यस्मिञ्छ्रद्धया मुनयोऽमलाः ।
त्रैगुण्यं दुस्त्यजं हित्वा सद्यो यातास्तदात्मताम् ॥ १५॥

शब्दार्थ

सन्निवेश्य—पूरा ध्यान देकर; मनः—मन; यस्मिन्—जिसमें; श्रद्धया—श्रद्धा तथा भक्ति से; मुनयः—मुनिगण; अमलाः—पापों के कल्मष से मुक्त हुए; त्रैगुण्यम्—प्रकृति के तीनों गुण; दुस्त्यजम्—जिनको छोड़ पाना अत्यन्त कठिन है; हित्वा—फिर भी त्याग करके; सद्यः—शीघ्र; याताः—प्राप्त किया; तत्-आत्मताम्—भगवान् का आध्यात्मिक गुण, भगवत्स्वरूप।

मुनिगण भौतिक कामवासनाओं से सर्वथा मुक्त होकर, अपना ध्यान पूरी तरह भगवान् की सेवा में लगाते हैं। ऐसे व्यक्ति बिना किसी कठिनाई के भवबन्धन से छूट जाते हैं और वे भगवान् का आध्यात्मिक गुण प्राप्त करके दिव्यपद को प्राप्त होते हैं। भगवान् की यही महिमा है।

श्रुतो भगीरथाज्जज्ञे तस्य नाभोऽपरोऽभवत् ।
सिन्धुद्वीपस्ततस्तस्मादयुतायुस्ततोऽभवत् ॥ १६॥

ऋतूपर्णो नलसखो योऽश्वविद्यामयान्नलात् ।
दत्त्वाक्षहृदयं चास्मै सर्वकामस्तु तत्सुतम् ॥ १७॥

शब्दार्थ

श्रुतः—श्रुत नामक पुत्र; भगीरथात्—भगीरथ से; जज्ञे—उत्पन्न हुआ; तस्य—श्रुत का; नाभः—नाभ नामक; अपरः—अन्य, पूर्णवर्णित नाम से भिन्न; अभवत्—उत्पन्न हुआ; सिन्धुद्वीपः—सिन्धुद्वीप नाम से; ततः—नाभ से; तस्मात्—सिन्धुद्वीप से; अयुतायुः—अयुतायु नामक पुत्र; ततः—तत्पश्चात्; अभवत्—पैदा हुआ; ऋतूपर्णः—ऋतूपर्ण नामक पुत्र; नल-सखः—नल का मित्र; यः—जो; अश्व-विद्याम्—घोड़ों को वश में करने की कला; अयात्—अर्जित की; नलात्—नल से; दत्त्वा—बदले में देकर; अक्ष-हृदयम्—द्यूतक्रीड़ा का रहस्य; च—तथा; अस्मै—नल को; सर्वकामः—सर्वकाम नामक; तु—निस्सन्देह; तत्-सुतम्—उसका (ऋतूपर्ण) पुत्र।

भगीरथ का पुत्र श्रुत था और श्रुत का पुत्र नाभ था। (यह नाभ पूर्ववर्णित नाभ से भिन्न है)। नाभ का पुत्र सिंधुद्वीप हुआ, जिसका पुत्र अयुतायु था और अयुतायु का पुत्र ऋतूपर्ण हुआ जो नल राजा का मित्र बन गया। ऋतूपर्ण ने नल राजा को द्यूतक्रीड़ा सिखलाई और बदले में उसने नल राजा से घोड़ों को वश में करना तथा उनकी देखरेख करना सीखा। ऋतूपर्ण का पुत्र सर्वकाम था।

तात्पर्य : जुआ खेलना (द्यूत) भी एक कला है। क्षत्रियों को द्यूतक्रीड़ा की कला में अपनी प्रतिभा दिखलाने की छूट है। कृष्ण की कृपा से पाण्डवों ने जुए में अपना सर्वस्व गवाँ दिया और वे अपने राज्य, पत्नी, परिवार तथा घर सबसे वंचित हो गये क्योंकि वे द्यूत कला में पटु न थे। दूसरे शब्दों में, हो सकता है कि भक्त भौतिकतावादी कार्यकलापों में दक्ष न हो सकता हो। अतएव शास्त्रों का उपदेश है कि जीवों के लिए, विशेष रूप से भक्तों के लिए, संसारी कार्यकलाप अनुकूल नहीं होते। अतएव भक्त को भगवान् द्वारा भेजे गये प्रसाद को खाकर ही सन्तुष्ट होना चाहिए। भक्त शुद्ध बना रहता है क्योंकि वह द्यूतक्रीड़ा, नशा, मांसाहार तथा अवैध यौन जैसे पापपूर्ण कृत्य नहीं करता।

ततः सुदासस्तत्पुत्रो दमयन्तीपतिर्नृपः ।
आहुर्मित्रसहं यं वै कल्माषाङ्घ्रिमुत क्वचित् ।
वसिष्ठशापाद्रक्षोऽभूदनपत्यः स्वकर्मणा ॥ १८॥

शब्दार्थ

ततः—सर्वकाम से; सुदासः—सुदास उत्पन्न हुआ; तत्-पुत्रः—सुदास का पुत्र; दमयन्ती-पतिः—दमयन्ती का पति; नृपः—राजा बना; आहुः—कहा जाता है; मित्रसहम्—मित्रसह; यम् वै—भी; कल्माषाङ्घ्रिम्—कल्माषपाद से; उत—ज्ञात; क्वचित्—कभी; वसिष्ठ-शापात्—वसिष्ठ के शाप से; रक्षः—मनुष्यभक्षक; अभूत्—बना; अनपत्यः—सन्तानहीन; स्व-कर्मणा—अपने पापपूर्ण कर्म से।

सर्वकाम के एक सुदास नामक पुत्र हुआ जिसका पुत्र सौदास कहलाया जो दमयन्ती का पति था। कभी-कभी सौदास मित्रसह या कल्माषपाद के नाम से जाना जाता है। अपने ही दुष्कर्मों के

कारण मित्रसह नि:सन्तान था और उसे वसिष्ठ द्वारा राक्षस बनने का शाप मिला।

श्रीराजोवाच

किं निमित्तो गुरोः शापः सौदासस्य महात्मनः ।
एतद्वेदितुमिच्छामः कथ्यतां न रहो यदि ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा परीक्षित ने कहा; किम् निमित्तः—किस कारण से; गुरोः—गुरु का; शापः—शाप; सौदासस्य—सौदास का; महा-आत्मनः—महान् आत्मा का; एतत्—यह; वेदितुम्—जानने के लिए; इच्छामः—इच्छा करता हूँ; कथ्यताम्—कृपया मुझसे कहें; न—नहीं; रहः—गोपनीय; यदि—यदि।

राजा परीक्षित ने कहा : हे शुकदेव गोस्वामी, सौदास के गुरु वसिष्ठ ने इस महापुरुष को शाप क्यों दिया? मैं इसे जानना चाहता हूँ। यदि यह गोपनीय विषय न हो तो कृपया कह सुनायें।

श्रीशुक उवाच

सौदासो मृगयां किञ्चिच्चरन्रक्षो जघान ह ।
मुमोच भ्रातरं सोऽथ गतः प्रतिचिकीर्षया ॥ २० ॥
सञ्चिन्तयन्नघं राज्ञः सूदरूपधरो गृहे ।
गुरवे भोक्तुकामाय पक्त्वा निन्ये नरामिषम् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; सौदासः—राजा सौदास ने; मृगयाम्—शिकार के लिए; किञ्चित्—किसी समय; चरन्—घूमते हुए; रक्षः—राक्षस, मानव भक्षी; जघान—मारा; ह—था; मुमोच—छोड़ दिया; भ्रातरम्—उस राक्षस के भाई को; सः—उसने; अथ—तत्पश्चात्; गतः—गया; प्रतिचिकीर्षया—बदला लेने के लिए; सञ्चिन्तयन्—उसने सोचा; अघम्—कुछ नुकसान करने के लिए; राज्ञः—राजा का; सूद-रूप-धरः—रसोइये का वेश धारण किया; गृहे—घर में; गुरवे—राजा के गुरु को; भोक्तु-कामाय—भोजन करने के लिए आया हुआ; पक्त्वा—भोजन बनाने के बाद; निन्ये—दिया; नर-आमिषम्—मनुष्य का मांस।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : एक बार सौदास जंगल में मृगया के लिए गया जहाँ उसने एक राक्षस को मार डाला, किन्तु राक्षस के भाई को क्षमा करके छोड़ दिया। किन्तु उस भाई ने बदला लेने का निश्चय किया। राजा को क्षति पहुँचाने के विचार से वह राजा के घर में रसोइया बन गया। एक दिन जब राजा के गुरु वसिष्ठ मुनि को भोजन करने के लिए आमंत्रित किया गया तो इस राक्षस रसोइये ने उन्हें मनुष्य का मांस परोस दिया।

परिवेक्ष्यमाणं भगवान्विलोक्याभक्ष्यमञ्जसा ।
राजानमशपत्क्रुद्धो रक्षो ह्येवं भविष्यसि ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

परिवेक्ष्यमाणम्—भोज्य पदार्थों का परीक्षण करते हुए; भगवान्—अत्यन्त शक्तिशाली; विलोक्य—देखकर; अभक्ष्यम्—खाने के लिए अनुपयुक्त; अञ्जसा—अपनी योग शक्ति से सरलतापूर्वक; राजानम्—राजा को; अशपत्—शाप दे दिया; क्रुद्धः—अत्यन्त क्रोधित होकर; रक्षः—मनुष्यभक्षी राक्षस; हि—निस्सन्देह; एवम्—इस प्रकार; भविष्यसि—हो जाओगे।.

वसिष्ठ मुनि, परोसे भोजन की परीक्षा करते हुए, अपने योगबल से समझ गये कि यह मनुष्य का मांस है अतएव अभक्ष्य है। फलतः वे अत्यन्त क्रुद्ध हुए और उन्होंने तुरन्त ही सौदास को मनुष्यभक्षी (राक्षस) बनने का शाप दे डाला।

रक्षःकृतं तद्विदित्वा चक्रे द्वादशवार्षिकम् ।
सोऽप्यपोऽञ्जलिमादाय गुरुं शप्तुं समुद्यतः ॥ २३॥
वारितो मदयन्त्यापो रुशतीः पादयोर्जहौ ।
दिशः खमवनीं सर्वं पश्यञ्जीवमयं नृपः ॥ २४॥

शब्दार्थ

रक्षः-कृतम्—राक्षस द्वारा ही किया हुआ; तत्—वह मांस का परोसा जाना; विदित्वा—जानकर; चक्रे—वसिष्ठ ने सम्पन्न किया; द्वादश-वार्षिकम्—प्रायश्चित्त के लिए बारह वर्ष की तपस्या; सः—वह सौदास; अपि—भी; अपः-अञ्जलिम्—अंजुली भर पानी; आदाय—लाकर; गुरुम्—अपने गुरु वसिष्ठ को; शप्तुम्—शाप देने के लिए; समुद्यतः—तैयार; वारितः—मना किये जाने पर; मदयन्त्या—अपनी पत्नी मदयन्ती द्वारा; अपः—जल; रुशतीः—मंत्रोच्चार से सशक्त; पादयोः जहौ—अपने पाँवों पर फेंका; दिशः—सारी दिशाएँ; खम्—आकाश में; अवनीम्—पृथ्वी पर; सर्वम्—सर्वत्र; पश्यन्—देखते हुए; जीव-मयम्—जीवों से पूर्ण; नृपः—राजा ने।.

जब वसिष्ठ समझ गये कि यह मांस राजा द्वारा नहीं, अपितु राक्षस द्वारा ही परोसा गया है तो उन्होंने निर्दोष राजा को शाप देने के प्रायश्चित स्वरूप अपने को शुद्ध करने के लिए बारह वर्ष तक तपस्या की। तब राजा सौदास ने अंजुली में पानी लेकर वसिष्ठ को शाप देने के लिए शापमंत्र का उच्चारण करना चाहा, किन्तु उसकी पत्नी मदयन्ती ने उसे ऐसा करने से रोका। तब राजा ने देखा कि दसों दिशाओं, आकाश तथा पृथ्वी पर सर्वत्र जीव ही जीव थे।

राक्षसं भावमापन्नः पादे कल्माषतां गतः ।
व्यवायकाले ददृशे वनौकोदम्पती द्विजौ ॥ २५॥

शब्दार्थ

राक्षसम्—मनुष्यभक्षक; भावम्—प्रवृत्ति; आपन्नः—प्राप्त करके; पादे—पाँव पर; कल्माषताम्—काला धब्बा; गतः—प्राप्त किया; व्यवाय-काले—मैथुन के समय; ददृशे—देखा; वन-ओकः—वनवासी; दम्-पती—पति-पत्नी; द्विजौ—ब्राह्मण।.

इस तरह सौदास ने मानवभक्षी प्रवृत्ति अर्जित कर ली और उसके पाँव में एक काला धब्बा हो गया जिससे वह कल्माषपाद कहलाया। एक बार कल्माषपाद ने एक ब्राह्मण दम्पति को जंगल में संभोगरत देखा।

क्षुधार्तो जगृहे विप्रं तत्पत्न्याहाकृतार्थवत् ।
न भवान्राक्षसः साक्षादिक्ष्वाकूणां महारथः ॥ २६ ॥
मदयन्त्याः पतिर्वीर नाधर्मं कर्तुमर्हसि ।
देहि मेऽपत्यकामाया अकृतार्थं पतिं द्विजम् ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

क्षुधा-आर्तः—भूख से पीड़ित; जगृहे—पकड़ लिया; विप्रम्—ब्राह्मण को; तत्-पत्नी—उसकी पत्नी ने; आह—कहा; अकृत-अर्थ-वत्—असंतुष्ट गरीब तथा भूखा; न—नहीं; भवान्—आप; राक्षसः—राक्षस; साक्षात्—प्रत्यक्ष; इक्ष्वाकूणाम्—महाराज इक्ष्वाकु के वंशजों में; महा-रथः—महान् योद्धा; मदयन्त्याः—मदयन्ती का; पतिः—पति; वीर—हे वीर; न—नहीं; अधर्मम्—अधर्म; कर्तुम्—करने के लिए; अर्हसि—तुम योग्य हो; देहि—उद्धार करिये; मे—मेरा; अपत्य-कामायाः—पुत्र प्राप्ति की इच्छा से; अकृत-अर्थम्—जिसकी इच्छा पूरी न हो; पतिम्—पति को; द्विजम्—ब्राह्मण।

राक्षस-वृत्ति से प्रभावित होने तथा अत्यन्त भूखा रहने के कारण राजा सौदास ने ब्राह्मण को पकड़ लिया। तब ब्राह्मण की बेचारी पत्नी ने राजा से कहा : हे वीर, तुम असली राक्षस नहीं हो, प्रत्युत तुम महाराज इक्ष्वाकु के वंशज हो। निस्सन्देह, तुम महान् योद्धा और मदयन्ती के पति हो। तुम्हें इस तरह पाप-कर्म नहीं करना चाहिए। मुझे पुत्र प्राप्त करने की इच्छा है अतएव मेरे पति को छोड़ दो, अभी उसने मुझे गर्भित नहीं किया है।

देहोऽयं मानुषो राजन्पुरुषस्याखिलार्थदः ।
तस्मादस्य वधो वीर सर्वार्थवध उच्यते ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

देहः—शरीर; अयम्—यह; मानुषः—मनुष्य का; राजन्—हे राजा; पुरुषस्य—जीव का; अखिल—समष्टि; अर्थ-दः—लाभकारी; तस्मात्—इसलिए; अस्य—मेरे पति के शरीर की; वधः—हत्या; वीर—हे वीर; सर्व-अर्थ-वधः—सारे लाभप्रद अवसरों की हत्या; उच्यते—कहा जाता है।

हे राजा, हे वीर, यह मानव शरीर सबों के लाभ के निमित्त है। यदि तुम इस शरीर का असमय वध कर दोगे तो तुम मानव जीवन के सारे लाभों की हत्या कर डालोगे।

तात्पर्य : श्रील नरोत्तम दास ठाकुर का गीत है—

हरि हरि विफले जनम गोंआइनु

मनुष्य-जनम पाइया, राधा-कृष्ण ना भजिया

जानिया शुनिया विष खाइनु

मनुष्य का शरीर अत्यन्त मूल्यवान है क्योंकि इसी शरीर से कृष्ण के उपदेशों को समझा जा सकता है

और चरमगति प्राप्त की जा सकती है। जीव इस भौतिक संसार में भगवद्धाम वापस जाने के उद्देश्य को पूरा करने के लिए आया है। भौतिक जगत में सुख की लालसा की जाती है लेकिन चरमलक्ष्य न जानने के कारण मनुष्य को एक शरीर त्यागकर दूसरा शरीर धारण करना पड़ता है। यदि किसी को मनुष्य का शरीर धारण करने का अवसर मिले तो वह इसी शरीर में धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—इन चार सिद्धान्तों की पूर्ति कर सकता है और यदि वह नियमित रूप से रहता रहे तो मोक्ष से भी आगे बढ़कर राधा-कृष्ण की सेवा में लग सकता है। यही जीवन की सफलता है कि जन्म-मरण के चक्र को समाप्त कर के भगवद्धाम जाया जाय (*मामेति*) और राधा-कृष्ण की सेवा की जाए। अतएव यह मनुष्य शरीर जीवन की प्रगति को पूरा करने के लिए मिला है। पूरे मानव समाज में मनुष्य-वध को गंभीरता से लिया जाता है। यद्यपि कसाईघर में हजारों-लाखों पशुओं का वध किया जाता है और कोई तनिक भी परवाह नहीं करता, किन्तु एक भी मनुष्य का वध गम्भीरता से लिया जाता है। क्यों? क्योंकि मानव-जीवन के उद्देश्य की पूर्ति के लिए मनुष्य-जीवन ही अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है।

एष हि ब्राह्मणो विद्वांस्तपःशीलगुणान्वितः ।
आरिराधयिषुर्ब्रह्म महापुरुषसंज्ञितम् ।
सर्वभूतात्मभावेन भूतेष्वन्तर्हितं गुणैः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

एषः—यह; हि—निस्सन्देह; ब्राह्मणः—योग्य ब्राह्मण; विद्वान्—वैदिक ज्ञान में पारंगत; तपः—तपस्या; शील—सदाचरण; गुण-अन्वितः—सारे सद्गुणों से युक्त; आरिराधयिषुः—पूजा में लगने की इच्छा करता हुआ; ब्रह्म—परब्रह्म; महा-पुरुष—महापुरुष कृष्ण; संज्ञितम्—के नाम से विख्यात; सर्व-भूत—सारे जीवों का; आत्म-भावेन—परमात्मा रूप; भूतेषु—हर जीव में; अन्तर्हितम्—हृदय के भीतर; गुणैः—गुणों के द्वारा।

यह ब्राह्मण विद्वान अत्यन्त योग्य, तपस्या में रत तथा समस्त जीवों के हृदय में वास करने वाले परमात्मा परब्रह्म की पूजा करने के लिए परम उत्सुक है।

तात्पर्य : ब्राह्मण की पत्नी अपने पति को ऐसा दिखावटी ब्राह्मण नहीं मानती थी जो ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होने के कारण ब्राह्मण कहलाता हो। प्रत्युत यह ब्राह्मण ब्राह्मण-लक्षणों से युक्त होने से सचमुच योग्य था। *यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तम्* (*भागवत* ७.११.३५)। ब्राह्मण के लक्षणों का उल्लेख शास्त्र में इस प्रकार हुआ है—

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।

ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्॥

''शान्ति, आत्मसंयम, तपस्या, शुद्धि, सहिष्णुता, निष्कपटता, ज्ञान, विज्ञान तथा धार्मिकता—ये गुण हैं जिनके द्वारा ब्राह्मण कर्म करता है।'' (*भगवद्गीता* १८.४२) ब्राह्मण को न केवल सुयोग्य होना चाहिए अपितु उसे वास्तिवक ब्राह्मण-कर्म करने चाहिए। योग्यता ही पर्याप्त नहीं होगी, मनुष्य को ब्राह्मण के कर्तव्य भी करने चाहिए। ब्राह्मण का कर्तव्य है कि वह *परब्रह्म* कृष्ण को जाने (*परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्*)। चूँकि यह ब्राह्मण वास्तव में योग्य था और ब्रह्मकर्म में लगा था अतएव इसका वध करना अत्यन्त पापपूर्ण कृत्य होगा। ब्राह्मण की पत्नी ने अनुनय-विनय की कि उसके पति का वध न किया जाय।

सोऽयं ब्रह्मर्षिवर्यस्ते राजर्षिप्रवराद्विभो ।
कथमर्हति धर्मज्ञ वधं पितुरिवात्मजः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

सः—वह ब्राह्मण; अयम्—यह; ब्रह्म-ऋषि-वर्यः—न केवल ब्राह्मण अपितु ऋषियों में श्रेष्ठ ब्रह्मर्षि; ते—तथा तुमसे; राज-ऋषि-प्रवरात्—जो सारे राजर्षियों में सर्वश्रेष्ठ है; विभो—हे राज्य के स्वामी; कथम्—कैसे; अर्हति—योग्य है; धर्म-ज्ञ—हे धर्म के ज्ञाता; वधम्—वध; पितुः—पिता द्वारा; इव—सदृश; आत्मजः—पुत्र।

हे प्रभु, तुम धार्मिक सिद्धान्तों से पूर्णतया अवगत हो। जिस तरह पुत्र कभी भी अपने पिता द्वारा वध्य नहीं है, उसी तरह इस ब्राह्मण की राजा द्वारा रक्षा होनी चाहिए न कि वध। तुम जैसे राजर्षि द्वारा इसका वध किस तरह उचित है?

तात्पर्य : *राजर्षि* शब्द ऐसे राजा का सूचक है जो ऋषि तुल्य आचरण करता है। ऐसा राजा नरदेव भी कहलाता है क्योंकि वह परमेश्वर का प्रतिनिधि माना जाता है। चूँकि राजा का कर्तव्य ब्राह्मण संस्कृति की रक्षा के लिए शासन करना है अतएव वह कभी भी ब्राह्मण का वध नहीं करना चाहता। सामान्यतया ब्राह्मण, स्त्री, शिशु, वृद्ध या गाय को दण्डनीय नहीं माना जाता। अतएव ब्राह्मण पत्नी ने राजा से प्रार्थना की कि वह इस पापकृत्य से बचे।

तस्य साधोरपापस्य भ्रूणस्य ब्रह्मवादिनः ।
कथं वधं यथा बभ्रोर्मन्यते सन्मतो भवान् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसका; साधोः—साधुपुरुष का; अपापस्य—निष्पापी; भ्रूणस्य—भ्रूण का; ब्रह्म-वादिनः—वैदिक ज्ञान में पारंगत; कथम्—कैसे; वधम्—वध; यथा—जिस तरह; बभ्रोः—गाय का; मन्यते—तुम सोचते हो; सत्-मतः—मान्य; भवान्—आप।

तुम विख्यात हो और विद्वानों में पूजित हो। तुम किस तरह इस ब्राह्मण का वध करने का साहस कर रहे हो जो साधु, निष्पाप तथा वैदिक ज्ञान में पटु है? उसका वध करना गर्भ के भीतर भ्रूण नष्ट करने या गोवध के तुल्य होगा।

तात्पर्य : जैसा कि *अमरकोश* में कहा गया है— *भ्रूणोऽर्भके बालगर्भे*—भ्रूण या तो गाय के लिए आता है या गर्भस्थ शिशु के लिए। वैदिक संस्कृति के अनुसार गर्भ में जीव के अविकसित भ्रूण को विनष्ट करना गाय या ब्राह्मण के वध के समान पापमय है। भ्रूण में जीव अविकसित अवस्था में रहता है। यह आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धान्त कि जीवन रसायनों का संयोग है, निरर्थक है। विज्ञानीजन जीवों की रचना नहीं कर सकते, यहाँ तक कि अंडे से निकलने वाले जीव की भी। विज्ञानियों का यह विचार कि वे ऐसी रासायनिक परिस्थिति उत्पन्न कर सकते हैं जो अंडे के समान हो और फिर उसमें जीवन पैदा हो जाय, निरर्थक है। उनका यह सिद्धान्त कि रासायनिक संयोग में जीवन हो सकता है, इसे तो स्वीकार किया जा सकता है, किन्तु ये धूर्त ऐसा संयोग ला नहीं सकते। इस श्लोक में *भ्रूणस्य वधम्* आया है जिसका अर्थ है भ्रूण-हत्या। यह वैदिक साहित्य से आई हुई चुनौती है। यह समझना कि जीव पदार्थ का संयोग है अत्यन्त भोंडा तथा नास्तिकतापूर्ण है और नितान्त अज्ञान का सूचक है।

यद्ययं क्रियते भक्ष्यस्तर्हि मां खाद पूर्वतः ।
न जीविष्ये विना येन क्षणं च मृतकं यथा ॥ ३२॥

शब्दार्थ

यदि—यदि; अयम्—यह ब्राह्मण; क्रियते—स्वीकार किया जाता है; भक्ष्यः—खाद्य; तर्हि—तब तो; माम्—मुझको; खाद—खा लो; पूर्वतः—उसके पूर्व; न—नहीं; जीविष्ये—मैं जीवित रहूँगी; विना—बिना; येन—जिसके (पति); क्षणम् च—एक पल भी; मृतकम्—शव; यथा—सदृश।

मैं अपने पति के बिना एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकती। यदि तुम मेरे पति को खा जाना चाहते हो, तो अच्छा होगा कि पहले तुम मुझे खा लो क्योंकि मैं अपने पति के बिना मृतक तुल्य हूँ।

तात्पर्य : वैदिक संस्कृति में सती या सहमरण प्रथा है जिसमें स्त्री अपने पति के साथ मरती है। इस प्रथा के अनुसार यदि पति मर जाता है तो पत्नी जलती चिता में स्वेच्छा से कूद कर अपने पति के साथ जल जाती है। इस श्लोक में ब्राह्मण पत्नी द्वारा इस संस्कृति की अभिव्यक्ति हुई है। पतिविहीन स्त्री शव तुल्य है। अतएव वैदिक संस्कृति के अनुसार कन्या का विवाह होना आवश्यक है। यह उसके पिता का उत्तरदायित्व

है। भले ही कन्या को दान कर दिया जाय अथवा पति के एक से अधिक पत्नियाँ हों, किन्तु कन्या का विवाह होना ही चाहिए। यही वैदिक संस्कृति है। स्त्री को सदैव पराश्रित माना जाता है—बचपन में वह अपने पिता पर, युवावस्था में अपने पति पर और वृद्धावस्था में अपने सयाने पुत्रों पर आश्रित रहती है। *मनुसंहिता* के अनुसार वह कभी स्वतंत्र नहीं होती। स्त्री-स्वाधीनता का अर्थ हैकष्टमय जीवन। इस युग में कितनी ही लड़कियाँ अविवाहित हैं और वे झूठे ही अपने को स्वतंत्र समझती हैं, किन्तु उनका जीवन कष्टमय है। यहाँ एक ऐसा दृष्टान्त है जिसमें एक स्त्री यह अनुभव करती है कि अपने पति के बिना वह शवमात्र है।

एवं करुणभाषिण्या विलपन्त्या अनाथवत् ।
व्याघ्रः पशुमिवाखादत्सौदासः शापमोहितः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; करुण-भाषिण्याः—करुणभाव से बोलती वह ब्राह्मण की पत्नी; विलपन्त्याः—घोर विलाप करती; अनाथ-वत्—उस स्त्री के समान जिसका कोई रक्षक न हो; व्याघ्रः—बाघ; पशुम्—पशु; इव—सदृश; अखादत्—खा लिया; सौदासः—राजा सौदास ने; शाप—शाप से; मोहितः—शापित होने से।

वसिष्ठ के शापवश राजा सौदास उस ब्राह्मण को निगल गया, जिस तरह कोई बाघ अपने शिकार को निगल जाता है। यद्यपि ब्राह्मणपत्नी ने अत्यन्त कातरभाव से विनय की, किन्तु उसके विलाप से भी सौदास नहीं पसीजा।

तात्पर्य : यह भाग्य का उदाहरण है। राजा सौदास को वसिष्ठ ने शाप दे दिया था अतएव योग्य होते हुए भी वह व्याघ्र-सदृश राक्षस बनने से अपने को रोक नहीं पाया क्योंकि यही उसके भाग्य में बदा था। *तल्लभ्यते दुःखवद् अन्यतः सुखम्* (*भागवत* १.५.१८)। जिस तरह भाग्य के द्वारा मनुष्य संकट में फँसता है उसी तरह भाग्य से वह सुख भी प्राप्त कर सकता है। भाग्य (भावी) अत्यन्त प्रबल है, किन्तु यदि कृष्णभावनामृत को प्राप्त कर लिया जाय तो भाग्य को बदला जा सकता है। *कर्माणि निर्दहति किन्तु च भक्तिभाजाम्* (*ब्रह्म-संहिता* ५.५४)।

ब्राह्मणी वीक्ष्य दिधिषुं पुरुषादेन भक्षितम् ।
शोचन्त्यात्मानमुर्वीशमशपत्कुपिता सती ॥ ३४॥

शब्दार्थ

ब्राह्मणी—ब्राह्मण पत्नी; वीक्ष्य—देखकर; दिधिषुम्—गर्भाधान के लिए उद्यत पति को; पुरुष-अदेन—मनुष्यभक्षक (राक्षस) द्वारा; भक्षितम्—खाया जाकर; शोचन्ती—अत्यधिक विलाप करती; आत्मानम्—अपने लिए; उर्वीशम्—राजा को; अशपत्—शाप दे दिया; कुपिता—वृद्धा; सती—सती ने।

जब ब्राह्मण की सती पत्नी ने देखा कि उसका पति, जो गर्भाधान के लिए उद्यत ही था, उस मनुष्यभक्षक द्वारा खा लिया गया तो वह शोक तथा विलाप से अत्यधिक सन्तप्त हो उठी। इस तरह उसने क्रोध में आकर राजा को शाप दे दिया।

यस्मान्मे भक्षितः पाप कामार्तायाः पतिस्त्वया ।
तवापि मृत्युराधानादकृतप्रज्ञ दर्शितः ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

यस्मात्—चूँकि; मे—मेरा; भक्षितः—खाया गया; पाप—हे पापी; काम-आर्तायाः—कामेच्छा से विरहित स्त्री का; पतिः—पति; त्वया—तुम्हारे द्वारा; तव—तुम्हारी; अपि—भी; मृत्युः—मृत्यु; आधानात्—गर्भाधान करते समय; अकृत-प्रज्ञ—अरे मूर्ख धूर्त; दर्शितः—तुमको शाप दिया जाता है।

अरे मूर्ख पापी, चूँकि तूने मेरे पति को तब निगला जब मैं कामेच्छा से पीड़ित और गर्भाधान के लिए लालायित थी अतएव मैं तुझे भी तभी मरते देखना चाहती हूँ जब तू अपनी पत्नी में गर्भाधान करने को उद्यत हो। दूसरे शब्दों में, जब भी तू अपनी पत्नी से संभोग करना चाहेगा तू मर जाएगा।

एवं मित्रसहं शप्त्वा पतिलोकपरायणा ।
तदस्थीनि समिद्धेऽग्नौ प्रास्य भर्तुर्गतिं गता ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; मित्रसहम्—राजा सौदास को; शप्त्वा—शाप देकर; पति-लोक-परायणा—अपने पति के साथ जाने को उद्यत; तत्-अस्थीनि—अपने पति की हड्डियों को; समिद्धे अग्नौ—जलती अग्नि में; प्रास्य—रखकर; भर्तुः—अपने पति के; गतिम्—गन्तव्य को; गता—वह भी चली गई।

इस प्रकार ब्राह्मणपत्नी ने राजा सौदास को, जो मित्रसह के नाम से विख्यात है, शाप दे डाला। तत्पश्चात् अपने पति के साथ जाने के लिए सन्नद्ध उसने पति की अस्थियों में आग लगा दी, स्वयं वह उसमें कूद पड़ी और पति के साथ-साथ उसी गन्तव्य को प्राप्त हुई।

विशापो द्वादशाब्दान्ते मैथुनाय समुद्यतः ।
विज्ञाप्य ब्राह्मणीशापं महिष्या स निवारितः ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

विशापः—शाप से छूटा; द्वादश-अब्द-अन्ते—बारह वर्ष बाद; मैथुनाय—अपनी पत्नी के साथ मैथुन करने के लिए; समुद्यतः—जब सौदास तैयार था; विज्ञाप्य—याद दिलाते हुए; ब्राह्मणी-शापम्—ब्राह्मणी द्वारा दिया गया शाप; महिष्या—रानी द्वारा; सः—वह (राजा); निवारितः—रोक लिया गया।

बारह वर्ष बाद जब राजा सौदास वसिष्ठ द्वारा दिये गये शाप से मुक्त हुआ तो उसने अपनी पत्नी के साथ सम्भोग करना चाहा। किन्तु रानी ने उसे ब्राह्मणी द्वारा दिये गये शाप का स्मरण कराया। इस तरह उसे सम्भोग करने से रोक दिया।

अत ऊर्ध्वं स तत्याज स्त्रीसुखं कर्मणाप्रजाः ।
वसिष्ठस्तदनुज्ञातो मदयन्त्यां प्रजामधात् ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

अतः—इस प्रकार से; ऊर्ध्वम्—निकट भविष्य में; सः—उस राजा ने; तत्याज—छोड़ दिया; स्त्री-सुखम्—मैथुन-सुख; कर्मणा—भाग्य द्वारा; अप्रजाः—निस्सन्तान रहता रहा; वसिष्ठः—ऋषि वसिष्ठ ने; तत्-अनुज्ञातः—राजा की अनुमति से पुत्र उत्पन्न करने के लिए; मदयन्त्याम्—राजा सौदास की पत्नी मदयन्ती के गर्भ में; प्रजाम्—शिशु; अधात्—उत्पन्न किया।

इस प्रकार आदिष्ट होने पर राजा ने भावी संभोग-सुख त्याग दिया और भाग्यवश निस्सन्तान रहता रहा। बाद में राजा की अनुमति से ऋषि वसिष्ठ ने मदयन्ती के गर्भ से एक शिशु उत्पन्न किया।

सा वै सप्त समा गर्भमबिभ्रन्न व्यजायत ।
जघ्नेऽश्मनोदरं तस्याः सोऽश्मकस्तेन कथ्यते ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

सा—वह रानी मदयन्ती; वै—निस्सन्देह; सप्त—सात; समाः—वर्ष; गर्भम्—गर्भ को; अबिभ्रत्—धारण किये रही; न—नहीं; व्यजायत—जन्म दिया; जघ्ने—प्रहार किया; अश्मना—पत्थर से; उदरम्—उदर पर; तस्याः—उसके; सः—पुत्र; अश्मकः—अश्मक; तेन—इसके कारण; कथ्यते—कहलाया।

मदयन्ती सात वर्षों तक बालक को गर्भ में धारण किये रही और उसने बच्चे को जन्म नहीं दिया। अतएव वसिष्ठ ने एक पत्थर से उसके पेट पर प्रहार किया जिससे बालक उत्पन्न हुआ। फलस्वरूप बच्चे का नाम अश्मक (पत्थर से उत्पन्न) पड़ा।

अश्मकाद्बालिको जज्ञे यः स्त्रीभिः परिरक्षितः ।
नारीकवच इत्युक्तो निःक्षत्रे मूलकोऽभवत् ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

अश्मकात्—अश्मक से; बालिकः—बालिक नामक पुत्र; जज्ञे—उत्पन्न हुआ; यः—जो; स्त्रीभिः—स्त्रियों द्वारा; परिरक्षितः—रक्षा किया गया; नारी-कवचः—स्त्रियों की ढाल पहने; इति उक्तः—इस तरह से विख्यात; निःक्षत्रे—क्षत्रियविहीन होने पर (क्योंकि परशुराम ने क्षत्रियों को मार डाला था); मूलकः—क्षत्रियों का जनक, मूलक; अभवत्—बन गया।

अश्मक से बालिक उत्पन्न हुआ। चूँकि स्त्रियों से घिरा रहने के कारण बालिक परशुराम के क्रोध से बच गया था अतएव वह नारीकवच कहलाया। जब परशुराम ने सारे क्षत्रियों का विनाश कर दिया तो बालिक अन्य क्षत्रियों का जनक बना। इसीलिए वह मूलक अर्थात् क्षत्रिय वंश का मूल कहलाया।

ततो दशरथस्तस्मात्पुत्र ऐडविडिस्ततः ।
राजा विश्वसहो यस्य खट्वाङ्गश्चक्रवर्त्यभूत् ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

ततः—बालिक से; दशरथः—दशरथ; तस्मात्—उससे; पुत्रः—पुत्र; ऐडविडिः—ऐडविडि; ततः—उससे; राजा विश्वसहः—सुप्रसिद्ध राजा विश्वसह उत्पन्न हुआ; यस्य—जिसके; खट्वाङ्गः—खट्वांग नामक राजा; चक्रवर्ती—सम्राट; अभूत्—बना।

बालिक का पुत्र दशरथ हुआ, दशरथ का पुत्र ऐडविडि तथा ऐडविडि का पुत्र राजा विश्वसह हुआ। विश्वसह का पुत्र सुप्रसिद्ध महाराज खट्वांग था।

यो देवैरर्थितो दैत्यानवधीद्युधि दुर्जयः ।
मुहूर्तमायुर्ज्ञात्वैत्य स्वपुरं सन्दधे मनः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

यः—राजा खट्वांग ने; देवैः—देवताओं द्वारा; अर्थितः—प्रार्थना किए जाने पर; दैत्यान्—असुरों को; अवधीत्—मार डाला; युधि—युद्ध में; दुर्जयः—अत्यन्त भीषण; मुहूर्तम्—एक पल के लिए; आयुः—उम्र; ज्ञात्वा—जानकर; एत्य—पहुँचा; स्व-पुरम्—अपने घर में; सन्दधे—स्थिर कर लिया; मनः—मन को।

राजा खट्वांग किसी भी युद्ध में दुर्जेय था। असुरों के विरुद्ध युद्ध करने के लिए देवताओं द्वारा प्रार्थना करने पर उसने विजय प्राप्त की और एक ही मनुष्य जन्म में देवताओं ने प्रसन्न होकर उसे वर देना चाहा। जब राजा ने उनसे अपनी आयु के विषय में पूछा तो उसे बतलाया गया कि केवल एक मुहूर्त शेष है। अतएव उसने तुरन्त अपने घर जाकर भगवान् के चरणकमलों में अपना मन लगाया।

तात्पर्य : महाराज खट्वांग द्वारा भक्ति में लगने का उदाहरण अत्यन्त ज्वलन्त है। यद्यपि उन्होंने एक पल ही भगवान् की भक्ति की, किन्तु उन्हें भगवद्धाम प्राप्त हुआ। अतएव यदि कोई अपने जीवन के प्रारम्भ से ही भक्ति करे तो वह निश्चित रूप से (*असंशयम्*) भगवद्धाम जायेगा।

भगवद्गीता (७.१) में *असंशय* शब्द भक्त के प्रसंग में प्रयुक्त हुआ है। भगवान् आदेश देते हैं—

मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन् मदाश्रयः ।

असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु॥

"हे पृथापुत्र (अर्जुन)! अब सुनो कि किस तरह मेरी भावना से भावित होकर योगाभ्यास द्वारा मुझमें मन को रमाकर तुम संशय से मुक्त होकर मुझे पूरी तरह जान सकते हो।"

भगवान् यह भी उपदेश देते हैं(*भगवद्गीता* ४.९)—

जन्म कर्म च मे दिव्यम् एवं यो वेत्ति तत्त्वत:।

त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

"जो मेरे आविर्भाव एवं कार्यों की दिव्य प्रकृति को जानता है वह शरीर छोड़ने पर इस जगत में पुन: जन्म नहीं लेता अपितु, हे अर्जुन! वह मेरे नित्य धाम को प्राप्त होता है।"

अतएव मनुष्य को चाहिए कि जीवन के प्रारम्भ से ही भक्तियोग का अभ्यास करे जिससे कृष्ण के प्रति अनुराग बढ़े। यदि कोई नित्य मन्दिर जाकर अर्चाविग्रह का दर्शन करे, पूजा करके भेंट चढाए, भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करे और यथासम्भव भगवान् की महिमा का प्रचार करे तो वह कृष्ण से अनुरक्त हो जाता है। यह आसक्ति कहलाती है। जब मनुष्य का मन कृष्ण में आसक्त होता है (*मय्यासक्तमना:*) तो वह जीवन के उद्देश्य को एक ही मनुष्य जन्म में पूरा कर सकता है। यदि वह इस अवसर को हाथ से जाने देता है तो उसे पता नहीं रहता कि वह कहाँ जा रहा है, जन्म-मरण के चक्र में वह कब तक बँधा रहेगा, पुन: कब मनुष्य जीवन मिलेगा, और उसे कब भगवद्धाम जाने का अवसर प्राप्त होगा। अतएव बुद्धिमान व्यक्ति अपने जीवन के प्रत्येक क्षण का सदुपयोग भगवान् की भक्ति करने में करता है।

न मे ब्रह्मकुलात्प्राणा: कुलदैवान्न चात्मजा: ।
न श्रियो न मही राज्यं न दाराश्चातिवल्लभा: ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; मे—मेरा; ब्रह्म-कुलात्—ब्राह्मण वृन्द की अपेक्षा; प्राणा:—प्राण; कुल-दैवात्—मेरे कुल द्वारा पूज्य पुरुषों की अपेक्षा; न—नहीं; च—भी; आत्मजा:—पुत्र तथा पुत्रियाँ; न—न तो; श्रिय:—ऐश्वर्य; न—न तो; मही—पृथ्वी; राज्यम्—राज्य; न—न तो; दारा:—पत्नी; च—भी; अति-वल्लभा:—अत्यन्त प्रिय।

महाराज खट्वांग ने सोचा: ब्राह्मण संस्कृति तथा मेरे कुलपूज्य ब्राह्मणों की अपेक्षा मेरा जीवन भी मुझे अधिक प्रिय नहीं है। तो फिर मेरे राज्य, भूमि, पत्नी, सन्तान तथा ऐश्वर्य के विषय में क्या कहा जा सकता है? मुझे ब्राह्मणों से अधिक प्रिय कुछ भी नहीं है।

तात्पर्य : महाराज खट्वांग ब्राह्मण-संस्कृति के पक्षपाती थे अतएव वे एक मुहूर्त के शेष समय को भी भगवान् की पूर्ण शरणागति में लगाना चाह रहे थे। भगवान् की पूजा इस स्तुति से की जाती है—

नमो ब्राह्मण्यदेवाय गो ब्राह्मणहिताय च।

जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नम: ॥

''मैं परम सत्य कृष्ण को सादर नमस्कार करता हूँ जो ब्राह्मणों, गायों तथा सारे जीवों के शुभचिन्तक हैं। मैं उन गोविन्द को बार-बार नमस्कार करता हूँ जो समस्त इन्द्रियों के आनन्द के आगार हैं।'' कृष्णभक्त ब्राह्मण-संस्कृति के प्रति अत्यधिक आसक्त रहता है। निस्सन्देह, ऐसा दक्ष व्यक्ति, जो यह जानता है कि कृष्ण कौन हैं और वे क्या चाहते हैं, ही असली ब्राह्मण है। *ब्रह्म जानातीति ब्राह्मण: ।* कृष्ण परब्रह्म हैं अतएव सारे कृष्ण-भक्त पूज्य ब्राह्मण हैं। खट्वांग महाराज कृष्ण-भक्तों को असली ब्राह्मण तथा मानव समाज के असली प्रकाश के रूप में मानते थे। जो व्यक्ति कृष्णभावनामृत तथा आध्यात्मिक ज्ञान में प्रगति करने का इच्छुक हो उसे ब्राह्मण संस्कृति को सर्वाधिक महत्त्व देना होगा और कृष्ण को समझना होगा (*कृष्णाय गोविन्दाय*)। तभी उसका जीवन सफल होगा।

न बाल्येऽपि मतिर्मह्यमधर्मे रमते क्वचित् ।
नापश्यमुत्तमश्लोकादन्यत्किञ्चन वस्त्वहम् ॥ ४४॥

शब्दार्थ

न—नहीं; बाल्ये—बचपन में; अपि—निस्सन्देह; मति:—आकर्षण; मह्यम्—मुझको; अधर्मे—अधर्म में; रमते—भोगता है; क्वचित्—कभी भी; न—न तो; अपश्यम्—देखा; उत्तमश्लोकात्—भगवान् की अपेक्षा; अन्यत्—कोई अन्य वस्तु; किञ्चन—कोई; वस्तु—वस्तु; अहम्—मैंने।.

अपने बचपन में भी मैं नगण्य वस्तुओं या अधार्मिक सिद्धान्तों के प्रति कभी आकृष्ट नहीं हुआ। मुझे भगवान् से बढ़कर तथ्यपूर्ण अन्य कोई वस्तु नहीं मिल पाई।

तात्पर्य : महाराज खट्वांग कृष्णभावनाभावित व्यक्ति के विशिष्ट उदाहरण प्रतीत होते हैं। कृष्णभावनाभावित व्यक्ति भगवान् की तुलना में न तो अन्य किसी वस्तु को महत्त्व देता है न ही इस संसार की किसी भी वस्तु को भगवान् से असम्बद्ध मानता है। जैसा कि *चैतन्य-चरितामृत* (*मध्य* ८.२७४) में कहा गया है—

स्थावरजंगम देखे, ना देखे तार मूर्ति

सर्वत्र हय निज इष्टदेवस्फूर्ति

''महाभागवत निश्चय ही, जड़ तथा चेतन सभी वस्तुएँ देखता है, किन्तु वह उनके स्वरूपों को ठीक रूप में नहीं देखता अपितु सर्वत्र भगवान् के स्वरूप का व्यापक दर्शन करता है।'' भक्त इस जगत में रहकर भी इससे कोई सम्बन्ध नहीं रखता। *निर्बन्धः कृष्णसम्बन्धे।* वह इस जगत को भगवान् से सम्बन्धित देखता है। भक्त धनार्जन में लगा रहने पर भी उस धन का उपयोग बड़े-बड़े मन्दिर बनाकर भगवान् का विग्रह स्थापित करके कृष्णभावनामृत आंदोलन को प्रसारित करने में करता है। अतएव खट्वांग महाराज भौतिकतावादी न थे। भौतिकतावादी अपनी पत्नी, सन्तान, घर, सम्पत्ति तथा इन्द्रियतृप्ति की अन्य वस्तुओं में सदैव लिप्त रहता है, किन्तु जैसा कि ऊपर कहा गया है, खट्वांग महराज ऐसी वस्तुओं में आसक्त न थे, न ही वे भगवान् के कार्य के बिना किसी वस्तु के अस्तित्व के बारे में सोचते थे। *ईशावास्यमृइदं सर्वम्*—हर वस्तु ईश्वर से सम्बन्धित है। निस्सन्देह, यह चेतना सामान्य व्यक्ति के लिए नहीं होती, किन्तु यदि वह भक्ति करता है जैसा कि *भक्तिरसामृतसिंधु* में निर्धारित है तो उसे इस चेतना में प्रशिक्षित किया जा सकता है और तब उसे पूर्ण ज्ञान मिल सकता है। कृष्णभावनाभावित व्यक्ति के लिए कृष्ण से असंबंधित कुछ भी नहीं सुहाता।

देवैः कामवरो दत्तो मह्यं त्रिभुवनेश्वरैः ।
न वृणे तमहं कामं भूतभावनभावनः ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

देवैः—देवताओं के द्वारा; **काम-वरः**—इच्छित वर; **दत्तः**—दिया; **मह्यम्**—मुझको; **त्रि-भुवन-ईश्वरैः**—तीनों जगतों के रक्षक, देवताओं द्वारा (जो इस लोक में चाहें तो कुछ भी कर सकते हैं); **न वृणे**—स्वीकार नहीं किया; **तम्**—उस; **अहम्**—मैंने; **कामम्**—इस जगत के भीतर की प्रत्येक इच्छित वस्तु को; **भूतभावन-भावनः**—भगवान् में पूर्णतया निमग्न हुआ (अतएव किसी भी पदार्थ में रुचि न रखने वाला)।

तीनों लोकों के निदेशक देवतागण मुझे इच्छित वर देना चाहते थे, किन्तु मुझे उनके वर नहीं चाहिए थे क्योंकि मेरी रुचि भगवान् में है जिन्होंने इस संसार की सारी वस्तुओं को बनाया है। मेरी रुचि भौतिक वरों की अपेक्षा भगवान् में कहीं अधिक है।

तात्पर्य : भक्त सदैव दिव्य पद पर स्थित रहता है। *परं दृष्ट्वा निवर्तते*—जिसे भगवान् का दर्शन प्राप्त हो जाता है उसे भौतिक इन्द्रियभोग में कोई रुचि नहीं रह जाती। ध्रुव महाराज जैसे पूज्य भक्त भी भौतिक लाभ

के लिए जंगल गये थे, किन्तु जब उन्होंने भगवान् का दर्शन किया तो कोई भी वर लेना स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा—*स्वामिन् कृतार्थोऽस्मि वरं न याचे*—हे भगवान्! आपने जो दिया है या नहीं दिया उतने से ही मैं पूर्ण सन्तुष्ट हूँ। मुझे आपसे कुछ भी नहीं माँगना है क्योंकि मैं आपकी सेवा में लगा रहकर पूर्ण सन्तुष्ट हूँ। शुद्ध भक्त की मानसिकता यही है। वह भगवान् से कुछ भी नहीं चाहता, न भौतिक न आध्यात्मिक। इसीलिए हमारा आन्दोलन कृष्णभावनामृत संघ कहलाता है—यह ऐसे व्यक्तियों का संगठन है जो केवल कृष्ण के विचारों में खोये रहते हैं। कृष्ण के विचारों में खोये रहना न तो खर्चीला है न कष्टदायक है। कृष्ण कहते हैं—*मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु*—अपने मन को मेरे विषय में सोचने, मुझे नमस्कार करने और मेरी पूजा करने में लगाओ (*भगवद्गीता* ९.३४)। कोई भी व्यक्ति बिना कठिनाई या अवरोध के कृष्ण का सदैव चिन्तन कर सकता है। यही कृष्णभावनामृत कहलाता है। जो कृष्णभावनामृत में लगा रहता है उसे कृष्ण से किसी भौतिक लाभ की कामना नहीं रहती। बल्कि ऐसा व्यक्ति भगवान् से यह प्रार्थना करता है कि वह सारे विश्व में भगवान् की महिमाओं का प्रसार करने में समर्थ हो। *मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद् भक्तिरहैतुकी त्वयि।* कृष्णभावनाभावित व्यक्ति जन्म-मरण के चक्र से मुक्त होने की भी कामना नहीं करता। वह तो बस यही प्रार्थना करता है, ''आप जैसा भी चाहें, मैं वैसा जन्म लूँ, किन्तु मेरी इतनी ही प्रार्थना है कि मैं आपकी सेवा में लगा रहूँ।''

ये विक्षिप्तेन्द्रियधियो देवास्ते स्वहृदि स्थितम् ।
न विन्दन्ति प्रियं शश्वदात्मानं किमुतापरे ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

ये—जो महापुरुष; विक्षिप्त-इन्द्रिय-धियः—जिनकी इन्द्रियाँ, मन तथा बुद्धि सदैव भौतिक अवस्थाओं के कारण विक्षुब्ध रहती हैं; देवाः—देवताओं की तरह; ते—ऐसे व्यक्ति; स्व-हृदि—अपने हृदय में; स्थितम्—स्थित; न—नहीं; विन्दन्ति—जानते हैं; प्रियम्—अत्यन्त प्रिय; शश्वत्—निरन्तर; आत्मानम्—भगवान् को; किम् उत—क्या कहा जाये; अपरे—अन्यों के विषय में।

यद्यपि देवताओं को स्वर्गलोक में स्थित होने का लाभ मिलता है, किन्तु उनके मन, इन्द्रियाँ तथा बुद्धि भौतिक अवस्थाओं से विक्षुब्ध रहती हैं। अतएव ऐसे महापुरुष भी हृदय में निरन्तर स्थित भगवान् का साक्षात्कार नहीं कर पाते। तो फिर अन्यों के विषय में, यथा मनुष्यों के विषय में, क्या कहा जाय जिन्हें बहुत ही कम लाभ प्राप्त हैं?

तात्पर्य : वस्तुतः भगवान् हर एक के हृदय में सदैव स्थित रहते हैं(*ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन*

तिष्ठति)। लेकिन हम अपनी भौतिक चिन्ताओं के कारण जो इस भौतिक जगत में अनिवार्य हैं, भगवान् को समझ नहीं पाते, यद्यपि वह हमारे सन्निकट स्थित होते हैं। जो लोग सदैव भौतिक अवस्थाओं से विक्षुब्ध रहते हैं उनके लिए योग विधि की संस्तुति की जाती है जिससे वे अपने हृदय में स्थित भगवान् पर अपना मन क्रेन्द्रित कर सकें। *ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनः।* चूँकि भौतिक जगत में मन तथा इन्द्रियाँ सदा विक्षुब्ध रहती हैं अतएव मनुष्य को धारणा, आसन तथा ध्यान जैसी योग की विधियों से मन को शान्त करके उसे भगवान् में केन्द्रित करना चाहिए। दूसरे शब्दों में, योग की विधि ईशसाक्षात्कार का भौतिक प्रयास है जब कि भक्ति ईशसाक्षात्कार की आध्यात्मिक विधि है। महाराज खट्वांग ने आध्यत्मिक मार्ग ग्रहण किया अतएव उन्हें किसी भी भौतिक वस्तु में रुचि नहीं रह गई थी। *भगवद्गीता* (१८.५५) में कृष्ण कहते हैं— *भक्त्या मामभिजानाति*—केवल भक्ति के द्वारा मुझे जाना जा सकता है। केवल भक्ति के द्वारा परब्रह्म भगवान् कृष्ण को समझा जा सकता है। भगवान् यह कभी नहीं कहते कि उन्हें योगाभ्यास या दार्शनिक चिन्तन के द्वारा जाना जा सकता है। भक्ति ऐसे सारे भौतिक प्रयासों से ऊपर है। *अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।* भक्ति शुद्ध, होने के कारण ज्ञान या पुण्य कर्म से भी कलुषित नहीं होती।

अथेशमायारचितेषु सङ्गं
गुणेषु गन्धर्वपुरोपमेषु ।
रूढं प्रकृत्यात्मनि विश्वकर्तु-
र्भावेन हित्वा तमहं प्रपद्ये ॥ ४७॥

शब्दार्थ

अथ—अतएव; ईश-माया—भगवान् की माया के द्वारा; रचितेषु—रचे गये; सङ्गम्—अनुरक्ति; गुणेषु—प्रकृति के गुणों में; गन्धर्व-पुर-उपमेषु—जिनकी उपमा गन्धर्वपुर के भ्रम से दी जाती है, यह ऐसे नगर या मकान हैंजो जंगल या पर्वत पर दिखते हैं; रूढम्—अत्यन्त शक्तिशाली; प्रकृत्या—प्रकृति के द्वारा; आत्मनि—परमात्मा में; विश्व-कर्तुः—सारे ब्रह्माण्ड के स्त्रष्टा की; भावेन—भक्ति से; हित्वा—त्यागकर; तम्—उसकी (भगवान् की); अहम्—मैं; प्रपद्ये—शरण में जाता हूँ।

अतएव मुझे अब भगवान् की बहिरंगा शक्ति अर्थात् माया द्वारा सृजित वस्तुओं से आसक्ति को त्याग देना चाहिए। मुझे भगवान् के ध्यान में संलग्न होना चाहिए और इस तरह उनकी शरण में जाना चाहिए। यह भौतिक सृष्टि भगवान् की माया से सृजित होने के कारण पर्वत पर या जंगल में स्थित काल्पनिक नगर के सदृश है। हर बद्धजीव को भौतिक वस्तुओं से प्राकृतिक आकर्षण एवं आसक्ति

होती है, किन्तु मनुष्य को चाहिए कि इन्हें त्यागकर भगवान् की शरण में जाये।

तात्पर्य : हवाई जहाज द्वारा किसी पर्वतीय क्षेत्र से गुजरते समय आकाश में मीनारों तथा महलों से युक्त कोई शहर दिख सकता है या फिर किसी जंगल में ऐसी वस्तुएँ दिख सकती हैं। यह गंधर्वपुर या मायाजाल कहलाता है। यह समग्र संसार ऐसे ही मायाजाल के सदृश है और हर एक संसारी पुरुष को इससे लगाव होता है। किन्तु कृष्णभावनामृत में उच्च प्रगति के कारण खट्वांग महाराज को ऐसी वस्तुओं में रुचि नहीं रह गई थी। भक्त भले ही ऊपर से संसारी कार्यकलापों में लगा रहे, किन्तु वह अपनी स्थिति को भलीभाँति जानता रहता है। *निर्बन्धः कृष्णसम्बन्धे युक्तं वैराग्यमुच्यते*—यदि कोई ईश्वर की प्रेमाभक्ति से सम्बन्धित सारी भौतिक बातों में लगा रहता है तो वह युक्तवैराग्य में स्थित होता है। इस भौतिक जगत में अपनी इन्द्रियतुष्टि के लिए कुछ भी स्वीकार नहीं करना चाहिए—हर वस्तु भगवान् की सेवा के लिए होनी चाहिए। आध्यात्मिक जगत की यही मानसिकता है। महाराज खट्वांग उपदेश देते हैं कि मनुष्य भौतिक आसक्ति त्यागकर भगवान् की शरण ग्रहण करे। इस तरह जीवन में सफलता प्राप्त हो सकती है। यह शुद्ध भक्तियोग है जिसमें *वैराग्य-विद्या* अर्थात् विरक्ति तथा ज्ञान निहित हैं।

वैराग्यविद्यानिजभक्तियोग

शिक्षार्थमेकः पुरुषः पुराणः।

श्रीकृष्णचैतन्यशरीरधारी

कृपाम्बुधिर्यस्तमहं प्रपद्ये॥

"मैं उन भगवान् की शरण ग्रहण करता हूँ जो अब भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में प्रकट हुए हैं। वे कृपा के सिन्धु हैं और हमें विरक्ति, ज्ञान तथा अपनी भक्ति सिखलाने आये हैं।" (*चैतन्य चन्द्रोदय नाटक* ६.७४)। श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु ने इस वैराग्यविद्या के आन्दोलन का सूत्रपात किया जिससे मनुष्य अपने को भौतिक संसार से विरक्त करके प्रेमा-भक्ति में लगाता है। भक्ति का कृष्णभावनामृत आन्दोलन ही वह एकमात्र विधि है जो इस जगत में हमारे मिथ्या अहंकार का निराकरण कर सकती है।

इति व्यवसितो बुद्ध्या नारायणगृहीतया ।
हित्वान्यभावमज्ञानं ततः स्वं भावमास्थितः ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; व्यवसितः—दृढ़ निश्चय करके; बुद्ध्या—बुद्धि से; नारायण-गृहीतया—नारायण की कृपा से पूर्णतया वशीभूत; हित्वा—त्यागकर; अन्य-भावम्—कृष्णभावनामृत के अतिरिक्त अन्य चेतना; अज्ञानम्—जो निरतंर अज्ञान तथा अंधकार ही है; ततः—तत्पश्चात्; स्वम्—अपनी मूल स्थिति, जो कृष्ण के नित्यदास के रूप में है; भावम्—भक्ति में; आस्थितः—स्थित।

इस तरह भगवान् की सेवा करने में अपनी उन्नत बुद्धि से महाराज खट्वांग ने अज्ञानमय शरीर से मिथ्या सम्बन्ध का परित्याग कर दिया। अपनी नित्य सेवक की मूल स्थिति में रहकर उन्होंने भगवान् की सेवा करने में अपने को संलग्न कर लिया।

तात्पर्य : जब वास्तव में कोई कृष्णभक्त बन जाता है तो उस पर किसी को शासन करने का अधिकार नहीं रह जाता। कृष्णभावनाभावित होने पर वह अज्ञान के अंधकार में नहीं रहता और ऐसे अज्ञान से मुक्त होने पर वह अपनी मूल स्थिति में आरूढ़ होता है। *जीवेर 'स्वरूप' हय—कृष्णेर 'नित्यदास'*। जीव भगवान् का नित्यदास होता है और जब वह सभी प्रकार से भगवान् की सेवा में लग जाता है तो उसे जीवन की सिद्धि प्राप्त होती है।

यत्तद्ब्रह्म परं सूक्ष्ममशून्यं शून्यकल्पितम् ।
भगवान्वासुदेवेति यं गृणन्ति हि सात्वताः ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

यत्—जो; तत्—वैसा; ब्रह्म परम्—परब्रह्म, भगवान् कृष्ण; सूक्ष्मम्—आध्यात्मिक, सारी भौतिक धारणाओं से परे; अशून्यम्—निर्विशेष या शून्य नहीं; शून्य-कल्पितम्—कम बुद्धिमान व्यक्तियों द्वारा शून्य करके कल्पित; भगवान्—भगवान्; वासुदेव—कृष्ण; इति—इस प्रकार; यम्—जिसको; गृणन्ति—गायन करते हैं; हि—निस्सन्देह; सात्वताः—शुद्ध भक्तगण।

वे बुद्धिहीन मनुष्य जो भगवान् के निर्विशेष या शून्य न होने पर भी, उन्हें ऐसा मानते हैंउनके लिए भगवान् वासुदेव कृष्ण को समझ पाना अत्यन्त कठिन है। अतएव शुद्ध भक्त ही भगवान् को समझते तथा उनका गान करते हैं।

तात्पर्य : *श्रीमद्भागवत* में (१.२.११) कहा गया है—

वदन्ति तत् तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।

ब्रह्मेति परमात्मेति भगवान् इति शब्द्यते॥

परम सत्य का साक्षात्कार तीन अवस्थाओं में किया जाता है—ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान् रूप में। भगवान् हर वस्तु के उद्गम हैं। ब्रह्म भगवान् का आंशिक स्वरूप है और वासुदेव भी, जो सर्वत्र एवं प्रत्येक हृदय में स्थित परमात्मा है, भगवान् की प्रगत अनुभूति है। किन्तु जब कोई भगवान् को समझ जाता है

(*वासुदेवः सर्वमिति*) और जब कोई यह अनुभव करता है कि वासुदेव परमात्मा तथा निराकार ब्रह्म दोनों हैं तो उसे पूर्ण ज्ञान होता है। इसीलिए अर्जुन ने कृष्ण को *परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्* कहा है। *परं ब्रह्म* शब्द निर्विशेष ब्रह्म की तथा सर्वव्यापी परमात्मा की शरण का निर्देश करते हैं। जब कृष्ण कहते हैं *त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति* तो इसका अर्थ है कि सिद्ध भक्त पूर्ण साक्षात्कार के बाद भगवद्धाम को जाता है। महाराज खट्वांग ने भगवान् की शरण स्वीकार कर ली थी, फलस्वरूप उन्हें सिद्धि प्राप्त हुई।

इस प्रकार *श्रीमद्भागवत* के नवम स्कंध के अन्तर्गत "अंशुमान की वंशावली" नामक नवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter दस

परम भगवान् रामचन्द्र की लीलाएँ

इस दसवें अध्याय में बतलाया गया है कि किस तरह महाराज खट्वांग के वंश में भगवान् रामचन्द्र उत्पन्न हुए। इसमें भगवान् के कार्यकलापों का भी वर्णन हुआ है जिसमें रावण को मारकर अपनी राजधानी अयोध्या लौटना भी सम्मिलित है।

महाराज खट्वांग के पुत्र दीर्घबाहु थे और उनके पुत्र रघु हुए। रघु के पुत्र अज थे और अज के पुत्र दशरथ थे जिनके पुत्र थे भगवान् श्रीरामचन्द्र। जब भगवान् इस धरा पर अपने पूर्ण चतुर्व्यूह स्वांश—रामचन्द्र, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न—समेत अवतरित हुए तो वाल्मीकि जैसे परम सत्य के वेत्ताओं ने उनकी दिव्य लीलाओं का वर्णन किया। श्रील शुकदेव गोस्वामी ने संक्षेप में इन लीलाओं का वर्णन किया है।

भगवान् रामचन्द्र ने विश्वामित्र के साथ जाकर मारीच जैसे राक्षसों को हताहत किया। फिर अत्यन्त दृढ़ एवं कठोर हरधनु नामक धनुष को तोड़कर सीतादेवी से व्याह किया और परशुराम का मान-मर्दन किया। फिर अपने पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए वे लक्ष्मण तथा सीता सहित जंगल में चले गये। वहाँ उन्होंने शूर्पणखा की नाक काटी और खर-दूषण जैसे रावण के पार्षदों का वध किया। रावण द्वारा सीता का अपहरण इस असुर के दुर्भाग्य का सूत्रपात बना। जब मारीच ने स्वर्णमृग का रूप धारण किया तो सीतादेवी को प्रसन्न करने के लिए भगवान् रामचन्द्र उस मृग को लाने गये, किन्तु इसी बीच में भगवान् की अनुपस्थिति का लाभ उठाकर रावण सीताजी को हर ले गया। सीतादेवी का हरण होने पर भगवान् रामचन्द्र लक्ष्मण समेत जंगल में उनकी खोज करते रहे। खोज करते करते, उनकी भेंट जटायु से हो गई। तत्पश्चात् भगवान् ने असुर कबन्ध तथा सेनापति बालि को मारा और सुग्रीव से मैत्री स्थापित की। वानरों की सेना बनाकर तथा उनके साथ समुद्र तट पर पहुँचकर भगवान् ने साक्षात् समुद्र के आगमन की प्रतीक्षा की, किन्तु उसके न आने पर भगवान् समुद्र के राजा पर क्रुद्ध हुए। तब समुद्र दौा-दौा आया, उनकी शरण ग्रहण की और उनकी हर प्रकार से सहायता की। तब भगवान् ने समुद्र पर सेतु बाँधना चाहा और विभीषण की सलाह पर उन्होंने रावण की राजधानी लंका पर आक्रमण कर दिया। इसके पूर्व भगवान् के नित्य दास हनुमान ने लंका में आग लगा दी थी और अब लक्ष्मण की सहायता से भगवान् रामचन्द्र की सेना ने सारे राक्षस

सैनिकों का वध कर डाला। तन भगवान् ने स्वयं रावण को मारा। मन्दोदरी तथा अन्य पत्नियाँ रावण के लिए शोक करने लगीं और भगवान् रामचन्द्र के आदेशानुसार विभीषण ने परिवार के समस्त मृतकों का दाह-संस्कार किया। तत्पश्चात् भगवान् रामचन्द्र ने विभीषण को लंका पर राज्य करने का अधिकार सौंपा और उसे दीर्घायु भी दी। भगवान् ने अशोक वाटिका से सीतादेवी का उद्धार किया और उन्हें पुष्पक विमान में चढ़ाकर वे अपनी राजधानी अयोध्या ले गये जहाँ उनके भाई भरत ने उनका स्वागत किया। जब भगवान् रामचन्द्र अयोध्या में प्रविष्ट हुए तो भरत उनकी खड़ाऊँ ले आये। विभीषण और सुग्रीव चँवर तथा पंखा पकड़े थे, हनुमान छाता ताने थे, शत्रुघ्न भगवान् का धुनष तथा दो तरकस लिये थे और सीतादेवी पवित्र स्थानों से लाये गये जल से पूर्ण एक जलपात्र लिये थीं। अंगद ने तलवार ले रखी थी, (ऋक्षराज) जाम्बवन्त ढाल लिये थे। जब भगवान् रामचन्द्र लक्ष्मण तथा सीतादेवी समेत अपने सभी परिजनों से मिले तो वसिष्ठ महामुनि ने उन्हें राजा के रूप में सिंहासन प्रदान किया। यह अध्याय अयोध्या में भगवान् रामचन्द्र के राज्य केसंक्षिप्त वर्णन के साथ समाप्त होता है।

श्रीशुक उवाच
खट्वाङ्गाद्दीर्घबाहुश्च रघुस्तस्मात्पृथुश्रवाः ।
अजस्ततो महाराजस्तस्माद्दशरथोऽभवत् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; खट्वाङ्गात्—महाराज खट्वांग से; दीर्घबाहुः—दीर्घबाहु नामक पुत्र; च—तथा; रघुः तस्मात्—उससे रघु उत्पन्न हुआ; पृथु-श्रवाः—साधु तथा विख्यात; अजः—अज नामक पुत्र; ततः—उससे; महा-राजः—महाराज; तस्मात्—अज से; दशरथः—दशरथ नामक; अभवत्—उत्पन्न हुआ।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : महाराज खट्वांग का पुत्र दीर्घबाहु हुआ और उसके पुत्र विख्यात महाराज रघु हुए। महाराज रघु से अज उत्पन्न हुए और अज से महापुरुष महाराज दशरथ हुए।

तस्यापि भगवानेष साक्षाद्ब्रह्ममयो हरिः ।
अंशांशेन चतुर्धागात्पुत्रत्वं प्रार्थितः सुरैः ।
रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्ना इति संज्ञया ॥ २ ॥

शब्दार्थ

तस्य—महाराज दशरथ के; अपि—भी; भगवान्—भगवान्; एषः—वे सभी; साक्षात्—प्रत्यक्ष; ब्रह्म-मयः—परब्रह्म या परम सत्य; हरिः—भगवान्; अंश-अंशेन—पूर्ण अंश के अंश से; चतुर्धा—चार प्रकार के विस्तार; अगात्—स्वीकार किया; पुत्रत्वम्—पुत्र

बनना; प्रार्थितः—प्रार्थना किये जाने पर; सुरैः—देवताओं के द्वारा; राम—भगवान् रामचन्द्र; लक्ष्मण—लक्ष्मण; भरत—भरत; शत्रुघ्नाः—तथा शत्रुघ्न; इति—इस प्रकार; संज्ञया—विभिन्न नामों से।

देवताओं द्वारा प्रार्थना करने पर भगवान् परम सत्य अपने अंश तथा अंशों के भी अंश के साथ साक्षात् प्रकट हुए। उनके पवित्र नाम थे राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न। ये विख्यात अवतार महाराज दशरथ के पुत्रों के रूप में चार स्वरूपों में प्रकट हुए।

तात्पर्य : भगवान् रामचन्द्र तथा उनके भाई लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न—ये सभी जीव तत्त्व न होकर विष्णुतत्त्व हैं। भगवान् अनेकानेक रूपों में अपना विस्तार करते हैं। *अद्वैतम् अच्युतम् अनादिम् अनन्तरूपम्*। यद्यपि वे सभी एक ही हैं, किन्तु विष्णुतत्त्व के अनेक रूप एवं अवतार होते हैं। जैसा कि *ब्रह्म-संहिता* में (५.३९) पुष्टि की गई है—*रामादिमूर्तिषु कलानियमेन तिष्ठन्।* भगवान् अनेक रूपों में विद्यमान हैं यथा राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न और ये रूप उनकी सृष्टि के किसी भी कोने में स्थित हो सकते हैं। ये सभी रूप स्थायी रूप से, शाश्वत रूप से ईश्वर के व्यष्टि रूपों में विद्यमान रहते हैं और ये समान शक्तिशाली अनेक दीपकों के तुल्य होते हैं। भगवान् रामचन्द्र, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न—ये सभी विष्णुतत्त्व होने के कारण समान शक्तिशाली हैं। देवताओं के प्रार्थना करने पर ये महाराज दशरथ के पुत्र बने।

तस्यानुचरितं राजन्नृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
श्रुतं हि वर्णितं भूरि त्वया सीतापतेर्मुहुः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

तस्य—भगवान् रामचन्द्र तथा उनके भाइयों का; अनुचरितम्—दिव्य कार्यकलाप; राजन्—हे राजा (महाराज परीक्षित); ऋषिभिः—ऋषियों द्वारा; तत्त्व-दर्शिभिः—परम सत्य को जानने वाले; श्रुतम्—सुना गया; हि—निस्सन्देह; वर्णितम्—सुन्दर ढंग से वर्णित; भूरि—अनेक; त्वया—तुम्हारे द्वारा; सीता-पतेः—सीता के पति भगवान् रामचन्द्र के; मुहुः—बारम्बार।

हे राजा परीक्षित, भगवान् रामचन्द्र के दिव्य कार्यकलापों का वर्णन उन साधु पुरुषों द्वारा किया गया है जिन्होंने सत्य का दर्शन किया है। चूँकि आप सीतापति रामचन्द्र के विषय में बारम्बार सुन चुके हैं अतएव मैं इन कार्यकलापों का वर्णन संक्षेप में ही करूँगा। कृपया सुनें।

तात्पर्य : आधुनिक राक्षस जो डाक्टरेट डिग्रीधारी होने के कारण अपने को उन्नत रूप से शिक्षित मानते हैं, उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि रामचन्द्र भगवान् न होकर सामान्य व्यक्ति हैं। किन्तु जो विद्वान हैं और आध्यात्मिक ज्ञान से युक्त हैं वे ऐसे मतों को कभी स्वीकार नहीं करेंगे। वे तो उन तत्त्वदर्शियों द्वारा प्रस्तुत किये गये भगवान् रामचन्द्र एवं उनके कार्यकलापों के वर्णनों को ही स्वीकार करेंगे जो परम

सत्य को जानते हैं। *भगवद्गीता* (४.३४) में भगवान् उपदेश देते हैं—

तद् विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।

उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

"गुरु के पास जाकर सत्य सीखने का प्रयास करो। विनीत होकर उससे प्रश्न करो और उसकी सेवा करो। स्वरूपसिद्ध व्यक्ति तुम्हें ज्ञान प्रदान कर सकता है क्योंकि उसने सत्य का साक्षात्कार किया है।" तत्त्वदर्शी बने बिना कोई व्यक्ति भगवान् के कार्यकलापों का वर्णन नहीं कर सकता। अतएव कहने को तो अनेक रामायणें हैं, किन्तु उनमें से कई प्रामाणिक नहीं हैं। कभी-कभी भगवान् रामचन्द्र के कार्यकलापों का वर्णन अपनी कल्पना, चिन्तन या भौतिक भावों के आधार पर किया जाता है। किन्तु रामचन्द्रजी की विलक्षणताओं को काल्पनिक मानकर उनका वर्णन नहीं करना चाहिए। भगवान् रामचन्द्र की कथा का वर्णन करते समय शुकदेव गोस्वामी ने महाराज परीक्षित को बतलाया, "आपने भगवान् रामचन्द्र के कार्यकलापों के विषय में पहले से सुन रखा है।" अतएव स्पष्ट है कि पाँच हजार वर्ष पूर्व भी रामचन्द्र की अनेक कथाएँ या रामायणें थीं और अब भी अनेक हैं। किन्तु हमें केवल तत्त्वदर्शियों द्वारा लिखित कथाओं को चुनना चाहिए (*ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः*)। ऐसे तथाकथित पंडितों की किताबों को नहीं जो डाक्टरेट डिग्री के आधार पर ज्ञानी होने का दावा करते हैं। यह शुकदेव गोस्वामी द्वारा दी गई चेतावनी है। *ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिनः।* यद्यपि वाल्मीकि-रचित रामायण एक विशाल ग्रंथ है, किन्तु इन्हीं कार्यकलापों को शुकदेव गोस्वामी ने थोड़े से श्लोकों में सार रूप में प्रस्तुत किया है।

गुर्वर्थे त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवनं पद्मपद्भ्यां प्रियायाः
पाणिस्पर्शाक्षमाभ्यां मृजितपथरुजो यो हरीन्द्रानुजाभ्याम् ।
वैरूप्याच्छूर्पणख्याः प्रियविरहरुषारोपितभ्रूविजृम्भ
त्रस्ताब्धिर्बद्धसेतुः खलदवदहनः कोसलेन्द्रोऽवतान्नः ॥ ४॥

शब्दार्थ

गुरु-अर्थे—अपने पिता के वचनों का पालन करने हेतु; त्यक्त-राज्यः—राजा का पद छोड़कर; व्यचरत्—घूमते रहे; अनुवनम्—एक जंगल से दूसरे जंगल में; पद्म-पद्भ्याम्—अपने चरणकमलों से; प्रियायाः—अपनी प्रिय पत्नी सीतादेवी के साथ; पाणि-स्पर्श-अक्षमाभ्याम्—जो इतने कोमल थे कि सीता की हथेलियों के स्पर्श को भी सहन नहीं कर सकते थे; मृजित-पथ-रुजः—मार्ग पर चलने से जिनकी थकावट घट जाती थी; यः—जो भगवान्; हरीन्द्र-अनुजाभ्याम्—वानर-राज हनुमान तथा अपने छोटे भाई लक्ष्मण को साथ लिए; वैरूप्यात्—कुरूप करने के कारण; शूर्पणख्याः—शूर्पणखा नामक राक्षसी का; प्रिय-विरह—अपनी पत्नी के वियोग से दुखी होकर; रुषा आरोपित-भ्रू-विजृम्भ—क्रोध में उठी अपनी भृकुटी के हिलने से; त्रस्त—डरा हुआ; अब्धिः—समुद्र; बद्ध-

सेतुः—समुद्र के ऊपर पुल बाँधने वाला; खल-दव-दहनः—दावाग्नि की तरह रावण जैसे ईर्ष्यालु पुरुषों का वध करने वाले; कोसल-इन्द्रः—अयोध्या के राजा; अवतात्—रक्षा करने के लिए प्रसन्न हों; नः—हमारी।

अपने पिता के वचनों को अक्षत रखने के लिए भगवान् रामचन्द्र ने तुरन्त ही राजपद छोड़ दिया और अपनी पत्नी सीतादेवी के साथ एक जंगल से दूसरे जंगल में अपने उन चरणकमलों से घूमते रहे जो इतने कोमल थे कि वे सीता की हथेलियों का स्पर्श भी सहन नहीं कर सकते थे। भगवान् के साथ उनके अनुज लक्ष्मण तथा वानरों के राजा हनुमान (या एक अन्य वानर सुग्रीव) भी थे। ये दोनों जंगल में घूमते हुए राम-लक्ष्मण की थकान मिटाने में सहायक बने। शूर्पणखा की नाक तथा कान काटकर उसे कुरूप बनाकर भगवान् सीतादेवी से बिछुड़ गये। अतएव वे अपनी भौहें तानकर क्रुद्ध हुए और सागर को डराया जिसने भगवान् को अपने ऊपर से होकर पुल बनाने की अनुमति दे दी। तत्पश्चात् भगवान् रावण को मारने के लिए दावानल की भाँति उसके राज्य में प्रविष्ट हुए। ऐसे भगवान् रामचन्द्र हम सबों की रक्षा करें।

विश्वामित्राध्वरे येन मारीचाद्या निशाचराः ।
पश्यतो लक्ष्मणस्यैव हता नैर्ऋतपुङ्गवाः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

विश्वामित्र-अध्वरे—ऋषि विश्वामित्र की यज्ञशाला में; येन—जिसके (रामचन्द्रजी) द्वारा; मारीच-आद्याः—मारीच इत्यादि; निशा-चराः—अज्ञान के अंधकार में रात में घूमने वाले असभ्य व्यक्ति; पश्यतः लक्ष्मणस्य—लक्ष्मण द्वारा देखे जाकर; एव—निस्सन्देह; हताः—मारे गये; नैर्ऋत-पुङ्गवाः—राक्षसों के बड़े-बड़े सरदार।

अयोध्यानरेश भगवान् रामचन्द्र ने विश्वामित्र द्वारा सम्पन्न किये गए यज्ञ के क्षेत्र में अनेक राक्षसों तथा असभ्य पुरुषों का वध किया जो तमोगुण से प्रभावित होकर रात में विचरण करते थे। ऐसे रामचन्द्र जिन्होंने लक्ष्मण की उपस्थिति में इन असुरों का वध किया हमारी रक्षा करने की कृपा करें।

यो लोकवीरसमितौ धनुरैशमुग्रं
सीतास्वयंवरगृहे त्रिशतोपनीतम् ।
आदाय बालगजलील इवेक्षुयष्टिं
सज्ज्यीकृतं नृप विकृष्य बभञ्ज मध्ये ॥ ६ ॥
जित्वानुरूपगुणशीलवयोऽङ्गरूपां
सीताभिधां श्रियमुरस्यभिलब्धमानाम् ।
मार्गे व्रजन्भृगुपतेर्व्यनयत्प्ररूढं

दर्पं महीमकृत यस्त्रिरराजबीजाम् ॥ ७॥

शब्दार्थ

यः—जो रामचन्द्र; लोक-वीर-समितौ—समाज में या इस संसार के अनेक वीरों के मध्य; धनुः—धनुष; ऐशम्—शिवजी का; उग्रम्—अत्यन्त कठिन; सीता-स्वयंवर-गृहे—उस सभाभवन में जहाँ सीतादेवी अपना पति चुनने के लिए खड़ी थीं; त्रिशत-उपनीतम्—तीन सौ आदमियों द्वारा उठाकर लाया गया धनुष; आदाय—लेकर; बाल-गज-लीलः—गन्ने के जंगल में हाथी के बच्चे की भाँति कार्य करते हुए; इव—सदृश; इक्षु-यष्टिम्—गन्ने का खण्ड; सज्ज्यी-कृतम्—धनुष की डोरी चढ़ा दी; नृप—हे राजा; विकृष्य—झुकाकर; बभञ्ज—तोड़ डाला; मध्ये—बीच से; जित्वा—जीतकर; अनुरूप—अपने पद तथा सौन्दर्य के अनुकूल; गुण—गुण; शील—आचरण; वयः—उम्र; अङ्ग—शरीर; रूपाम्—सौन्दर्य; सीता-अभिधाम्—सीता नामक; श्रियम्—लक्ष्मी को; उरसि—वक्षस्थल पर; अभिलब्धमानाम्—सदैव रहती हैं; मार्गे—पथ पर; व्रजन्—जाते हुए; भृगुपतेः—भृगुपति का; व्यनयत्—विनष्ट किया; प्ररूढम्—अत्यन्त गहरा; दर्पम्—घमंड; महीम्—पृथ्वी को; अकृत—विनष्ट; यः—जिसने; त्रिः—(सात गुणित) तीन बार; अराज—राज्यविहीन; बीजाम्—बीज।

हे राजन्, भगवान् रामचन्द्र की लीलाएँ हाथी के बच्चे के समान अत्यन्त अद्‌भुत थीं। उस सभाभवन में जिसमें सीतादेवी को अपने पति का चुनाव करना था, उन्होंने इस संसार के वीरों के बीच भगवान् शिव के धनुष को तोड़ दिया। यह धनुष इतना भारी था कि इसे तीन सौ व्यक्ति उठाकर लाए थे लेकिन भगवान् रामचन्द्र ने इसे मोड़कर डोरी चढ़ाई और बीच से उसे वैसे ही तोड़ डाला जिस तरह हाथी का बच्चा गन्ने को तोड़ देता है। इस तरह भगवान् ने सीतादेवी का पाणिग्रहण किया जो उन्हीं के समान दिव्य रूप, सौन्दर्य, आचरण, आयु तथा स्वभाव से युक्त थीं। निस्सन्देह, वे भगवान् के वक्षस्थल पर सतत विद्यमान लक्ष्मी थीं। प्रतियोगियों की सभा में से उसे जीतकर उस के मायके से लौटते हुए भगवान् रामचन्द्र को परशुराम मिले। यद्यपि परशुराम अत्यन्त घमंडी थे क्योंकि उन्होंने इस पृथ्वी को इक्कीस बार राजाओं से विहीन बनाया था, किन्तु वे क्षत्रियवंशी राजा भगवान् राम से पराजित हो गये।

यः सत्यपाशपरिवीतपितुर्निदेशं
स्त्रैणस्य चापि शिरसा जगृहे सभार्यः ।
राज्यं श्रियं प्रणयिनः सुहृदो निवासं
त्यक्त्वा ययौ वनमसूनिव मुक्तसङ्गः ॥ ८॥

शब्दार्थ

यः—जो रामचन्द्र; सत्य-पाश-परिवीत-पितुः—अपने पिता का जो अपनी पत्नी को दिये गये वचन से बँधे थे; निदेशम्—आदेश; स्त्रैणस्य—स्त्री-अनुरक्त; च—भी; अपि—निस्सन्देह; शिरसा—सिर पर; जगृहे—स्वीकार किया; स-भार्यः—अपनी पत्नी सहित; राज्यम्—राज्य; श्रियम्—ऐश्वर्य; प्रणयिनः—सम्बन्धीजन; सुहृदः—मित्रगण; निवासम्—निवास; त्यक्त्वा—त्यागकर; ययौ—चले गये; वनम्—वन को; असून्—प्राण; इव—सदृश; मुक्त-सङ्गः—मुक्त जीव।

अपनी पत्नी के वचनों से बँधे पिता का आदेश पालन करते हुए भगवान् रामचन्द्र ने उसी तरह

अपना राज्य, ऐश्वर्य, मित्र, शुभचिन्तक, निवास तथा अन्य सर्वस्व त्याग दिया जिस तरह मुक्तात्मा अपना जीवन त्याग देता है। तब वे सीता सहित जंगल में चले गये।

तात्पर्य : महाराज दशरथ के तीन पत्नियाँ थीं। इनमें से कैकेयी ने उनको अपनी सेवाओं से प्रसन्न कर लिया था अतएव उन्होंने उसे वर देना चाहा था। किन्तु कैकेयी ने कहा था कि उपयुक्त अवसर पर वह माँग लेगी। फलत: रामचन्द्रजी के राजतिलक के अवसर पर कैकेयी ने अपने पति से प्रार्थना की कि वे उसके पुत्र भरत को राजगद्दी और रामचन्द्र को वनवास दे दें। वचनबद्ध होने के कारण महाराज दशरथ ने अपनी प्रियतमा के कहने पर रामचन्द्र को जंगल जाने का आदेश दे दिया और भगवान् ने आज्ञाकारी पुत्र के रूप में तुरन्त ही आदेश मान लिया। उन्होंने बिना किसी संकोच के अपना सर्वस्व त्याग दिया जिस प्रकार कोई मुक्तात्मा या महान् योगी बिना किसी भौतिक आकर्षण के अपना जीवन त्याग देता है।

रक्ष:स्वसुर्व्यकृत रूपमशुद्धबुद्धे-
स्तस्या: खरत्रिशिरदूषणमुख्यबन्धून् ।
जघ्ने चतुर्दशसहस्रमपारणीय-
कोदण्डपाणिरटमान उवास कृच्छ्रम् ॥ ९॥

शब्दार्थ

रक्ष:-स्वसु:—राक्षस (रावण) की बहन, शूर्पणखा के; व्यकृत—(राम द्वारा) कुरूप किये जाने पर; रूपम्—स्वरूप, मुख; अशुद्ध-बुद्धे:—क्योंकि कामवासना के कारण उसकी बुद्धि दूषित हो चुकी थी; तस्या:—उसके; खर-त्रिशिर-दूषण-मुख्य-बन्धून्—खर, त्रिशिर, दूषण इत्यादि अनेक दोस्तों को; जघ्ने—(भगवान् राम ने) मारा; चतुर्दश-सहस्रम्—चौदह हजार; अपारणीय—अकल्पनीय; कोदण्ड—धुनष-बाण; पाणि:—अपने हाथ में; अटमान:—जंगल में घूमते हुए; उवास—वहाँ निवास किया; कृच्छ्रम्—बड़ी कठिनाई से।.

जंगल में घूमते हुए, वहाँ पर अनेक कठिनाइयों को झेलते तथा अपने हाथ में महान् धनुष-बाण लिए भगवान् रामचन्द्र ने कामवासना से दूषित रावण की बहन के नाक-कान काटकर उसे कुरूप कर दिया। उन्होंने उसके चौदह हजार मित्रों को भी मार डाला जिनमें खर, त्रिशिर तथा दूषण मुख्य थे।

सीताकथाश्रवणदीपितहृच्छयेन
सृष्टं विलोक्य नृपते दशकन्धरेण ।
जघ्नेऽद्भुतैणवपुषाश्रमतोऽपकृष्टो
मारीचमाशु विशिखेन यथा कमुग्र: ॥ १०॥

शब्दार्थ

सीता-कथा—सीता के विषय में बातें; श्रवण—सुनकर; दीपित—उत्तेजित; हृत्-शयेन—रावण के मन की कामवासना द्वारा; सृष्टम्—उत्पन्न; विलोक्य—देखकर; नृपते—हे राजा परीक्षित; दश-कन्धरेण—दस सिरों वाले रावण द्वारा; जघ्ने—भगवान् राम ने मारा; अद्भुत-एण-वपुषा—सोने के मृग द्वारा; आश्रमतः—अपने आश्रम से; अपकृष्टः—दूर भटकाकर; मारीचम्—असुर मारीच को जिसने सोने के मृग का रूप धारण किया था; आशु—तुरन्त; विशिखेन—तीक्ष्ण बाण से; यथा—जिस तरह; कम्—दक्ष को; उग्रः—शिवजी ने।.

हे परीक्षित, जब दस शिरों वाले रावण ने सीता के सुन्दर एवं आकर्षक स्वरूप के विषय में सुना तो उसका मन कामवासनाओं से उत्तेजित हो उठा और वह उनको हरने गया। रावण ने भगवान् रामचन्द्र को उनके आश्रम से दूर ले जाने के लिए सोने के मृग का रूप धारण किये मारीच को भेजा और जब भगवान् ने उस अद्भुत मृग को देखा तो उन्होंने अपना आश्रम छोड़कर उसका पीछा करना शुरू कर दिया। अन्त में उसे तीक्ष्ण बाण से उसी तरह मार डाला जिस तरह शिवजी ने दक्ष को मारा था।

रक्षोऽधमेन वृकवद्विपिनेऽसमक्षं
वैदेहराजदुहितर्यपयापितायाम् ।
भ्रात्रा वने कृपणवत्प्रियया वियुक्तः
स्त्रीसङ्गिनां गतिमिति प्रथयंश्चचार ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

रक्षः-अधमेन—अत्यन्त दुष्ट राक्षस रावण द्वारा; वृक-वत्—बाघ के समान; विपिने—जंगल में; असमक्षम्—असुरक्षित; वैदेह-राज-दुहितरि—विदेह राजा की पुत्री सीतादेवी की इस दशा के द्वारा; अपयापितायाम्—अपहरण करके; भ्रात्रा—अपने भाई के साथ; वने—जंगल में; कृपण-वत्—अत्यन्त सताये दीन व्यक्ति की तरह; प्रियया—अपनी प्रियतमा के द्वारा; वियुक्तः—विलग हुआ; स्त्री-सङ्गिनाम्—स्त्रियों में अनुरक्त पुरुषों का; गतिम्—गन्तव्य; इति—इस प्रकार; प्रथयन्—उदाहरण प्रस्तुत करते हुए; चचार—घूमने लगा।.

जब रामचन्द्रजी जंगल में प्रविष्ट हुए और लक्ष्मण भी वहाँ नहीं थे तो दुष्ट राक्षस रावण ने विदेह राजा की पुत्री सीतादेवी का उसी तरह अपहरण कर लिया जिस तरह गडरिये की अनुपस्थिति में बाघ किसी असुरक्षित भेड़ को पकड़ लेता है। तब श्रीरामचन्द्रजी अपने भाई लक्ष्मण के साथ जंगल में इस तरह घूमने लगे मानो कोई अत्यन्त दीन व्यक्ति अपनी पत्नी के वियोग में घूम रहा हो। इस तरह उन्होंने अपने व्यक्तिगत उदाहरण से एक स्त्री-अनुरक्त पुरुष जैसी दशा प्रदर्शित की।

तात्पर्य : इस श्लोक में *स्त्री-सङ्गिनाम् गतिमिति* शब्द बतलाते हैं कि भगवान् ने स्त्री-अनुरक्त व्यक्ति की सी दशा प्रदर्शित की। नैतिक उपदेशों के अनुसार—*गृहे नारीं विवर्जयेत्*—जब कोई यात्रा पर जाय तो अपनी

पत्नी साथ में न ले जाय। पुराने जमाने में लोग बिना सवारी के यात्रा करते थे लेकिन फिर भी जहाँ तक सम्भव हो जब कोई घर से बाहर जाए तो अपने साथ अपनी पत्नी न ले जाये, विशेष रूप से ऐसी स्थिति में जिसमें श्रीरामचन्द्रजी थे जब उन्हें उनके पिता द्वारा वनवास दे दिया गया था। कोई जंगलों में रहे या घर में रहे, स्त्री-अनुरक्ति आफत बन जाती है जैसा कि भगवान् ने अपने निजी दृष्टान्त से दिखला दिया है।

निस्सन्देह, यह *स्त्रीसंगी* का भौतिक पक्ष है लेकिन भगवान् की स्थिति आध्यात्मिक है क्योंकि वे भौतिक जगत के प्राणी नहीं हैं। *नारायण: परोऽव्यक्तात्*—नारायण भौतिक सृष्टि से परे हैं। चूँकि वे भौतिक जगत के स्रष्टा हैं अतएव उन्हें भौतिक जगत की दशाएँ नहीं सतातीं। सामान्यतया सीता से रामचन्द्र का वियोग विप्रलम्भ माना जाता है, जो भगवान् की ह्लादिनी शक्ति की क्रिया है जिसका सम्बन्ध शृंगार रस से है। आध्यात्मिक जगत में भगवान् में सारे प्रेम-व्यापार देखने को मिलते हैं—उनमें सात्त्विक, संचारी, विलाप, मूर्च्छा तथा उन्माद सभी अवस्थाओं के लक्षण प्रकट होते हैं। अतएव जब रामचन्द्रजी सीता से वियुक्त हुए तो ये सारे आध्यात्मिक लक्षण प्रकट हुए। भगवान् न तो निराकार हैं, न शक्तिहीन। प्रत्युत वे सच्चिदानन्द विग्रह हैं। अतएव उनमें आध्यात्मिक आनन्द के सारे लक्षण पाये जाते हैं। अपनी प्रियतमा से वियोग का अनुभव भी आध्यात्मिक आनन्द ही है। जैसा कि श्रील स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने बतलाया है—*राधाकृष्ण प्रणय विकृतिर्ह्लादिनीशक्ति:*—राधाकृष्ण के प्रेम-व्यापार भगवान् की ह्लादिनी शक्ति के रूप में प्रदर्शित किये जाते हैं। भगवान् सारे आनन्द के मूल स्रोत हैं, वे आनन्द के आगार हैं। अतएव भगवान् रामचन्द्र ने आध्यात्मिक तथा भौतिक दोनों ही प्रकार से सत्य का प्रदर्शन किया। भौतिक दृष्टि से जो लोग स्त्री से अनुरक्त हैं उन्हें कष्ट मिलता है, किन्तु आध्यात्मिक रूप से जब भगवान् तथा उनकी ह्लादिनी शक्ति में वियोग भाव उत्पन्न होता है तो भगवान् का आनन्द बढ़ जाता है। इसकी आगे भी व्याख्या *भगवद्गीता* (९.११) में हुई है—

अवजानन्ति मां मूढा: मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्॥

जो व्यक्ति भगवान् की आध्यात्मिक शक्ति को नहीं जानता वह उन्हें सामान्य मानव प्राणी मानता है लेकिन भगवान् के मन, बुद्धि तथा इन्द्रियाँ कभी भी भौतिकता से प्रभावित नहीं होतीं। *स्कन्द पुराण* में

इसकी विशद व्याख्या मिलती है, जिसका संदर्भ मध्वाचार्य ने दिया है—

नित्यपूर्णसुखज्ञानस्वरूपोऽसौ यतो विभुः।

अतोऽस्य राम इत्याख्या तस्य दुःखं कुतोऽण्वपि॥

तथापि लोकशिक्षार्थमदुःखो दुःखवर्तिवत्।

अन्तर्हितां लोकदृष्ट्या सीतामासीत् स्मरन्निव॥

ज्ञापनार्थं पुनर्नित्यसम्बन्धः स्वात्मनः श्रियाः।

अयोध्याया विनिर्गच्छन् सर्वलोकस्य चेश्वरः।

प्रत्यक्षं तु श्रिया सार्धं जगामानादिरव्ययः॥

नक्षत्रमासगणितं त्रयोदशसहस्रकम्।

ब्रह्मलोकसमं चक्रे समस्तं क्षितिमंडलम्॥

रामो रामो रामेति सर्वेषाम् अभवत् तदा।

सर्वोरममयो लोको यदा रामस्त्वयपालयत्॥

वस्तुतः रावण द्वारा सीता का अपहरण असम्भव था। रावण द्वारा हरी गई सीता *मायासीता* थीं—सीतादेवी का भ्रामक स्वरूप। जब सीता की अग्नि-परीक्षा हुई तो यह मायासीता भस्म हो गई और असली सीता अग्नि से बाहर आ गईं।

इस उदाहरण से एक दूसरी शिक्षा यह मिलती है कि इस जगत में कोई स्त्री कितनी ही बलवती क्यों न हो, उसको संरक्षण प्रदान किया जाना चाहिए अन्यथा असुरक्षित होने पर उसे रावण जैसा राक्षस भगा ले जायेगा। इस श्लोक में आगत *वैदेहराजदुहितरि* शब्द सूचित करते हैं कि भगवान् रामचन्द्र से व्याहे जाने के पूर्व सीता जी अपने पिता वैदेहराज द्वारा सुरक्षित थीं और विवाह हो जाने पर उन्हें अपने पति का संरक्षण प्राप्त था। अतएव हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि स्त्री की सुरक्षा सदैव होनी ही चाहिए। वैदिक नियमानुसार स्त्री के स्वतंत्र (*असमक्षम्*) होने की सम्भावना नहीं है क्योंकि वह स्वतंत्र रूप से अपनी रक्षा नहीं कर सकती।

दग्ध्वात्मकृत्यहतकृत्यमहन्कबन्धं
सख्यं विधाय कपिभिर्दयितागतिं तैः ।
बुद्ध्वाथ वालिनि हते प्लवगेन्द्रसैन्यै-
र्वेलामगात्स मनुजोऽजभवार्चिताङ्घ्रिः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

दग्ध्वा—जलाकर; आत्म-कृत्य-हत-कृत्यम्—अपने आत्मीय जटायु का दाहसंस्कार करने के बाद जो भगवान् के निमित्त मरा; अहन्—मारा; कबन्धम्—कबन्ध नामक असुर को; सख्यम्—दोस्ती, मैत्री; विधाय—करके; कपिभिः—वानर प्रधानों से; दयिता-गतिम्—सीता के उद्धार का प्रबन्ध; तैः—उनके द्वारा; बुद्ध्वा—जान करके; अथ—तत्पश्चात्; वालिनि हते—वालि का वध हो जाने पर; प्लवग-इन्द्र-सैन्यैः—वानर सैनिकों की सहायता से; वेलाम्—समुद्र तट पर; अगात्—गये; सः—वह, रामचन्द्रजी; मनु-जः—मनुष्य रूप में; अज—ब्रह्मा द्वारा; भव—तथा शिवजी द्वारा; अर्चित-अङ्घ्रिः—जिनके चरणकमल पूजित हैं।

भगवान् रामचन्द्रजी ने, जिनके चरणकमल ब्रह्माजी तथा शिवजी द्वारा पूजित हैं, मनुष्य का रूप धारण किया था। अतएव उन्होंने जटायु का दाहसंस्कार किया, जिसे रावण ने मारा था। तत्पश्चात् भगवान् ने कबन्ध नामक असुर को मारा और वानरराजों से मैत्री स्थापित करके बालि का वध किया तथा सीतादेवी के उद्धार की व्यवस्था करके वे समुद्र के तट पर गये।

तात्पर्य : जब रावण ने सीता का अपहरण किया तो मार्ग में पक्षिराज जटायु ने उसको रोका, किन्तु शक्तिशाली रावण ने युद्ध में जटायु को परास्त कर दिया और उसका पंख काट दिया। जब रामचन्द्रजी सीता की खोज कर रहे थे तो जटायु उन्हें मरणासन्न अवस्था में मिला जिसने जानकारी दी कि सीताजी को रावण ले गया है। जब जटायु मर गया तो रामचन्द्रजी ने दाहसंस्कार करके पुत्र का कर्तव्य निभाया और तब सीता का उद्धार करने के उद्देश्य से वानरों को अपना मित्र बनाया।

यद्रोषविभ्रमविवृत्तकटाक्षपात-
सम्भ्रान्तनक्रमकरो भयगीर्णघोषः ।
सिन्धुः शिरस्यर्हणं परिगृह्य रूपी
पादारविन्दमुपगम्य बभाष एतत् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

यत्-रोष—जिसका क्रोध; विभ्रम—प्रेरित; विवृत्त—बदल गया; कटाक्ष-पात—दृष्टिपात से; सम्भ्रान्त—विक्षुब्ध; नक्र—घड़ियाल; मकरः—तथा मगर; भय-गीर्ण-घोषः—जिसकी गम्भीर गर्जना भय से दब गयी; सिन्धुः—सागर; शिरसि—सिर पर; अर्हणम्—भगवान् की पूजा की सारी सामग्री; परिगृह्य—ले जाकर; रूपी—रूप धारण करके; पाद-अरविन्दम्—भगवान् के चरणकमलों में; उपगम्य—पहुँच कर; बभाष—कहा; एतत्—यह (निम्नलिखित)।

समुद्र तट पर पहुँच कर भगवान् रामचन्द्र ने तीन दिन तक उपवास किया और वे साक्षात् समुद्र के आने की प्रतीक्षा करते रहे। जब समुद्र नहीं आया तो भगवान् ने अपनी क्रोध लीला प्रकट की

और समुद्र पर दृष्टिपात करते ही समुद्र के सारे प्राणी, जिनमें घड़ियाल तथा मगर सम्मिलित थे, भय के मारे उद्विग्न हो उठे। तब शरीर धारण करके डरता हुआ समुद्र पूजा की सारी सामग्री लेकर भगवान् के पास पहुँचा। उसने भगवान् के चरणकमलों पर गिरते हुए इस प्रकार कहा।

न त्वां वयं जडधियो नु विदाम भूमन्
कूटस्थमादिपुरुषं जगतामधीशम् ।
यत्सत्त्वतः सुरगणा रजसः प्रजेशा
मन्योश्च भूतपतयः स भवान्गुणेशः ॥ १४॥

शब्दार्थ

न—नहीं; त्वाम्—तुमको, भगवान् को; वयम्—हम; जड-धियः—मन्द बुद्धि वाले; नु—निस्सन्देह; विदामः—जानते हैं; भूमन्—हे श्रेष्ठ; कूट-स्थम्—हृदय के भीतर; आदि-पुरुषम्—आदि भगवान् को; जगताम्—जगतों के; अधीशम्—सर्वोच्च स्वामी को; यत्—आपके निर्देशानुसार; सत्त्वतः—सत्त्वगुण से; सुर-गणाः—ऐसे देवता; रजसः—रजोगुण से; प्रजा-ईशाः—प्रजापति; मन्योः—तमोगुण से प्रभावित; च—तथा; भूत-पतयः—भूतों के शासक; सः—ऐसा पुरुष; भवान्—आप; गुण-ईशः—तीनों गुणों के स्वामी।.

हे सर्वव्यापी परम पुरुष, हम लोग मन्द बुद्धि होने के कारण यह नहीं जान पाये कि आप कौन हैं, किन्तु अब हम जान पाये हैं कि आप सारे ब्रह्माण्ड के स्वामी, अक्षर तथा आदि परम पुरुष हैं। देवता लोग सतोगुण से, प्रजापति रजोगुण से तथा भूतों के ईश तमोगुण द्वारा अन्धे हो जाते हैं, किन्तु आप इन समस्त गुणों के स्वामी हैं।

तात्पर्य : *जड-धियः* शब्द पशु-बुद्धि का सूचक है। ऐसी बुद्धि वाला व्यक्ति भगवान् को नहीं समझ सकता। पशु बिना मार खाये मनुष्य के अभिप्राय को नहीं समझ सकता। इसी प्रकार जो जड़बुद्धि हैं वे भगवान् को नहीं समझ पाते, किन्तु तीनों गुणों के द्वारा बुरी तरह प्रताड़ित होने पर वे भगवान् को समझने लगते हैं। किसी हिन्दी कवि का कथन है—

दुख में सब हरि भजें सुख में भजे न कोइ।

सुख में जो हरि भजे दुख काहे को होइ॥

दुखी होने पर वह मन्दिर या गिरजाघर में भगवान् को पूजने जाता है, किन्तु ऐश्वर्यवान होने पर भगवान् को भूल जाता है। अतएव भौतिक प्रकृति द्वारा मानव समाज को दण्डित करना भगवान् के लिए अनिवार्य है क्योंकि इसके बिना मनुष्य अपनी मन्द बुद्धि के कारण भगवान् की श्रेष्ठता को भूल जाते हैं।

कामं प्रयाहि जहि विश्रवसोऽवमेहं
त्रैलोक्यरावणमवाप्नुहि वीर पत्नीम् ।
बध्नीहि सेतुमिह ते यशसो वितत्यै
गायन्ति दिग्विजयिनो यमुपेत्य भूपाः ॥ १५॥

शब्दार्थ

कामम्—इच्छानुसार; प्रयाहि—मेरे जल के ऊपर से होकर चले जायें; जहि—विजय प्राप्त करें; विश्रवसः—विश्रवा मुनि का; अवमेहम्—मूत्र जैसा प्रदूषण; त्रैलोक्य—तीनों जगतों के लिए; रावणम्—रावण जैसा व्यक्ति, जो रोदन का कारण है; अवाप्नुहि—फिर से प्राप्त करें; वीर—हे वीर पुरुष; पत्नीम्—अपनी पत्नी को; बध्नीहि—तैयार करो, बाँधो; सेतुम्—पुल; इह—यहाँ (इस जल में); ते—आपका; यशसः—यश; वितत्यै—विस्तार करने के लिए; गायन्ति—महिमा का गान करेंगे; दिक्-विजयिनः—सारी दिशाओं को जीतने वाले बड़े-बड़े योद्धा; यम्—जिसके (पुल के); उपेत्य—निकट आकर; भूपाः—बड़े-बड़े राजा।.

हे प्रभु, आप इच्छानुसार मेरे जल का उपयोग कर सकते हैं। निस्सन्देह, आप इसे पार करके उस रावण की पुरी में जा सकते हैं जो उपद्रवी है और तीनों जगतों को रुलाने वाला है। वह विश्रवा का पुत्र है, किन्तु मूत्र के समान तिरस्कृत है। कृपया जाकर उसका वध करें और अपनी पत्नी सीतादेवी को फिर से प्राप्त करें। हे महान् वीर, यद्यपि मेरे जल के कारण आपको लंका जाने में कोई बाधा नहीं होगी लेकिन आप इसके ऊपर पुल बनाकर अपने दिव्य यश का विस्तार करें। आपके इस अद्भुत असामान्य कार्य को देखकर भविष्य में सारे महान् योद्धा तथा राजा आपकी महिमा का गान करेंगे।

तात्पर्य : कहा जाता है कि पुत्र तथा मूत्र एक ही स्रोत—जननेन्द्रिय से निकलते हैं। जब पुत्र भगवद्भक्त या बड़ा विद्वान होता है तो पुत्रजन्म के लिए वीर्य-स्खलन सार्थक होता है, किन्तु यदि वह अयोग्य हुआ और अपने कुल का नाम रोशन नहीं करता तो वह मूत्र के ही तुल्य व्यर्थ होता है। यहाँ पर रावण की उपमा मूत्र से दी गई है क्योंकि वह तीनों लोकों में उपद्रव कराने वाला था। इस तरह देहधारी समुद्र ने इच्छा व्यक्त की कि भगवान् उसको मारें।

भगवान् रामचन्द्र का एक गुण है उनकी सर्वशक्तिमत्ता। भगवान् चाहें तो भौतिक अवरोधों या असुविधाओं की परवाह न करते हुए कर्म करें, किन्तु यह सिद्ध करने के लिए कि वे ईश्वर हैं और ईश्वर के तौर पर मात्र विज्ञापित नहीं हुए थे या जनादेश पर निर्वाचित नहीं हुए थे, उन्होंने समुद्र के ऊपर एक अद्भुत पुल का निर्माण कराया। आजकल किसी ऐसे कृत्रिम ईश्वर को खड़ा करने का फैशन बन चुका है जो कोई असामान्य कार्य नहीं कर सकता। मूर्ख व्यक्ति थोड़े से जादू से ही चमत्कृत होकर कृत्रिम ईश्वर चुन बैठता है क्योंकि वह यह नहीं जानता कि ईश्वर कितना शक्तिशाली होता है। किन्तु भगवान् रामचन्द्र ने पत्थरों को

तैराकर समुद्र पर पत्थर का पुल बनवाया। यह प्रमाण है ईश्वर की असाधारण अद्भुत शक्ति का। ऐसे किसी भी व्यक्ति को जो सामान्य व्यक्ति के द्वारा न सम्पन्न हो सकने वाले असामान्य कार्य को करके अपनी असाधारण शक्ति प्रदर्शित न कर दे उसे ईश्वर क्यों माना जाय? हम रामचन्द्रजी को भगवान् इसलिए मानते हैं क्योंकि उन्होंने पुल बनाया और श्रीकृष्ण को भगवान् इसलिए मानते हैं क्योंकि उन्होंने सात वर्ष की आयु में ही गोवर्धन पर्वत उठा लिया था। हमें जिस किसी धूर्त को ईश्वर या ईश्वर का अवतार नहीं मान लेना चाहिए क्योंकि ईश्वर अपने विविध कार्यकलापों में विशिष्ट विलक्षणताएँ प्रकट करता है। अतएव भगवान् स्वयं ही *भगवद्गीता* (४.९) में कहते हैं—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।

त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

"हे अर्जुन! जो व्यक्ति मेरे जन्म तथा कर्म की दिव्य प्रकृति को जानता है वह इस शरीर को त्यागने के बाद फिर से इस जगत में जन्म नहीं लेता अपितु मेरे नित्यधाम को प्राप्त होता है।" भगवान् के कार्यकलाप सामान्य नहीं होते—वे दिव्य रूप से अद्भुत होते हैं और अन्य किसी जीवधारी द्वारा सम्पन्न नहीं किये जा सकते। भगवान् के कार्यकलापों के सारे लक्षण शास्त्रों में वर्णित हैं और उन्हें समझने के बाद ही भगवान् को यथारूप में ग्रहण किया जा सकता है।

बद्ध्वोदधौ रघुपतिर्विविधाद्रिकूटैः
सेतुं कपीन्द्रकरकम्पितभूरुहाङ्गैः ।
सुग्रीवनीलहनुमत्प्रमुखैरनीकै-
र्लङ्कां विभीषणदृशाविशदग्रदग्धाम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

बद्ध्वा—बाँधने के बाद; उदधौ—समुद्र के जल में; रघु-पतिः—भगवान् रामचन्द्र ने; विविध—अनेक प्रकार की; अद्रि-कूटैः—पर्वतों की चोटियों से; सेतुम्—पुल; कपि-इन्द्र—शक्तिशाली बन्दरों के; कर-कम्पित—हाथों से हिलाये गये; भूरुह-अङ्गैः—वृक्षों से; सुग्रीव—सुग्रीव; नील—नील; हनुमत्—हनुमान; प्रमुखैः—इत्यादि; अनीकैः—ऐसे सैनिकों सहित; लङ्काम्—रावण के राज्य लंका में; विभीषण-दृशा—रावण के भाई विभीषण के निर्देश से; आविशत्—प्रवेश किया; अग्र-दग्धाम्—पहले ही (वानर सैनिक हनुमान द्वारा) जलाए गए।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : जल में उन पर्वत शृंगों को फेंककर जिनके सारे वृक्ष बन्दरों द्वारा हाथ से हिलाये गये थे, समुद्र के ऊपर पुल बना चुकने के बाद भगवान् रामचन्द्र सीतादेवी को रावण के चंगुल से छुड़ाने के लिए लंका गये। रावण के भाई विभीषण की सहायता से भगवान् सुग्रीव,

नील, हनुमान इत्यादि वानर सैनिकों के साथ रावण के राज्य लंका में प्रविष्ट हुए जिसे हनुमान ने पहले ही भस्म कर दिया था।

तात्पर्य : बन्दर सैनिकों ने वृक्षों से ढके बड़े-बड़े पर्वतशृंगों को लाकर समुद्र में फेंका जो ईश्वर की परम इच्छा से तैरने लगे। भगवान् की इच्छा से ही आकाश में अनेक बड़े-बड़े ग्रह रुई के फाहों के समान भारहीन बनकर तैरते हैं। तो फिर महान् पर्वतशृंगों को जल में तैरने में कौन सी कठिनाई होगी? यह भगवान् की सर्वशक्तिमत्ता है। वे जो भी चाहें कर सकते हैं क्योंकि वे भौतिक प्रकृति के अधीन नहीं हैं, प्रत्युत प्रकृति ही उनके वश में है। *मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्*—मेरे ही निर्देशानुसार प्रकृति कार्य करती है। *ब्रह्म-संहिता* में (५.५२) भी ऐसी ही जानकारी प्राप्त है—

यस्याज्ञया भ्रमति सम्भृतकालचक्रो

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।

प्रकृति की कार्यशैली का वर्णन करते हुए *ब्रह्म-संहिता* कहती है कि सूर्य भगवान् की इच्छा से घूमता है। अतएव भगवान् रामचन्द्र के लिए हिन्द महासागर के ऊपर उन बन्दर सैनिकों की सहायता से जो बड़े-बड़े पर्वतशृंगों को लाकर जल में फेंक रहे थे पुल बनाना तनिक भी आश्चर्यजनक नहीं है। यह केवल इसीलिए अद्भुत लगता है क्योंकि इस भगवान् रामचन्द्र के नाम तथा यश को अमरत्व प्रदान किया है।

सा वानरेन्द्रबलरुद्धविहारकोष्ठ-
श्रीद्वारगोपुरसदोवलभीविटङ्का ।
निर्भज्यमानधिषणध्वजहेमकुम्भ-
शृङ्गाटका गजकुलैर्ह्रदिनीव घूर्णा ॥ १७॥

शब्दार्थ

सा—वह लंका नगरी; वानर-इन्द्र—वानरों के बड़े-बड़े सेनापतियों के; बल—बल से; रुद्ध—घिरी हुई; विहार—क्रीड़ा स्थल; कोष्ठ—कोठार, अन्न के गोदामों; श्री—खजाने; द्वार—महलों के दरवाजे; गोपुर—नगरी के फाटक; सदः—सभाभवन; वलभी—बड़े-बड़े महलों के अग्रभाग, छज्जे; विटङ्का—कबूतरखाने; निर्भज्यमान—तोड़े जाने वाले; धिषण—चबूतरे; ध्वज—झंडे, पताकाएँ; हेम-कुम्भ—सोने के गुम्बद; शृङ्गाटका—तथा चौराहे; गज-कुलैः—हाथी के झुंडों से; ह्रदिनी—नदी; इव—सदृश; घूर्णा—क्षुब्ध, मथी हुई।

लंका में प्रवेश करने के बाद सुग्रीव, नील, हनुमान आदि वानर सेनापतियों के नेतृत्व में वानर सैनिकों ने सारे विहारस्थलों, अन्न के गोदामों, खजानों, महलों के द्वारों, नगर के फाटकों, सभाभवनों, महल के छज्जों और यहाँ तक कि कबूतरघरों में अधिकार कर लिया। जब नगरी के सारे

चौराहे, चबूतरे, झंडे तथा गुम्बदों पर रखे सुनहरे गमले ध्वस्त कर दिये गये तो समूची लंका नगरी उस नदी के सदृश प्रतीत हो रही थी जिसे हाथियों के झुंड ने मथ दिया हो।

रक्षःपतिस्तदवलोक्य निकुम्भकुम्भ-
धूम्राक्षदुर्मुखसुरान्तकनरान्तकादीन् ।
पुत्रं प्रहस्तमतिकायविकम्पनादीन्
सर्वानुगान्समहिनोदथ कुम्भकर्णम् ॥ १८॥

शब्दार्थ

रक्षः-पतिः—राक्षसों का स्वामी, रावण; तत्—ऐसे उपद्रव को; अवलोक्य—देखकर; निकुम्भ—निकुम्भ; कुम्भ—कुम्भ; धूम्राक्ष—धूम्राक्ष; दुर्मुख—दुर्मुख; सुरान्तक—सुरान्तक; नरान्तक—नरान्तक; आदीन्—इत्यादि को; पुत्रम्—अपने बेटे इन्द्रजित को; प्रहस्तम्—प्रहस्त को; अतिकाय—अतिकाय; विकम्पन—विकम्पन; आदीन्—आदि को; सर्व-अनुगान्—अपने सारे अनुयायियों को; समहिनोत्—आज्ञा दी (शत्रुओं से लड़ने के लिए); अथ—अन्ततः; कुम्भकर्णम्—अपने सबसे प्रसिद्ध भाई कुम्भकर्ण को।

जब राक्षसपति रावण ने वानर सैनिकों द्वारा किये जा रहे उपद्रवों को देखा तो उसने निकुम्भ, कुम्भ, धूम्राक्ष, दुर्मुख, सुरान्तक, नरान्तक तथा अन्य राक्षसों एवं अपने पुत्र इन्द्रजित को भी बुलवाया। तत्पश्चात् उसने प्रहस्त, अतिकाय, विकम्पन को और अन्त में कुम्भकर्ण को बुलवाया। इसके बाद उसने अपने सारे अनुयायियों को शत्रुओं से लड़ने के लिए प्रोत्साहित किया।

तां यातुधानपृतनामसिशूलचाप-
प्रासर्ष्टिशक्तिशरतोमरखड्गदुर्गाम् ।
सुग्रीवलक्ष्मणमरुत्सुतगन्धमाद-
नीलाङ्गदर्क्षपनसादिभिरन्वितोऽगात् ॥ १९॥

शब्दार्थ

ताम्—उन सब; यातुधान-पृतनाम्—राक्षसों के सैनिकों को; असि—तलवार से; शूल—भाला से; चाप—बाण से; प्रास-ऋष्टि—प्रास तथा ऋष्टि नामक हथियारों से; शक्ति-शर—शक्तिबाण; तोमर—तोमर नामक हथियार; खड्ग—तलवार की तरह के हथियार से; दुर्गाम्—दुर्जेय; सुग्रीव—सुग्रीव द्वारा; लक्ष्मण—रामचन्द्र के भाई लक्ष्मण द्वारा; मरुत्-सुत—हनुमान द्वारा; गन्धमाद—गन्धमाद नामक वानर द्वारा; नील—नील द्वारा; अङ्गद—अंगद; ऋक्ष—ऋक्ष; पनस—पनस; आदिभिः—इत्यादि के द्वारा; अन्वितः—घिरकर; अगात्—समक्ष (लड़ने) आया।

लक्ष्मण तथा सुग्रीव, हनुमान, गन्धमाद, नील, अंगद, जाम्बवन्त तथा पनस नामक वानर सैनिकों से घिरे हुए भगवान् रामचन्द्र ने उन राक्षस सैनिकों पर आक्रमण कर दिया जो विविध अजेय हथियारों से, यथा तलवारों, भालों, बाणों, प्रासों, ऋष्टियों, शक्तिबाणों, खड्गों तथा तोमरों से सज्जित थे।

तेऽनीकपा रघुपतेरभिपत्य सर्वे
द्वन्द्वं वरूथमिभपत्तिरथाश्वयोधैः ।
जघ्नुर्द्रुमैर्गिरिगदेषुभिरङ्गदाद्याः
सीताभिमर्षहतमङ्गलरावणेशान् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

ते—वे सब; अनीक-पाः—सैनिकों के सेनापति; रघुपतेः—भगवान् रामचन्द्र के; अभिपत्य—शत्रु का पीछा करते; सर्वे—सभी; द्वन्द्वम्—लड़ते हुए; वरूथम्—रावण के सैनिकों को; इभ—हाथी; पत्ति—पैदल सैना; रथ—रथ; अश्व—घोड़े; योधैः—योद्धाओं से; जघ्नुः—उन्हें मार डाला; द्रुमैः—बड़े-बड़े वृक्षों को फेंककर; गिरि—पर्वत की चोटियों; गदा—गदा; इषुभिः—बाणों से; अङ्गद-आद्याः—अंगद इत्यादि भगवान् रामचन्द्र के सारे सैनिक; सीता—सीता देवी का; अभिमर्ष—क्रोध से; हत—ध्वस्त; मङ्गल—जिसका कल्याण; रावण-ईशान्—रावण के अनुयायियों को।

अंगद तथा रामचन्द्र के अन्य सेनापतियों ने शत्रुओं के हाथियों, पैदल सैनिकों, घोड़ों तथा रथों का सामना किया और उन पर बड़े-बड़े वृक्ष, पर्वत-शृंग, गदा तथा बाण फेंके। इस तरह श्री रामचन्द्रजी के सैनिकों ने रावण के सैनिकों को जिनका सौभाग्य पहले ही लुट चुका था, मार डाला क्योंकि सीतादेवी के क्रोध से रावण पहले ही ध्वस्त हो चुका था।

तात्पर्य : भगवान् रामचन्द्र ने जंगल में जितने सैनिकों की भरती की, वे बन्दर थे और उनके पास रावण के सैनिकों से लड़ने के लिए समुचित साज-सामान न था क्योंकि रावण के सैनिकों के पास आधुनिक युद्धास्त्र थे जब कि बन्दरों के पास फेंकने के लिए पत्थर, पर्वतशृंग तथा वृक्ष थे। केवल भगवान् रामचन्द्र और लक्ष्मण कुछ बाण चला रहे थे। किन्तु क्योंकि रावण के सैनिक माता सीता के शाप से ध्वस्त हो चुके थे अतएव सारे बन्दर उन्हें केवल पत्थर एवं वृक्ष चलाकर मारने में समर्थ हो सके। बल दो प्रकार का होता है—दैव तथा पुरुषाकार। दैवबल अध्यात्म से प्राप्त किया जाता है और पुरुषाकार बल अपनी बुद्धि तथा शक्ति से प्राप्त किया जाता है। अध्यात्म बल भौतिकतावादी बल से सदैव श्रेष्ठ होता है। भगवान् की कृपा पर अवलम्बित होकर मनुष्य को अपने शत्रु से युद्ध करना चाहिए भले ही वह आधुनिक हथियारों से युक्त क्यों न हो। इसीलिए कृष्ण ने अर्जुन को आदेश दिया—*मामनुस्मर युध्य च*—मेरा चिन्तन करके युद्ध करो। हमें शत्रु से अपनी शक्तिभर लड़ना चाहिए, किन्तु विजय पाने के लिए भगवान् पर आश्रित रहना चाहिए।

रक्षःपतिः स्वबलनष्टिमवेक्ष्य रुष्ट
आरुह्य यानकमथाभिससार रामम् ।
स्वःस्यन्दने द्युमति मातलिनोपनीते
विभ्राजमानमहनन्निशितैः क्षुरप्रैः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

रक्षः-पतिः—राक्षसों का नायक, रावण; स्व-बल-नष्टिम्—अपने सैनिकों का विनाश; अवेक्ष्य—देखकर; रुष्टः—क्रुद्ध हुआ; आरुह्य—सवार होकर; यानकम्—अपने सुन्दर विमान में, जो पुष्पों से अलंकृत था; अथ—तत्पश्चात्; अभिससार—आगे बढ़ा; रामम्—राम की ओर; स्वः-स्यन्दने—इन्द्र के दिव्य रथ में; द्युमति—चमकता हुआ; मातलिना—इन्द्र के सारथी मातलि द्वारा; उपनीते—लाया जाकर; विभ्राजमानम्—रामचन्द्र, मानों तेज से दीप्त हों; अहनत्—रावण ने प्रहार किया; निशितैः—अत्यन्त तीक्ष्ण; क्षुरप्रैः—तीरों से।

तत्पश्चात् जब राक्षसराज रावण ने देखा कि उसके सारे सैनिक मारे जा चुके हैं तो वह अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। अतएव वह अपने विमान में सवार हुआ जो फूलों से सजाया हुआ था और रामचन्द्रजी की ओर बढ़ा जो इन्द्र के सारथी मातलि द्वारा लाये गये तेजस्वी रथ पर आसीन थे। तब रावण ने भगवान् रामचन्द्र पर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा की।

रामस्तमाह पुरुषादपुरीष यन्नः
कान्तासमक्षमसतापहृता श्ववत्ते ।
त्यक्तत्रपस्य फलमद्य जुगुप्सितस्य
यच्छामि काल इव कर्तुरलङ्घ्यवीर्यः ॥ २२॥

शब्दार्थ

रामः—भगवान् रामचन्द्र ने; तम्—उससे (रावण से); आह—कहा; पुरुष-अद-पुरीष—तुम मनुष्यों के भक्षकों (राक्षसों) के मल हो; यत्—क्योंकि; नः—मेरी; कान्ता—पत्नी; असमक्षम्—मेरी अनुपस्थिति के कारण असहाय; असता—महान् पापी तुम्हारे द्वारा; अपहृता—अपहरण की गई; श्व-वत्—कुत्ते के समान, जो मालिक की अनुपस्थिति में रसोई से भोजन लेकर भाग जाता है; ते—तुम्हारा; त्यक्त-त्रपस्य—निर्लज्ज; फलम् अद्य—आज तुमको मजा चखा दूँगा; जुगुप्सितस्य—अत्यन्त नीच का; यच्छामि—तुम्हें दण्ड दूँगा; कालः इव—मृत्यु के समान; कर्तुः—सारे पापों के कर्ता तुमको; अलङ्घ्य-वीर्यः—किन्तु मैं सर्वशक्तिमान होने के कारण कभी अपने प्रयास में विफल नहीं होता।

भगवान् रामचन्द्र ने रावण से कहा : तुम मानवभक्षियों में अत्यन्त गर्हित हो। निस्सन्देह, तुम उनकी विष्ठा तुल्य हो। तुम कुत्ते के समान हो क्योंकि वह घर के मालिक के न होने पर रसोई से खाने की वस्तु चुरा लेता है। तुमने मेरी अनुपस्थिति में मेरी पत्नी सीतादेवी का अपहरण किया है। इसलिए जिस तरह यमराज पापी व्यक्तियों को दण्ड देता है उसी तरह मैं भी तुम्हें दण्ड दूँगा। तुम अत्यन्त नीच, पापी तथा निर्लज्ज हो। अतएव आज मैं तुम्हें दण्ड दूँगा क्योंकि मेरा वार कभी खाली नहीं जाता।

तात्पर्य : *न च दैवात् परं बलम्*—कोई भावी बल दिव्य शक्ति से पार नहीं पा सकता। रावण इतना पापी तथा निर्लज्ज था कि उसे इसका पता ही नहीं था कि रामचन्द्र की ह्लादिनी शक्ति माता सीता का अपहरण करने का क्या फल होगा। यही राक्षसों का अवगुण है। *असत्यम् अप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्।* राक्षसों को इसका ज्ञान ही नहीं है कि भगवान् सृष्टि के शासक हैं। वे सोचते हैं कि सब कुछ संयोगवश उत्पन्न हुआ है

और उसका न तो कोई शासक या राजा है न नियन्ता। इसीलिए वे स्वतंत्र होकर स्वेच्छा से कर्म करते हैं और इस हद तक पहुँच जाते हैं कि लक्ष्मीजी तक का अपहरण कर बैठते हैं। रावण की यह नीति किसी भी भौतिकतावादी के लिए अत्यन्त घातक है। निस्सन्देह, इससे भौतिकतावादी सभ्यता का विनाश होता है। तो भी नास्तिक लोग राक्षस हैं अतएव वे घृणित से घृणित कर्म करते हैं जिसके लिए वे अवश्य ही दण्डित होते हैं। धर्म भगवान् के आदेशों से युक्त है अतएव जो भी इन आदेशों का पालन करता है वही धर्मी है। जो भगवान् के आदेशों का पालन नहीं करता वह अधर्मी है और उसे दण्डित होना पड़ता है।

एवं क्षिपन्धनुषि सन्धितमुत्ससर्ज
बाणं स वज्रमिव तद्धृदयं बिभेद ।
सोऽसृग्वमन्दशमुखैर्न्यपतद्विमाना-
द्धाहेति जल्पति जने सुकृतीव रिक्तः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस तरह; क्षिपन्—डाँटते हुए, धिक्कारते हुए; धनुषि—धनुष पर; सन्धितम्—तीर चढ़ाकर; उत्ससर्ज—उसकी ओर छोड़ा; बाणम्—बाण; सः—वह तीर; वज्रम् इव—वज्र की भाँति; तत्-हृदयम्—रावण के हृदय को; बिभेद—बेध डाला; सः—वह, रावण; असृक्—रक्त; वमन्—कै करता; दश-मुखैः—दसों मुँहों से; न्यपतत्—गिर पड़ा; विमानात्—अपने विमान से; हाहा—हाय-हाय, क्या हुआ; इति—इस प्रकार; जल्पति—दहाड़ते हुए; जने—सारे लोगों के सामने; सुकृती इव—पुण्यात्मा की तरह; रिक्तः—पुण्यों के चुक जाने पर।

इस प्रकार रावण को धिक्कारने के बाद भगवान् रामचन्द्र ने अपने धनुष पर बाण रखा और रावण को निशाना बनाकर बाण छोड़ा जो रावण के हृदय में वज्र के समान बेध गया। इसे देखकर रावण के अनुयायियों ने चिल्लाते हुए तुमुल ध्वनि की ''हाय! हाय!'' ''क्या हो गया?'' क्योंकि रावण अपने दसों मुखों से रक्त वमन करता हुआ अपने विमान से उसी तरह नीचे गिर पड़ा जिस प्रकार कोई पुण्यात्मा अपने पुण्यों के चुक जाने पर स्वर्ग से पृथ्वी पर आ गिरता है।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (९.२१) में कहा गया है—*क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति*—जब पुण्यों के फलों का क्षय हो जाता है तो स्वर्ग का भोग करने वाले पुनः पृथ्वी पर आ गिरते हैं। इस जगत के सकाम कर्म ऐसे हैं कि कोई चाहे पुण्य करे या पाप, उसे इसी संसार के भीतर भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में रहना होता है क्योंकि पाप या पुण्य के द्वारा बारम्बार जन्म-मृत्यु की माया के चंगुल से छूटा नहीं जा सकता। रावण को किसी तरह समस्त ऐश्वर्यों से युक्त महान् साम्राज्य का राजपद मिल गया था, किन्तु सीतादेवी का अपहरण जैसा पापकर्म करने के कारण उसके सारे पुण्यकर्मों के फल विनष्ट हो गये थे। यदि कोई किसी महापुरुष

का, विशेष रूप से भगवान् का अपमान करता है तो वह निस्सन्देह अत्यन्त अधम हो जाता है और अपने पुण्यकर्मों के फल से विरहित होकर रावण तथा अन्य राक्षसों की भाँति नीचे गिर जाता है। इसीलिए सलाह दी जाती है कि मनुष्य पाप-पुण्य दोनों से ऊपर उठे और समस्त उपाधियों से रहित शुद्ध अवस्था में रहे (*सर्वोपाधि विनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम्*)। जब कोई मनुष्य भक्ति में स्थिर हो जाता है तो वह भौतिक स्तर से ऊपर चला जाता है। भौतिक स्तर पर उच्च तथा निम्न दशाएँ होती हैं, किन्तु भौतिक स्तर से ऊपर होने पर मनुष्य आध्यात्मिक स्थिति में सदैव स्थिर रहता जाता है (*स गुणान्समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते*)। रावण या उस जैसे अन्य लोग भले ही इस भौतिक संसार में शक्तिशाली एवं ऐश्वर्यवान हों, किन्तु उनके पद सुरक्षित नहीं हैं क्योंकि अन्ततः वे अपने कर्मफलों से बँधे रहते हैं (*कर्मणा दैवनेत्रेण*)। हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि हम प्रकृति के नियमों के पूर्णतः अधीन हैं—

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणै कर्माणि सर्वशः।

अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते॥

''प्रकृति के तीन गुणों के प्रभाव के अन्तर्गत मोहग्रस्त जीव अपने को उन सारे कर्मों का कर्ता मान बैठता है जो वास्तव में प्रकृति द्वारा सम्पन्न होते हैं।'' (*भगवद्गीता* ३.२७) किसी को न तो अपने उच्च स्थान का घमंड होना चाहिए और न ही अपने को प्रकृति के नियमों से स्वतंत्र मानकर रावण की तरह कर्म करना चाहिए।

ततो निष्क्रम्य लङ्काया यातुधान्यः सहस्रशः ।
मन्दोदर्या समं तत्र प्ररुदन्त्य उपाद्रवन् ॥ २४॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; निष्क्रम्य—बाहर निकल कर; लङ्कायाः—लंका से; यातुधान्यः—राक्षसों की पत्नियाँ; सहस्रशः—हजारों की संख्या में; मन्दोदर्या—रावण की पत्नी मन्दोदरी इत्यादि के; समम्—साथ; तत्र—वहाँ; प्ररुदन्त्यः—विलाप करती; उपाद्रवन्—(अपने मृत पतियों के) पास आईं।

तत्पश्चात् वे सारी स्त्रियाँ जिनके पति युद्ध में मारे जा चुके थे, रावण की पत्नी मन्दोदरी के साथ लंका से बाहर आईं। वे निरन्तर विलाप करती हुई रावण तथा अन्य राक्षसों के शवों के निकट पहुँचीं।

स्वान्स्वान्बन्धून्परिष्वज्य लक्ष्मणेषुभिरर्दितान् ।
रुरुदुः सुस्वरं दीना घ्नन्त्य आत्मानमात्मना ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

स्वान् स्वान्—अपने-अपने पतियों के; बन्धून्—मित्रों को; परिष्वज्य—आलिंगन करती हुई; लक्ष्मण-इषुभिः—लक्ष्मण के बाणों से; अर्दितान्—मारे गये; रुरुदुः—वे सभी पत्नियाँ करुण विलाप करने लगीं; सु-स्वरम्—मीठे स्वर में; दीनाः—अत्यन्त दयनीय; घ्नन्त्यः—पीटती हुई; आत्मानम्—अपनी छाती; आत्मना—अपने आप से।

लक्ष्मण के बाणों द्वारा मारे गये अपने-अपने पतियों के शोक में अपनी छाती पीटती हुई स्त्रियों ने अपने-अपने पतियों का आलिंगन किया और फिर वे कारुणिक स्वर में रोदन करने लगीं जो हर एक को द्रवित करने वाला था।

हा हताः स्म वयं नाथ लोकरावण रावण ।
कं यायाच्छरणं लङ्का त्वद्विहीना परार्दिता ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

हा—हाय; हताः स्म—मारी गईं; वयम्—हम सभी; नाथ—हे रक्षक; लोक-रावण—हे पति, जिसने इतने लोगों को रुलाया; रावण—हे रावण, जो अन्यों को रुला सकता है; कम्—किसकी; यायात्—जायेगा; शरणम्—शरण में; लङ्का—लंका का राज्य; त्वत्-विहीना—तुम्हारे न होने पर; पर-अर्दिता—शत्रुओं द्वारा पराजित।

हे नाथ! हे स्वामी! तुम अन्यों की मुसीबत की प्रतिमूर्ति थे; अतएव तुम रावण कहलाते थे। किन्तु अब जब तुम पराजित हो चुके हो, हम भी पराजित हैं क्योंकि तुम्हारे बिना इस लंका के राज्य को शत्रु ने जीत लिया है। बताओ न अब लङ्का किसकी शरण में जायेगी?

तात्पर्य : रावण की पत्नी मन्दोदरी तथा अन्य पत्नियाँ भलीभाँति जानती थीं कि रावण कितना क्रूर व्यक्ति है। ''रावण'' शब्द का अर्थ ही है ''जो अन्यों को सताता है।'' रावण निरन्तर अन्यों को मुसीबत में डालता रहा, किन्तु जब उसके पापकृत्यों की पराकाष्ठा सीतादेवी को कष्ट देने तक पहुँच गई तो वह भगवान् रामचन्द्र द्वारा मार डाला गया।

न वै वेद महाभाग भवान्कामवशं गतः ।
तेजोऽनुभावं सीताया येन नीतो दशामिमाम् ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; वै—निस्सन्देह; वेद—जान पाया; महा-भाग—हे भाग्यशाली; भवान्—आप; काम-वशम्—काम के वशीभूत; गतः—होकर; तेजः—प्रभाव से; अनुभावम्—ऐसे प्रभाव के फलस्वरूप; सीतायाः—सीतादेवी के; येन—जिसके द्वारा; नीतः—ले जाया गया; दशाम्—स्थिति को; इमाम्—इस प्रकार की (विनाश की)।

हे परम सौभाग्यवान, तुम कामवासना के वशीभूत हो गये थे; अतएव तुम सीतादेवी के प्रभाव

(तेज) को नहीं समझ सके। तुम भगवान् रामचन्द्र द्वारा मारे जाकर सीताजी के शाप से इस दशा को प्राप्त हुए हो।

तात्पर्य : ऐसा नहीं है कि केवल सीतादेवी ही शक्तिशाली थीं अपितु कोई भी स्त्री सीतादेवी के पदचिह्नों पर चलकर ऐसी ही शक्तिशाली बन सकती है। वैदिक साहित्य के इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं। जहाँ भी हम आदर्श सती स्त्रियों का वर्णन पाते हैं सीताजी का नाम उसमें अवश्य मिलता है। रावण की पत्नी मन्दोदरी भी परम सती थी। इसी प्रकार द्रौपदी भी पाँच उच्च सतियों में से एक है। जिस प्रकार मनुष्य को ब्रह्मा, नारद जैसे महापुरुषों का अनुसरण करना चाहिए उसी प्रकार हर स्त्री को भी सीता, मन्दोदरी, द्रौपदी जैसी आदर्श स्त्रियों के पथ का अनुसरण करना चाहिए। सती रहकर तथा अपने पति के प्रति आज्ञाकारिणी बनकर स्त्री अपने को दैवी शक्ति से सम्पन्न करती है। यह नैतिक सिद्धान्त है कि मनुष्य को मन में पराई स्त्री के प्रति विषयवासना की भावना नहीं लानी चाहिए। *मातृवत् परदारेषु*—बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि पराई स्त्री को अपनी माता के तुल्य देखे। यही *चाणक्य श्लोक* का (१०) आदेश है—

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ट्रवत्।

आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः॥

''जो कोई पराई स्त्री को अपनी माता की तरह, पराये धन को धूल के समान तथा सारे जीवों को अपने समान मानता है वह पण्डित माना जाता है।'' इस तरह रावण न केवल भगवान् रामचन्द्र द्वारा अपितु अपनी ही पत्नी मन्दोदरी द्वारा भी धिक्कारा गया। चूँकि वह सती स्त्री थी अतएव वह अन्य सती की, विशेष रूप से सीतादेवी जैसी पत्नी की, शक्ति को जानती थी।

कृतैषा विधवा लङ्का वयं च कुलनन्दन ।
देहः कृतोऽन्नं गृध्राणामात्मा नरकहेतवे ॥ २८॥

शब्दार्थ

कृता—तुम्हारे द्वारा की गई; एषा—इस समस्त; विधवा—संरक्षकविहीन; लङ्का—लंका-राज्य; वयम् च—हमें भी; कुल-नन्दन—हे राक्षसों के आनन्द; देहः—शरीर; कृतः—तुम्हारे द्वारा बनाई गई; अन्नम्—खाद्य पदार्थ; गृध्राणाम्—गीधों का; आत्मा—तथा तुम्हारी आत्मा; नरक-हेतवे—नरक जाने के लिए।

हे राक्षसकुल के हर्ष, तुम्हारे ही कारण अब लंका-राज्य तथा हम सबों का भी कोई संरक्षक नहीं रहा। तुमने अपने कृत्यों के ही कारण अपने शरीर को गीधों का आहार और अपनी आत्मा को नरक

जाने का पात्र बना दिया है।

तात्पर्य : जो भी रावण के मार्ग पर चलता है उसकी भर्त्सना दो प्रकार से की जाती है—उसका शरीर कुत्तों तथा गीधों के खाने योग्य रहता है तथा उसकी आत्मा नरक में जाती है। जैसा कि स्वयं भगवान् ने *भगवद्गीता* (१६.१९) में कहा है—

तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान्।

क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु॥

"जो लोग ईर्ष्यालु तथा शैतान हैं, जो मनुष्यों में सबसे नीच हैं उन्हें मैं भवसागर में विविध राक्षस-योनियों में डालता हूँ।" इस तरह रावण, हिरण्यकशिपु, कंस तथा दंतवक्र जैसे नास्तिकों की गति नारकीय जीवन में है। रावण की पत्नी मन्दोदरी सती होने के कारण सब कुछ जानती थी। यद्यपि वह अपने पति की मृत्यु पर विलाप कर रही थी, किन्तु वह जानती थी कि उसके शरीर और आत्मा का क्या होगा क्योंकि भले ही हमें भौतिक आँखों से यह न दिखे, किन्तु ज्ञान की आँखों से देखा जा सकता है (*पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः*)। वैदिक इतिहास में ऐसे कितने ही उदाहरण हैं जिनमें मनुष्य के ईश्वरविहीन होने पर प्रकृति के नियमों द्वारा भर्त्सित होना पड़ता है।

श्रीशुक उवाच
स्वानां विभीषणश्चक्रे कोसलेन्द्रानुमोदितः ।
पितृमेधविधानेन यदुक्तं साम्परायिकम् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; **स्वानाम्**—स्वजनों का; **विभीषणः**—रावण के भाई तथा रामचन्द्र-भक्त विभीषण ने; **चक्रे**—सम्पन्न किया; **कोसल-इन्द्र-अनुमोदितः**—कोसल के राजा भगवान् रामचन्द्र द्वारा अनुमोदित; **पितृ-मेध-विधानेन**—पिता या किसी परिजन की मृत्यु के बाद पुत्र द्वारा सम्पन्न होने वाले अन्त्येष्टि कर्म द्वारा; **यत् उक्तम्**—निर्धारित; **साम्परायिकम्**—नरक जाने से बचाने के लिए व्यक्ति मृत्यु के बाद किए जाने वाले कर्म।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा : रावण के पवित्र भाई तथा रामचन्द्र के भक्त विभीषण को कोसल के राजा भगवान् रामचन्द्र से अनुमति प्राप्त हो गई तो उसने अपने परिवार के सदस्यों को नरक जाने से बचाने के लिए आवश्यक अन्त्येष्टि कर्म सम्पन्न किये।

तात्पर्य : एक शरीर छोड़ने के बाद मनुष्य दूसरे शरीर को प्राप्त करता है, किन्तु कभी-कभी यदि वह अधिक पापी होता है तो उसे दूसरे शरीर में देहान्तरण करने नहीं दिया जाता जिससे वह प्रेत बन जाता है।

मृत व्यक्ति को प्रेतजीवन से बचाने के लिए शास्त्रविहित अन्त्येष्टि कर्म या श्राद्ध कर्म किया जाना चाहिए। रावण का वध भगवान् रामचन्द्र द्वारा हुआ था; अतएव उसे नरक में जाना था, किन्तु भगवान् रामचन्द्र की सलाह से रावण के भाई विभीषण ने मृतक के लिए निर्धारित सारे कर्म सम्पन्न किये। इस तरह भगवान् रामचन्द्र रावण की मृत्यु के बाद भी उस पर दयालु थे।

ततो ददर्श भगवानशोकवनिकाश्रमे ।
क्षामां स्वविरहव्याधिं शिंशपामूलमाश्रिताम् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; ददर्श—देखा; भगवान्—भगवान् ने; अशोक-वनिक-आश्रमे—अशोक वृक्षों के वन में एक छोटी सी झोपड़ी में; क्षामाम्—अत्यन्त दुबली-पतली; स्व-विरह-व्याधिम्—अपने (भगवान् रामचन्द्र के) वियोग रोग से पीड़ित; शिंशपा—शिंशपा (शीशम) वृक्ष की; मूलम्—जड़ का; आश्रिताम्—सहारा लिए।

तत्पश्चात् भगवान् रामचन्द्र ने सीतादेवी को अशोकवन में शिंशपा नामक वृक्ष के नीचे एक छोटी सी कुटिया में बैठी पाया। वे राम के वियोग के कारण दुखी होने से अत्यन्त दुबली-पतली हो गई थीं।

रामः प्रियतमां भार्यां दीनां वीक्ष्यान्वकम्पत ।
आत्मसन्दर्शनाह्लादविकसन्मुखपङ्कजाम् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

रामः—रामचन्द्र; प्रिय-तमाम्—अपनी अत्यन्त प्रिय; भार्याम्—पत्नी को; दीनाम्—दीन अवस्था में; वीक्ष्य—देखकर; अन्वकम्पत—अत्यन्त दयालु हो उठे; आत्म-सन्दर्शन—अपने प्रिय को देखने पर; आह्लाद—आनन्दमय जीवन का भाव; विकसत्—प्रकट करते हुए; मुख—मुँह; पङ्कजाम्—कमल सदृश।

अपनी पत्नी को उस दशा में देखकर भगवान् रामचन्द्र अत्यधिक दयार्द्र हो उठे। जब वे पत्नी के समक्ष आये तो वे भी अपने प्रियतम को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुई और उनके कमल सदृश मुख से आह्लाद झलकने लगा।

आरोप्यारुरुहे यानं भ्रातृभ्यां हनुमद्युतः ।
विभीषणाय भगवान्दत्त्वा रक्षोगणेशताम् ।
लङ्कामायुश्च कल्पान्तं ययौ चीर्णव्रतः पुरीम् ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

आरोप्य—चढ़ाकर; आरुरुहे—स्वयं चढ़ गये; यानम्—विमान में; भ्रातृभ्याम्—अपने भाई लक्ष्मण तथा सेनापति सुग्रीव समेत; हनुमत्-युतः—हनुमान समेत; विभीषणाय—रावण के भाई विभीषण को; भगवान्—भगवान् ने; दत्त्वा—सौंप दिया; रक्षः-गण-ईशताम्—लंका के राक्षसों पर शासन करने का अधिकार; लङ्काम्—लंका-राज्य; आयुः च—तथा जीवन (आयु); कल्प-अन्तम्—एक कल्प के अन्त तक, अनेकानेक वर्षों के लिए; ययौ—घर चले गये; चीर्ण-व्रतः—वनवास की अवधि पूरी करके; पुरीम्—अयोध्या पुरी को।

भगवान् रामचन्द्र ने विभीषण को लंका के राक्षसों पर एक कल्प तक राज्य करने का अधिकार सौंपकर सीतादेवी को पुष्प से सज्जित विमान (पुष्पक विमान) में बैठाया और फिर वे स्वयं उसमें बैठ गये। अपने वनवास की अवधि समाप्त होने पर, हनुमान, सुग्रीव तथा अपने भाई लक्ष्मणसमेत, भगवान् अयोध्या लौट आये।

अवकीर्यमाणः सुकुसुमैर्लोकपालार्पितैः पथि ।
उपगीयमानचरितः शतधृत्यादिभिर्मुदा ॥ ३३॥

शब्दार्थ

अवकीर्यमाणः—बिखेरे गये; सु-कुसुमैः—सुगंधित सुन्दर फूलों से; लोक-पाल-अर्पितैः—राजाओं द्वारा भेंट किये गये; पथि—मार्ग पर; उपगीयमान-चरितः—अपने असामान्य कार्यों के लिए अभिवन्दित; शतधृति-आदिभिः—ब्रह्मा तथा अन्य देवताओं के द्वारा; मुदा—अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक।

जब भगवान् रामचन्द्र अपनी राजधानी अयोध्या लौटे तो मार्ग पर लोकपालों ने उनके स्वागतार्थ उनके शरीर पर सुन्दर सुगन्धित फूलों की वर्षा की और ब्रह्मा तथा अन्य देवताओं जैसे महापुरुषों ने परम प्रसन्न होकर भगवान् के कार्यों का गुणगान किया।

गोमूत्रयावकं श्रुत्वा भ्रातरं वल्कलाम्बरम् ।
महाकारुणिकोऽतप्यज्जटिलं स्थण्डिलेशयम् ॥ ३४॥

शब्दार्थ

गो-मूत्र-यावकम्—गाय के मूत्र में पकाये जौ को खाकर; श्रुत्वा—सुनकर; भ्रातरम्—अपने भाई भरत को; वल्कल-अम्बरम्—पेड़ों की छाल से आच्छादित; महा-कारुणिकः—अत्यन्त दयालु रामचन्द्रजी ने; अतप्यत्—अत्यधिक शोक व्यक्त किया; जटिलम्—सिर पर जटा बढ़ाये; स्थण्डिले-शयम्—कुशासन पर लेटते हुए।

अयोध्या पहुँचकर भगवान् रामचन्द्र ने सुना कि उनकी अनुपस्थिति में उनका भाई भरत गोमूत्र में पकाये जौ को खाता था, अपने शरीर को वृक्षों की छाल से ढकता था, सिर पर जटा बढ़ाये, कुशों की चटाई पर सोता था। अत्यन्त कृपालु भगवान् ने इस पर अत्यधिक सन्ताप व्यक्त किया।

भरतः प्राप्तमाकर्ण्य पौरामात्यपुरोहितैः ।

पादुके शिरसि न्यस्य रामं प्रत्युद्यतोऽग्रजम् ।
नन्दिग्रामात्स्वशिबिराद्गीतवादित्रनिःस्वनैः ॥ ३५ ॥
ब्रह्मघोषेण च मुहुः पठद्भिर्ब्रह्मवादिभिः ।
स्वर्णकक्षपताकाभिर्हैमैश्चित्रध्वजै रथैः ॥ ३६ ॥
सदश्वै रुक्मसन्नाहैर्भटैः पुरटवर्मभिः ।
श्रेणीभिर्वारमुख्याभिर्भृत्यैश्चैव पदानुगैः ॥ ३७ ॥
पारमेष्ठ्यान्युपादाय पण्यान्युच्चावचानि च ।
पादयोर्न्यपतत्प्रेम्णा प्रक्लिन्नहृदयेक्षणः ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

भरतः—भरत ने; प्राप्तम्—घर वापसी; आकर्ण्य—सुनकर; पौर—सारे नागरिक; अमात्य—सारे मंत्री; पुरोहितैः—सारे पुरोहितों के साथ; पादुके—दो खड़ाऊँ; शिरसि—सिर पर; न्यस्य—रखकर; रामम्—रामचन्द्र को; प्रत्युद्यतः—अगवानी के लिए; अग्रजम्—अपने बड़े भाई; नन्दिग्रामात्—नन्दिग्राम से; स्व-शिबिरात्—अपने खेमे से; गीत-वादित्र—गायन-बाजन; निःस्वनैः—ऐसी ध्वनियों से युक्त; ब्रह्म-घोषेण—वैदिक मंत्रों के उच्चारण की ध्वनि से; च—तथा; मुहुः—सदैव; पठद्भिः—वेदों से पाठ करते हुए; ब्रह्म-वादिभिः—श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा; स्वर्ण-कक्ष-पताकाभिः—सुनहरे किनारे वाली झंडियों से अलंकृत; हैमैः—सुनहरे; चित्र-ध्वजैः—चित्रित पताकाओं से; रथैः—रथों से; सत्-अश्वैः—सुन्दर घोड़ों से; रुक्म—सुनहरे; सन्नाहैः—जिरहबख्तर या कवच से; भटैः—सैनिकों से; पुरट-वर्मभिः—सुनहरे कवच से ढका; श्रेणीभिः—जुलूस से; वार-मुख्याभिः—सुन्दर-सुसज्जित वेश्याओं के साथ; भृत्यैः—नौकरों के साथ; च—भी; एव—निस्सन्देह; पद-अनुगैः—पैदल सेना से; पारमेष्ठ्यानि—शाही स्वागत के उपयुक्त अन्य साज-सामान; उपादाय—लेकर; पण्यानि—बहुमूल्य रत्न.; उच्च-अवचानि—विभिन्न मूल्यों वाले; च—भी; पादयोः—भगवान् के चरणकमलों पर; न्यपतत्—गिर पड़े; प्रेम्णा—प्रेम से; प्रक्लिन्न—आर्द्र; हृदय—हृदय; ईक्षणः—आँखें।.

जब भरतजी को पता चला कि भगवान् रामचन्द्र अपनी राजधानी अयोध्या लौट रहे हैं तो तुरन्त ही वे भगवान् की खड़ाऊँ अपने सिर पर रखे और नन्दिग्राम स्थित अपने खेमे से बाहर आ गये। भरतजी के साथ मंत्री, पुरोहित, अन्य भद्र नागरिक, मधुर गायन करते पेशेवर गवैये तथा वैदिक मंत्रों का उच्चस्वर से पाठ करने वाले विद्वान ब्राह्मण थे। उनके पीछे जुलूस में रथ थे जिनमें सुन्दर घोड़े जुते थे जिनकी लगामें सुनहरी रस्सियों की थीं। ये रथ सुनहरी किनारी वाली पताकाओं तथा अन्य विविध आकार-प्रकार की पताकाओं से सजाये गये थे। सैनिक सुनहरे कवचों से लैस थे, नौकर पान-सुपारी लिए थे और साथ में अनेक विख्यात सुन्दर वेश्याएँ थीं। अनेक नौकर पैदल चल रह थे और वे छाता, चामर, बहुमूल्य रत्न तथा उपयुक्त विविध राजसी सामान लिए हुए थे। इस तरह प्रेमानन्द से आर्द्र हृदय एवं अश्रुओं से पूरित नेत्रोंवाले भरतजी भगवान् रामचन्द्र के निकट पहुँचे और अत्यन्त भावविभोर होकर उनके चरणकमलों पर गिर गये।

पादुके न्यस्य पुरतः प्राञ्जलिर्बाष्पलोचनः ।
तमाश्लिष्य चिरं दोर्भ्यां स्नापयन्नेत्रजैर्जलैः ॥ ३९ ॥

रामो लक्ष्मणसीताभ्यां विप्रेभ्यो येऽर्हसत्तमाः ।
तेभ्यः स्वयं नमश्चक्रे प्रजाभिश्च नमस्कृतः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

पादुके—दोनों खड़ाओं को; न्यस्य—रखकर; पुरतः—भगवान् रामचन्द्र के सामने; प्राञ्जलिः—हाथ जोड़े; बाष्प-लोचनः—अश्रुपूरित आँखों से; तम्—भरत को; आश्लिष्य—आलिंगन करके; चिरम्—देर तक; दोर्भ्याम्—अपनी दोनों भुजाओं से; स्नापयन्—नहलाते हुए; नेत्र-जैः—नेत्रों से निकलते हुए; जलैः—जल से; रामः—रामचन्द्र; लक्ष्मण-सीताभ्याम्—लक्ष्मण तथा सीता समेत; विप्रेभ्यः—विद्वान ब्राह्मणों को; ये—तथा अन्य जो; अर्ह-सत्तमाः—पूजनीय; तेभ्यः—उनको; स्वयम्—स्वयं; नमः-चक्रे—नमस्कार किया; प्रजाभिः—नागरिकों द्वारा; च—तथा; नमः-कृतः—नमस्कार किया गया।

भगवान् रामचन्द्र के समक्ष खड़ाओं को रखकर भरतजी आँखों में आँसू भरकर और दोनों हाथ जोड़कर खड़े रहे। भगवान् रामचन्द्र अपनी दोनों भुजाओं में भरत को भरकर दीर्घकाल तक आलिंगन करते रहे और उन्होंने उन्हें अपने आँसुओं से नहला दिया। तत्पश्चात् सीतादेवी तथा लक्ष्मण के साथ रामचन्द्र ने विद्वान ब्राह्मणों तथा परिवार के गुरुजनों को नमस्कार किया। समस्त अयोध्यावासियों ने भगवान् को सादर नमस्कार किया।

धुन्वन्त उत्तरासङ्गान्पतिं वीक्ष्य चिरागतम् ।
उत्तराः कोसला माल्यैः किरन्तो ननृतुर्मुदा ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

धुन्वन्तः—हिलाते हुए; उत्तर-आसङ्गान्—अपने उत्तरीय वस्त्रों को; पतिम्—भगवान् को; वीक्ष्य—देखकर; चिर-आगतम्—वनवास से अनेक वर्षों बाद लौटे; उत्तराः कोसलाः—अयोध्या के नागरिक; माल्यैः किरन्तः—मालाएँ अर्पित करते हुए; ननृतुः—नाचने लगे; मुदा—प्रसन्नता के मारे।

अयोध्या के नागरिकों ने अपने राजा को दीर्घकाल के बाद लौटे देखकर उन्हें फूल की मालाएँ अर्पित कीं, अपने उत्तरीय वस्त्र (दुपट्टे) हिलाए और वे परम प्रसन्न होकर खूब नाचे।

पादुके भरतोऽगृह्णाच्चामरव्यजनोत्तमे ।
विभीषणः ससुग्रीवः श्वेतच्छत्रं मरुत्सुतः ॥ ४२ ॥
धनुर्निषङ्गाञ्छत्रुघ्नः सीता तीर्थकमण्डलुम् ।
अबिभ्रदङ्गदः खड्गं हैमं चर्मर्क्षराण्नृप ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

पादुके—दोनों खड़ाऊँ; भरतः—भरत; अगृह्णात्—लिये थे; चामर—चँवर; व्यजन—पंखा; उत्तमे—अत्यन्त ऐश्वर्यशाली; विभीषणः—रावण का भाई; स-सुग्रीवः—सुग्रीव के साथ; श्वेत-छत्रम्—सफेद छाता; मरुत्-सुतः—वायुपुत्र हनुमान; धनुः—धनुष; निषङ्गान्—दो तरकसों सहित; शत्रुघ्नः—रामचन्द्र के भाई; सीता—सीतादेवी; तीर्थ-कमण्डलुम्—तीर्थस्थानों के जल से भरा पात्र; अबिभ्रत्—लिये हुए; अङ्गदः—अंगद नामक वानर सेनापति; खड्गम्—तलवार; हैमम्—स्वर्णिम; चर्म—ढाल; ऋक्ष-राट्—ऋक्षराज जाम्बवान्; नृप—हे राजा।

हे राजा, भरतजी भगवान् राम की खड़ाऊँ लिये थे, सुग्रीव तथा विभीषण चँवर तथा सुन्दर पंखा

लिये थे, हनुमान सफेद छाता लिये हुए थे, शत्रुघ्न धनुष तथा दो तरकस लिए थे तथा सीतादेवी तीर्थस्थानों के जल से भरा पात्र लिए थीं। अंगद तलवार लिए थे और ऋक्षराज जाम्बवान सुनहरी ढाल लिए थे।

पुष्पकस्थो नुतः स्त्रीभिः स्तूयमानश्च वन्दिभिः ।
विरेजे भगवान्राजन्ग्रहैश्चन्द्र इवोदितः ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

पुष्पक-स्थः—पुष्पक विमान में आसीन; नुतः—पूजित; स्त्रीभिः—स्त्रियों द्वारा; स्तूयमानः—स्तुति किये गये; च—तथा; वन्दिभिः—बन्दीजनों के द्वारा; विरेजे—शोभायमान हुए; भगवान्—भगवान् रामचन्द्र; राजन्—हे राजा परीक्षित; ग्रहैः—ग्रहों के मध्य; चन्द्रः—चन्द्रमा; इव—सदृश; उदितः—उदित हुआ।

हे राजा परीक्षित, अपने पुष्पक विमान पर बैठे भगवान् रामचन्द्र स्त्रियों द्वारा स्तुति किये जाने पर तथा बन्दीजनों द्वारा गुणगान किये जाने पर ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानों तारों तथा ग्रहों के बीच चन्द्रमा हो।

भ्रात्राभिनन्दितः सोऽथ सोत्सवां प्राविशत्पुरीम् ।
प्रविश्य राजभवनं गुरुपत्नीः स्वमातरम् ॥ ४५ ॥
गुरून्वयस्यावरजान्पूजितः प्रत्यपूजयत् ।
वैदेही लक्ष्मणश्चैव यथावत्समुपेयतुः ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

भ्रात्रा—अपने भाई (भरत) द्वारा; अभिनन्दितः—स्वागत किये जाकर; सः—उसने, रामचन्द्र ने; अथ—तत्पश्चात्; स-उत्सवाम्—उत्सव के मध्य में; प्राविशत्—प्रवेश किया; पुरीम्—अयोध्या नगरी में; प्रविश्य—प्रवेश करके; राज-भवनम्—राजमहल में; गुरु-पत्नीः—कैकयी तथा अन्य विमाताओं; स्व-मातरम्—अपनी निजी माता (कौशल्या) को; गुरून्—गुरुओं को (श्री वसिष्ठ तथा अन्य); वयस्य—हम उम्र वाले मित्रों को; अवर-जान्—तथा अपने से छोटों को; पूजितः—उनके द्वारा पूजित होकर; प्रत्यपूजयत्—बदले में नमस्कार किया; वैदेही—सीतादेवी; लक्ष्मणः—लक्ष्मण; च एव—तथा; यथा-वत्—उपयुक्त ढंग से; समुपेयतुः—स्वागत किये जाकर महल में घुसे।

तत्पश्चात् अपने भाई भरत द्वारा स्वागत किये जाकर भगवान् रामचन्द्र एक उत्सव के बीच अयोध्या नगरी में प्रविष्ट हुए। जब वे महल में घुसे तो उन्होंने कैकेयी तथा महाराज दशरथ की अन्य पत्नी एवं अपनी माता कौशल्या—इन सभी माताओं को नमस्कार किया। उन्होंने अपने गुरुओं को, यथा वसिष्ठ को भी प्रणाम किया। उनके हमउम्र मित्रों तथा उनसे कम आयु वाले मित्रों ने उनकी पूजा की तो उन्होंने भी उनका अभिवादन किया। लक्ष्मण तथा सीतादेवी ने भी वैसा ही किया। इस प्रकार

वे सभी महल में प्रविष्ट हुए।

पुत्रान्स्वमातरस्तास्तु प्राणांस्तन्व इवोत्थिताः ।
आरोप्याङ्केऽभिषिञ्चन्त्यो बाष्पौघैर्विजहुः शुचः ॥ ४७॥

शब्दार्थ

पुत्रान्—पुत्रों को; स्व-मातरः—अपनी माताएँ; ताः—वे, कौशल्या तथा कैकेयी; तु—लेकिन; प्राणान्—प्राण; तन्वः—शरीर; इव—सदृश; उत्थिताः—उठकर; आरोप्य—लेकर; अङ्के—गोद में; अभिषिञ्चन्त्यः—अपने पुत्रों के शरीरों को तर करते हुए; बाष्प—आँसुओं से; ओघैः—लगातार गिराते; विजहुः—बन्द कर दिया; शुचः—अपने पुत्रों के वियोग से जनित शोक।

अपने पुत्रों को देखकर राम, लक्ष्मण भरत तथा शत्रुघ्न की माताएँ तुरन्त उठ खड़ी हुईं मानो निश्चेष्ट शरीर में चेतना आ गई हो। माताओं ने अपने पुत्रों को अपनी गोदों में भर लिया और उन्हें आँसुओं से नहलाकर अपने दीर्घकालीन विछोह के सन्ताप से छुटकारा पा लिया।

जटा निर्मुच्य विधिवत्कुलवृद्धैः समं गुरुः ।
अभ्यषिञ्चद्यथैवेन्द्रं चतुःसिन्धुजलादिभिः ॥ ४८॥

शब्दार्थ

जटाः—सिर पर बढ़ी जटा; निर्मुच्य—मुँड़वाकर, साफ करवा कर; विधि-वत्—विधि-विधान के अनुसार; कुल-वृद्धैः—परिवार के गुरुजनों के; समम्—साथ; गुरुः—गुरु वसिष्ठ ने; अभ्यषिञ्चत्—भगवान् रामचन्द्र का अभिषेक किया; यथा—जिस तरह; एव—सदृश; इन्द्रम्—इन्द्र को; चतुः-सिन्धु-जल—चारों समुद्रों का जल; आदिभिः—स्नान की अन्य सामग्रियों से।

कुलगुरु वसिष्ठ ने भगवान् रामचन्द्र के सिर की जटाएँ मुँड़वा दीं। तत्पश्चात् कुल के गुरुजनों के सहयोग से उन्होंने चारों समुद्रों के जल तथा अन्य सामग्रियों के द्वारा भगवान् रामचन्द्र का अभिषेक उसी तरह सम्पन्न किया जिस तरह राजा इन्द्र का हुआ था।

एवं कृतशिरःस्नानः सुवासाः स्रग्व्यलङ्कृतः ।
स्वलङ्कृतैः सुवासोभिर्भ्रातृभिर्भार्यया बभौ ॥ ४९॥

शब्दार्थ

एवम्—इस तरह; कृत-शिरः-स्नानः—सिर धोकर पूरी तरह स्नान कर चुकने के बाद; सु-वासाः—अच्छे वस्त्र पहने; स्रग्वि-अलङ्कृतः—माला से अलंकृत होकर; सु-अलङ्कृतैः—भलीभाँति सजकर; सु-वासोभिः—सुन्दर वस्त्रों से अलंकृत; भ्रातृभिः—अपने भाइयों सहित; भार्यया—अपनी पत्नी सीता समेत; बभौ—भगवान् अत्यन्त तेजोमय बन गये।

भलीभाँति स्नान करके तथा अपना सिर घुटा करके भगवान् रामचन्द्र ने अपने आपको सुन्दर वस्त्रों से सज्जित और एक माला तथा आभूषणों से अलंकृत किया। इस प्रकार वे अपने ही समान वस्त्र तथा आभूषण धारण किये अपने भाइयों तथा पत्नी के साथ अत्यन्त तेजोमय लग रहे थे।

अग्रहीदासनं भ्रात्रा प्रणिपत्य प्रसादितः ।
प्रजाः स्वधर्मनिरता वर्णाश्रमगुणान्विताः ।
जुगोप पितृवद्रामो मेनिरे पितरं च तम् ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

अग्रहीत्—स्वीकार किया; आसनम्—राजसिंहासन; भ्रात्रा—अपने भाई (भरत) द्वारा; प्रणिपत्य—पूर्णतया उनकी शरण में जाकर; प्रसादितः—प्रसन्न होकर; प्रजाः—तथा प्रजा; स्व-धर्म-निरताः—अपने-अपने वृत्तिपरक कार्यों में संलग्न; वर्णाश्रम—वर्ण तथा आश्रम के अनुसार; गुण-अन्विताः—गुणों से पूरित; जुगोप—भगवान् ने उनकी रक्षा की; पितृ-वत्—पिता की भाँति; रामः—रामचन्द्र ने; मेनिरे—उन्होंने माना; पितरम्—पिता के तुल्य; च—भी; तम्—उनको, रामचन्द्रजी को।

तब भरत की पूर्ण शरणागति से प्रसन्न होकर भगवान् रामचन्द्र ने राजसिंहासन स्वीकार किया। वे प्रजा की रक्षा पिता की भाँति करने लगे और प्रजा ने भी वर्ण तथा आश्रम के अनुसार अपने-अपने वृत्तिपरक कार्यों में लगकर उन्हें पितृतुल्य स्वीकार किया।

तात्पर्य : लोगों को रामराज्य जैसी व्यवस्था प्रिय है और आज भी राजनीतिक लोग कभी कभी रामराज्य नामक दल बना लेते है, किन्तु दुर्भाग्यवश उन्हें भगवान् राम में कोई श्रद्धा नहीं है। कभी-कभी कहा जाता है कि लोग ईशविहीन ईश-राज्य चाहते है। किन्तु ऐसी महत्त्वाकांक्षा कभी पूरी होने वाली नहीं है। अच्छी सरकार तभी विद्यमान रह सकती है जब नागरिकों तथा सरकार के मध्य वैसा ही सम्बन्ध हो जैसा कि रामचन्द्र तथा उनके नागरिकों ने प्रस्तुत किया। भगवान् रामचन्द्र ने अपने साम्राज्य पर वैसा ही शासन किया जिस तरह पिता अपनी सन्तान का पालन करता है और नागरिकों ने भी रामचन्द्र जी की अच्छी सरकार से कृतज्ञ होकर उन्हें पितृतुल्य मान लिया। नागरिकों तथा सरकार के मध्य पिता-पुत्र का सा सम्बन्ध होना चाहिए। जब परिवार में पुत्र अच्छा प्रशिक्षण पाते है तो वे माता-पिता के आज्ञाकारी होते है और जब पिता योग्य होता है तो वह सन्तानों की अच्छी देखभाल करता है। जैसा कि *स्वधर्मनिरता वर्णाश्रम गुणान्विताः* शब्दों से सूचित होता है, लोग अच्छे नागरिक थे क्योंकि उन्होंने वर्ण तथा आश्रम व्यवस्था स्वीकार की थी जिसके अनुसर समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र नाम के चार वर्ण तथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास नामक चार आश्रम होते है। यह वास्तविक मानव-सभ्यता है। लोगों को विभिन्न वर्णाश्रम धर्मों के अनुसार प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। जैसा कि *भगवद्गीता* (४.१३) में पुष्टि की गई है— *चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः*—चार वर्णों की स्थापना भिन्न गुणों एवं कर्म के अनुसार की जानी चाहिए। अच्छी सरकार का पहला सिद्धान्त यह होना चाहिए कि वह इस वर्णाश्रम प्रणाली को लागू

करे। वर्णाश्रम का उद्देश्य लोगों को ईशभावनाभावित होन के लिए प्रेरित करना है। *वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परः पुमान् विष्णुराराध्यते।* समूची वर्णाश्रम प्रणाली लोगों को वैष्णव बनाने में समर्थ होने के लिए है। *विष्णुरस्य देवता।* जब लोग विष्णु को भगवान् मानकर पूजते है तो वे वैष्णव बनते है। अतएव लोगों को उसी तरह से वर्णाश्रम प्रणाली के माध्यम से वैष्णव बनने के लिए शिक्षा दी जानी चाहिए जिस तरह रामचन्द्रजी के राज्यकाल में प्रत्येक मनुष्य को वर्णाश्रम प्रणाली का पालन करने के लिए शिक्षित किया जाता था।

मात्र कानूनों और अध्यादेशों के बल पर नागरिकों को आज्ञाकारी और कानून पालक नहीं बनाया जा सकता। यह असम्भव है। विश्वभर में न जाने कितने राज्य, विधान सभाएँ तथा संसदें है, फिर भी लोग चोर तथा उचक्के है। अतएव अच्छी नागरिकता लादी नहीं जा सकती अपितु नागरिकों को प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। जिस तरह केमिकल इंजीनियर, वकील या अन्य ज्ञान के विभागों में विशेषज्ञ बनने के लिए छात्रों के प्रशिक्षणार्थ स्कूल तथा कालेज होते है उसी प्रकार विद्यार्थियों को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यासी बनने की शिक्षा देने के लिए स्कूल तथा कालेज होने चाहिए। इससे अच्छी नागरिकता की प्रारम्भिक शर्त पूरी होगी (*वर्णाश्रम गुणान्विताः*)। सामान्य रूप से यदि राजा या राष्ट्रपति राजर्षि होता है तो प्रजा तथा मुख्य कार्यकारी के मध्य का सम्बन्ध स्पष्ट हो जायेगा और राज्य में किसी बिगाड़ की सम्भावना नहीं रहेगी क्योंकि चोर-उचक्कों की संख्या घट जायेगी। किन्तु कलियुग में वर्णाश्रम प्रणाली की उपेक्षा के कारण लोग सामान्यतया चोर और उचक्के हो जाते है। प्रजातांत्रिक प्रणाली में ऐसे चोर तथा उचक्के अन्य चोर-उचक्कों से पैसा इकट्ठा करते है जिससे हर सरकार में अव्यवस्था रहती है और कोई भी सुखी नहीं रहता। किन्तु भगवान् रामचन्द्र के राज्य में अच्छी सरकार का उदाहरण मिलता है। यदि लोग इस उदाहरण का अनुसरण करें तो सारे विश्व में अच्छी सरकार बन जायेगी।

त्रेतायां वर्तमानायां कालः कृतसमोऽभवत् ।
रामे राजनि धर्मज्ञे सर्वभूतसुखावहे ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

त्रेतायाम्—त्रेतायुग में; **वर्तमानायाम्**—यद्यपि उस काल में स्थित; **कालः**—समय; **कृत**—सत्ययुग; **समः**—समान; **अभवत्**—हुआ; **रामे**—रामचन्द्र की उपस्थिति के कारण; **राजनि**—राजा के रूप में; **धर्म-ज्ञे**—धार्मिक; **सर्व-भूत**—सारे जीवों को; **सुख-आवहे**—पूर्ण सुख देते हुए।

भगवान् रामचन्द्र त्रेतायुग में राजा बने थे, किन्तु उनकी सरकार अच्छी होने से वह युग सत्ययुग जैसा था। प्रत्येक व्यक्ति धार्मिक एवं पूर्ण सुखी था।

तात्पर्य : चारों युगों में से कलियुग सबसे निकृष्ट है, किन्तु यदि वर्णाश्रम धर्म की विधि लागू कर दी जाय तो इस कलियुग में भी सत्ययुग जैसी परिस्थिति लाई जा सकती है। हरे कृष्ण आन्दोलन या कृष्णभावनामृत आन्दोलन इसी प्रयोजन के निमित्त है—

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।

कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत्।

''हे राजन! यद्यपि कलियुग दोषों से पूर्ण है फिर भी इस युग में एक उत्तम गुण यह है कि केवल हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन करके मनुष्य भवबन्धन से छूट सकता है और दिव्य धाम को जा सकता है।'' (*भागवत* १२.३.५१) यदि लोग 'हरे कृष्ण हरे राम' कीर्तन के इस आन्दोलन को स्वीकार कर लें तो वे अवश्य ही कलियुग के कल्मष से मुक्त हो जायेंगे और इस युग के लोग सत्ययुग जैसे ही सुखी हो सकेंगे। कोई भी व्यक्ति कहीं भी रहकर इस हरे कृष्ण आन्दोलन को ग्रहण कर सकता है; उसे केवल हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन करना, विधि-विधानों को मानना तथा पापी जीवन के कल्मष से मुक्त होना होगा। यदि कोई पापी जीवन को तुरन्त नहीं छोड़ सकता किन्तु यदि वह भक्ति तथा श्रद्धापूर्वक हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन करता है तो वह अवश्य ही सारे पापमय कर्मों से छूट जायेगा और उसका जीवन सफल हो जायेगा। *परं विजयते श्रीकृष्णसङ्कीर्तनम्।* यह भगवान् रामचन्द्र का आशीष है कि वे इस कलियुग में गौरसुन्दर रूप में प्रकट हुए है।

वनानि नद्यो गिरयो वर्षाणि द्वीपसिन्धवः ।
सर्वे कामदुघा आसन्प्रजानां भरतर्षभ ॥५२॥

शब्दार्थ

वनानि—सारे वन; नद्यः—नदियाँ; गिरयः—पर्वत; वर्षाणि—राज्य या पृथ्वी के विभिन्न भाग; द्वीप—द्वीप; सिन्धवः—सागर; सर्वे—ये सारे; काम-दुघाः—अपने-अपने ऐश्वर्यो से पूरित; आसन्—थे; प्रजानाम्—सारे जीवों का; भरत-ऋषभ—हे भरतवंश में श्रेष्ठ महाराज परीक्षित।

हे भरतश्रेष्ठ महाराज परीक्षित, भगवान् रामचन्द्र के राज में सारे वन, नदियाँ, पर्वत, राज्य, सातों द्वीप तथा सातों समुद्र सारे जीवों को जीवन की आवश्यक वस्तुएँ प्रदान करने के लिए अनुकूल थे।

नाधिव्याधिजराग्लानिदु:खशोकभयक्लमाः ।
मृत्युश्चानिच्छतां नासीद्रामे राजन्यधोक्षजे ॥५३॥

शब्दार्थ

न—नहीं; आधि—आध्यात्मिक, अधिभौतिक तथा अधिदैविक कष्ट (अर्थात् शरीर तथा मन के, अन्य जीवों द्वारा पहुँचाये गये तथा प्रकृति द्वारा प्रदत्त कष्ट); व्याधि—रोग; जरा—बुढ़ापा; ग्लानि—विछोह; दु:ख—कष्ट; शोक—पश्चाताप; भय—डर; क्लमाः—थकावट; मृत्युः—मरण; च—भी; अनिच्छताम्—न चाहने वालों का; न आसीत्—नहीं था; रामे—भगवान् रामचन्द्र के शासन में; राजनि—राजा होने के कारण; अधोक्षजे—भगवान्, जो इस जगत से परे है।

जब भगवान् रामचन्द्र इस जगत के राजा थे तो सारे शारीरिक तथा मानसिक कष्ट, रोग, बुढ़ापा, विछोह, पश्चाताप, दुख, डर तथा थकावट का नामोनिशान न था। यहाँ तक कि न चाहने वालों के लिए मृत्यु भी नहीं थी।

तात्पर्य : इतनी सारी सुविधाएँ इसलिए विद्यमान थीं क्योंकि भगवान् रामचन्द्र सम्पूर्ण जगत के राजा थे। ऐसी ही परिस्थिति इस कलियुग में भी तुरन्त लागू की जा सकती है, भले ही यह युग समस्त युगों में निकृष्ट क्यों न हो। कहा गया है कि—*कलिकाले नामरूपे कृष्ण अवतार*—कृष्णजी इस कलियुग में केवल अपने पवित्र नाम—हरे कृष्ण हरे राम के रूप में अवतरित होते है। यदि हम अपराधरहित होकर कीर्तन करें तो इस युग में राम तथा कृष्ण अब भी उपस्थित है। रामराज्य अत्यधिक लोकप्रिय एवं लाभदायक था और इस कलियुग में भी इस हरे कृष्ण आन्दोलन के प्रसार से वैसी ही परिस्थिति तुरन्त लाई जा सकती है।

एकपत्नीव्रतधरो राजर्षिचरितः शुचिः ।
स्वधर्मं गृहमेधीयं शिक्षयन्स्वयमाचरत् ॥५४॥

शब्दार्थ

एक-पत्नी-व्रत-धरः—दूसरी पत्नी स्वीकार न करने का अथवा किसी अन्य स्त्री से कोई सम्बन्ध न रखने का व्रत लेकर; राज-ऋषि—साधु-राजा की तरह; चरितः—जिसका चरित्र; शुचिः—शुद्ध; स्व-धर्मम्—अपने वृत्तिपरक कार्य को; गृह-मेधीयम्—गृहस्थ जीवन बिताने वाले पुरुषों को; शिक्षयन्—शिक्षा देते हुए (अपने आचरण से); स्वयम्—स्वयं; आचरत्—अपना कर्तव्य निभाया।

भगवान् रामचन्द्र ने एक पत्नी रखने का तथा किसी अन्य स्त्री से सम्बन्ध न रखने का व्रत ले रखा था। वे एक साधु राजा थे और उनका चरित्र उत्तम था; क्रोध उन्हें छू तक नहीं गया था। उन्होंने हर एक को, विशेष रूप से गृहस्थों को वर्णाश्रम धर्म के रूप में सदाचरण का पाठ पढ़ाया। इस तरह उन्होंने अपने निजी कार्यकलापों से सामान्य जनता को शिक्षा दी।

तात्पर्य : श्री रामचन्द्रजी ने एक-पत्नीव्रत का ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत किया। लोगों को एक से अधिक

पत्नी नहीं बनानी चाहिए। उन दिनों लोग एक से अधिक पत्नी से विवाह करते थे। यहाँ तक कि श्री रामचन्द्रजी के पिता के भी एक से अधिक पत्नियाँ थीं, किन्तु भगवान् रामचन्द्र ने आदर्श राजा के रूप में केवल एक पत्नी—सीतादेवी—को स्वीकार किया। जब रावण तथा अन्य राक्षसों के द्वारा सीताजी का अपहरण हो गया था तो भगवान् रामचन्द्र चाहते तो हजारों सीताओं से ब्याह कर सकते थे, किन्तु हमें यह शिक्षा देने के लिए कि वे अपनी पत्नी के प्रति कितने निष्ठावान थे उन्होंने रावण से युद्ध किया और अन्त में उसे मार डाला। उन्होंने रावण को दण्ड दिया और अपनी पत्नी की रक्षा लोगों को यह शिक्षा देने के लिए की कि वे एक-पत्नीव्रत बनें। भगवान् रामचन्द्रजी ने केवल एक पत्नी स्वीकार की और आदर्श चरित्र प्रकट किया। इस तरह उन्होंने गृहस्थों के लिए एक उदाहरण प्रस्तुत किया। गृहस्थों को चाहिए कि भगवान् रामचन्द्र के आदर्श के अनुसार जीवन बितायें जिन्होंने यह दिखलाया कि किस तरह पूर्ण व्यक्ति बना जाय। गृहस्थ होकर या पत्नी तथा बच्चों के साथ रहने की कभी भर्त्सना नहीं की जाती बशर्ते कि वर्णाश्रम धर्म के सिद्धान्तों के अनुसार जीवन व्यतीत किया जाय। जो लोग इन सिद्धान्तों के अनुसार जीवन बिताते है, वे चाहे गृहस्थ हों या ब्रह्मचारी अथवा वानप्रस्थ, सभी समान रूप से महत्त्वपूर्ण है।

प्रेम्णानुवृत्त्या शीलेन प्रश्रयावनता सती ।
भिया ह्रिया च भावज्ञा भर्तुः सीताहरन्मनः ॥५५॥

शब्दार्थ

प्रेम्णा अनुवृत्त्या—प्रेम तथा श्रद्धापूर्वक पति की सेवा करने के कारण; शीलेन—ऐसे उत्तम आचरण के द्वारा; प्रश्रय-अवनता—सदैव पति के प्रति विनीत एवं उसे संतुष्ट करने के लिए तैयार; सती—सती साध्वी; भिया—भयभीत होने के कारण; ह्रिया—लज्जा से; च—भी; भाव-ज्ञा—(पति के) भाव को समझकर; भर्तुः—अपने पति के; सीता—सीतादेवी ने; अहरत्—मोहित कर लिया; मनः—मन को।

सीतादेवी अत्यन्त विनीत, आज्ञाकारिणी, लज्जालु तथा सती थीं और सदा अपने पति के भाव को समझने वाली थीं। इस प्रकार अपने चरित्र एवं प्रेम तथा सेवा से वे भगवान् के मन को पूरी तरह मोह सकीं।

तात्पर्य : जिस तरह भगवान् राम आदर्श पति है (एकपत्नीव्रत) उसी तरह माता सीता आदर्श पत्नी है। ऐसे संयोग से पारिवारिक जीवन अत्यन्त सुखी बन जाता है। *यद् यद् आचरति श्रेष्ठस्तत् तदेवेतरो जनः*—महापुरुष जो भी उदाहरण प्रस्तुत करते है, सामान्य लोग उसी का अनुसरण करते है। यदि राजा, नेता तथा

ब्राह्मण शिक्षक, वैदिक साहित्य से प्राप्त उदाहरण प्रस्तुत करें तो सारा जगत स्वर्ग बन जाये। निस्सन्देह, इस जगत से नारकीय दशाओं का नामोनिशान मिट जाय।

इस प्रकार *श्रीमद्भागवत* के नवम स्कन्ध के अन्तर्गत ''परम भगवान् रामचन्द्र की लीलाएँ'' नामक दसवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter ग्यारह

भगवान् रामचन्द्र का विश्व पर राज्य करना

इस अध्याय में बताया गया है कि भगवान् रामचन्द्र किस तरह अपने छोटे भाइयों सहित अयोध्या में रहे और उन्होंने किस तरह विभिन्न यज्ञों को सम्पन्न किया।

भगवान् रामचन्द्र ने अपनी पूजा करने वाले अनेक यज्ञ सम्पन्न किये और इन यज्ञों के अन्त में उन्होंने होता, अध्वर्यु, उद्‌गाता तथा ब्रह्मा पुरोहितों को दान में भूमि दी। उन्होंने उन्हें क्रमशः पूर्वी, पश्चिमी, उत्तरी तथा दक्षिणी दिशाएँ दे दीं और जो शेष रहा उसे आचार्य को दे दिया। सभी ब्राह्मणों ने भगवान् राम की ब्राह्मणों में श्रद्धा तथा अपने दासों के प्रति उनके वात्सल्य को देखा; अतएव उन्होंने भगवान् की स्तुति की और जो कुछ भी दान में उनसे लिया था उसे लौटा दिया। उन्होंने भगवान् द्वारा दिये गये ज्ञान को हृदय से स्वीकार किया तथा उसे ही पर्याप्त दान समझा। तब भगवान् सामान्य पुरुष का वेश बनाकर अपने प्रति लोगों की धारणा जानने के उद्देश्य से अपनी राजधानी में घूमने लगे। अकस्मात् एक रात उन्होंने एक व्यक्ति को अपनी पत्नी से बातें करते सुना जो पराये पुरुष के घर गई थी। उस व्यक्ति ने अपनी पत्नी को डाँटते हुए सीतादेवी के चरित्र पर सन्देह व्यक्त किया। भगवान् तुरन्त ही घर लौट आये और ऐसे लोकापवादों से डरकर उन्होंने सीतादेवी का संग ऊपरी मन से त्यागने का निश्चय किया। इस तरह उन्होंने सीतादेवी को वनवास दे दिया। वे गर्भिणी थीं अतएव उन्होंने वाल्मीकि मुनि के आश्रम में शरण ली जहाँ उनके जुड़वाँ पुत्र लव तथा कुश उत्पन्न हुए। अयोध्या में लक्ष्मण के दो पुत्र उत्पन्न हुए—अंगद तथा चित्रकेतु। इसी तरह भरत के तक्ष तथा पुष्कल और शत्रुघ्न के भी दो पुत्र सुबाहु तथा श्रुतसेन उत्पन्न हुए। जब भगवान् रामचन्द्र की ओर से भरत विभिन्न देशों पर विजय प्राप्त करने के लिए गये तो वे लाखों गन्धर्वों से लड़े। उन्हें युद्ध में मारकर उन्होंने अपार सम्पत्ति प्राप्त की जिसे वे घर ले आये। शत्रुघ्न ने मधुवन में लवण नामक असुर को मारा और मथुरा को राजधानी बनाया। तभी सीतादेवी अपने दोनों पुत्रों को वाल्मीकि के संरक्षण में छोड़कर पृथ्वी में समा गईं। यह समाचार पाकर रामचन्द्रजी अत्यन्त दुखी हुए और उन्होंने तेरह हजार वर्षों तक यज्ञ किया। इस तरह शुकदेव गोस्वामी भगवान् रामचन्द्र के तिरोधान की लीला का वर्णन करके और यह सिद्ध करके कि भगवान् केवल अपनी लीलाओं के लिए प्रकट होते हैं इस अध्याय का समापन रामचन्द्र के

कार्यकलापों के सुनने का फल बताकर और भगवान् के द्वारा प्रजा की रक्षा तथा अपने भाइयों के प्रति प्रेम-प्रदर्शन के वर्णन से करते हैं।

श्रीशुक उवाच
भगवानात्मनात्मानं राम उत्तमकल्पकैः ।
सर्वदेवमयं देवमीजेऽथाचार्यवान्मखैः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; भगवान्—भगवान्; आत्मना—अपने आप; आत्मानम्—स्वयं को; रामः—रामचन्द्र; उत्तम-कल्पकैः—अत्यन्त श्रेष्ठ साज-सामान से; सर्व-देव-मयम्—सारे देवताओं के आत्मा स्वरूप; देवम्—भगवान् ने स्वयं की; ईजे—पूजा की; अथ—इस प्रकार; आचार्यवान्—आचार्यों के मार्गदर्शन में; मखैः—यज्ञों को सम्पन्न करके।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : तत्पश्चात् भगवान् रामचन्द्र ने एक आचार्य स्वीकार करके श्रेष्ठ साज समान सहित बड़ी धूमधाम से यज्ञ सम्पन्न किये। इस तरह उन्होंने स्वयं ही अपनी पूजा की क्योंकि वे सभी देवताओं के परमेश्वर हैं।

तात्पर्य : *सर्वार्हणम् अच्युतेज्या*—यदि अच्युत पूजे जाते हैं तो हर एक की पूजा हो जाती है। जैसा कि *श्रीमद्भागवत* में (४.३१.१४) में कहा गया है—

यथा तरोर्मूलनिषेचनेन तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः ।
प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या ॥

"जिस तरह वृक्ष की जड़ को सींचने से तना, डालें तथा पत्तियों को जीवनदान मिलता है और जिस तरह उदर को भोजन देने से शरीर की इन्द्रियाँ तथा अंग-प्रत्यंग जीवित रहते हैं उसी प्रकार भगवान् की पूजा से भगवान् के अंश रूप देवता प्रसन्न होते हैं।" यज्ञ सम्पन्न करने का अर्थ है भगवान् की पूजा करना। यहाँ पर भगवान् ने भगवान् की पूजा की। अतएव कहा गया है— *भगवान् आत्मनात्मानम् ईजे*—भगवान् ने अपने द्वारा अपनी पूजा की। किन्तु इससे इस मायावाद दर्शन की पुष्टि नहीं होती जिसके अनुसार मनुष्य अपने को भगवान् मानता है। जीव भगवान् से सदैव भिन्न होता है। विभिन्नांश कभी भी भगवान् नहीं होते यद्यपि कभी-कभी मायावादी भगवान् द्वारा की गई अपनी पूजा का अनुकरण करते हैं। भगवान् कृष्ण हर प्रातः गृहस्थ के रूप में अपने आप का ध्यान करते थे और इसी तरह भगवान् रामचन्द्र ने स्वयं को तुष्ट करने के लिए यज्ञ सम्पन्न किये। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं होता कि सामान्य व्यक्ति *अहंग्रह उपासना* विधि के

अनुसार भगवान् का अनुकरण करे। यहाँ पर ऐसी अवैध पूजा की संस्तुति नहीं की गई।

होत्रेऽददाद्दिशं प्राचीं ब्रह्मणे दक्षिणां प्रभुः ।
अध्वर्यवे प्रतीचीं वा उत्तरां सामगाय सः ॥ २॥

शब्दार्थ

होत्रे—आहुति डालने वाले, होता पुरोहित को; अददात्—दे डाला; दिशम्—दिशा; प्राचीम्—समस्त पूर्व दिशा; ब्रह्मणे—ब्रह्मा पुरोहित को, जो यज्ञशाला में होने वाले कृत्यों का निरीक्षण करता है; दक्षिणाम्—दक्षिण दिशा; प्रभुः—भगवान् रामचन्द्र ने; अध्वर्यवे—अध्वर्यु पुरोहित को; प्रतीचीम्—पश्चिम दिशा; वा—भी; उत्तराम्—उत्तर दिशा; साम-गाय—उद्गाता पुरोहित को जो सामवेद का गान करता है; सः—उन्होंने (रामचन्द्र ने)।

भगवान् रामचन्द्र ने होता पुरोहित को सम्पूर्ण पूर्व दिशा, ब्रह्मा पुरोहित को सम्पूर्ण दक्षिण दिशा, अध्वर्यु पुरोहित को पश्चिम दिशा और सामवेद के गायक उद्गाता पुरोहित को उत्तर दिशा दे दी। इस प्रकार उन्होंने अपना सारा साम्राज्य दे डाला।

आचार्याय ददौ शेषां यावती भूस्तदन्तरा ।
मन्यमान इदं कृत्स्नं ब्राह्मणोऽर्हति निःस्पृहः ॥ ३॥

शब्दार्थ

आचार्याय—आचार्य या गुरु को; ददौ—दे डाला; शेषाम्—शेष बची हुई; यावती—जो भी; भूः—पृथ्वी; तत्-अन्तरा—चारों दिशाओं के बीच में स्थित; मन्यमानः—सोचते हुए; इदम्—यह सब; कृत्स्नम्—पूर्णतया; ब्राह्मणः—ब्राह्मणजन; अर्हति—पाने के योग्य हैं; निःस्पृहः—इच्छा न रखने वाले।

तत्पश्चात् यह सोचकर कि ब्राह्मण लोग निष्काम होते हैं अतएव उन्हें ही सारे जगत का स्वामी होना चाहिए, भगवान् रामचन्द्र ने पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण के बीच की भूमि आचार्य को दे दी।

इत्ययं तदलङ्कारवासोभ्यामवशेषितः ।
तथा राज्ञ्यपि वैदेही सौमङ्गल्यावशेषिता ॥ ४॥

शब्दार्थ

इति—इस तरह से (ब्राह्मणों को सर्वस्व देने के बाद); अयम्—भगवान् रामचन्द्र; तत्—उनके; अलङ्कार-वासोभ्याम्—अपने निजी आभूषणों तथा वस्त्रों सहित; अवशेषितः—शेष; तथा—और; राज्ञी—रानी (सीतादेवी); अपि—भी; वैदेही—राजा विदेह की पुत्री; सौमङ्गल्या—केवल नथुनी से युक्त; अवशेषिता—शेष रही।

ब्राह्मणों को सर्वस्व दान देने के बाद भगवान् रामचन्द्र के पास केवल उनके निजी वस्त्र तथा आभूषण बचे रहे और इसी तरह रानी सीतादेवी के पास उनकी नथुनी के अतिरिक्त कुछ भी शेष नहीं

रहा।

ते तु ब्राह्मणदेवस्य वात्सल्यं वीक्ष्य संस्तुतम् ।
प्रीताः क्लिन्नधियस्तस्मै प्रत्यर्प्येदं बभाषिरे ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

ते—वे होता, ब्रह्मा तथा अन्य पुरोहित; तु—लेकिन; ब्राह्मण-देवस्य—ब्राह्मणों को अत्यन्त प्रेम करने वाले भगवान् रामचन्द्र का; वात्सल्यम्—पितृतुल्य स्नेह; वीक्ष्य—देखकर; संस्तुतम्—स्तुति की; प्रीताः—प्रसन्न होकर; क्लिन्न-धियः—द्रवित हृदय वाले; तस्मै—उनको (रामचन्द्रजी को); प्रत्यर्प्य—लौटाते हुए; इदम्—यह प्राप्त हुई सारी भूमि; बभाषिरे—बोले।

यज्ञकार्य में संलग्न सारे ब्राह्मण भगवान् रामचन्द्र से अत्यधिक प्रसन्न हुए क्योंकि वे ब्राह्मणों के प्रति अत्यन्त वत्सल एवं अनुकूल थे। अतः उन्होंने द्रवित होकर दान में प्राप्त सारी सम्पत्ति उन्हें लौटा दी और इस प्रकार बोले।

तात्पर्य : पिछले अध्याय में कहा जा चुका है कि प्रजा दृढ़ता के साथ वर्णाश्रम धर्म का पालन करती थी। ब्राह्मण लोग ब्राह्मणों की भाँति ठीक तरह से कर्म करते थे और क्षत्रियजन बिल्कुल क्षत्रियों की तरह, इत्यादि। अतएव जब भगवान् रामचन्द्र ने ब्राह्मणों को दान में अपना सर्वस्व दे डाला तो योग्य तथा चतुर ब्राह्मणों ने विचार किया कि ब्राह्मण समुदाय सम्पत्ति प्राप्त करके उससे लाभ कमाने के लिए नहीं बना है। ब्राह्मणों के गुण *भगवद्गीता* (१८.४२) में दिये गये हैं—

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।

ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्॥

"शान्त स्वभाव, आत्मसंयम, तपस्या, शुद्धता, सहनशीलता, ईमानदारी, ज्ञान, बुद्धिमत्ता तथा धार्मिकता—ये गुण हैं जिनके द्वारा ब्राह्मण कर्म करते हैं।" ब्राह्मणों के चरित्र में भूस्वामी बनने तथा प्रजा पर शासन करने के लिए कोई गुंजायश नहीं है—ये तो क्षत्रियों के कर्म हैं। अतएव भले ही ब्राह्मणों ने भगवान् रामचन्द्र द्वारा प्रदत्त दान को अस्वीकार न किया हो, किन्तु स्वीकार करने के बाद उन्होंने उसे राजा को लौटा दिया। ब्राह्मण समुदाय अपने प्रति भगवान् के वात्सल्य से इतना प्रसन्न था कि उनके हृदय द्रवित हो उठे। उन्होंने देखा कि श्रीराम, भगवान् होने के अतिरिक्त, योग्य क्षत्रिय थे और उनका चरित्र आदर्श था। क्षत्रिय का एक गुण है दानशीलता। क्षत्रिय या शासक प्रजा से जो कर वसूल करता है वह अपनी निजी इन्द्रियतृप्ति के लिए नहीं करता अपितु सुपात्रों को दान देने के लिए करता है। *दानम् ईश्वरभावः।* एक ओर क्षत्रियों में

शासन करने की प्रबल प्रवृत्ति रहती है, किन्तु दूसरी ओर वे अत्यन्त उदार दानी होते हैं। जब महाराज युधिष्ठिर दान देते तो वे दान वितरण करने का कार्य कर्ण को सौंपते थे। कर्ण दाता कर्ण के रूप में विख्यात थे। *दाता* शब्द अत्यन्त उदार भाव से दान देने वाले का सूचक है। राजा लोग प्रचुर मात्रा में अन्न का संग्रह करते थे और जब भी अकाल पड़ता तो वे अन्न का दान देते थे। क्षत्रिय का कर्तव्य है कि वह दान दे और ब्राह्मण का कर्तव्य है कि दान ले, किन्तु शरीर-निर्वाह से अधिक मात्रा में नहीं। अतएव जब भगवान् ने ब्राह्मणों को इतनी अधिक भूमि दान में दे दी तो उन्होंने उसे लौटा दिया क्योंकि वे लालची नहीं थे।

अप्रत्तं नस्त्वया किं नु भगवन्भुवनेश्वर ।
यन्नोऽन्तर्हृदयं विश्य तमो हंसि स्वरोचिषा ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

अप्रत्तम्—न दी हुई; नः—हमको; त्वया—आपके द्वारा; किम्—क्या; नु—निस्सन्देह; भगवन्—हे भगवान्; भुवन-ईश्वर—हे सम्पूर्ण जगत के स्वामी; यत्—क्योंकि; नः—हमारा; अन्तः-हृदयम्—हृदय के भीतर; विश्य—प्रवेश कर; तमः—अज्ञान का अंधकार; हंसि—तुम नष्ट करते हो; स्व-रोचिषा—अपने तेज से।

हे प्रभु, आप सारे विश्व के स्वामी हैं। आपने हमें क्या नहीं दिया है? आपने हमारे हृदयों में प्रवेश करके अपने तेज से हमारे अज्ञान के अंधकार को दूर किया है। यही सबसे बड़ा उपहार है। हमें भौतिक दान की आवश्यकता नहीं है।

तात्पर्य : जब ध्रुव महाराज को भगवान् द्वारा वर दिया जा रहा था तो उन्होंने कहा, "हे प्रभु! मैं पूर्णरूपेण संतुष्ट हूँ। मुझे किसी प्रकार के भौतिक वर की आवश्यकता नहीं है।" इसी प्रकार जब प्रह्लाद महाराज को नृसिंहदेव वर दे रहे थे तो उन्होंने भी उसे लेने से मनाकर दिया और यह घोषित किया कि भक्त को उस वणिक अर्थात् बनिये की तरह नहीं होना चाहिए जो किसी लाभ के बदले कोई चीज देता है। जो व्यक्ति किसी लाभ के लिए भक्त बनता है वह शुद्ध भक्त नहीं है। भगवान् सदा से ब्राह्मणों को उनके हृदय में प्रकाश देते रहे हैं। (*सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनम् च*)। चूँकि ब्राह्मण तथा वैष्णव सदा से भगवान् से मार्गदर्शन पाते रहे हैं अतएव वे भौतिक सम्पदा के कभी भी लालची नहीं रहे। जितने से उनका काम चल जाता है, वे उतना ही रखते हैं। वे विस्तृत साम्राज्य की कामना नहीं करते। इसका एक उदाहरण वामनदेव द्वारा प्रस्तुत किया गया था। ब्रह्मचारी के रूप में वामनदेव ने केवल तीन पग भूमि चाही थी। अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिए अधिकाधिक की चाह करना निरा अज्ञान है। ब्राह्मण या वैष्णव के हृदय में

इस अज्ञान का स्पष्ट अभाव रहता है।

नमो ब्रह्मण्यदेवाय रामायाकुण्ठमेधसे ।
उत्तमश्लोकधुर्याय न्यस्तदण्डार्पिताङ्घ्रये ॥ ७॥

शब्दार्थ

नमः—हम सादर नमस्कार करते हैं; ब्रह्मण्य-देवाय—भगवान् को, जो ब्राह्मणों को अपना पूज्यदेव मानते हैं; रामाय—भगवान् रामचन्द्र को; अकुण्ठ-मेधसे—जिनकी स्मृति तथा ज्ञान कभी चिन्ता से ग्रस्त नहीं होते; उत्तमश्लोक-धुर्याय—सुप्रसिद्ध व्यक्तियों में सर्वश्रेष्ठ; न्यस्त-दण्ड-अर्पित-अङ्घ्रये—जिनके चरणकमलों की पूजा दण्ड के क्षेत्र से परे मुनियों द्वारा की जाती है।

हे प्रभु, आप भगवान् हैं और आपने ब्राह्मणों को अपना आराध्य देव स्वीकार किया है। आपका ज्ञान तथा स्मृति कभी चिन्ताग्रस्त नहीं होते। आप इस संसार के सभी विख्यात पुरुषों में प्रमुख हैं और आपके चरणों की पूजा अदण्डनीय मुनियों द्वारा की जाती है। हे भगवान् रामचन्द्र, हम आपको सादर नमस्कार करते हैं।

कदाचिल्लोकजिज्ञासुर्गूढो रात्र्यामलक्षितः ।
चरन्वाचोऽशृणोद्रामो भार्यामुद्दिश्य कस्यचित् ॥ ८॥

शब्दार्थ

कदाचित्—एक बार; लोक-जिज्ञासुः—जनता के विषय में जानने की इच्छा से; गूढः—वेश बदल कर; रात्र्याम्—रात में; अलक्षितः—किसी अन्य द्वारा पहचाने गये बिना; चरन्—घूमते हुए; वाचः—बोली; अशृणोत्—सुनी; रामः—रामचन्द्रजी ने; भार्याम्—अपनी पत्नी को; उद्दिश्य—इंगित करते हुए; कस्यचित्—किसी का।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : एक बार जब भगवान् रामचन्द्र रात्रि में किसी को बताये बिना वेश बदलकर छिपकर अपने विषय में लोगों का अभिमत जानने के लिए घूम रहे थे तो उन्होंने एक व्यक्ति को अपनी पत्नी सीतादेवी के विषय में अनुचित बातें कहते सुना।

नाहं बिभर्मि त्वां दुष्टामसतीं परवेश्मगाम् ।
स्त्रैणो हि बिभृयात्सीतां रामो नाहं भजे पुनः ॥ ९॥

शब्दार्थ

न—न तो; अहम्—मैं; बिभर्मि—भार वहन कर सकता हूँ; त्वाम्—तुम्हारा; दुष्टाम्—दूषित होने के कारण; असतीम्—कुलटा; पर-वेश्म-गाम्—दूसरे पुरुष के घर में जाकर और परपति-गमन करके; स्त्रैणः—पत्नीभक्त, मेहरा; हि—निस्सन्देह; बिभृयात्—स्वीकार कर सकता है; सीताम्—सीता को; रामः—रामचन्द्र जैसा; न—न; अहम्—मैं; भजे—स्वीकार करूँगा; पुनः—दुबारा।

(वह व्यक्ति अपनी कुलटा पत्नी से कह रहा था) तुम दूसरे व्यक्ति के घर जाती हो; अतएव तुम कुलटा तथा दूषित हो। अब मैं और अधिक तुम्हारा भार नहीं वहन कर सकता। भले ही रामचन्द्र

जैसा स्त्रीभक्त पति सीता जैसी पत्नी को स्वीकार कर ले मैं उनकी तरह स्त्रीभक्त नहीं हूँ; अतएव मैं तुम्हें फिर से नहीं रख सकता।

इति लोकाद्बहुमुखाद्दुराराध्यादसंविदः ।
पत्या भीतेन सा त्यक्ता प्राप्ता प्राचेतसाश्रमम् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; लोकात्—व्यक्तियों से; बहु-मुखात्—जो अनेक प्रकार से व्यर्थ की बातें कर सकते हैं; दुराराध्यात्—जिन्हें रोक पाना अत्यन्त कठिन है; असंविदः—पूर्णज्ञान से विहीन; पत्या—पति द्वारा; भीतेन—भयभीत; सा—सीता; त्यक्ता—त्यागी हुई; प्राप्ता—गई; प्राचेतस-आश्रमम्—(वाल्मीकि मुनि) के आश्रम में।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : अल्पज्ञ तथा घृणित चरित्र वाले व्यक्ति अंटशंट बकते रहते हैं। ऐसे धूर्तों के भय से भगवान् रामचन्द्रजी ने अपनी पत्नी सीतादेवी का परित्याग किया यद्यपि वे गर्भिणी थीं। इस तरह सीतादेवी वाल्मीकि मुनि के आश्रम में गईं।

अन्तर्वत्न्यागते काले यमौ सा सुषुवे सुतौ ।
कुशो लव इति ख्यातौ तयोश्चक्रे क्रिया मुनिः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

अन्तर्वत्नी—गर्भिणी स्त्री; आगते—आई; काले—समय से; यमौ—जुड़वाँ; सा—सीतादेवी ने; सुषुवे—जन्म दिया; सुतौ—दो पुत्रों को; कुशः—कुश; लवः—लव; इति—इस प्रकार; ख्यातौ—विख्यात; तयोः—उन दोनों का; चक्रे—सम्पन्न किया; क्रियाः—जातकर्म संस्कार; मुनिः—वाल्मीकि ऋषि ने।

समय आने पर गर्भवती सीतादेवी ने जुड़वाँ पुत्रों को जन्म दिया जो बाद में लव तथा कुश नाम से विख्यात हुए। उनका जातकर्म संस्कार वाल्मीकि मुनि द्वारा सम्पन्न हुआ।

अङ्गदश्चित्रकेतुश्च लक्ष्मणस्यात्मजौ स्मृतौ ।
तक्षः पुष्कल इत्यास्तां भरतस्य महीपते ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

अङ्गदः—अंगद; चित्रकेतुः—चित्रकेतु; च—भी; लक्ष्मणस्य—लक्ष्मणजी के; आत्मजौ—दो पुत्र; स्मृतौ—कहलाये; तक्षः—तक्ष; पुष्कलः—पुष्कल; इति—इस प्रकार; आस्ताम्—थे; भरतस्य—भरतजी के; महीपते—हे राजा परीक्षित।

हे महाराज परीक्षित, लक्ष्मणजी के दो पुत्र हुए जिनके नाम अंगद और चित्रकेतु थे और भरतजी के भी दो पुत्र हुए जिनके नाम तक्ष तथा पुष्कल थे।

सुबाहुः श्रुतसेनश्च शत्रुघ्नस्य बभूवतुः ।
गन्धर्वान्कोटिशो जघ्ने भरतो विजये दिशाम् ।
तदीयं धनमानीय सर्वं राज्ञे न्यवेदयत् ॥ १३ ॥
शत्रुघ्नश्च मधोः पुत्रं लवणं नाम राक्षसम् ।
हत्वा मधुवने चक्रे मथुरां नाम वै पुरीम् ॥ १४॥

शब्दार्थ

सुबाहुः—सुबाहु; श्रुतसेनः—श्रुतसेन; च—भी; शत्रुघ्नस्य—शत्रुघ्न के; बभूवतुः—उत्पन्न हुए; गन्धर्वान्—गन्धर्वों से सम्बन्धित पुरुष, जो अधिकतर कपटी होते हैं; कोटिशः—करोड़ों की संख्या में; जघ्ने—मार डाला; भरतः—भरतजी ने; विजये—विजय करते हुए; दिशाम्—सारी दिशाएँ; तदीयम्—गन्धर्वों का; धनम्—धन; आनीय—लाकर; सर्वम्—हर वस्तु; राज्ञे—राजा (रामचन्द्र) को; न्यवेदयत्—भेंट किया; शत्रुघ्नः—शत्रुघ्न; च—तथा; मधोः—मधु के; पुत्रम्—पुत्र; लवणम्—लवण; नाम—नामक; राक्षसम्—मानवभक्षी को; हत्वा—मारकर; मधुवने—मधुवन नामक जंगल में; चक्रे—बनवाया; मथुराम्—मथुरा को; नाम—नामक; वै—निस्सन्देह; पुरीम्—बड़ा नगर।

शत्रुघ्न के सुबाहु तथा श्रुतसेन नामक दो पुत्र हुए। जब भरतजी सभी दिशाओं को जीतने गये तो उन्हें करोड़ों गन्धर्वों का वध करना पड़ा जो सामान्यतया कपटी होते हैं। उन्होंने उनकी सारी सम्पत्ति छीन ली और उसे लाकर भगवान् रामचन्द्र को अर्पित कर दिया। शत्रुघ्न ने भी लवण नामक एक राक्षस का वध किया जो मधु राक्षस का पुत्र था। इस तरह उन्होंने मधुवन नामक महान् जंगल में मथुरा नामक पुरी की स्थापना की।

मुनौ निक्षिप्य तनयौ सीता भर्त्रा विवासिता ।
ध्यायन्ती रामचरणौ विवरं प्रविवेश ह ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

मुनौ—वाल्मीकि मुनि को; निक्षिप्य—सौंप कर; तनयौ—लव तथा कुश दोनों पुत्र; सीता—सीतादेवी; भर्त्रा—अपने पति द्वारा; विवासिता—वनवास दी गई; ध्यायन्ती—ध्यान करती; राम-चरणौ—भगवान् राम के चरणकमल; विवरम्—पृथ्वी के भीतर; प्रविवेश—प्रवेश कर गई; ह—निस्सन्देह।

अपने पति द्वारा परित्यक्ता सीतादेवी ने अपने दोनों पुत्रों को वाल्मीकि मुनि की देखरेख में छोड़ दिया। तत्पश्चात् भगवान् रामचन्द्र के चरणकमलों का ध्यान करती हुईं वे पृथ्वी में प्रविष्ट हो गईं।

तात्पर्य : सीतादेवी के लिए रामचन्द्र से बिछुड़ कर रह पाना असम्भव था। अतएव वे अपने दोनों पुत्रों को वाल्मीकि मुनि के संरक्षण में छोड़कर पृथ्वी में समा गईं।

तच्छ्रुत्वा भगवान्रामो रुन्धन्नपि धिया शुचः ।
स्मरंस्तस्या गुणांस्तांस्तान्नाशक्नोद्रोद्धुमीश्वरः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

तत्—यह (सीता का पृथ्वी में समाने का संदेश); श्रुत्वा—सुनकर; भगवान्—भगवान्; रामः—रामचन्द्र; रुन्धन्—त्यागने का प्रयत्न करते; अपि—यद्यपि; धिया—बुद्धि से; शुचः—शोक; स्मरन्—स्मरण करते हुए; तस्याः—उसके; गुणान्—गुण; तान् तान्—विभिन्न परिस्थितियों में; न—नहीं; अशक्नोत्—समर्थ था; रोद्धुम्—रोकने के लिए; ईश्वरः—परम नियन्ता होकर भी ।

सीतादेवी के पृथ्वी में प्रविष्ट होने का समाचार सुनकर भगवान् निश्चित रूप से दुखी हुए। यद्यपि वे भगवान् हैं, किन्तु सीतादेवी के महान् गुणों का स्मरण करके वे दिव्य प्रेमवश अपने शोक को रोक न सके।

तात्पर्य : सीतादेवी द्वारा पृथ्वी में प्रवेश करने के समाचार से उत्पन्न भगवान् राम के शोक को भौतिक नहीं मानना चाहिए। आध्यात्मिक जगत में भी विरह-भाव होते हैं, किन्तु ऐसे भावों को आध्यात्मिक आनन्द माना जाता है। वियोग जनित शोक तो ब्रह्म में भी पाया जाता है, किन्तु आध्यात्मिक जगत में ऐसे वियोग-भावों को आनन्दमय माना जाता है। ऐसा भाव *तस्य प्रेमवश्यत्वस्वभाव* का लक्षण माना जाता है और यह ह्लादिनी शक्ति के प्रभाव में रहता है तथा प्रेम द्वारा नियंत्रित होता है। भौतिक जगत में ऐसे वियोग भाव केवल विकृत प्रतिबिम्ब होते हैं।

स्त्रीपुंप्रसङ्ग एतादृक्सर्वत्र त्रासमावहः ।
अपीश्वराणां किमुत ग्राम्यस्य गृहचेतसः ॥ १७॥

शब्दार्थ

स्त्री-पुम्-प्रसङ्गः—पति तथा पत्नी के मध्य अथवा पुरुष तथा स्त्री के मध्य आकर्षण; एतादृक्—इस प्रकार का; सर्वत्र—सभी जगह; त्रासम्-आवहः—भय का कारण; अपि—भी; ईश्वराणाम्—नियन्ताओं का; किम् उत—क्या कहा जाय; ग्राम्यस्य—इस भौतिक जगत के सामान्य मनुष्यों का; गृह-चेतसः—भौतिकतावादी गृहस्थ जीवन के प्रति आसक्त ।

स्त्री तथा पुरुष अथवा नर और मादा के मध्य आकर्षण हर जगह और हर समय पाया जाता है जिससे हर व्यक्ति सदा भयभीत रहता है। यहाँ तक कि ब्रह्मा तथा शिवजी जैसे नियन्ताओं में भी ऐसी भावनाएँ पाई जाती हैं और उनके लिए भी ये भय के कारण हैं। तो फिर उन लोगों के विषय में क्या कहा जाय जो इस भौतिक जगत में गृहस्थ-जीवन के प्रति आसक्त हैं?

तात्पर्य : जैसा कि पहले बताया जा चुका है जब आध्यात्मिक जगत से प्रेम तथा दिव्य आनन्द के अनुभवों का इस जगत में विकृत प्रतिबिम्ब पड़ता है तो वे बन्धन का कारण बन जाते हैं। जब तक इस जगत में पुरुष स्त्रियों के प्रति और स्त्रियाँ पुरुषों के प्रति आकर्षित होती रहेंगी तब तक जन्म-मृत्यु का चक्र चलता रहेगा। किन्तु आध्यात्मिक जगत में जन्म-मृत्यु का कोई भय न होने से ऐसी वियोग की भावनाएँ

दिव्य आनन्द की कारण स्वरूपा हैं। वास्तव में अनुभवों की विविधता होती है, किन्तु वे सब दिव्य आनन्द के समान गुण वाले हैं।

तत ऊर्ध्वं ब्रह्मचर्यं धार्यन्नजुहोत्प्रभुः ।
त्रयोदशाब्दसाहस्त्रमग्निहोत्रमखण्डितम् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; ऊर्ध्वम्—सीता द्वारा पृथ्वी में प्रविष्ट होन के बाद; ब्रह्मचर्यम्—पूर्ण ब्रह्मचर्य; धारयन्—धारण करते हुए; अजुहोत्—यज्ञ किये; प्रभुः—भगवान् रामचन्द्र ने; त्रयोदश-अब्द-साहस्त्रम्—तेरह हजार वर्षों तक; अग्निहोत्रम्—अग्निहोत्र यज्ञ; अखण्डितम्—अनवरत।

सीता द्वारा पृथ्वी में प्रवेश करने के बाद भगवान् रामचन्द्र ने पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन किया और तेरह हजार वर्षों तक वे अनवरत अग्निहोत्र यज्ञ करते रहे।

स्मरतां हृदि विन्यस्य विद्धं दण्डककण्टकैः ।
स्वपादपल्लवं राम आत्मज्योतिरगात्ततः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

स्मरताम्—जो उनका सदैव स्मरण करते हैं उन लोगों के; हृदि—हृदय में; विन्यस्य—रखकर; विद्धम्—चुभा हुआ; दण्डक-कण्टकैः—दण्डकारण्य में लगे काँटों द्वारा (जब रामचन्द्रजी वहाँ रह रहे थे); स्व-पाद-पल्लवम्—अपने चरणकमलों की पंखड़ियाँ; रामः—भगवान् रामचन्द्र ने; आत्म-ज्योतिः—ब्रह्मज्योति नामक उनकी शारीरिक कान्ति की किरणें; अगात्—प्रवेश किया; ततः—ब्रह्मज्योति के परे या अपने वैकुण्ठलोक में।

यज्ञ पूरा कर लेने के बाद दण्डकारण्य में रहते हुए भगवान् रामचन्द्र के जिन चरणकमलों में कभी-कभी काँटे चुभ जाते थे उन चरण-कमलों को उन्होंने उन लोगों के हृदयों में रख दिया जो उनका निरन्तर चिन्तन करते हैं। तत्पश्चात् वे ब्रह्मज्योति से परे अपने धाम वैकुण्ठलोक में प्रविष्ट हुए।

तात्पर्य : भगवान् के चरणकमल सदैव ही भक्तों द्वारा ध्यान करने योग्य हैं। जब रामचन्द्रजी दण्डकारण्य के जंगल में घूमते थे तो कभी-कभी उनके चरणकमलों में काँटे चुभ जाया करते थे। भक्तगण इसे सोचकर मूर्छित हो जाते हैं। भगवान् को इस जगत के किसी कार्य या कारण से किसी प्रकार की पीड़ा या हर्ष का अनुभव नहीं होता, किन्तु भक्तों को सह्य नहीं कि भगवान् के चरणकमलों में एक भी काँटा चुभे। गोपियाँ कृष्ण के विषय में ऐसा ही सोचती थीं, जब जंगल में घूमते हुए उनके पाँवों में कंकड़ तथा बालू के कण चुभ जाते थे। भक्तों के हृदय में उठने वाली पीड़ा को कर्मी, ज्ञानी या योगीजन नहीं समझ सकते। जिन भक्तों को यह सोचना भी सह्य नहीं था कि भगवान् के चरणकमलों में एक काँटा भी गड़े, उन्हें

भगवान् के तिरोधान के बारे में सोचने से उत्पन्न वेदना सहन करनी पड़ी क्योंकि भगवान् को इस जगत में अपनी लीलाएँ समाप्त करके अपने धाम वापस लौटना पड़ा।

आत्मज्योति शब्द महत्त्वपूर्ण है। ब्रह्मज्योति जिसकी प्रशंसा वे ज्ञानी या एकेश्वरवादी दार्शनिक करते हैं जो मुक्ति के लिए उसमें प्रवेश करना चाहते हैं भगवान् के शरीर की किरणों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है—

यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्डकोटि-

कोटिष्वशेषवसुधादिविभूतिभिन्नम् ।

तद्ब्रह्म निष्कलमनन्तमशेषभूतं

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

"मैं उन आदि भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ जो महान् शक्ति से युक्त हैं। उनके दिव्य स्वरूप का प्रखर तेज निर्विशेष ब्रह्म है जो परम, पूर्ण तथा असीम है और जो करोड़ों ब्रह्माण्डों में असंख्य लोकों के रूप में उनके विविध ऐश्वर्यों सहित दृश्य होता है।" (*ब्रह्म-संहिता* ५.४०)। ब्रह्मज्योति आध्यात्मिक जगत की शुरुआत है और इसके परे वैकुण्ठलोक हैं। दूसरे शब्दों में, ब्रह्मज्योति वैकुण्ठलोकों के बाहर रहती है जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश सूर्य से बाहर रहता है। सूर्य में प्रवेश करने के लिए सूर्य के प्रकाश को पार करना होगा। इसी प्रकार जब भगवान् या उनके भक्त वैकुण्ठलोकों में जाते हैं तो उन्हें ब्रह्मज्योति पार करके जाना होता है। ज्ञानी या एकेश्वरवादी दार्शनिक निराकार ब्रह्म की धारणा रखने के कारण वैकुण्ठलोकों में प्रवेश नहीं कर सकते, किन्तु ब्रह्मज्योति में वे सदा के लिए रुके भी नहीं रह सकते। अतएव वे कुछ काल बाद पुनः इस जगत में आ गिरते हैं। आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः (*भागवत* १०.२.३२)। वैकुण्ठलोक ब्रह्मज्योति से घिरे हैं अतएव शुद्ध भक्त के बिना कोई यह ठीक से नहीं समझ सकता कि वैकुण्ठलोक हैं क्या।

नेदं यशो रघुपतेः सुरयाच्ञयात्त-
लीलातनोरधिकसाम्यविमुक्तधाम्नः ।
रक्षोवधो जलधिबन्धनमस्त्रपूगैः

किं तस्य शत्रुहनने कपयः सहायाः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; इदम्—ये सब; यशः—यश; रघु-पतेः—भगवान् रामचन्द्र का; सुर-याच्ञया—देवताओं की स्तुतियों के द्वारा; आत्त-लीला-तनोः—जिनका आध्यात्मिक शरीर सदैव विभिन्न लीलाओं में लगा रहता है; अधिक-साम्य-विमुक्त-धाम्नः—कोई न तो उनके तुल्य है, न उनसे बढ़कर है; रक्षः-वधः—राक्षस (रावण) वध; जलधि-बन्धनम्—समुद्र पर पुल बाँधना; अस्त्र-पूगैः—धनुष बाण के द्वारा; किम्—क्या; तस्य—उसका; शत्रु-हनने—शत्रुओं का वध करने में; कपयः—सारे बन्दर; सहायाः—सहायक।

विभिन्न लीलाओं में सदैव संलग्न दिव्य देहधारी भगवान् रामचन्द्र का वास्तविक यश इसमें नहीं है कि उन्होंने देवताओं के आग्रह पर बाणों की वर्षा करके रावण का वध किया और समुद्र पर सेतु का निर्माण किया। न तो कोई भगवान् रामचन्द्र के तुल्य है न उनसे बढ़कर; अतएव उन्हें रावण पर विजय प्राप्त करने में वानरों से कोई सहायता लेने की आवश्यकता नहीं थी।

तात्पर्य : वेदों में कहा गया है (*श्वेताश्वतर उपनिषद* ६.८)—

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते

न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते

स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥

''भगवान् को कुछ भी नहीं करना होता और कोई भी न तो उनके तुल्य है न उनसे बढ़कर है क्योंकि उनकी विविध शक्तियों के द्वारा ही सब सहज भाव से और व्यवस्थित रूप से घटित होता है।'' भगवान् को कुछ भी नहीं करना पड़ता (*न तस्य कार्यं करणं च विद्यते*)—वे जो भी करते हैं वह उनकी लीला है। भगवान् को किसी के अधीन रहकर कुछ भी कार्य नहीं करना पड़ता। फिर भी वे अपने भक्तों की रक्षा करने अथवा अपने शत्रुओं का वध करने के लिए प्रकट होते हैं। निस्सन्देह, भगवान् का कोई शत्रु नहीं हो सकता क्योंकि उनसे बढ़कर कौन अधिक शक्तिमान हो सकता है? अतएव किसी के उनके शत्रु होने का प्रश्न ही नहीं उठता, किन्तु जब उन्हें लीलाओं का आनन्द लेना होता है तो वे इस भौतिक जगत में अवतरित होते हैं और मनुष्य की भाँति कर्म करते हैं और इस तरह अपने भक्तों को प्रसन्न करने के लिए अद्भुत महिमामय कार्यकलाप करते हैं। उनके भक्त उन्हें विविध कार्यों में सदा विजयी होते देखना चाहते हैं, अतएव स्वयं को तथा भक्तों को प्रसन्न करने के लिए भगवान् कभी-कभी मनुष्य की भाँति कर्म करने के लिए राजी होते हैं और भक्तों को सन्तुष्ट करने के लिए अद्भुत असाधारण लीलाएँ करते हैं।

यस्यामलं नृपसद:सु यशोऽधुनापि
गायन्त्यघघ्नमृषयो दिगिभेन्द्रपट्टम् ।
तं नाकपालवसुपालकिरीटजुष्ट-
पादाम्बुजं रघुपतिं शरणं प्रपद्ये ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

यस्य—जिसका (रामचन्द्र का); अमलम्—निष्कलंक, भौतिक गुणों से रहित; नृप-सद:सु—महाराज युधिष्ठिर जैसे सम्राटों की सभा में; यश:—ख्याति; अधुना अपि—आज भी; गायन्ति—गायन करते हैं; अघ-घ्नम्—सारे पापों को दूर करने वाला; ऋषय:—मार्कण्डेय जैसे ऋषिगण; दिक्-इभ-इन्द्र-पट्टम्—दिग्विजय करने वाले हाथी के ऊपर पड़ा अलंकृत झूल; तम्—उस; नाक-पाल—स्वर्ग के देवताओं के; वसु-पाल—पृथ्वी के राजाओं के; किरीट—मुकुटों द्वारा; जुष्ट—पूजा किये जाते हैं; पाद-अम्बुजम्—जिनके चरणकमल; रघु-पतिम्—भगवान् रामचन्द्र की; शरणम्—शरण में; प्रपद्ये—जाता हूँ।

भगवान् रामचन्द्र का निर्मल नाम तथा यश सारे पापों के फलों को नष्ट करने वाला है। सारी दिशाओं में वह उसी तरह विख्यात है जिस तरह समस्त दिशाओं पर विजय पाने वाले हाथी का लटकता अलंकृत झूल हो। मार्कण्डेय ऋषि जैसे महान् साधु पुरुष अब भी महाराज युधिष्ठिर जैसे सम्राटों की सभाओं में उनके गुणों का गान करते हैं। इसी तरह सारे ऋषि तथा देवता, जिनमें शिवजी तथा ब्रह्माजी भी सम्मिलित हैं, अपने-अपने मुकुटों को झुकाकर भगवान् की पूजा करते हैं। उन भगवान् के चरणकमलों को मैं नमस्कार करता हूँ।

स यै: स्पृष्टोऽभिदृष्टो वा संविष्टोऽनुगतोऽपि वा ।
कोसलास्ते ययु: स्थानं यत्र गच्छन्ति योगिन: ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

स:—वे, भगवान् रामचन्द्र; यै:—जिन पुरुषों के द्वारा; स्पृष्ट:—स्पर्श किया गया; अभिदृष्ट:—देखा गया; वा—या तो; संविष्ट:—साथ भोजन और शयन करते हुए; अनुगत:—नौकरों की भाँति पीछे-पीछे चलते हुए; अपि वा—भी; कोसला:—कोसलवासी; ते—वे; ययु:—चले गये; स्थानम्—स्थान को; यत्र—जहाँ; गच्छन्ति—जाते हैं; योगिन:—सारे भक्तियोगी।

भगवान् रामचन्द्र अपने धाम को लौट आये जहाँ भक्तियोगी जाते हैं। यही वह स्थान है जहाँ अयोध्या के सारे निवासी भगवान् को उनकी प्रकट लीलाओं में नमस्कार करके, उनके चरणकमलों का स्पर्श करके, उन्हें पितृतुल्य राजा मानकर, उनकी बराबरी में बैठकर या लेटकर या मात्र उनके साथ रहकर, उनकी सेवा करने के बाद वापस गये।

तात्पर्य : भगवान् *भगवद्गीता* (४.९) कहते हैं—

जन्म कर्म च मे दिव्यम् एवं यो वेत्ति तत्त्वत: ।

त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥

''जो मेरे प्राकट्य की दिव्य प्रकति तथा मेरे कार्यकलापों को जानता है वह इस शरीर को त्यागने के बाद इस भौतिक जगत में फिर से जन्म नहीं लेता अपितु हे अर्जुन! वह मेरे नित्य धाम को प्राप्त होता है।'' यहाँ इसकी पुष्टि हुई है। अयोध्या के सारे निवासी, जिन्होंने प्रजा के रूप में भगवान् रामचन्द्र का दर्शन किया, दास रूप में उनकी सेवा की, उनके साथ मित्र या अन्य रूप में बैठे-बोले या उनके शासनकाल में उपस्थित थे वे सभी भगवद्धाम वापस गये। जिस भक्त की भक्ति पूर्ण होती है वह इस शरीर को त्यागकर उस विशेष ब्रह्माण्ड में प्रवेश करता है जहाँ भगवान् रामचन्द्र या भगवान् कृष्ण अपनी लीलाओं में व्यस्त रहते हैं। तब उस प्रकट लीला में विभिन्न पदों पर रहकर भगवान् की सेवा करना सीखकर भक्त अन्त में सनातन धाम पहुँचता है। *भगवद्गीता* में इस सनातन धाम का भी उल्लेख मिलता है (*परस्तस्मात्तु भावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात् सनातनः*)। जो भगवान् की नित्य लीलाओं में प्रवेश पा जाता है वह *नित्य-लीला-प्रविष्ट* कहलाता है। यह स्पष्ट तौर पर समझने के लिए कि रामचन्द्रजी वापस क्यों गये, यहाँ यह उल्लेख हुआ है कि वे उस विशेष स्थान को गये जहाँ भक्तियोगी जाते हैं। निर्विशेषवादी *श्रीमद्भागवत* के कथन से इस भ्रम में पड़ जाते हैं कि इसका अर्थ यह है कि भगवान् अपने ही तेज में प्रविष्ट हुए; अतएव वे निराकार हो जाते हैं। किन्तु भगवान् तो पुरुष हैं और उनके भक्त भी पुरुष हैं। निस्सन्देह, सारे जीव भी भगवान् के समान भूतकाल में पुरुष थे, वर्तमान काल में भी पुरुष हैं और इस शरीर को त्यागने पर भी पुरुष बने रहेंगे। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* में भी हुई है।

पुरुषो रामचरितं श्रवणैरुपधारयन् ।
आनृशंस्यपरो राजन्कर्मबन्धैर्विमुच्यते ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

पुरुषः—कोई व्यक्ति; राम-चरितम्—भगवान् रामचन्द्र के कार्यकलापों से सम्बन्धित कथा को; श्रवणैः—कानों से; उपधारयन्—श्रवण करके; आनृशंस्य-परः—ईर्ष्या से पूरी तरह मुक्त हो जाता है; राजन्—हे राजा परीक्षित; कर्म-बन्धैः—कर्म के बन्धन से; विमुच्यते—मुक्त हो जाता है।

हे राजा परीक्षित, जो भी व्यक्ति भगवान् रामचन्द्र के गुणों से सम्बन्धित कथाओं को कानों से सुनता है वह अन्ततोगत्वा ईर्ष्या के रोग से मुक्त हो जायेगा और फलस्वरूप कर्मबन्धन से छूट जायेगा।

तात्पर्य : इस जगत में हर व्यक्ति किसी न किसी से ईर्ष्या करता है। यहाँ तक कि धार्मिक जीवन में भी यदि कोई भक्त आध्यात्मिक कार्यों में आगे बढ़ चुका होता है तो अन्य भक्त उससे ईर्ष्या करने लगते हैं। ऐसा ईर्ष्यालु भक्त जन्म-मृत्यु के कारण से पूर्णतया मुक्त नहीं हो पाता। जब तक कोई जन्मन्मरण के बन्धन से पूर्णतया मुक्त नहीं ही जाता, तब तक वह सनातन धाम में प्रविष्ट नहीं हो सकता। देह की उपाधियों से प्रभावित होकर मनुष्य ईर्ष्यालु बनता है, किन्तु मुक्त भक्त को शरीर से कुछ भी लेना-देना नहीं रहता; अतएव वह दिव्य पद पर पूर्णतया स्थित रहता है। भक्त किसी से भी ईर्ष्या नहीं करता, यहाँ तक कि अपने शत्रु से भी नहीं। चूँकि भक्त यह जानता है कि भगवान् उसके परम रक्षक हैं अतएव वह सोचता है, ''तथाकथित शत्रु मेरा क्या बिगाड़ सकता है।'' इस तरह भक्त अपनी सुरक्षा के बारे में आश्वस्त रहता है। भगवान् कहते हैं—*ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्*—जो जिस अनुपात में मेरी शरण में आता है उसी के अनुसार मैं उसकी रक्षा करता हूँ। अतएव भक्त को पूर्णतया ईर्ष्याविहीन होना चाहिए और विशेष रूप से अन्य भक्तों से। उन से ईष्या करना महान् अपराध है और यह वैष्णव अपराध कहलाता है। जो भक्त निरन्तर श्रवण-कीर्तन में लगा रहता है वह निश्चित रूप से ईर्ष्या-रोग से मुक्त हो जाता है और इस तरह भगवद्धाम जाने का पात्र बन जाता है।

श्रीराजोवाच

कथं स भगवान्रामो भ्रातृन्वा स्वयमात्मनः ।
तस्मिन्वा तेऽन्ववर्तन्त प्रजाः पौराश्च ईश्वरे ॥ २४॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—महाराज परीक्षित ने पूछा; कथम्—कैसे; सः—उन; भगवान्—भगवान्; रामः—रामचन्द्र ने; भ्रातृन्—भाइयों (लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न) के प्रति; वा—अथवा; स्वयम्—स्वयं; आत्मनः—अपना विस्तार; तस्मिन्—भगवान् के प्रति; वा—अथवा; ते—उन (निवासी तथा भाइयों ने); अन्ववर्तन्त—बर्ताव किया; प्रजाः—सारे निवासियों; पौराः—नागरिकों ने; च—तथा; ईश्वरे—भगवान् के प्रति।

महाराज परीक्षित ने शुकदेव गोस्वामी से पूछा: भगवान् ने स्वयं किस तरह का बर्ताव किया और अपने विस्तार (अंश) स्वरूप अपने भाइयों के साथ कैसा बर्ताव किया? और उनके भाइयों ने तथा अयोध्यावासियों ने उनके साथ कैसा बर्ताव किया?

श्रीबादरायणिरुवाच

अथादिशद्दिग्विजये भ्रातृंस्त्रिभुवनेश्वरः ।
आत्मानं दर्शयन्स्वानां पुरीमैक्षत सानुगः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

श्री-बादरायणिः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; अथ—तत्पश्चात् (भरत के आग्रह पर भगवान् के सिंहासनारूढ़ होने पर); आदिशत्—आज्ञा दी; दिक्-विजये—सारे संसार को जीतने के लिए; भ्रातॄन्—अपने छोटे भाइयों को; त्रि-भुवन-ईश्वरः—ब्रह्माण्ड के स्वामी ने; आत्मानम्—स्वयं; दर्शयन्—दर्शन देते हुए; स्वानाम्—अपने परिजनों तथा नागरिकों को; पुरीम्—नगरी को; ऐक्षत—निरीक्षण किया; स-अनुगः—अपने सहायकों के साथ।

शुकदेव गोस्वामी ने उत्तर दिया: अपने छोटे भाई भरत के आग्रह पर राजसिंहासन स्वीकार करने के बाद भगवान् रामचन्द्र ने अपने छोटे भाइयों को आदेश दिया कि वे बाहर जाकर सारे विश्व को जीतें जबकि वे स्वयं राजधानी में रहकर सारे नागरिकों तथा प्रासाद के वासियों को दर्शन देते रहे तथा अपने अन्य सहायकों के साथ राजकाज की निगरानी करते रहे।

तात्पर्य : भगवान् अपने किसी भक्त या सहायक को इन्द्रियतृप्ति में तल्लीन रहने की अनुमति नहीं देते। भगवान् रामचन्द्रजी के छोटे भाई महल में भगवान् के दर्शनों का आनन्द ले रहे थे, किन्तु भगवान् ने उन्हें आदेश दिया कि वे बाहर जाकर सारे विश्व को जीतें। ऐसी प्रथा थी(और आज भी कहीं-कहीं है) कि अन्य सारे राजा सम्राट की श्रेष्ठता स्वीकार करें। यदि किसी छोटे राज्य का राजा सम्राट की श्रेष्ठता को स्वीकार नहीं करता था तो युद्ध होता था और उसे सम्राट की अधीनता स्वीकार करनी होती थी अन्यथा सम्राट के द्वारा पूरे देश में शासन चला पाना सम्भव नहीं हो सकता था।

भगवान् रामचन्द्र ने अपने भाइयों को बाहर जाने के लिए आज्ञा देकर उनके साथ दया दिखलाई। वृन्दावन में रहने वाले अनेक भगवद्भक्तों ने व्रत ले रखा है कि वे कृष्णभावनामृत का प्रचार करने के लिए वृन्दावन नहीं छोड़ेंगे। किन्तु भगवान् का कहना है कि कृष्णभावनामृत सारे विश्व में प्रत्येक गाँव और प्रत्येक नगर में प्रसारित हो। भगवान् चैतन्य महाप्रभु का यह खुला आदेश है—

पृथिवीते आछे यत नगरादि ग्राम

सर्वत्र प्रचार हैबे मोर नाम

अतएव शुद्ध भक्त को भगवान् के आदेश का पालन करना चाहिए न कि एक ही स्थान में बंधे रहकर इन्द्रिय-तृप्ति में लगे रहना चाहिए और यह सोचकर गर्वित नहीं होना चाहिए कि वह वृन्दावन नहीं छोड़ेगा और एकान्त में कीर्तन करेगा और वह महान् भक्त बन जाएगा। भक्त को तो भगवान् के आदेश को पूरा

करना चाहिए। चैतन्य महाप्रभु ने कहा है—*यारे देख, तारे कह 'कृष्ण'-उपदेश।* अतएव हर एक भक्त को चाहिए कि वह जिस किसी से भी मिले उससे भगवान् का आदेश मानने को कहे और इस प्रकार उपदेश द्वारा कृष्णभावनामृत का प्रसार करे। भगवान् कहते हैं—*सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज*—सारे धर्मों को त्यागकर केवल मेरी शरण ग्रहण करो। यही भगवान् का आदेश है। हर एक को इस आदेश को मानना चाहिए क्योंकि यह दिग्विजय है। प्रत्येक सैनिक अर्थात् भक्त का यह धर्म है कि वह हर एक पर इस जीवन-दर्शन को ग्रहण करने के लिए जोर डाले।

निस्सन्देह, जो कनिष्ठ अधिकारी हैं वे उपदेश नहीं देते, किन्तु भगवान् उन पर भी कृपादृष्टि डालते हैं जैसे कि भगवान् ने अयोध्या में स्वयं ठहरकर लोगों को अपना दर्शन दिया। किसी को गल्ती से यह नहीं सोचना चाहिए कि भगवान् ने अपने भाइयों को अयोध्या छोड़ने के लिए आज्ञा इसलिए दी क्योंकि वे प्रजा पर विशेष कृपालु थे। भगवान् हर एक पर दयालु हैं और वे जानते हैं कि हर व्यक्ति पर उसकी क्षमता के अनुसार किस प्रकार दया की जाय। जो व्यक्ति भगवान् के आदेश का पालन करता है वह शुद्ध भक्त है।

आसिक्तमार्गां गन्धोदैः करिणां मदशीकरैः ।
स्वामिनं प्राप्तमालोक्य मत्तां वा सुतरामिव ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

आसिक्त-मार्गाम्—सड़कें सींची गई थीं; गन्ध-उदैः—सुगन्धित जल से; करिणाम्—हाथियों के; मद-शीकरैः—सुगन्धित तरल की बूँदों से; स्वामिनम्—स्वामी को; प्राप्तम्—उपस्थित; आलोक्य—साक्षात् देखकर; मत्ताम्—अत्यन्त ऐश्वर्यशाली; वा—अथवा; सुतराम्—अत्यधिक; इव—मानो।

भगवान् रामचन्द्र के शासन काल में अयोध्या की सड़कें सुगन्धित जल से तथा हाथियों द्वारा अपनी सूँडों से फेंके गये सुगन्धित तरल की बूँदों से सींची जाती थीं। जब नागरिकों ने देखा कि भगवान् स्वयं ही इतने वैभव के साथ शहर के मामलों की देखरेख कर रहे हैं तो उन्होंने इस वैभव की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

तात्पर्य : हमने रामचन्द्रजी के शासनकाल में रामराज्य के वैभव के विषय में सुन रखा है। यहाँ पर भगवान् के राज्य-वैभव का एक उदाहरण प्रस्तुत है। अयोध्या की सड़कें न केवल बुहारी जाती थीं वरन् सुगन्धित जल तथा हाथी की सूँडों द्वारा छिड़के गये सुगन्धित तरल से सींची जाती थीं। उस समय छिड़काव करने वाले यंत्रों की जरूरत नहीं पड़ती थी क्योंकि हाथियों में जल को अपनी सूंड में भरकर छिड़कने की

सहज शक्ति पाई जाती है। हम इसी एक उदाहरण से शहर के वैभव का पता लगा सकते हैं। इसे वास्तव में सुगंधित जल से छिड़का जाता था। यही नहीं, नागरिकों को भगवान् द्वारा राज्य के सारे मामलों की स्वयं निगरानी करते देखने का सौभाग्य प्राप्त था। वे आलसी सम्राट न थे, जैसा कि हम उनके कार्यों से देखते हैं कि राजधानी से दूर के मामलों की देखरेख करने तथा जो सम्राट के आदेशों का पालन न करे उसे दण्ड देने के लिए उन्होंने भाइयों को भेज रखा था। यह दिग्विजय कहलाती है। नागरिकों को शान्त जीवन बिताने की सारी सुविधाएँ प्राप्त थीं और वे वर्णाश्रम धर्म के अनुसार समुचित लक्षणों से सम्पन्न थे। जैसा कि हम पिछले अध्याय में देख चुके हैं—*वर्णाश्रम गुणान्विताः*—नागरिकों को वर्णाश्रम प्रणाली के अनुसार प्रशिक्षण प्राप्त था। लोगों का एक वर्ग ब्राह्मण था, एक अन्य वर्ग क्षत्रिय था, एक तीसरा वर्ग वैश्यों का था और चौथा वर्ग शूद्रों का था। ऐसे वैज्ञानिक विभाजन के बिना अच्छी नागरिकता का प्रश्न ही नहीं उठता। राजा उदार तथा कर्तव्यपरायण होने के कारण अनेक यज्ञ करता था और प्रजा को पुत्रवत् मानता था। नागरिक भी वर्णाश्रम प्रणाली में प्रशिक्षित होने से अत्यन्त आज्ञाकारी एवं सुसंयमित थे। सम्पूर्ण राजतंत्र इतना वैभवशाली तथा शान्त था कि सरकार सड़कों पर भी सुगन्धित जल का छिड़काव करा सकती थी, अन्य व्यवस्था की बात तो छोड़ दें। चूँकि सारी नगरी में सुगंधित जल से छिड़काव हुआ था, अतएव हम अनुमान लगा सकते हैं कि अन्य मामलों में वह कितनी वैभवशाली थी। तो भला भगवान् रामचन्द्र के राज्य में लोग सुखी क्यों न रहे होंगे!

प्रासादगोपुरसभाचैत्यदेवगृहादिषु ।
विन्यस्तहेमकलशैः पताकाभिश्च मण्डिताम् ॥ २७॥

शब्दार्थ

प्रासाद—महल; गोपुर—महल के द्वार; सभा—सभाभवन; चैत्य—चबूतरे; देव-गृह—मन्दिर जहाँ अर्चाविग्रहों की पूजा की जाती है; आदिषु—इत्यादि में; विन्यस्त—रखे; हेम-कलशैः—सुनहरे जल पात्रों सहित; पताकाभिः—झंडियों से; च—भी; मण्डिताम्—अलंकृत।

सारे महल, महलों के द्वार, सभाभवन, चबूतरे, मन्दिर तथा अन्य ऐसे स्थान सुनहरे जलपात्रों (कलशों) से सजाये और विभिन्न प्रकार की झंडियों से अलंकृत किये जाते थे।

पूगैः सवृन्तै रम्भाभिः पट्टिकाभिः सुवाससाम् ।

आदर्शैरंशुकैः स्रग्भिः कृतकौतुकतोरणाम् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

पूगैः—सुपारी के पेड़ों से; स-वृन्तैः—फूलों तथा फलों के गुच्छों से; रम्भाभिः—केले के वृक्षों से; पट्टिकाभिः—पताकाओं से; सु-वाससाम्—रंगीन वस्त्र से सुसज्जित; आदर्शैः—शीशों से; अंशुकैः—वस्त्रों से; स्रग्भिः—मालाओं से; कृत-कौतुक—शुभ बनाये गये; तोरणाम्—स्वागत द्वारों से युक्त।

जहाँ कहीं भगवान् रामचन्द्र जाते, वहीं केले के वृक्षों तथा फल-फूलों से युक्त सुपारी के वृक्षों से स्वागत-द्वार बनाये जाते थे। इन द्वारों को रंगबिरंगे वस्त्र से बनी पताकाओं, बन्दनवारों, दर्पणों तथा मालाओं से सजाया जाता था।

तमुपेयुस्तत्र तत्र पौरा अर्हणपाणयः ।
आशिषो युयुजुर्देव पाहीमां प्राक्त्वयोद्धृताम् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

तम्—उनके; उपेयुः—पास गये; तत्र तत्र—जहाँ भी वे गये; पौराः—पड़ोस के निवासी; अर्हण-पाणयः—भगवान् के पूजन की सामग्री लिये; आशिषः—भगवान् से प्राप्त आशीर्वाद; युयुजुः—नीचे आया; देव—हे प्रभु; पाहि—पालन कीजिए; इमाम्—इस भूमि को; प्राक्—पहले की तरह; त्वया—आपके द्वारा; उद्धृताम्—रक्षा की गई (वराह अवतार लेकर समुद्र के नीचे से निकाला)।

भगवान् रामचन्द्र जहाँ कहीं भी जाते, लोग पूजा की सामग्री लेकर उनके पास पहुँचते और उनके आशीर्वाद की याचना करते। वे कहते, ''हे प्रभु, जिस प्रकार आपने अपने सूकर अवतार में समुद्र के नीचे से पृथ्वी का उद्धार किया, उसी तरह अब आप उसका पालन करें। हम आपसे यही आशीष माँगते हैं।''

ततः प्रजा वीक्ष्य पतिं चिरागतं
दिदृक्षयोत्सृष्टगृहाः स्त्रियो नराः ।
आरुह्य हर्म्याण्यरविन्दलोचन-
मतृप्तनेत्राः कुसुमैरवाकिरन् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; प्रजाः—प्रजा; वीक्ष्य—देखकर; पतिम्—राजा को; चिर-आगतम्—दीर्घकाल के बाद आया हुआ; दिदृक्षया—देखने की इच्छा से; उत्सृष्ट-गृहाः—अपने-अपने घरों को त्यागकर; स्त्रियः—स्त्रियाँ; नराः—पुरुषगण; आरुह्य—चढ़कर; हर्म्याणि—विशाल महलों की छत पर; अरविन्द-लोचनम्—कमल की पँखुड़ी जैसे नेत्रों वाले भगवान् रामचन्द्र को; अतृप्त-नेत्राः—अतृप्त नेत्रों से; कुसुमैः—फूलों से; अवाकिरन्—भगवान् पर वर्षा की।

तत्पश्चात्, दीर्घकाल से भगवान् का दर्शन न किये रहने से, नर तथा नारी उन्हें देखने के लिए अत्यधिक उत्सुक होकर अपने-अपने घरों को त्यागकर महलों की छतों पर चढ़ गये। कमलनयन भगवान् रामचन्द्र के मुखमण्डल का दर्शन करके न अघाने के कारण वे उन पर फूलों की वर्षा करने

लगे।

अथ प्रविष्टः स्वगृहं जुष्टं स्वैः पूर्वराजभिः ।
अनन्ताखिलकोषाढ्यमनर्घ्योरुपरिच्छदम् ॥ ३१ ॥
विद्रुमोदुम्बरद्वारैर्वैदूर्यस्तम्भपङ्क्तिभिः ।
स्थलैर्मारकतैः स्वच्छैर्भ्राजत्स्फटिकभित्तिभिः ॥ ३२ ॥
चित्रस्त्रग्भिः पट्टिकाभिर्वासोमणिगणांशुकैः ।
मुक्ताफलैश्चिदुल्लासैः कान्तकामोपपत्तिभिः ॥ ३३ ॥
धूपदीपैः सुरभिभिर्मण्डितं पुष्पमण्डनैः ।
स्त्रीपुम्भिः सुरसङ्काशैर्जुष्टं भूषणभूषणैः ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात्; प्रविष्टः—उन्होंने प्रवेश किया; स्व-गृहम्—अपने महल में; जुष्टम्—भरा हुआ; स्वैः—अपने परिजनों से; पूर्व-राजभिः—राजकुल में पूर्ववर्ती सदस्यों से; अनन्त—असीम; अखिल—सर्वत्र; कोष—खजाना; आढ्यम्—सम्पन्न; अनर्घ्य—अमूल्य; उरु—उच्च; परिच्छदम्—साज-सामान; विद्रुम—मूँगे का; उदुम्बर-द्वारैः—दरवाजे के दोनों पार्श्वों सहित; वैदूर्य-स्तम्भ—वैदूर्यमणि के बने ख भों से; पङ्क्तिभिः—पंक्तिबद्ध; स्थलैः—फर्शों से; मारकतैः—मरकत मणि से बने; स्वच्छैः—स्वच्छ, पालिश किये; भ्राजत्—चमचमाते; स्फटिक—संगमरमर; भित्तिभिः—नीवों से; चित्र-स्त्रग्भिः—नाना प्रकार की फूल मालाओं से; पट्टिकाभिः—झंडियों से; वासः—वस्त्र; मणि-गण-अंशुकैः—विविध तेजयुक्त तथा मूल्यवान मणियों से; मुक्ता-फलैः—मोतियों से; चित्-उल्लासैः—मन के आनन्द को बढ़ाने वाले; कान्त-काम—इच्छा को पूरी करने वाले; उपपत्तिभिः—ऐसे साज-सामान से; धूप-दीपैः—धूप तथा दीप से; सुरभिभिः—अत्यन्त सुगन्धित; मण्डितम्—सुसज्जित; पुष्प-मण्डनैः—फूलों के गुच्छों से; स्त्री-पुम्भिः—स्त्रियों तथा पुरुषों से; सुर-सङ्काशैः—देवताओं की तरह लगने वाले; जुष्टम्—से पूर्ण; भूषण-भूषणैः—जिनके शरीर आभूषणों को सुन्दर बना रहे थे।

तत्पश्चात् भगवान् रामचन्द्र अपने पूर्वजों के महल में गये। इस महल के भीतर विविध खजाने तथा मूल्यवान अल्मारियाँ थीं। प्रवेश द्वार के दोनों ओर की बैठकें मूँगे से बनी थीं, आँगन वैदूर्यमणि के ख भों से घिरा था, फर्श अत्यधिक पालिश की हुई मरकतमणि से बनी थी और नींव संगमरमर की बनी थी। सारा महल झंडियों तथा मालाओं से सजाया गया था एवं मूल्यवान, चमचमाते मणियों से अलंकृत किया गया था। महल पूरी तरह मोतियों से सजाया गया था और धूप-दीप से घिरा था। महल के भीतर के स्त्री-पुरुष देवताओं के समान थे और वे विविध आभूषणों से अलंकृत थे। ये आभूषण उनके शरीरों में पहने जाने के कारण सुन्दर लग रहे थे।

तस्मिन्स भगवान्रामः स्निग्धया प्रिययेष्टया ।
रेमे स्वारामधीराणामृषभः सीतया किल ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

तस्मिन्—उस महल में; सः—वह; भगवान्—भगवान्; रामः—रामचन्द्र; स्निग्धया—सदैव उसके व्यवहार से प्रसन्न होकर; प्रियया इष्टया—अपनी सर्व-प्रिय पत्नी समेत; रेमे—भोग किया; स्व-आराम—निजी आनन्द; धीराणाम्—महान् विद्वज्जनों का; ऋषभः—प्रमुख; सीतया—सीता सहित; किल—निस्सन्देह।

श्रेष्ठ विद्वान पंडितों में अग्रणी भगवान् रामचन्द्र ने उस महल में अपनी ह्लादिनी शक्ति सीतादेवी के साथ निवास किया और पूर्ण शान्ति का भोग किया।

बुभुजे च यथाकालं कामान्धर्ममपीडयन् ।
वर्षपूगान्बहून्नृणामभिध्याताङ्घ्रिपल्लवः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

बुभुजे—भोग किया; च—भी; यथा-कालम्—जब तक चाहा; कामान्—सारे भोग; धर्मम्—धर्म; अपीडयन्—उल्लंघन किये बिना; वर्ष-पूगान्—वर्षों की अवधि; बहून्—अनेक; नृणाम्—लोगों का; अभिध्यात—ध्यान किये जाने पर; अङ्घ्रि-पल्लवः—उनके चरणकमल।

धर्म के सिद्धान्तों का उल्लंघन किये बिना उन रामचन्द्र ने जिनके चरण-कमलों की पूजा भक्तगण ध्यान में करते हैं, जब तक चाहा, दिव्य आनन्द की सारी सामग्री का भोग किया।

इस प्रकार *श्रीमद्भागवत* के नवम स्कन्ध के अन्तर्गत ‘‘भगवान् रामचन्द्र का विश्व पर राज्य करना’’ नामक ग्यारहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter बारह

भगवान् रामचन्द्र के पुत्र कुश की वंशावली

इस अध्याय में भगवान् रामचन्द्र के पुत्र कुश के वंश का वर्णन हुआ है। इस वंश के सदस्य महाराज इक्ष्वाकु के पुत्र शशाद के उत्तराधिकारी (वंशज) हैं।

भगवान् रामचन्द्र के वंश में उनके पुत्र कुश के बाद क्रमश: अतिथि, निषध, नभ, पुण्डरीक, क्षेमधन्वा, देवानीक, अनीह, पारियात्र, बलस्थल, वज्रनाभ, सगण तथा विधृति उत्पन्न हुए। इन महापुरुषों ने सारे जगत पर शासन चलाया। विधृति से हिरण्यनाभ हुआ जो आगे चलकर जैमिनि का शिष्य बना और जिसने योगप्रणाली की स्थापना की जिसमें याज्ञवल्क्य दीक्षित हुए। इस वंश में पुष्प, ध्रुवसन्धि, सुदर्शन, अग्निवर्ण, शीघ्र तथा मरु हुए। मरु ने योगाभ्यास में सिद्धि प्राप्त की थी और वह अब भी कलाप नामक ग्राम में रह रहा है। इस कलियुग के अन्त में वह सूर्यवंश को पुनरुज्जीवित करेगा। इस वंश में आगे चलकर प्रसुश्रुत, सन्धि, अमर्षण, महश्वान, विश्वबाहु, प्रसेनजित, तक्षक तथा बृहद्बल हुए। बृहद्बल को अभिमन्यु ने मारा था। शुकदेव गोस्वामी ने बतलाया कि ये सारे राजा प्रयाण कर चुके थे। बृहद्बल के भावी वंशज होंगे: बृहद्रण, ऊरुक्रिय, वत्सवृद्ध, प्रतिव्योम, भानु, दिवाक, सहदेव, बृहदश्व, भानुमान, प्रतीकाश्व, सुप्रतीक, मरुदेव, सुनक्षत्र, पुष्कर, अन्तरिक्ष, सुतपा, अमित्रजित, बृहद्राज, बर्हि, कृतञ्जय, रणञ्जय, सञ्जय, शाक्य, शुद्धोद, लाङ्गल, प्रसेनजित, क्षुद्रक, रणक, सुरथ तथा सुमित्र। ये सभी एक के बाद एक राजा बनेंगे। इस कलियुग का अन्तिम इक्ष्वाकुवंशी राजा सुमित्र होगा और उसके बाद यह वंश समाप्त हो जायेगा।

श्रीशुक उवाच
कुशस्य चातिथिस्तस्मान्निषधस्तत्सुतो नभः ।
पुण्डरीकोऽथ तत्पुत्रः क्षेमधन्वाभवत्ततः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; कुशस्य—भगवान् रामचन्द्र के पुत्र कुश का; च—भी; अतिथिः—अतिथि; तस्मात्—उससे; निषधः—निषध; तत्-सुतः—उसका पुत्र; नभः—नभ; पुण्डरीकः—पुण्डरीक; अथ—तत्पश्चात्; तत्-पुत्रः—उसका पुत्र; क्षेमधन्वा—क्षेमधन्वा; अभवत्—हुआ; ततः—तत्पश्चात्।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : रामचन्द्र का पुत्र कुश हुआ, कुश का पुत्र अतिथि था, अतिथि का पुत्र निषध और निषध का पुत्र नभ था। नभ का पुत्र पुण्डरीक हुआ जिसके पुत्र का नाम क्षेमधन्वा

था।

देवानीकस्ततोऽनीहः पारियात्रोऽथ तत्सुतः ।
ततो बलस्थलस्तस्माद्वज्रनाभोऽर्कसम्भवः ॥ २॥

शब्दार्थ

देवानीकः—देवानीक; ततः—क्षेमधन्वा से; अनीहः—देवानीक के पुत्र का नाम अनीह था; पारियात्रः—पारियात्र; अथ—तत्पश्चात्; तत्-सुतः—अनीह का पुत्र; ततः—पारियात्र से; बलस्थलः—बलस्थल; तस्मात्—बलस्थल से; वज्रनाभः—वज्रनाभ; अर्क-सम्भवः—सूर्यदेव से उत्पन्न।

क्षेमधन्वा का पुत्र देवानीक था और देवानीक का पुत्र अनीह हुआ जिसके पुत्र का नाम पारियात्र था। पारियात्र का पुत्र बलस्थल था, जिसका पुत्र वज्रनाभ हुआ जो सूर्यदेव के तेज से उत्पन्न बतलाया जाता है।

सगणस्तत्सुतस्तस्माद्विधृतिश्चाभवत्सुतः ।
ततो हिरण्यनाभोऽभूद्योगाचार्यस्तु जैमिनेः ॥ ३॥
शिष्यः कौशल्य आध्यात्मं याज्ञवल्क्योऽध्यगाद्यतः ।
योगं महोदयमृषिर्हृदयग्रन्थिभेदकम् ॥ ४॥

शब्दार्थ

सगणः—सगण; तत्—उसका; सुतः—पुत्र; तस्मात्—उससे; विधृतिः—विधृति; च—भी; अभवत्—उत्पन्न हुआ; सुतः—उसका पुत्र; ततः—उससे; हिरण्यनाभः—हिरण्यनाभ; अभूत्—हुआ; योग-आचार्यः—योग दर्शन का संस्थापक; तु—लेकिन; जैमिनेः—जैमिनि को अपना गुरु मानने से; शिष्यः—शिष्य; कौशल्यः—कौशल्य; आध्यात्मम्—आध्यात्मिक; याज्ञवल्क्यः—याज्ञवल्क्य ने; अध्यगात्—अध्ययन किया; यतः—उससे (हिरण्यनाभ से); योगम्—योग की क्रियाएँ; महा-उदयम्—अत्यन्त महान; ऋषिः—याज्ञवल्क्य ऋषि; हृदय-ग्रन्थि-भेदकम्—योग, जो भौतिक अनुरक्ति की हृदय की गाँठ को खोल सकती हैं।

वज्रनाभ का पुत्र सगण हुआ और उसका पुत्र विधृति हुआ। विधृति का पुत्र हिरण्यनाभ था जो जैमिनि का शिष्य और फिर योग का महान् आचार्य बना। इन्हीं हिरण्यनाभ से ऋषि याज्ञवल्क्य ने अध्यात्म योग नामक योग की अत्युच्च प्रणाली सीखी जो हृदय की भौतिक आसक्ति की गाँठ को खोलने में समर्थ है।

पुष्यो हिरण्यनाभस्य ध्रुवसन्धिस्ततोऽभवत् ।
सुदर्शनोऽथाग्निवर्णः शीघ्रस्तस्य मरुः सुतः ॥ ५॥

शब्दार्थ

पुष्यः—पुष्य; हिरण्यनाभस्य—हिरण्यनाभ का पुत्र; ध्रुवसन्धिः—ध्रुवसन्धि; ततः—उससे; अभवत्—उत्पन्न हुआ; सुदर्शनः—सुदर्शन; अथ—तत्पश्चात्; अग्निवर्णः—सुदर्शन का पुत्र अग्निवर्ण; शीघ्रः—शीघ्र; तस्य—उसका; मरुः—मरु; सुतः—पुत्र।

हिरण्यनाभ के पुत्र का नाम पुष्य था जिससे ध्रुवसन्धि नामक पुत्र हुआ। ध्रुवसन्धि का पुत्र सुदर्शन और उसका पुत्र अग्निवर्ण था। अग्निवर्ण के पुत्र का नाम शीघ्र था और उसके पुत्र का नाम मरु था।

सोऽसावास्ते योगसिद्धः कलापग्राममास्थितः ।
कलेरन्ते सूर्यवंशं नष्टं भावयिता पुनः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; असौ—मरु नामक व्यक्ति; आस्ते—अब भी है; योग-सिद्धः—योगशक्ति में सिद्धिप्राप्त; कलाप-ग्रामम्—कलाप नामक गाँव में; आस्थितः—रह रहा है; कलेः—इस कलियुग के; अन्ते—अन्त में; सूर्य-वंशम्—सूर्यदेव के वंशज; नष्टम्—नष्ट होने पर; भावयिता—पुत्र उत्पन्न करके शुरु करेगा; पुनः—फिर से।

योगशक्ति में सिद्धि प्राप्त करके मरु अब भी कलाप ग्राम नामक गाँव में रह रहा है। वह कलियुग की समाप्ति पर पुत्र उत्पन्न करेगा जिससे विनष्ट सूर्यवंश पुनरुज्जीवित होगा।

तात्पर्य : कम से कम पाँच हजार वर्ष पूर्व श्रील शुकदेव गोस्वामी ने कलाप-ग्राम में मरु के अस्तित्व का निर्धारण किया था और कहा था कि मरु योगसिद्ध शरीर प्राप्त करके कलियुग के अन्त तक रहता रहेगा। इस कलियुग को ४,३२,००० वर्षों तक चलना है। ऐसी होती है योगशक्ति की सिद्धि। श्वास को रोक कर सिद्ध योगी जितने काल तक चाहे जीवित रह सकता है। कभी-कभी हम वैदिक साहित्य से यह सुनते हैं कि व्यासदेव तथा अश्वत्थामा जैसे कुछ वैदिककालीन महापुरुष अब भी जीवित हैं। यहाँ हमें यह पता चलता है कि मरु भी अभी जीवित है। कभी-कभी हमें आश्चर्य होता है कि क्या मर्त्य शरीर इतने दीर्घकाल तक जीवित रह सकता है? इस दीर्घ आयु की व्याख्या यहाँ *योगसिद्ध* शब्द में निहित है। योग विधि में सिद्ध हो जाने पर मनुष्य जितने काल तक जी चाहे जीवित रह सकता है। किन्तु तुच्छ *योगसिद्ध* के प्रदर्शनसिद्धि नहीं कहलाते। यहाँ पर सिद्धि का जीवन्त उदाहरण प्राप्त है—योगसिद्ध इच्छानुसार जितने समय तक चाहे जीवित रह सकता है।

तस्मात्प्रसुश्रुतस्तस्य सन्धिस्तस्याप्यमर्षणः ।
महस्वांस्तत्सुतस्तस्माद्विश्वबाहुरजायत ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—मरु से; प्रसुश्रुतः—उसका पुत्र प्रसुश्रुत; तस्य—उसका; सन्धिः—सन्धि नामक पुत्र; तस्य—उसका; अपि—भी; अमर्षणः—अमर्षण नामक पुत्र; महस्वान्—महस्वान; तत्—उसका; सुतः—पुत्र; तस्मात्—उससे (महस्वान से); विश्वबाहुः—विश्वबाहु; अजायत—उत्पन्न हुआ।

मरु से प्रसुश्रुत नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जिससे सन्धि, फिर सन्धि से अमर्षण और अमर्षण से महस्वान नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। महस्वान से विश्वबाहु का जन्म हुआ।

ततः प्रसेनजित्तस्मात्तक्षको भविता पुनः ।
ततो बृहद्बलो यस्तु पित्रा ते समरे हतः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

ततः—विश्वबाहु से; प्रसेनजित्—प्रसेनजित; तस्मात्—उससे; तक्षकः—तक्षक; भविता—जन्म लिया; पुनः—फिर; ततः—उससे; बृहद्बलः—बृहद्बल; यः—जो; तु—लेकिन; पित्रा—पिता के द्वारा; ते—तुम्हारे; समरे—युद्ध में; हतः—मारा गया।

विश्वबाहु से प्रसेनजित नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जिससे तक्षक और तक्षक से बृहद्बल हुआ जो तुम्हारे पिता द्वारा युद्ध में मारा गया।

एते हीक्ष्वाकुभूपाला अतीताः शृण्वनागतान् ।
बृहद्बलस्य भविता पुत्रो नाम्ना बृहद्रणः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

एते—ये सभी; हि—निस्सन्देह; इक्ष्वाकु-भूपालाः—इक्ष्वाकु वंश के राजा; अतीताः—हो चुके हैं; शृणु—सुनो; अनागतान्—जो भविष्य में होंगे; बृहद्बलस्य—बृहद्बल का; भविता—होगा; पुत्रः—पुत्र; नाम्ना—नामक; बृहद्रणः—बृहद्रण।

ये सारे राजा इक्ष्वाकु वंश में हो चुके हैं। अब उन राजाओं के नाम सुनो जो भविष्य में होंगे। बृहद्बल से बृहद्रण का जन्म होगा।

ऊरुक्रियः सुतस्तस्य वत्सवृद्धो भविष्यति ।
प्रतिव्योमस्ततो भानुर्दिवाको वाहिनीपतिः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

ऊरुक्रियः—ऊरुक्रिय; सुतः—पुत्र; तस्य—उसका; वत्सवृद्धः—वत्सवृद्ध; भविष्यति—होगा; प्रतिव्योमः—प्रतिव्योम; ततः—उससे; भानुः—भानु; दिवाकः—भानु से दिवाक; वाहिनी-पतिः—सेनापति।

बृहद्रण का पुत्र ऊरुक्रिय होगा जिसके वत्सवृद्ध नामक पुत्र उत्पन्न होगा। वत्सवृद्ध के पुत्र का नाम प्रतिव्योम और उसके पुत्र का नाम भानु होगा जिससे महान् सेनापति दिवाक नाम का पुत्र जन्म लेगा।

सहदेवस्ततो वीरो बृहदश्वोऽथ भानुमान् ।
प्रतीकाश्वो भानुमतः सुप्रतीकोऽथ तत्सुतः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

सहदेवः—सहदेव; ततः—दिवाक से; वीरः—वीर पुरुष; बृहदश्वः—बृहदश्व; अथ—उससे; भानुमान्—भानुमान; प्रतीकाश्वः—प्रतीकाश्व; भानुमतः—भानुमान से; सुप्रतीकः—सुप्रतीक; अथ—तत्पश्चात्; तत्-सुतः—प्रतीकाश्व का पुत्र।

तत्पश्चात् दिवाक का पुत्र सहदेव होगा और उसका पुत्र महान् वीर बृहदाश्व होगा। बृहदाश्व से भानुमान होगा जिससे प्रतीकाश्व नाम का पुत्र होगा। प्रतीकाश्व का पुत्र सुप्रतीक होगा।

भविता मरुदेवोऽथ सुनक्षत्रोऽथ पुष्करः ।
तस्यान्तरिक्षस्तत्पुत्रः सुतपास्तदमित्रजित् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

भविता—उत्पन्न होगा; मरुदेवः—मरुदेव; अथ—तत्पश्चात्; सुनक्षत्रः—सुनक्षत्र; अथ—तत्पश्चात्; पुष्करः—पुष्कर; तस्य—पुष्कर का; अन्तरिक्षः—अन्तरिक्ष; तत्-पुत्रः—उसका पुत्र; सुतपाः—सुतपा; तत्—उससे; अमित्रजित्—अमित्रजित।

तत्पश्चात् सुप्रतीक से मरुदेव, मरुदेव से सुनक्षत्र, सुनक्षत्र से पुष्कर और पुष्कर से अन्तरिक्ष होगा जिसका पुत्र सुतपा होगा। सुतपा का पुत्र अमित्रजित होगा।

बृहद्राजस्तु तस्यापि बर्हिस्तस्मात्कृतञ्जयः ।
रणञ्जयस्तस्य सुतः सञ्जयो भविता ततः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

बृहद्राजः—बृहद्राज; तु—लेकिन; तस्य अपि—अमित्रजित का; बर्हिः—बर्हि; तस्मात्—बर्हि से; कृतञ्जयः—कृतञ्जय; रणञ्जयः—रणञ्जय; तस्य—कृतञ्जय का; सुतः—पुत्र; सञ्जयः—सञ्जय; भविता—होगा; ततः—रणञ्जय से।

अमित्रजित से बृहद्राज होगा, बृहद्राज से बर्हि, बर्हि से कृतञ्जय, कृतञ्जय से रणञ्जय और रणञ्जय से सञ्जय नामक पुत्र उत्पन्न होगा।

तस्माच्छाक्योऽथ शुद्धोदो लाङ्गलस्तत्सुतः स्मृतः ।
ततः प्रसेनजित्तस्मात्क्षुद्रको भविता ततः ॥ १४॥

शब्दार्थ

तस्मात्—सञ्जय से; शाक्यः—शाक्य; अथ—तत्पश्चात्; शुद्धोदः—शुद्धोद; लाङ्गलः—लांगल; तत्-सुतः—शुद्धोद का पुत्र; स्मृतः—सुप्रसिद्ध; ततः—उससे; प्रसेनजित्—प्रसेनजित; तस्मात्—उससे; क्षुद्रकः—क्षुद्रक; भविता—जन्म लेगा; ततः—तत्पश्चात्।

सञ्जय से शाक्य, शाक्य से शुद्धोद, शुद्धोद से लांगल और लांगल से प्रसेनजित तथा प्रसेनजित से क्षुद्रक उत्पन्न होगा।

रणको भविता तस्मात्सुरथस्तनयस्ततः ।
सुमित्रो नाम निष्ठान्त एते बार्हद्बलान्वयाः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

रणकः—रणक; भविता—होगा; तस्मात्—क्षुद्रक से; सुरथः—सुरथ; तनयः—पुत्र; ततः—तत्पश्चात्; सुमित्रः—सुमित्र; नाम—नामक; निष्ठ-अन्तः—वंश के अन्त में; एते—उपर्युक्त सारे राजा; बार्हद्बल-अन्वयाः—राजा बृहद्बल के वंश में।.

क्षुद्रक का पुत्र रणक, रणक का सुरथ, सुरथ का पुत्र सुमित्र होगा और इस तरह वंश का अन्त हो जायेगा। यह बृहद्बल के वंश का वर्णन है।

इक्ष्वाकूणामयं वंशः सुमित्रान्तो भविष्यति ।
यतस्तं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

इक्ष्वाकूणाम्—राजा इक्ष्वाकु के वंश का; अयम्—यह; वंशः—वंशज; सुमित्र-अन्तः—सुमित्र इस वंश के अन्तिम राजा के रूप में; भविष्यति—होगा, कलियुग में ही; यतः—क्योंकि; तम्—उसको; प्राप्य—पाकर; राजानम्—उस वंश के राजा के रूप में; संस्थाम्—अन्त; प्राप्स्यति—प्राप्त होगा; वै—निस्सन्देह; कलौ—कलियुग के अन्त में।.

इक्ष्वाकु वंश का अन्तिम राजा सुमित्र होगा; उसके बाद सूर्यदेव के वंश में और कोई पुत्र न होगा और इस वंश का अन्त हो जायेगा।

इस प्रकार *श्रीमद्भागवत* के नवम स्कन्ध के अन्तर्गत "भगवान् रामचन्द्र के पुत्र कुश की वंशावली" नामक बारहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter तेरह

महाराज निमि की वंशावली

इस अध्याय में उस वंश का वर्णन हुआ है जिसमें प्रकाण्ड विद्वान जनक पैदा हुए थे। यह महाराज निमि का वंश है जो इक्ष्वाकु के पुत्र बतलाये जाते हैं।

जब महाराज निमि ने महान् यज्ञों का शुभारम्भ किया तो उन्होंने वसिष्ठ को मुख्य पुरोहित बनाया। चूँकि उन्होंने इन्द्रदेव का यज्ञ सम्पन्न करना पहले ही स्वीकार कर लिया था अतएव उन्होंने इनकार कर दिया और कहा कि वे इन्द्र के यज्ञ की समाप्ति तक प्रतीक्षा करें। लेकिन महाराज निमि ने प्रतीक्षा नहीं की। उन्होंने सोचा, ''जीवन अल्प है अतएव प्रतीक्षा करना ठीक नहीं।'' अतएव उन्होंने यज्ञ कराने के लिए दूसरा पुरोहित नियुक्त कर लिया। इस पर वसिष्ठजी राजा निमि पर बहुत क्रुद्ध हो गये और उन्होंने शाप दे डाला, ''तुम्हारी मृत्यु हो जाए।'' इस पर निमि भी बहुत क्रुद्ध हुए और उन्होंने बदले में कहा, ''तुम भी मर जाओ।'' इस तरह शाप और प्रतिशाप के कारण वे दोनों मर गये। इस घटना के बाद उर्वशी द्वारा मित्र तथा वरुण को मोहित किये जाने के फलस्वरूप वसिष्ठ ने पुन: जन्म लिया।

जो पुरोहित राजा निमि का यज्ञ कराने वाले थे उन्होंने निमि के शरीर को सुगन्धित रसायनों से सुरक्षित रखा। जब यज्ञ समाप्त हुआ तो पुरोहितों ने यज्ञशाला में आये समस्त देवताओं से प्रार्थना की कि निमि को जीवनदान दें लेकिन महाराज निमि ने भौतिक शरीर धारण करके फिर से जन्म लेने से मना कर दिया क्योंकि वे भौतिक शरीर को दूषित मानते थे। तब ऋषियों ने निमि के शरीर का मंथन किया जिसके फलस्वरूप जनक उत्पन्न हुए।

जनक के पुत्र का नाम उदावसु था। उदावसु का पुत्र नन्दिवर्धन हुआ, उसका पुत्र सुकेतु हुआ जिसके बाद क्रमश: देवराट, बृहद्रथ, महावीर्य, सुधृति, धृष्टकेतु, हर्यश्व, मरु, प्रतीपक, कृतरथ, देवमीढ, विश्रुत, महाधृति, कृतिरात, महारोमा, स्वर्णरोमा, ह्रस्वरोमा तथा शीरध्वज हुए। ये सभी पुत्र इस वंश में एक दूसरे के बाद हुए। शीरध्वज से सीतादेवी का जन्म हुआ। शीरध्वज का पुत्र कुशध्वज हुआ और कुशध्वज का पुत्र धर्मध्वज था। धर्मध्वज के दो पुत्र हुए—कृतध्वज तथा मितध्वज। कृतध्वज का पुत्र केशिध्वज हुआ और मितध्वज का खाण्डिक्य। केशिध्वज स्वरूपसिद्ध व्यक्ति था। उसके पुत्र का नाम भानुमान था जिससे आगे

के वंशज इस प्रकार हुए—शतद्युम्न, शुचि, सनद्वाज, ऊर्जकेतु, अज, पुरुजित, अरिष्टनेमि, श्रुतायु, सुपार्श्वक, चित्ररथ, क्षेमाधि, समरथ, सत्यरथ, उपगुरु, उपगुप्त, वस्वनन्त, युयुध, सुभाषण, श्रुत, जय, विजय, ऋत, सुनक, वीतहव्य, धृति, बहुलाश्व, कृति तथा महावशी। ये पुत्र सभी महान् आत्मसंयमी पुरुष थे। यही सम्पूर्ण वंशावली है।

श्रीशुक उवाच
निमिरिक्ष्वाकुतनयो वसिष्ठमवृतर्त्विजम् ।
आरभ्य सत्रं सोऽप्याह शक्रेण प्राग्वृतोऽस्मि भोः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; निमिः—राजा निमि ने; इक्ष्वाकु-तनयः—महाराज इक्ष्वाकु के पुत्र; वसिष्ठम्—वसिष्ठ को; अवृत—नियुक्त किया; ऋत्विजम्—यज्ञ का प्रमुख पुरोहित; आरभ्य—प्रारम्भ करके; सत्रम्—यज्ञ; सः—उसने, वसिष्ठ ने; अपि—भी; आह—कहा; शक्रेण—इन्द्र द्वारा; प्राक्—पहले से; वृतः अस्मि—नियुक्त हो चुका हूँ; भोः—हे राजा निमि।

श्रील शुकदेव गोस्वामी ने कहा : यज्ञों का शुभारम्भ कराने के बाद इक्ष्वाकु पुत्र महाराज निमि ने वसिष्ठ मुनि से प्रधान पुरोहित का पद ग्रहण करने के लिए अनुरोध किया। उस समय वसिष्ठ ने उत्तर दिया, ''हे महाराज निमि, मैंने इन्द्र द्वारा प्रारम्भ किये गये एक यज्ञ में इसी पद को पहले से स्वीकार कर रखा है।''

तं निर्वर्त्यागमिष्यामि तावन्मां प्रतिपालय ।
तूष्णीमासीद्गृहपतिः सोऽपीन्द्रस्याकरोन्मखम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस यज्ञ को; निर्वर्त्य—समाप्त करने के बाद; आगमिष्यामि—वापस आ जाऊँगा; तावत्—तब तक; माम्—मेरी; प्रतिपालय—प्रतीक्षा करो; तूष्णीम्—चुप; आसीत्—हो गया; गृह-पतिः—महाराज निमि; सः—उसने, वसिष्ठ ने; अपि—भी; इन्द्रस्य—इन्द्र के; अकरोत्—सम्पन्न किया; मखम्—यज्ञ को।

''मैं इन्द्र का यज्ञ पूरा कराकर यहाँ वापस आ जाऊँगा। कृपया तब तक मेरी प्रतीक्षा करें।'' महाराज निमि चुप हो गए और वसिष्ठ इन्द्र का यज्ञ सम्पन्न करने में लग गये।

निमिश्चलमिदं विद्वान्सत्रमारभतात्मवान् ।
ऋत्विग्भिरपरैस्तावन्नागमद्यावता गुरुः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

निमिः—महाराज निमि ने; चलम्—किसी भी क्षण समाप्त होने वाले; इदम्—इस (जीवन) को; विद्वान्—इस तथ्य से भलीभाँति अवगत होकर; सत्रम्—यज्ञ को; आरभत—शुरू किया; आत्मवान्—स्वरूपसिद्ध व्यक्ति; ऋत्विग्भिः—पुरोहितों द्वारा; अपरैः—वसिष्ठ के अतिरिक्त अन्य; तावत्—उस समय तक; न—नहीं; आगमत्—लौट आया; यावता—जब तक; गुरुः—गुरु (वसिष्ठ)।

महाराज निमि स्वरूपसिद्ध जीव थे अतएव उन्होंने सोचा कि यह जीवन क्षणिक है; अतएव दीर्घकाल तक वसिष्ठ की प्रतीक्षा न करके उन्होंने अन्य पुरोहितों से यज्ञ सम्पन्न कराना शुरू कर दिया।

तात्पर्य : चाणक्य पण्डित का कथन है— *शरीरं क्षणविध्वांसि कल्पान्तस्थायिनो गुणाः*—इस संसार में मनुष्य की आयु किसी भी क्षण समाप्त हो सकती है, किन्तु यदि कोई इसी जीवन में कुछ उल्लेखनीय कार्य करता है तो इस गुण का अंकन इतिहास में सदा-सदा के लिए हो जाता है। महाराज निमि इस तथ्य को जानते थे। मानव जीवन पाकर मनुष्य को इस तरह कर्म करना चाहिए जिससे वह अन्त में भगवद्धाम जा सके। यही आत्म-साक्षात्कार है।

शिष्यव्यतिक्रमं वीक्ष्य तं निर्वर्त्यागतो गुरुः ।
अशपत्पतताद्देहो निमेः पण्डितमानिनः ॥ ४॥

शब्दार्थ

शिष्य-व्यतिक्रमम्—शिष्य द्वारा गुरु के आदेश से विचलन को; वीक्ष्य—देखकर; तम्—इन्द्र द्वारा किया जाने वाले यज्ञ को; निर्वर्त्य—समाप्त करके; आगतः—लौटने पर; गुरुः—वसिष्ठ मुनि; अशपत्—निमि महाराज को शाप दे दिया; पततात्—पतन हो जाय, नष्ट हो जाय; देहः—भौतिक शरीर; निमेः—निमि का; पण्डित-मानिनः—जो अपने को इतना पण्डित मानता है (जिससे कि वह अपने गुरु की अवज्ञा कर रहा है)।

इन्द्र का यज्ञ सम्पन्न कर लेने के बाद गुरु वसिष्ठ वापस आये तो उन्होंने देखा कि उनके शिष्य महाराज निमि ने उनके आदेशों का उल्लंघन कर दिया है। अतएव उन्होंने निमि को शाप दिया, ''अपने को पण्डित मानने वाले निमि का भौतिक शरीर तुरन्त ही नष्ट हो जाय।''

निमिः प्रतिददौ शापं गुरवेऽधर्मवर्तिने ।
तवापि पतताद्देहो लोभाद्धर्ममजानतः ॥ ५॥

शब्दार्थ

निमिः—निमि महाराज ने; प्रतिददौ शापम्—उलट कर शाप दे डाला; गुरवे—अपने गुरु वसिष्ठ को; अधर्म-वर्तिने—अधर्म को प्रोत्साहन देने वाले (क्योंकि उन्होंने अपने अपराधरहित शिष्य को शाप दे दिया था); तव—तुम्हारा; अपि—भी; पततात्—पतन हो जाय; देहः—शरीर का; लोभात्—लोभवश; धर्मम्—धर्म को; अजानतः—न जानते हुए।

महाराज निमि द्वारा किसी प्रकार का अपराध न किये जाने पर व्यर्थ ही गुरु द्वारा शापित होने पर

उन्होंने भी बदले में शाप दिया, ''स्वर्ग के राजा इन्द्र से भेंट पाने के निमित्त आपने अपनी धार्मिक बुद्धि खो दी है; अतएव मेरा शाप है कि आपका भी शरीरपात हो जाय।''

तात्पर्य : ब्राह्मण का धर्म है कि वह तनिक भी लोभी न हो। किन्तु यहाँ पर इन्द्र से अधिक पारिश्रमिक पाने के लिए वसिष्ठ ने इस लोक में महाराज निमि की प्रार्थना की उपेक्षा की और जब निमि ने अन्य पुरोहितों की सहायता से यज्ञ सम्पन्न करा लिया तो वसिष्ठ ने व्यर्थ ही उसे शाप दे डाला। जब कोई व्यक्ति दूषित कर्मों के सम्पर्क में आता है तो उसकी शक्ति चाहे भौतिक हो या आध्यात्मिक घट जाती है। यद्यपि वसिष्ठ महाराज निमि के गुरु थे, किन्तु लोभ के कारण उनका पतन हुआ।

इत्युत्ससर्ज स्वं देहं निमिरध्यात्मकोविदः ।
मित्रावरुणयोर्जज्ञे उर्वश्यां प्रपितामहः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; उत्ससर्ज—त्याग दिया; स्वम्—अपना; देहम्—शरीर; निमिः—महाराज निमि ने; अध्यात्म-कोविदः—आध्यात्मिक ज्ञान से पूर्णतया अवगत; मित्रा-वरुणयोः—मित्र तथा वरुण के वीर्य से (उर्वशी को देखकर स्खलित); जज्ञे—उत्पन्न हुए; उर्वश्याम्—स्वर्गलोक की अप्सरा उर्वशी से; प्रपितामहः—वसिष्ठ, जो प्रपितामह कहलाते थे।

यह कहकर अध्यात्म में पटु महाराज निमि ने अपना शरीर छोड़ दिया। प्रपितामह वसिष्ठ ने भी अपना शरीर त्याग दिया, किन्तु मित्र तथा वरुण के वीर्य से उर्वशी के गर्भ से उन्होंने पुनः जन्म लिया।

तात्पर्य : मित्र तथा वरुण की भेंट स्वर्गलोक की परम सुन्दर अप्सरा उर्वशी से हुई तो वे दोनों कामासक्त हो उठे। मुनि होने के कारण उन्होंने भरसक अपनी कामवासना को रोकना चाहा, किन्तु वे ऐसा नहीं कर पाये अतएव उनका वीर्य स्खलित हो गया। यह वीर्य एक जलपात्र में रखा गया और इसीसे वसिष्ठ उत्पन्न हुए।

गन्धवस्तुषु तद्देहं निधाय मुनिसत्तमाः ।
समाप्ते सत्रयागे च देवानूचुः समागतान् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

गन्ध-वस्तुषु—सुगन्धित वस्तुओं में; तत्-देहम्—महाराज निमि के शरीर को; निधाय—सुरक्षित रखकर; मुनि-सत्तमाः—वहाँ एकत्र महान् ऋषियों ने; समाप्ते सत्र-यागे—सत्र नामक यज्ञ के समाप्त होने पर; च—भी; देवान्—देवताओं से; ऊचुः—बोले; समागतान्—वहाँ पर एकत्र हुए।

यज्ञ सम्पन्न करते समय महाराज निमि द्वारा त्यक्त शरीर को सुगन्धित वस्तुओं द्वारा सुरक्षित रखा गया और सत्रयाग के अन्त में मुनियों तथा ब्राह्मणों ने वहाँ एकत्रित सारे देवताओं से निम्नलिखित प्रार्थना की।

राज्ञो जीवतु देहोऽयं प्रसन्नाः प्रभवो यदि ।
तथेत्युक्ते निमिः प्राह मा भून्मे देहबन्धनम् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

राज्ञः—राजा का; जीवतु—जीवित हो उठे; देहः अयम्—यह देह (जो सुरक्षित है); प्रसन्नाः—अत्यधिक प्रसन्न; प्रभवः—इसे करने में समर्थ; यदि—यदि; तथा—ऐसा ही हो; इति—इस प्रकार; उक्ते—(देवताओं द्वारा) कहा जाने पर; निमिः—निमि महाराज ने; प्राह—कहा; मा भूत्—मत करो; मे—मेरा; देह-बन्धनम्—भौतिक शरीर में बन्दी बनाना।

''यदि आप इस यज्ञ से संतुष्ट हैं और यदि वास्तव में आप ऐसा करने में समर्थ हों तो कृपया इस शरीर में महाराज निमि को फिर से जीवित कर दें।'' देवताओं ने मुनियों की यह प्रार्थना स्वीकर कर ली, किन्तु महाराज निमि ने कहा, ''कृपया मुझे भौतिक शरीर में पुनः बन्दी न बनाएँ।''

तात्पर्य : देवतागण मनुष्यों से कई गुना ऊँचे पद पर होते हैं। इसलिए ऋषियों तथा मुनियों ने अत्यन्त शक्तिशाली ब्राह्मण होते हुए भी देवताओं से प्रार्थना की कि वे महाराज निमि के शरीर को फिर से जीवित कर दें जिसे सुगन्धित लेपों में रखकर सुरक्षित किया गया था। हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि देवतागण इन्द्रियभोग में ही बलशाली हैं प्रत्युत वे मृत शरीर को जीवित करने जैसा कार्य भी कर सकते हैं। वैदिक साहित्य में ऐसे कितने ही उदाहरण भरे पड़े हैं। उदाहरणार्थ, सावित्री-सत्यवान कथा में सत्यवान मर चुका था और उसे यमराज ले जा रहे थे, किन्तु पत्नी सावित्री के आग्रह पर सत्यवान का वही शरीर फिर से जीवित हो उठा था। यह देवताओं की शक्ति के बारे में एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है।

यस्य योगं न वाञ्छन्ति वियोगभयकातराः ।
भजन्ति चरणाम्भोजं मुनयो हरिमेधसः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

यस्य—जिस शरीर का; योगम्—स्पर्श; न—नहीं; वाञ्छन्ति—ज्ञानी चाहते; वियोग-भय-कातराः—शरीर को पुनः त्यागने से भयभीत; भजन्ति—दिव्य सेवा करते हैं; चरण-अम्भोजम्—भगवान् के चरणकमलों की; मुनयः—बड़े-बड़े मुनि; हरि-मेधसः—जिनकी चेतना सदैव हरि के विचारों मे मग्न रहती है।

महाराज निमि ने आगे कहा : सामान्य रूप से मायावादी लोग भौतिक शरीर धारण नहीं करना

चाहते हैं क्योंकि उन्हें उसका त्याग करने में भय लगता है। किन्तु जिन भक्तों की चेतना सदैव भगवान् की सेवा से पूरित रहती है वे भयभीत नहीं रहते। निस्सन्देह, वे इस शरीर का उपयोग भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में करते हैं।

तात्पर्य : महाराज निमि भौतिक शरीर ग्रहण करना नहीं चाह रह थे क्योंकि वह बन्धन का कारण बनता। भक्त होने के कारण वे ऐसा शरीर चाहते थे जिसका उपयोग भगवान् की भक्ति करने के लिए किया जा सके।

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर का गीत है—

जन्माओबि मोरे इच्छा यदि तोर

भक्तगृहे जनि जन्म हउ मोर

कीटजन्म हउ यथा तुया दास

''हे प्रभु! यदि आप चाहते हैं कि मैं जन्म लेकर पुन: भौतिक शरीर धारण करूँ तो मुझ पर यह कृपा कीजिए कि मैं आपसे दास, आपके भक्त, के घर में जन्म लूँ। तब मुझे कीट जैसे तुच्छ जीव के रूप में भी जन्म लेने में कोई आपत्ति नहीं होगी।'' श्री चैतन्य महाप्रभु ने भी कहा है—

न धनं न जनं न सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामये।

मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद् भक्तिरहैतुकी त्वयि॥

''हे ब्रह्माण्ड के स्वामी! मैं न तो धन चाहता हूँ, न अनुयायी, न सुन्दर पत्नी, न लच्छेदार भाषा में वर्णित सकाम कर्म। मेरी तो यही अभिलाषा है कि जन्म-जन्मांतर आपकी अहैतुकी भक्ति करता रहूँ।'' (*शिक्षाष्टक* ४) *जन्मनि जन्मनि* कहने से महाप्रभु का तात्पर्य सामान्य जन्म नहीं अपितु ऐसा जन्म है जिसमें वे भगवान् के चरणकमलों का स्मरण कर सकें। ऐसा शरीर वाञ्छनीय है। भक्त कभी भी योगियों तथा ज्ञानियों की तरह नहीं सोचता क्योंकि ये लोग भौतिक शरीर का बहिष्कार करके निर्विशेष ब्रह्मज्योति में समाहित होना चाहते हैं। भक्त को यह विचार-धारा पसन्द नहीं है। उल्टे, वह भौतिक या आध्यात्मिक शरीर में से किसी को भी स्वीकार करने को तैयार है क्योंकि वह भगवान् की सेवा करना चाहता है। यही असली मुक्ति है।

यदि कोई भगवान् की सेवा करने के लिए प्रबल इच्छुक है और यदि वह भौतिक शरीर स्वीकार भी कर ले तो कोई चिन्ता की बात नहीं रहती क्योंकि भक्त इसी भौतिक शरीर में मुक्त रहता है। इसकी पुष्टि श्रील रूप गोस्वामी द्वारा हुई है—

ईहा यस्य हरेर्दास्ये कर्मणा मनसा गिरा।

निखिलास्वप्यवस्थासु जीवन्मुक्तः स उच्यते॥

''जो व्यक्ति मनसा, वाचा, कर्मणा कृष्णभावना में (या, दूसरे शब्दों में कृष्ण सेवा में) कर्म करता है वह इस जगत में रहते हुए भी मुक्तात्मा होता है भले ही वह तथाकथित अनेक भौतिक कार्यकलापों में व्यस्त क्यों न हो।'' भगवान् की सेवा करने की इच्छा मनुष्य को जीवन की किसी भी अवस्था में मुक्त बनाने वाली है चाहे वह आध्यात्मिक शरीर हो या भौतिक शरीर। आध्यात्मिक शरीर में भक्त भगवान् का प्रत्यक्ष संगी बन जाता है, किन्तु ऊपरी तौर पर भौतिक शरीर में रहते हुए भी भक्त सदैव मुक्त रहता है और भगवान् की सेवा में उसी तरह लगा रहता है जिस तरह वैकुण्ठलोक का भक्त। उनमें कोई अन्तर नहीं रहता। कहा गया है—*साधुर्जीवो वा मरो वा*—भक्त चाहे जीवित हो या मृत हो उसकी एकमात्र चिन्ता भगवान् की सेवा करना है। *त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति।* जब वह शरीर छोड़ता है तो वह सीधे भगवान् का संगी तथा सेवा करने वाला हो जाता है, यद्यपि भौतिक जगत में भी भौतिक शरीर से वह यही काम करता होता है।

भक्त के लिए पीड़ा, हर्ष या भौतिक सिद्धि कुछ नहीं हैं। कोई यह तर्क कर सकता है कि मृत्यु के समय भक्त को भी शरीर त्याग करने के कारण कष्ट मिलता है। इस प्रसंग में उस बिल्ली का उदाहरण दिया जा सकता है जो अपने मुँह में चूहा तथा अपना बच्चा दोनों को पकड़ कर ले जाती है। चूहा तथा बिल्ली का बच्चा दोनों ही उसी मुँह में पकड़े जाकर ले जाये जाते हैं, किन्तु चूहे की जो अनुभूति होती है वह बिल्ली के बच्चे से भिन्न होती है। जब भक्त शरीर छोड़ता है (*त्यक्त्वा देहम्*) तो वह भगवद्धाम जाने के लिए तैयार होता है। अतएव उसकी अनुभूति उस व्यक्ति से निश्चित रूप से भिन्न होती है जिसे यमराज दण्ड देने के लिए ले जाता है। जिस व्यक्ति की चेतना सदैव भगवान् की सेवा में केन्द्रित रहती है वह भौतिक शरीर धारण करने से घबराता नहीं, किन्तु जो अभक्त भगवान् की सेवा में नहीं लगा रहता वह भौतिक शरीर

ग्रहण करने या इस शरीर को छोड़ने से बहुत भयभीत रहता है। अतएव हमें महाप्रभु चैतन्य के उपदेश का सदैव पालन करना चाहिए—*मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद् भक्तिरहैतुकी त्वयि।* चाहे हम भौतिक शरीर प्राप्त करें या आध्यात्मिक शरीर, इस से कोई अन्तर नहीं पड़ता; हमारी एकमात्र अभिलाषा भगवान् की सेवा करना होनी चाहिए।

देहं नावरुरुत्सेऽहं दु:खशोकभयावहम् ।
सर्वत्रास्य यतो मृत्युर्मत्स्यानामुदके यथा ॥ १० ॥

शब्दार्थ

देहम्—भौतिक शरीर; न—नहीं; अवरुरुत्से—धारण करने की इच्छा करता हूँ; अहम्—मैं; दु:ख-शोक-भय-आवहम्—जो सारे कष्ट, संताप तथा भय का कारण है; सर्वत्र—सभी जगह, विश्वभर में; अस्य—जीव का, जिसने शरीर धारण किया है; यत:—क्योंकि; मृत्यु:—मृत्यु; मत्स्यानाम्—मछलियों को; उदके—जल के भीतर रहने वाली; यथा—सदृश।

मैं भौतिक शरीर पाने का इच्छुक नहीं हूँ क्योंकि ऐसा शरीर विश्वभर में सर्वत्र दुख, शोक तथा भय का कारण होता है जिस तरह कि जल में रहने वाली मछली मृत्यु के भय से सदैव चिन्ताग्रस्त रहती है।

तात्पर्य : चाहे उच्चलोक हो या अधोलोक, भौतिक शरीर की मृत्यु ध्रुव है। जीव जब अधोलोक में या निम्न योनि में होता है तो वह अल्पकाल में मर जाता है और उच्चलोक में या उच्च योनि में जीव दीर्घकाल तक जीवित रहता है, किन्तु मृत्यु निश्चित है। इस तथ्य को समझना चाहिए। मनुष्य-जीवन पाकर मानव को तपस्या द्वारा जन्म, मृत्यु, जरा तथा रोग को समाप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। मानव सभ्यता का उद्देश्य है *मृत्युसंसारवर्त्मनि* अर्थात् जन्म-मृत्यु के चक्कर को रोकना। यह तभी सम्भव है जब मनुष्य कृष्णभावनाभावित हो अर्थात् वह भगवान् के चरणकमलों की शरण में जा चुका हो। अन्यथा उसे इस भौतिक संसार में पड़े-पड़े सड़ना होगा और जन्म, मृत्यु, जरा तथा रोग से प्रभावित होने वाला भौतिक शरीर धारण करना होगा।

यहाँ पर जल में रहने वाली मछली का उदाहरण दिया गया है। यद्यपि जल मछली के रहने के लिए अत्यन्त उपयुक्त स्थान है, किन्तु मछली कभी भी मृत्यु की चिन्ता से मुक्त नहीं हो पाती क्योंकि बड़ी-बड़ी मछलियाँ छोटी-छोटी मछलियों को खाने के लिए सदा उत्सुक रहती हैं। *फल्गूनि तत्र महताम्*—सारे जीव अपने से बड़े जीवों के ग्रास बनते हैं। यही प्रकृति की रीति है।

अहस्तानि सहस्तानामपदानि चतुष्पदाम्।

फल्गूनि तत्र महतां जीवोजीवस्य जीवनम्॥

''जो बिना हाथ वाले जीव हैं वे हाथ वाले जीवों के शिकार बनते हैं, जो पावों से विहीन हैं वे चौपायों के शिकार होते हैं। निर्बल बलवानों के अधीन होते हैं और यह सामान्य नियम लागू होता है कि एक जीव दूसरे का आहार होता है।'' (*भागवत* १.१३.४७) भगवान् ने इस संसार की ऐसी रचना की है कि एक जीव दूसरे का भोजन बना हुआ है। इस तरह जीवन-संघर्ष चल रहा है और यद्यपि हम योग्यतम की उत्तरजीविता की बातें करते हैं, किन्तु कोई भी जीव भगवद्भक्त हुए बिना मृत्यु से बच नहीं सकता। *हरिं विना नैव सृतिं तरन्ति*—भक्त बने बिना कोई भी जन्म-मृत्यु के चक्र से छूट नहीं सकता। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (९.३) में भी हुई है—*अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि*। जिसे कृष्ण के चरणारविन्दों की शरण नहीं प्राप्त हो पाती उसे जन्म-मृत्यु के चक्र में ऊपर-नीचे घूमना पड़ता है।

देवा ऊचुः
विदेह उष्यतां कामं लोचनेषु शरीरिणाम् ।
उन्मेषणनिमेषाभ्यां लक्षितोऽध्यात्मसंस्थितः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

देवाः ऊचुः—देवताओं ने कहा; विदेहः—बिना भौतिक शरीर के; उष्यताम्—तुम जीवित रहो; कामम्—जैसी तुम्हारी इच्छा है; लोचनेषु—दृष्टि में; शरीरिणाम्—भौतिक शरीर वालों का; उन्मेषण-निमेषाभ्याम्—इच्छानुसार प्रकट तथा अप्रकट होओ; लक्षितः—देखे जाकर; अध्यात्म-संस्थितः—आध्यात्मिक शरीर में रहते हुए।

देवताओं ने कहा : महाराज निमि भौतिक शरीर से विहीन होकर रहें। वे आध्यात्मिक शरीर से भगवान् के निजी पार्षद बन कर रहें और वे अपनी इच्छानुसार जब चाहें सामान्य देहधारी लोगों को दिखें या न दिखें।

तात्पर्य : देवता चाहते थे कि महाराज निमि जीवित हो उठें, किन्तु वे दूसरा भौतिक शरीर धारण करना नहीं चाह रहे थे। ऐसी दशा में ऋषियों की प्रार्थना पर देवताओं ने निमि को वर दिया कि वे अपने आध्यात्मिक शरीर में रहते रहें। जैसा सामान्य रूप से आम लोग समझते हैं, आध्यात्मिक शरीर दो प्रकार के होते हैं। कभी-कभी वह प्रेतात्मक शरीर का द्योतक होता है। जब कोई दुरात्मा व्यक्ति पापकर्म करते हुए मरता है तो कभी कभी दण्ड मिलता है जिस से उसे पाँच तत्त्वों वाला स्थूल भौतिक शरीर नहीं प्राप्त होता

अपितु वह मन, बुद्धि तथा अहंकार वाले सूक्ष्म शरीर को प्राप्त होता है। किन्तु *भगवद्गीता* में बतलाया गया है कि भक्तगण भौतिक शरीर त्यागने के बाद समस्त भौतिक कलुषों से मुक्त आध्यात्मिक शरीर प्राप्त करते हैं (*त्यक्त्वां देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन*)—इस तरह देवताओं ने राजा निमि को वर दिया कि वे शुद्ध आध्यात्मिक शरीर में रह सकेंगे जो समस्त स्थूल तथा सूक्ष्म भौतिक कल्मष से रहित होता है।

भगवान् अपनी दिव्य इच्छानुसार दृश्य या अदृश्य रहते हैं। इसी प्रकार भक्त जीवन्मुक्त होकर अपनी इच्छानुसार दृश्य या अदृश्य रह सकता है। जैसा कि *भगवद्गीता* में कहा गया है—*नाहं प्रकाश: सर्वस्य योगमायासमावृत:*—भगवान् कृष्ण हर किसी के लिए व्यक्त नहीं हैं। वे सामान्य व्यक्ति के लिए अदृश्य ही बने रहते हैं। अत: *श्रीकृष्ण-नामादि न भवेद् ग्राह्यम् इन्द्रियै*—कृष्ण तथा उनके नाम, यश, गुण एवं साज-सामान भौतिक रूप से समझ में नहीं आते। जब तक कोई आध्यात्मिक जीवन में आगे बढ़ा हुआ न हो (*सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ*) तब तक वह कृष्ण को देख नहीं सकता। अतएव कृष्ण को देखने की शक्ति उन्हीं की कृपा पर निर्भर करती है। अपनी इच्छानुसार देखे जाने या न देखे जाने का यही विशेषाधिकार महाराज निमि को दिया गया। इस प्रकार वे अपने मूल आध्यात्मिक शरीर से भगवान् के पार्षद के रूप में बने रहे।

अराजकभयं नृणां मन्यमाना महर्षय: ।
देहं ममन्थु: स्म निमे: कुमार: समजायत ॥ १२॥

शब्दार्थ

अराजक-भयम्—अराजकता फैलने के भय से; नृणाम्—सामान्य लोगों के लिए; मन्यमाना:—इस स्थिति पर विचार करते हुए; महा-ऋषय:—महान् ऋषियों ने; देहम्—शरीर को; ममन्थु:—मथा; स्म—भूतकाल में; निमे:—महाराज निमि के; कुमार:—एक पुत्र; समजायत—उत्पन्न हुआ।.

तत्पश्चात् लोगों को अराजकता के भय से बचाने के लिए ऋषियों ने निमि महाराज के भौतिक शरीर को मथा जिसके फलस्वरूप शरीर से एक पुत्र उत्पन्न हुआ।

तात्पर्य : *अराजक भयम्*—यदि सरकार अस्थिर एवं अनियमित रहे तो लोगों को भय बना रहता है। वर्तमान समय में यह भय निरन्तर बना हुआ है क्योंकि जनता की सरकार है। यहाँ हम देखते हैं कि ऋषियों ने निमि के भौतिक शरीर से एक पुत्र की प्राप्ति की जो जनता का सही ढंग से मार्गदर्शन कर सके क्योंकि क्षत्रिय राजा का यह धर्म है। क्षत्रिय वह है जो प्रजा को हानि से बचाता है। तथाकथित जनता की सरकार में कोई प्रशिक्षित क्षत्रिय राजा नहीं रहता। अतएव ज्योंही कोई व्यक्ति मतों को एकत्र करके प्रबल बन जाता है

त्योंही वह शास्त्रनिपुण विद्वान पण्डितों से प्रशिक्षण प्राप्त किये बिना ही मंत्री या राष्ट्रपति बन जाता है। हम देखते हैं कि कुछ देशों में तो सरकार एक दल से दूसरे दल की सरकार में बदल जाती है अतएव सरकार का भार सँभालने वाले लोग इसकी परवाह नहीं करते कि जनता सुखी है या नहीं, उन्हें तो अपनी कुर्सी बचाने की पड़ी रहती है। वैदिक सभ्यता राजतंत्र को वरीयता देती रही है। जनता को भगवान् रामचन्द्र की सरकार पसन्द थी, उसे महाराज युधिष्ठिर की सरकार पसन्द थी और महाराज परीक्षित, महाराज अम्बरीष तथा महाराज प्रह्लाद की सरकारें पसन्द थीं। राजा के अधीन उत्तमोत्तम सरकारों के उदाहरण मिलते हैं। धीरे-धीरे प्रजातांत्रिक सरकारें लोगों की आवश्यकताएँ पूरी करने में अक्षम होती जा रही हैं अतएव कुछ दल तानाशाह चुनने का प्रयत्न कर रहे हैं। तानाशाही भी राजतंत्र जैसी है, किन्तु प्रशिक्षित नेता से विहीन। वस्तुतः जनता तब सुखी होगी जब कोई प्रशिक्षित नेता, चाहे राजा या तानाशाह के रूप में, सरकार का भार ले और शास्त्रों के विधानों के अनुसार जनता पर शासन करे।

जन्मना जनकः सोऽभूद्वैदेहस्तु विदेहजः ।
मिथिलो मथनाज्जातो मिथिला येन निर्मिता ॥ १३॥

शब्दार्थ

जन्मना—जन्म से; जनकः—सामान्य विधि से नहीं अपितु असामान्य रूप से जन्मा; सः—वह; अभूत्—बना; वैदेहः—वैदेह; तु—लेकिन; विदेह-जः—महाराज निमि के शरीर से उत्पन्न, जिन्होंने भौतिक शरीर त्याग दिया था; मिथिलः—मिथिल नाम से भी विख्यात; मथनात्—अपने पिता के शरीर के मन्थन से; जातः—उत्पन्न; मिथिला—मिथिला नामक राज्य; येन—जिसके (जनक) द्वारा; निर्मिता—बनाया गया।

असामान्य विधि से उत्पन्न होने के कारण वह पुत्र जनक कहलाया और चूँकि वह अपने पिता के मृत शरीर से उत्पन्न हुआ था अतएव वह वैदेह कहलाया। अपने पिता के भौतिक शरीर के मन्थन से उत्पन्न होने से वह मिथिल कहलाया और उसने राजा मिथलि के रूप में जो नगर निर्मित किया वह मिथिला कहलाया।

तस्मादुदावसुस्तस्य पुत्रोऽभून्नन्दिवर्धनः ।
ततः सुकेतुस्तस्यापि देवरातो महीपते ॥ १४॥

शब्दार्थ

तस्मात्—मिथिल से; उदावसुः—उदावसु नाम का पुत्र; तस्य—उसका; पुत्रः—पुत्र; अभूत्—हुआ; नन्दिवर्धनः—नन्दिवर्धन; ततः—उससे; सुकेतुः—सुकेतु; तस्य—सुकेतु का; अपि—भी; देवरातः—देवरात; महीपते—हे राजा परीक्षित।

हे राजा परीक्षित, मिथिल से जो पुत्र उत्पन्न हुआ वह उदावसु कहलाया; उदावसु से नन्दिवर्धन; नन्दिवर्धन से सुकेतु और सुकेतु से देवरात उत्पन्न हुआ।

तस्माद्बृहद्रथस्तस्य महावीर्यः सुधृत्पिता ।
सुधृतेर्धृष्टकेतुर्वै हर्यश्वोऽथ मरुस्ततः ॥ १५॥

शब्दार्थ

तस्मात्—देवरात से; बृहद्रथः—बृहद्रथ; तस्य—उसका; महावीर्यः—महावीर्य; सुधृत्-पिता—सुधृति का पिता बना; सुधृतेः—सुधृति से; धृष्टकेतुः—धृष्टकेतु; वै—निस्सन्देह; हर्यश्वः—हर्यश्व; अथ—तत्पश्चात्; मरुः—मरु; ततः—उसके बाद।

देवरात से बृहद्रथ नामक पुत्र हुआ और बृहद्रथ का पुत्र महावीर्य हुआ जो सुधृति का पिता बना। सुधृति का पुत्र धृष्टकेतु कहलाया और धृष्टकेतु से हर्यश्व हुआ। हर्यश्व का पुत्र मरु हुआ।

मरोः प्रतीपकस्तस्माज्जातः कृतरथो यतः ।
देवमीढस्तस्य पुत्रो विश्रुतोऽथ महाधृतिः ॥ १६॥

शब्दार्थ

मरोः—मरु का; प्रतीपकः—प्रतीपक; तस्मात्—प्रतीपक से; जातः—उत्पन्न हुआ; कृतरथः—कृतरथ; यतः—जिससे; देवमीढः—देवमीढ; तस्य—उसका; पुत्रः—पुत्र; विश्रुतः—विश्रुत; अथ—उससे; महाधृतिः—महाधृति नामक पुत्र।

मरु का पुत्र प्रतीपक हुआ और प्रतीपक का पुत्र कृतरथ हुआ। कृतरथ से देवमीढ, देवमीढ से विश्रुत एवं विश्रुत से महाधृति हुआ।

कृतिरातस्ततस्तस्मान्महारोमा च तत्सुतः ।
स्वर्णरोमा सुतस्तस्य ह्रस्वरोमा व्यजायत ॥ १७॥

शब्दार्थ

कृतिरातः—कृतिरात; ततः—महाधृति से; तस्मात्—कृतिरात से; महारोमा—महारोमा; च—भी; तत्-सुतः—उसका पुत्र; स्वर्णरोमा—स्र्वणरोमा; सुतः तस्य—उसका पुत्र; ह्रस्वरोमा—ह्रस्वरोमा; व्यजायत—उत्पन्न हुए।

महाधृति से कृतिरात नामक पुत्र हुआ, कृतिरात से महारोमा हुआ, महारोमा से स्वर्णरोमा और स्वर्णरोमा से ह्रस्वरोमा उत्पन्न हुआ।

ततः शीरध्वजो जज्ञे यज्ञार्थं कर्षतो महीम् ।
सीता शीराग्रतो जाता तस्मात्शीरध्वजः स्मृतः ॥ १८॥

शब्दार्थ

ततः—ह्रस्वरोमा से; शीरध्वजः—शीरध्वज; जज्ञे—उत्पन्न हुआ; यज्ञ-अर्थम्—यज्ञ करने के लिए; कर्षतः—भूमि जोतते समय; महीम्—पृथ्वी को; सीता—सीतादेवी, रामचन्द्र की पत्नी; शीर-अग्रतः—हल के अग्रभाग से; जाता—उत्पन्न हुई; तस्मात्—इसलिए; शीरध्वजः—शीरध्वज; स्मृतः—विख्यात हुआ।

ह्रस्वरोमा से शीरध्वज (जिसका नाम जनक भी था) नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। जब वह खेत जोत रहा था तो उसके हल (शीर) के अग्रभाग से सीतादेवी नामक कन्या प्रकट हुई जो बाद में भगवान् रामचन्द्र की पत्नी बनी। इस तरह वह शीरध्वज कहलाया।

कुशध्वजस्तस्य पुत्रस्ततो धर्मध्वजो नृपः ।
धर्मध्वजस्य द्वौ पुत्रौ कृतध्वजमितध्वजौ ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

कुशध्वजः—कुशध्वज; तस्य—उसका; पुत्रः—पुत्र; ततः—उससे; धर्मध्वजः—धर्मध्वज; नृपः—राजा; धर्मध्वजस्य—धर्मध्वज के; द्वौ—दो; पुत्रौ—पुत्र; कृतध्वज-मितध्वजौ—कृतध्वज तथा मितध्वज।

शीरध्वज का पुत्र कुशध्वज हुआ और कुशध्वज का पुत्र राजा धर्मध्वज हुआ जिसके कृतध्वज तथा मितध्वज नाम के दो पुत्र हुए।

कृतध्वजात्केशिध्वजः खाण्डिक्यस्तु मितध्वजात् ।
कृतध्वजसुतो राजन्नात्मविद्याविशारदः ॥ २० ॥
खाण्डिक्यः कर्मतत्त्वज्ञो भीतः केशिध्वजाद्द्रुतः ।
भानुमांस्तस्य पुत्रोऽभूच्छतद्युम्नस्तु तत्सुतः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

कृतध्वजात्—कृतध्वज से; केशिध्वजः—केशिध्वज; खाण्डिक्यः तु—तथा खाण्डिक्य नामक पुत्र भी; मितध्वजात्—मितध्वज से; कृतध्वज-सुतः—कृतध्वज का पुत्र; राजन्—हे राजा; आत्म-विद्या-विशारदः—आत्मविद्या में पटु; खाण्डिक्यः—राजा खाण्डिक्य; कर्म-तत्त्व-ज्ञः—वैदिक कर्मकांड में पटु; भीतः—डरते हुए; केशिध्वजात्—केशिध्वज से; द्रुतः—भाग गया; भानुमान्—भानुमान; तस्य—केशिध्वज का; पुत्रः—पुत्र; अभूत्—था; शतद्युम्नः—शतद्युम्न; तु—लेकिन; तत्-सुतः—भानुमान का पुत्र।

हे महाराज परीक्षित, कृतध्वज का पुत्र केशिध्वज हुआ और मितध्वज का पुत्र खाण्डिक्य था। कृतध्वज का पुत्र आध्यात्मिक ज्ञान में पटु था और मितध्वज का पुत्र वैदिक कर्मकाण्ड में। खाण्डिक्य केशिध्वज के भय से भाग गया। केशिध्वज का पुत्र भानुमान था और भानुमान का पुत्र शतद्युम्न हुआ।

शुचिस्तु तनयस्तस्मात्सनद्वाजः सुतोऽभवत् ।
ऊर्जकेतुः सनद्वाजादजोऽथ पुरुजित्सुतः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

शुचिः—शुचि; तु—लेकिन; तनयः—पुत्र; तस्मात्—उससे; सनद्वाजः—सनद्वाज; सुतः—पुत्र; अभवत्—पैदा हुआ; ऊर्जकेतुः—ऊर्जकेतु; सनद्वाजात्—सनद्वाज से; अजः—अज; अथ—तत्पश्चात्; पुरुजित्—पुरुजित; सुतः—पुत्र।

शतद्युम्न के पुत्र का नाम शुचि था। शुचि से सनद्वाज उत्पन्न हुआ और सनद्वाज का पुत्र ऊर्जकेतु था। ऊर्जकेतु का पुत्र अज था और अज का पुत्र पुरुजित हुआ।

अरिष्टनेमिस्तस्यापि श्रुतायुस्तत्सुपार्श्वकः ।
ततश्चित्ररथो यस्य क्षेमाधिर्मिथिलाधिपः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

अरिष्टनेमिः—अरिष्टनेमि; तस्य अपि—पुरुजित का भी; श्रुतायुः—श्रुतायु; तत्—उससे; सुपार्श्वकः—सुपार्श्वक; ततः—उससे; चित्ररथः—चित्ररथ; यस्य—जिसका; क्षेमाधिः—क्षेमाधि; मिथिला-अधिपः—मिथिला का राजा हुआ।

पुरुजित का पुत्र अरिष्टनेमि हुआ, जिसका पुत्र श्रुतायु हुआ, श्रुतायु का पुत्र सुपार्श्वक था और उसका पुत्र चित्ररथ था। चित्ररथ का पुत्र क्षेमाधि था जो मिथिला का राजा बना।

तस्मात्समरथस्तस्य सुतः सत्यरथस्ततः ।
आसीदुपगुरुस्तस्मादुपगुप्तोऽग्निसम्भवः ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—क्षेमाधि से; समरथः—समरथ; तस्य—उसका; सुतः—पुत्र; सत्यरथः—सत्यरथ; ततः—उससे; आसीत्—हुआ; उपगुरुः—उपगुरु; तस्मात्—उससे; उपगुप्तः—उपगुप्त; अग्नि-सम्भवः—अग्निदेव का अंशरूप।

क्षेमाधि का पुत्र समरथ हुआ और उसका पुत्र सत्यरथ था। सत्यरथ का पुत्र उपगुरु हुआ और उपगुरु का पुत्र उपगुप्त हुआ जो अग्निदेव का अंशरूप था।

वस्वनन्तोऽथ तत्पुत्रो युयुधो यत्सुभाषणः ।
श्रुतस्ततो जयस्तस्माद्विजयोऽस्मादृतः सुतः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

वस्वनन्तः—वस्वनन्त; अथ—तत्पश्चात्; तत्-पुत्रः—उसका पुत्र; युयुधः—युयुध नामक; यत्—जिससे; सुभाषणः—सुभाषण; श्रुतः ततः—तथा उससे श्रुत हुआ; जयः तस्मात्—उससे जय हुआ; विजयः—विजय; अस्मात्—जय से; ऋतः—ऋत; सुतः—पुत्र।

उपगुप्त का पुत्र वस्वनन्त था, जिसका पुत्र युयुध हुआ। युयुध का पुत्र सुभाषण, सुभाषण का पुत्र श्रुत, श्रुत का पुत्र जय और जय का पुत्र विजय था। विजय का पुत्र ऋत था।

शुनकस्तत्सुतो जज्ञे वीतहव्यो धृतिस्ततः ।

बहुलाश्वो धृतेस्तस्य कृतिरस्य महावशी ॥ २६॥

शब्दार्थ

शुनकः—शुनक; तत्-सुतः—ऋत का पुत्र; जज्ञे—उत्पन्न हुआ; वीतहव्यः—वीतहव्य; धृतिः—धृति; ततः—वीतहव्य का पुत्र; बहुलाश्वः—बहुलाश्व; धृतेः—धृति से; तस्य—उसका पुत्र; कृतिः—कृति; अस्य—इसका; महावशी—महावशी नाम का पुत्र था।

ऋत का पुत्र शुनक था, शुनक का वीतहव्य, वीतहव्य का धृति, धृति का बहुलाश्व, बहुलाश्व का कृति तथा उसका पुत्र महावशी था।

एते वै मैथिला राजन्नात्मविद्याविशारदाः ।
योगेश्वरप्रसादेन द्वन्द्वैर्मुक्ता गृहेष्वपि ॥ २७॥

शब्दार्थ

एते—ये सारे; वै—निस्सन्देह; मैथिलाः—मिथिल के वंशज; राजन्—हे राजा; आत्म-विद्या-विशारदाः—आध्यात्मिक ज्ञानों में पटु; योगेश्वर-प्रसादेन—भगवान् कृष्ण जो योगेश्वर हैं उनकी कृपा से; द्वन्द्वैः मुक्ताः—वे सब के सबभौतिक जगत के द्वैतभाव से मुक्त हो गये; गृहेषु अपि—घर पर रहते हुए भी।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजा परीक्षित, मिथिल वंश के सारे राजा अध्यात्म ज्ञान में पटु थे। अतएव वे घर पर रहते हुए भी संसार के द्वन्द्वों से मुक्त हो गये।

तात्पर्य : यह भौतिक जगत *द्वैत* कहलाता है। *चैतन्य चरितामृत* (*अन्त्य* ४.१७६) का कथन है—

'द्वैते' भद्राभद्रज्ञान, सब—'मनोधर्म'।

'एइभाल, एइ मन्द'—एइ सब 'भ्रम'॥

द्वैत के जगत में अर्थात् भौतिक जगत में तथाकथित अच्छाई तथा बुराई दोनों एक सी हैं। अतएव इस संसार में अच्छा-बुरा या सुख-दुख में अन्तर करना व्यर्थ है क्योंकि ये दोनों *मनोधर्म* हैं। चूँकि यहाँ पर हर वस्तु दुखदायी है अतएव कृत्रिम परिस्थिति उत्पन्न करके उसे सुख से पूर्ण मानना कोरा भ्रम है। मुक्तात्मा, प्रकृति के तीनों गुणों के प्रभावों से ऊपर रहने के कारण, हर परिस्थिति में ऐसे द्वन्द्वों से अप्रभावित रहता है। वह तथाकथित सुख-दुख सहन करके कृष्ण भक्त बना रहता है। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* (२.१४) में भी हुई है—

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः ।

आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत॥

"हे कुन्तीपुत्र! सुख तथा दुख का अस्थायी प्रकट होना और कालक्रम से उनका अन्तर्धान होना जाड़े तथा गर्मी की ऋतुओं के आने-जाने के समान है। हे भरतपुत्र! ये इन्द्रियबोध से उत्पन्न होते हैं अतः मनुष्य

को अविचलित भाव से इन्हें सहन करना सीखना चाहिए।'' जो लोग मुक्त हैं वे भगवान् की सेवा करने के कारण दिव्यपद पर होने से, तथाकथित सुख-दुख की परवाह नहीं करते। वे जानते हैं कि ये परिवर्तनशील ऋतुओं के समान हैं जो शरीर के स्पर्श द्वारा अनुभूतिगम्य हैं। सुख तथा दुख आते जाते रहते हैं। अतएव पण्डित को अर्थात् विद्वान व्यक्ति को उनकी परवाह नहीं रहती। कहा गया है—*गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ।* शरीर प्रारम्भ से मृत रहता है क्योंकि यह पदार्थ का पिंड है। इसमें सुख-दुख की अनुभूति नहीं होती। चूँकि शरीर के भीतर का आत्मा देहात्मबुद्धि में रहता है इसीलिए उसे दुख-सुख भोगना पड़ता है, किन्तु ये तो आते जाते रहते हैं। यहाँ यह ज्ञात होता है कि मिथिल वंश में उत्पन्न सारे राजा मुक्तात्मा पुरुष थे जो इस जगत के तथाकथित सुख-दुख से अप्रभावित थे।

इस प्रकार *श्रीमद्भागवत* के नवम स्कन्ध के अन्तर्गत ''महाराज निमि की वंशावली'' नामक तेरहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter चौदह

पुरुरवा का उर्वशी पर मोहित होना

इस चौदहवें अध्याय का सारांश इस प्रकार है—इस अध्याय में सोम का वर्णन है जिसने बृहस्पति की पत्नी का अपहरण किया और उसके गर्भ से बुध नामक पुत्र की प्राप्ति की। बुध से पुरुरवा उत्पन्न हुआ जिसने उर्वशी के गर्भ से छः पुत्र उत्पन्न किए जिनमें सबसे बड़ा आयु था।

ब्रह्माजी का जन्म गर्भोदकशायी विष्णु की नाभि से निकले कमल से हुआ। ब्रह्मा का पुत्र अत्रि हुआ और अत्रि का पुत्र सोम हुआ जो समस्त ओषधियों और नक्षत्रों का राजा था। सोम चक्रवर्ती सम्राट बना तो गर्व के वशीभूत होकर उसने देवताओं के गुरु बृहस्पति की पत्नी तारा का अपहरण कर लिया। फलत: देवताओं और असुरों में युद्ध छिड़ गया, किन्तु ब्रह्मा ने बृहस्पति की पत्नी की सोम के फंदे से रक्षा की। उसे सोम के चंगुल से छुड़ाकर उसके पति को दे दिया। इस तरह युद्ध शान्त हो गया। तारा के गर्भ से सोम को एक पुत्र की प्राप्ति हुई जिसका नाम बुध था। बुध को इला के गर्भ से ऐल या पुरुरवा नामक पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। उर्वशी इसी पुरुरवा के सौन्दर्य पर मोहित हो गई अतएव वह कुछ काल तक उसके साथ रही, किन्तु जब उसने पुरुरवा का संग छोड़ दिया तो वह विक्षिप्त सा रहने लगा। सारे विश्व का भ्रमण करते हुए कुरुक्षेत्र में उसकी भेंट पुन: उर्वशी से हुई तो वह इस बात के लिए राजी हुई कि वर्ष में केवल एक रात के लिए ही वह उसके साथ रहा करेगा।

फलत: एक वर्ष बाद पुरुरवा फिर उर्वशी से कुरुक्षेत्र में मिला और रात भर उसके साथ रहा, किन्तु जब उसे यह विचार आया कि उर्वशी उसे पुन: छोड़कर चली जायेगी तो वह अत्यधिक दुखी हो उठा। तब उर्वशी ने उसे सलाह दी कि वह गन्धर्वों की पूजा करे। गन्धर्वों ने प्रसन्न होकर पुरुरवा को अग्निस्थालि नामक एक स्त्री प्रदान की। पुरुरवा ने समझा कि यह उर्वशी ही है, किन्तु जंगल में घूमते समय उसका भ्रम दूर हो गया और उसने तुरन्त ही उस स्त्री की संगति छोड़ दी। वह घर लौटकर रात भर उर्वशी का ध्यान करता रहा और उसने अपनी इच्छापूर्ति के लिए एक वैदिक अनुष्ठान करना चाहा। तत्पश्चात् वह उसी स्थान में गया जहाँ पर उसने अग्निस्थालि को छोड़ा था। वहाँ उसने देखा कि शमी वृक्ष के भीतर से एक अश्वत्थ वृक्ष निकला हुआ है। उसने इस वृक्ष से दो डंडे काटे और उनसे अग्नि उत्पन्न की। ऐसी अग्नि से समस्त

कामवासनाएँ पूर्ण की जा सकती हैं। इस अग्नि को पुरुरवा का पुत्र मान लिया गया। सत्ययुग में केवल एक सामाजिक वर्ण था जो *हंस* कहलाता था, तब चार वर्ण—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—न थे। तब वेद ओङ्कार था। विभिन्न देवताओं की पूजा नहीं होती थी क्योंकि एकमात्र भगवान् ही आराध्यदेव थे।

श्रीशुक उवाच
अथातः श्रूयतां राजन्वंशः सोमस्य पावनः ।
यस्मिन्नैलादयो भूपाः कीर्त्यन्ते पुण्यकीर्तयः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; अथ—अब (सूर्यवंश का इतिहास सुनने के बाद); अतः—अतएव; श्रूयताम्—मुझसे सुनो; राजन्—हे राजा परीक्षित; वंशः—वंश; सोमस्य—सोमदेव का; पावनः—पवित्र करने वाला; यस्मिन्—जिस (वंश) में; ऐल-आदयः—ऐल (पुरुरवा) इत्यादि; भूपाः—अनेक राजा; कीर्त्यन्ते—वर्णित किये जाते हैं; पुण्य-कीर्तयः—ऐसे व्यक्ति जिनके विषय में सुनना कीर्तिप्रद है।

श्रील शुकदेव गोस्वामी ने महाराज परीक्षित से कहा : हे राजन्, अभी तक आपने सूर्यवंश का विवरण सुना है। अब सोमवंश का अत्यन्त कीर्तिप्रद एवं पावन वर्णन सुनिए। इसमें ऐल (पुरुरवा) जैसे राजाओं का उल्लेख है जिनके विषय में सुनना कीर्तिप्रद होता है।

सहस्रशिरसः पुंसो नाभिह्रदसरोरुहात् ।
जातस्यासीत्सुतो धातुरत्रिः पितृसमो गुणैः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

सहस्र-शिरसः—एक हजार सिरों वाले; पुंसः—भगवान् विष्णु (गर्भोदकशायी विष्णु) की; नाभि-ह्रद-सरोरुहात्—नाभि रूपी सरोवर से उत्पन्न कमल से; जातस्य—प्रकट हुआ; आसीत्—था; सुतः—पुत्र; धातुः—ब्रह्माजी का; अत्रिः—अत्रि नामक; पितृ-समः—अपने पिता के ही समान; गुणैः—योग्य।

भगवान् विष्णु (गर्भोदकशायी विष्णु) सहस्रशीर्ष पुरुष भी कहलाते हैं। उनकी नाभि रूपी सरोवर से एक कमल निकला जिससे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। ब्रह्मा का पुत्र अत्रि अपने पिता के ही समान योग्य था।

तस्य दृग्भ्योऽभवत्पुत्रः सोमोऽमृतमयः किल ।
विप्रौषध्युडुगणानां ब्रह्मणा कल्पितः पतिः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

तस्य—अत्रि के; दृग्भ्यः—हर्षाश्रुओं से; अभवत्—उत्पन्न हुआ; पुत्रः—पुत्र; सोमः—चन्द्रमा; अमृत-मयः—स्निग्ध किरणों से युक्त; किल—निस्सन्देह; विप्र—ब्राह्मणों का; ओषधि—दवाओं का; उडु-गणानाम्—तारों का; ब्रह्मणा—ब्रह्मा द्वारा; कल्पितः—नियुक्त किया गया; पतिः—परम निदेशक, संचालक।

अत्रि के हर्षाश्रुओं से सोम नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ जो स्निग्ध किरणों से युक्त था। ब्रह्माजी ने उसे ब्राह्मणों, ओषधियों तथा नक्षत्रों (तारों) का निदेशक नियुक्त किया।

तात्पर्य : वेदों के अनुसार सोम या चन्द्रदेव की उत्पत्ति भगवान् के मन से हुई (*चन्द्रमा मनसोजात:*), किन्तु यहाँ पर सोम को अत्रि के अश्रुओं से उत्पन्न बतलाया गया है। यह वैदिक सूचना के विपरीत प्रतीत होता है, किन्तु वास्तव में ऐसा है नहीं क्योंकि चन्द्रमा का यह जन्म किसी दूसरे कल्प में हुआ जान पड़ता है। जब आँखों में हर्ष के अश्रु आते हैं तो वे स्निग्ध होते हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं—*दृग्भ्य आनन्दाश्रुभ्य अत एवामृतमय:*—यहाँ *दृग्भ्य* शब्द का अर्थ है 'आनन्द के अश्रुओं से।' इसीलिए चन्द्रमा *अमृतमय:* कहलाता है अर्थात् 'स्निग्ध किरणों से युक्त'। *श्रीमद्भागवत* के चतुर्थ स्कन्ध में (४.१.१५) यह श्लोक आया है।

अत्रे: पत्न्यनसूया त्रीञ् जज्ञे सुयशस: सुतान्।

दत्तं दुर्वाससं सोममात्मेशब्रह्मसम्भवान्॥

इस श्लोक से पता चलता है कि अत्रि-पत्नी अनसूया के गर्भ से तीन पुत्र उत्पन्न हुए—सोम, दुर्वासा तथा दत्तात्रेय। ऐसा कहा जाता है कि अनसूया अत्रि के अश्रुओं से गर्भवती हुई थी।

सोऽयजद्राजसूयेन विजित्य भुवनत्रयम् ।
पत्नीं बृहस्पतेर्दर्पात्तारां नामाहरद्बलात् ॥ ४॥

शब्दार्थ

स:—उस सोम ने; अयजत्—सम्पन्न किया; राजसूयेन—राजसूय यज्ञ द्वारा; विजित्य—जीतकर; भुवन-त्रयम्—तीनों लोक (स्वर्ग, मर्त्य तथा पाताल); पत्नीम्—पत्नी को; बृहस्पते:—बृहस्पति की, जो देवताओं के गुरु हैं; दर्पात्—गर्व से; ताराम्—तारा को; नाम—नामक; अहरत्—चुरा ले गया; बलात्—बलपूर्वक, जबरन।

तीनों लोकों को जीत लेने के बाद सोम ने राजसूय नामक महान् यज्ञ सम्पन्न किया। अत्यधिक गर्वित होने के कारण उसने बृहस्पति की पत्नी तारा का बलपूर्वक हरण कर लिया।

यदा स देवगुरुणा याचितोऽभीक्ष्णशो मदात् ।
नात्यजत्तत्कृते जज्ञे सुरदानवविग्रह: ॥ ५॥

शब्दार्थ

यदा—जब; सः—वह (सोम); देव-गुरुणा—देवताओं के गुरु बृहस्पति द्वारा; याचितः—माँगे जाने पर; अभीक्ष्णशः—बारम्बार; मदात्—मिथ्या गर्व के कारण; न—नहीं; अत्यजत्—छोड़ा; तत्-कृते—इसके कारण; जज्ञे—हुआ; सुर-दानव—देवताओं तथा असुरों के बीच; विग्रहः—युद्ध।

यद्यपि देवताओं के गुरु बृहस्पति ने सोम से बारम्बार अनुरोध किया कि वह तारा को लौटा दे, किन्तु उसने नहीं लौटाया। यह उसके मिथ्या गर्व के कारण हुआ। फलस्वरूप देवताओं तथा असुरों के बीच युद्ध छिड़ गया।

शुक्रो बृहस्पतेर्द्वेषादग्रहीत्सासुरोडुपम् ।
हरो गुरुसुतं स्नेहात्सर्वभूतगणावृतः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

शुक्रः—शुक्र नामक देवता; बृहस्पतेः—बृहस्पति की; द्वेषात्—शत्रुतावश; अग्रहीत्—ले लिया; स-असुर—असुरों सहित; उडुपम्—चन्द्रमा का पक्ष; हरः—शिवजी ने; गुरु-सुतम्—अपने गुरुपुत्र का पक्ष; स्नेहात्—स्नेहवश; सर्व-भूत-गण-आवृतः—सारे भूतप्रेतों को साथ लेकर।

बृहस्पति तथा शुक्र के मध्य शत्रुता होने से शुक्र ने सोम (चन्द्रमा) का पक्ष लिया और सारे असुर उनके साथ हो लिये। किन्तु अपने गुरु का पुत्र होने के कारण शिवजी स्नेहवश बृहस्पति के पक्ष में हो लिये और उनके साथ सारे भूत-प्रेत भी हो लिये।

तात्पर्य : यद्यपि सोम एक देवता है लेकिन अन्य देवताओं से युद्ध करने के लिए उसने असुरों की सहायता ली। बृहस्पति का शत्रु होने से शुक्र ने भी अपने क्रोध का बदला लेने के लिए चन्द्रमा का पक्ष ग्रहण किया। इस स्थिति को सँभालने के लिए शिवजी ने बृहस्पति के प्रति स्नेह के कारण उसका पक्ष ग्रहण किया। बृहस्पति का पिता अंगिरा था जिससे शिवजी ने ज्ञान प्राप्त किया था; अतएव शिवजी को बृहस्पति से थोड़ा स्नेह था। इसलिए वे इस युद्ध में उसकी ओर हो लिये। श्रीधरस्वामी टीका करते हैं—*अंगिरसः साक्षात् प्राप्तविद्यो हर इति प्रसिद्धः*—शिवजी ने अंगिरा से ज्ञान प्राप्त किया, यह प्रसिद्ध है।

सर्वदेवगणोपेतो महेन्द्रो गुरुमन्वयात् ।
सुरासुरविनाशोऽभूत्समरस्तारकामयः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

सर्व-देव-गण—विभिन्न देवताओं द्वारा; उपेतः—साथ हो लेने पर; महेन्द्रः—इन्द्र; गुरुम्—गुरु का; अन्वयात्—साथ दिया; सुर—देवताओं का; असुर—तथा असुरों का; विनाशः—विनाशकारी; अभूत्—था; समरः—यद्ध; तारका-मयः—बृहस्पति की पत्नी तारा के कारण।

इन्द्र सभी देवताओं को साथ लेकर बृहस्पति के पक्ष में हो लिया। इस तरह महान् युद्ध हुआ

जिसमें बृहस्पति की पत्नी तारा के कारण ही असुरों तथा देवताओं का विनाश हो गया।

निवेदितोऽथाङ्गिरसा सोमं निर्भर्त्स्य विश्वकृत् ।
तारां स्वभर्त्रे प्रायच्छदन्तर्वत्नीमवैत्पतिः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

निवेदितः—पूरी तरह सूचित किया जाकर; अथ—इस प्रकार; अङ्गिरसा—अंगिरा मुनि द्वारा; सोमम्—सोम को; निर्भर्त्स्य—बुरी तरह भर्त्सना करके; विश्व-कृत्—ब्रह्माजी ने; ताराम्—तारा को; स्व-भर्त्रे—उसके पति को; प्रायच्छत्—दे दिया; अन्तर्वत्नीम्—गर्भिणी; अवैत्—समझ सका; पतिः—पति (बृहस्पति)।

जब अंगिरा ने ब्रह्माजी को सारी घटना की जानकारी दी तो उन्होंने सोम को बुरी तरह फटकारा। इस तरह ब्रह्माजी ने तारा को उसके पति को वापस दिलवा दिया जिसे यह ज्ञात हो गया कि उसकी पत्नी गर्भवती है।

त्यज त्यजाशु दुष्प्रज्ञे मत्क्षेत्रादाहितं परैः ।
नाहं त्वां भस्मसात्कुर्यां स्त्रियं सान्तानिकेऽसति ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

त्यज—बाहर करो; त्यज—बाहर करो; आशु—तुरन्त; दुष्प्रज्ञे—मूर्ख स्त्री; मत्-क्षेत्रात्—मेरे द्वारा गर्भित होने वाले क्षेत्र से; आहितम्—उत्पन्न हुआ; परैः—अन्यों के द्वारा; न—नहीं; अहम्—मैं; त्वाम्—तुमको; भस्मसात्—जलाकर राख; कुर्याम्—कर दूँगा; स्त्रियम्—तुम स्त्री को; सान्तानिके—सन्तान की इच्छुक; असति—दुराचारिणी।

बृहस्पति ने कहा : अरे मूर्ख स्त्री! जिस गर्भ को मेरे वीर्य से निषेचित होना था वह किसी अन्य के द्वारा निषेचित हो चुका है। तुम तुरन्त ही बच्चा जनो। तुरन्त जनो। आश्वस्त रहो कि इस बच्चे के जनने के बाद मैं तुम्हें भस्म नहीं करूँगा। मुझे पता है कि यद्यपि तुम दुराचारिणी हो, किन्तु तुम पुत्र की इच्छुक थी। अतएव मैं तुम्हें दण्ड नहीं दूँगा।

तात्पर्य : तारा का विवाह बृहस्पति से हुआ था अतएव सती स्त्री के रूप में उसे बृहस्पति से वीर्य-दान लेना था। किन्तु उसने सोम से वीर्य-दान लेना बेहतर समझा अतएव वह दुराचारिणी थी। यद्यपि बृहस्पति ने ब्रह्माजी के कहने पर तारा को स्वीकार कर लिया, किन्तु जब उन्होंने देखा कि वह गर्भवती है तो उन्होंने तुरन्त ही तारा से पुत्र जनने को कहा। तारा अपने पति से अत्यधिक डरी हुई थी और सोच रही थी कि पुत्र-जन्म देने के बाद उसे दण्ड दिया जायेगा। किन्तु बृहस्पति ने आश्वासन दिया कि वे उसे दण्डित नहीं करेंगे, भले ही वह दुराचारिणी बनकर अवैध रूप से गर्भवती हुई हो क्योंकि वह पुत्र की इच्छुक थी।

तत्याज व्रीडिता तारा कुमारं कनकप्रभम् ।
स्पृहामाङ्गिरसश्चक्रे कुमारे सोम एव च ॥ १० ॥

शब्दार्थ

तत्याज—जन्म दिया; व्रीडिता—अत्यन्त लज्जित; तारा—तारा ने; कुमारम्—बालक को; कनक-प्रभम्—सोने के समान शारीरिक कान्ति वाला; स्पृहाम्—अभिलाषा; आङ्गिरसः—बृहस्पति ने; चक्रे—बनाया; कुमारे—कुमार को; सोमः—सोम; एव—निस्सन्देह; च—भी।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : बृहस्पति का आदेश पाकर अत्यन्त लज्जित हुई तारा ने तुरन्त ही बच्चे को जन्म दिया जो अत्यन्त सुन्दर था और जिसकी शारीरिक कान्ति सोने जैसी थी। बृहस्पति तथा सोम दोनों ने ही उस सुन्दर पुत्र को सराहा।

ममायं न तवेत्युच्चैस्तस्मिन्विवदमानयोः ।
पप्रच्छुरृषयो देवा नैवोचे व्रीडिता तु सा ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

मम—मेरा; अयम्—यह (पुत्र); न—नहीं; तव—तुम्हारा; इति—इस प्रकार; उच्चैः—उच्चस्वर से; तस्मिन्—बालक के लिए; विवदमानयोः—दो दलों के झगड़ने पर; पप्रच्छुः—पूछा (तारा से); ऋषयः—ऋषियों ने; देवाः—सारे देवताओं ने; न—नहीं; एव—निस्सन्देह; उचे—कुछ कहा; व्रीडिता—लाजवश; तु—निस्सन्देह; सा—तारा ने।

फिर से बृहस्पति और सोम के बीच झगड़ा होने लगा क्योंकि दोनों दावा कर रहे थे, ''यह मेरा पुत्र है, तुम्हारा नहीं है।'' वहाँ पर उपस्थित सारे ऋषियों तथा देवताओं ने तारा से पूछा कि यह नवजात शिशु वास्तव में किसका है, किन्तु वह लज्जित होने के कारण तुरन्त कुछ भी उत्तर न दे पाई।

कुमारो मातरं प्राह कुपितोऽलीकलज्जया ।
किं न वचस्यसद्वृत्ते आत्मावद्यं वदाशु मे ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

कुमारः—बालक ने; मातरम्—अपनी माता से; प्राह—कहा; कुपितः—अत्यधिक क्रुद्ध; अलीक—वृथा; लज्जया—लाज से; किम्—क्यों; न—नहीं; वचसि—बोलती हो; असत्-वृत्ते—अरे दुराचारिणी स्त्री; आत्म-अवद्यम्—अपने दोष को; वद—कहो; आशु—तुरन्त; मे—मुझसे।

तब बालक अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और उसने अपनी माता से तुरन्त सच-सच बतलाने के लिए कहा, ''हे दुराचारिणी! तुम्हारे द्वारा यह लज्जा व्यर्थ है। तुम अपने दोष को स्वीकार क्यों नहीं कर लेती? तुम मुझसे अपने दोषी चरित्र के विषय में बतलाओ।''

ब्रह्मा तां रह आहूय समप्राक्षीच्च सान्त्वयन् ।
सोमस्येत्याह शनकैः सोमस्तं तावदग्रहीत् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

ब्रह्मा—ब्रह्माजी ने; ताम्—उस (तारा) से; रहः—एकान्त में; आहूय—बुलाकर; समप्राक्षीत्—विस्तार से पूछा; च—तथा; सान्त्वयन्—शान्त करते हुए; सोमस्य—सोम का है; इति—इस प्रकार; आह—वह बोली; शनकैः—अत्यन्त धीमे; सोमः—सोम ने; तम्—बालक को; तावत्—तुरन्त; अग्रहीत्—स्वीकार कर लिया।

तत्पश्चात् ब्रह्माजी तारा को एकान्त में ले गये और सान्त्वना देने के बाद उससे पूछा कि वास्तव में यह पुत्र किसका है। उसने धीमे से उत्तर दिया "यह सोम का है।" तब सोम ने तुरन्त ही उस बालक को स्वीकार कर लिया।

तस्यात्मयोनिरकृत बुध इत्यभिधां नृप ।
बुद्ध्या गम्भीरया येन पुत्रेणापोडुराण्मुदम् ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उस बालक का; आत्म-योनिः—ब्रह्माजी ने; अकृत—बनाया; बुधः—बुध; इति—इस प्रकार; अभिधाम्—नाम; नृप—हे राजा, परीक्षित; बुद्ध्या—बुद्धि से; गम्भीरया—अत्यन्त गहराई पर स्थित; येन—जिस; पुत्रेण—पुत्र से; आप—उसने पाया; उडुराट्—सोम से; मुदम्—हर्ष।

हे महाराज परीक्षित, जब ब्रह्माजी ने देखा कि वह बालक अत्यधिक बुद्धिमान है तो उन्होंने उसका नाम बुध रख दिया। इस पुत्र के कारण नक्षत्रों के राजा सोम ने अत्यधिक हर्ष का अनुभव किया।

ततः पुरूरवा जज्ञे इलायां य उदाहृतः ।
तस्य रूपगुणौदार्यशीलद्रविणविक्रमान् ॥ १५ ॥
श्रुत्वोर्वशीन्द्रभवने गीयमानान्सुरर्षिणा ।
तदन्तिकमुपेयाय देवी स्मरशरार्दिता ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

ततः—उस (बुध) से; पुरूरवाः—पुरुरवा; जज्ञे—उत्पन्न हुआ; इलायाम्—इला के गर्भ से; यः—जो; उदाहृतः—पूर्ववर्णित (नवम स्कन्ध के प्रारम्भ में); तस्य—उसका (पुरुरवा का); रूप—सौन्दर्य; गुण—गुण; औदार्य—उदारता; शील—आचरण; द्रविण—सम्पत्ति; विक्रमान्—शक्ति को; श्रुत्वा—सुनकर; उर्वशी—देवलोक की स्त्री (देवांगना), उर्वशी; इन्द्र-भवने—राजा इन्द्र के दरबार में; गीयमानान्—वर्णन किये जाते समय; सुर-ऋषिणा—नारद द्वारा; तत्-अन्तिकम्—उसके निकट; उपेयाय—पहुँचकर; देवी—उर्वशी; स्मर-शर—कामदेव के बाण से; अर्दिता—मारी गयी।

तत्पश्चात् इला के गर्भ से बुध को पुरुरवा नामक पुत्र की प्राप्ति हुई जिसका वर्णन नवम स्कन्ध के प्रारम्भ में किया जा चुका है। जब नारद ने इन्द्र के दरबार में पुरुरवा के सौन्दर्य, गुण, उदारता, आचरण, ऐश्वर्य तथा शक्ति का वर्णन किया तो देवांगना उर्वशी उसके प्रति आकृष्ट हो गई। वह

कामदेव के बाणों से बिंधकर उसके पास पहुँची।

मित्रावरुणयोः शापादापन्ना नरलोकताम् ।
निशम्य पुरुषश्रेष्ठं कन्दर्पमिव रूपिणम् ।
धृतिं विष्टभ्य ललना उपतस्थे तदन्तिके ॥ १७॥
स तां विलोक्य नृपतिर्हर्षेणोत्फुल्ललोचनः ।
उवाच श्लक्ष्णया वाचा देवीं हृष्टतनूरुहः ॥ १८॥

शब्दार्थ

मित्रा-वरुणयोः—मित्र तथा वरुण के; शापात्—शाप से; आपन्ना—प्राप्त हुई; नर-लोकताम्—मनुष्यों का स्वभाव; निशम्य—देखकर; पुरुष-श्रेष्ठम्—मनुष्यों में सर्वोत्तम; कन्दर्पम् इव—कामदेव की तरह; रूपिणम्—रूपवान; धृतिम्—धैर्य, सहनशीलता; विष्टभ्य—स्वीकार करके; ललना—वह स्त्री; उपतस्थे—निकट गई; तत्-अन्तिके—उसके पास; सः—वह पुरुरवा; ताम्—उसको; विलोक्य—देखकर; नृपतिः—राजा; हर्षेण—हर्ष से; उत्फुल्ल-लोचनः—चमकीली आँखों वाला; उवाच—बोला; श्लक्ष्णया—विनीत होकर; वाचा—शब्द; देवीम्—उस देवी से; हृष्ट-तनूरुहः—हर्ष से रोमांचित।

मित्र तथा वरुण से शापित उस देवांगना उर्वशी ने मानवीय गुण अर्जित कर लिए। अतएव पुरुषश्रेष्ठ, कामदेव के समान सुन्दर पुरुरवा को देखते ही उसने अपने को सँभाला। और वह उसके निकट पहुँची। जब राजा पुरुरवा ने उर्वशी को देखा तो उसकी आँखें हर्ष से चमक उठीं और उसको रोमांच हो आया। वह उससे विनीत एवं मधुर वचनों में इस प्रकार बोला।

श्रीराजोवाच
स्वागतं ते वरारोहे आस्यतां करवाम किम् ।
संरमस्व मया साकं रतिर्नौ शाश्वतीः समाः ॥ १९॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—राजा (पुरुरवा) ने कहा; स्वागतम्—स्वागत; ते—तुम्हारा; वरारोहे—हे सर्व-सुन्दर स्त्री; आस्यताम्—कृपया आसन ग्रहण करें; करवाम किम्—आपके लिए क्या करूँ; संरमस्व—मेरी संगिनी बनो; मया साकम्—मेरे साथ; रतिः—कामकेलि, रतिक्रीडा; नौ—हमारे बीच; शाश्वतीः समाः—अनेक वर्षों तक।

राजा पुरुरवा ने कहा : हे श्रेष्ठ सुन्दरी, तुम्हारा स्वागत है। कृपा करके यहाँ बैठो और कहो कि मैं तुम्हारे लिए क्या कर सकता हूँ? तुम जब तक चाहो मेरे साथ भोग कर सकती हो। हम दोनों सुखपूर्वक दम्पति-जीवन व्यतीत करें।

उर्वश्युवाच
कस्यास्त्वयि न सज्जेत मनो दृष्टिश्च सुन्दर ।
यदङ्गान्तरमासाद्य च्यवते ह रिरंसया ॥ २०॥

शब्दार्थ

उर्वशी उवाच—उर्वशी ने उत्तर दिया; कस्याः—किस स्त्री का; त्वयि—तुम पर; न—नहीं; सज्जेत—आकृष्ट होगा; मनः—मन; दृष्टिः च—तथा दृष्टि; सुन्दर—हे रूपवान; यत्-अङ्गान्तरम्—जिसका वक्ष; आसाद्य—भोगकर; च्यवते—त्यागता है; ह—निस्सन्देह; रिरंसया—कामसुख के लिए।

उर्वशी ने उत्तर दिया: हे रूपवान, ऐसी कौन सी स्त्री होगी जिसका मन तथा दृष्टि आपके प्रति आकृष्ट न हो जाए? यदि कोई स्त्री आपके वक्षस्थल की शरण ले तो वह आपसे रमण किये बिना नहीं रह सकती।

तात्पर्य : जब कोई सुन्दर पुरुष तथा कोई सुन्दर स्त्री परस्पर मिलते हैं और एक दूसरे का आलिंगन करते हैं तो इन तीनों लोकों में भला वे किस प्रकार मैथुन के सम्बन्ध से बच सकते हैं? इसीलिए *श्रीमद्भागवत* (७.९.४५) का कथन है—*यन्मैथुनादिगृहमेधि सुखं हि तुच्छम्।*

एतावुरणकौ राजन्न्यासौ रक्षस्व मानद ।
संरंस्ये भवता साकं श्लाघ्यः स्त्रीणां वरः स्मृतः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

एतौ—इन दोनों को; उरणकौ—मेमने; राजन्—हे राजा पुरुरवा; न्यासौ—नीचे गिरे हुए; रक्षस्व—रक्षा करो; मान-द—अतिथि को सम्मान देने वाले; संरंस्ये—मैं रमण करूँगी; भवता साकम्—तुम्हारे संग रहकर; श्लाघ्यः—श्रेष्ठ; स्त्रीणाम्—स्त्री का; वरः—पति; स्मृतः—कहा गया है।

हे राजा पुरुरवा, आप इन दोनों मेमनों को शरण दें क्योंकि ये भी मेरे साथ गिर गए हैं। यद्यपि मैं स्वर्गलोक की हूँ और आप पृथ्वी लोक के हैं, किन्तु मैं निश्चय ही आपके साथ संभोग करूँगी। आपको पति रूप में स्वीकार करने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है क्योंकि आप हर प्रकार से श्रेष्ठ हैं।

तात्पर्य : जैसा कि *ब्रह्म-संहिता* में (५.४०) कहा गया है—*यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्ड-कोटिकोटिष्वशेषवसुधादिविभूतिभिन्नम्।* इस ब्रह्माण्ड में अनेक लोक और अनेक आकाश हैं। जिस स्वर्ग लोक के आकाश से मित्र तथा वरुण द्वारा शापित होकर उर्वशी आयी थी वह इस पृथ्वी के आकाश से भिन्न था। निस्सन्देह, स्वर्ग लोकों के निवासी पृथ्वी के निवासियों से श्रेष्ठ हैं। फिर भी उर्वशी ने पुरुरवा की प्रेयसी बनना स्वीकार कर लिया यद्यपि वह श्रेष्ठतर समाज की थी। यदि स्त्री को उत्तम गुणों वाला कोई पुरुष मिल जाए तो वह उसे पति रूप में स्वीकार कर सकती है। इसी प्रकार यदि किसी मनुष्य की ऐसी स्त्री से भेंट हो, जो निम्नकुल की हो, किन्तु जिसमें उत्तम गुण पाये जाते हों तो वह ऐसी तेजस्वी पत्नी को स्वीकार कर सकता है जैसा कि चाणक्य पण्डित का उपदेश है (*स्त्रीरत्नं दुष्कुलाद् अपि*)। यदि नर तथा नारी के गुण

समान स्तर के हों तो उनका मिलन श्लाघनीय है।

घृतं मे वीर भक्ष्यं स्यान्नेक्षे त्वान्यत्र मैथुनात् ।
विवाससं तत्तथेति प्रतिपेदे महामनाः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

घृतम्—घी या अमृत; मे—मेरी; वीर—हे वीर पुरुष; भक्ष्यम्—खाद्य वस्तु; स्यात्—होगी; न—नहीं; ईक्षे—देखूँगी; त्वा—तुमको; अन्यत्र—किसी और समय; मैथुनात्—मैथुन काल के अतिरिक्त; विवाससम्—विवस्त्र, नग्न; तत्—वह; तथा इति—ऐसा ही हो; प्रतिपेदे—वचन दे दिया; महामनाः—राजा पुरुरवा ने।

उर्वशी ने कहा, "हे वीर, मैं केवल घी की बनी वस्तुएँ खाऊँगी और आपको मैथुन-समय के अतिरिक्त अन्य किसी समय नग्न नहीं देखना चाहूँगी।" विशालहृदय पुरुरवा ने इन प्रस्तावों को स्वीकार कर लिया।

अहो रूपमहो भावो नरलोकविमोहनम् ।
को न सेवेत मनुजो देवीं त्वां स्वयमागताम् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

अहो—आश्चर्यजनक है; रूपम्—सौन्दर्य; अहो—अद्भुत है; भावः—भावभंगिमा, मुद्रा; नर-लोक—मानव समाज में या पृथ्वीलोक में; विमोहनम्—इतना आकर्षक; कः—कौन; न—नहीं; सेवेत—स्वीकार कर सकता है; मनुजः—मनुष्य; देवीम्—देवी को; त्वाम्—तुम जैसी; स्वयम् आगताम्—स्वयं चलकर आई हुई।

पुरुरवा ने कहा : हे सुन्दरी, तुम्हारा सौन्दर्य अद्भुत है और तुम्हारी भावभंगिमाएँ भी अद्भुत हैं। निस्सन्देह, तुम सारे मानव समाज के लिए आकर्षक हो। अतएव क्योंकि तुम स्वेच्छा से स्वर्ग लोक से यहाँ आई हो तो भला इस पृथ्वीलोक पर ऐसा कौन होगा जो तुम जैसी देवी की सेवा करने के लिए तैयार नहीं होगा?

तात्पर्य : उर्वशी के वचनों से ऐसा प्रतीत होता है कि स्वर्गलोकों में खाने, रहने, आचार-व्यवहार तथा बोलने का स्तर इस धरालोक से भिन्न है। स्वर्गलोक के वासी मांस तथा अंडे जैसी घृणित वस्तुएँ नहीं खाते; वे केवल घी से बनी वस्तुएँ खाते हैं। न ही वे पुरुषों या स्त्रियों को रतिकाल के अतिरिक्त अन्य समय नग्न देखने के इच्छुक रहते हैं। नग्न या नग्न सा रहना असभ्यतापूर्ण है, किन्तु आजकल इस लोक में अर्धनग्न रहना फैशन बन चुका है और कभी-कभी हिप्पियों जैसे लोग बिल्कुल नग्न रहते हैं। इस कार्य के लिए तो आजकल अनेक क्लब तथा सोसाइटियाँ बनी हुई हैं। किन्तु स्वर्गलोक में ऐसे आचरण के लिए अनुमति

नहीं है। स्वर्गलोक के निवासी शारीरिक रूप से तथा रंगरूप में सुन्दर होने के साथ ही अच्छे आचरण वाले और दीर्घजीवी होते हैं और वे उत्तम भोजन करने वाले हैं। स्वर्ग और मर्त्यलोक के वासियों के ये कुछ अन्तर हैं।

तया स पुरुषश्रेष्ठो रमयन्त्या यथार्हतः ।
रेमे सुरविहारेषु कामं चैत्ररथादिषु ॥ २४॥

शब्दार्थ

तया—उसके साथ; सः—वह; पुरुष-श्रेष्ठः—मनुष्यों में श्रेष्ठ, पुरुरवा; रमयन्त्या—रमण करते हुए; यथा-अर्हतः—यथाशक्ति; रेमे—भोग किया; सुर-विहारेषु—स्वर्गिक विहारस्थलों में; कामम्—इच्छानुसार; चैत्ररथ-आदिषु—चैत्ररथ इत्यादि जैसे श्रेष्ठ उद्यानों में।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : पुरुषश्रेष्ठ पुरुरवा उर्वशी के साथ मुक्त भाव से भोग करने लगा। वे दोनों चैत्ररथ, नन्दन कानन जैसे अनेक दैवी स्थलों में रतिक्रीड़ा में व्यस्त रहने लगे, जहाँ पर देवतागण भोग-विहार करते हैं।

रममाणस्तया देव्या पद्मकिञ्जल्कगन्धया ।
तन्मुखामोदमुषितो मुमुदेऽहर्गणान्बहून् ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

रममाणः—रमण करते हुए; तया—उसके साथ; देव्या—देवी के साथ; पद्म—कमल; किञ्जल्क—केसर के समान; गन्धया—गन्ध से; तत्-मुख—उसका सुन्दर मुखमंडल; आमोद—सुगन्धि से; मुषितः—अधिकाधिक उत्तेजित होकर; मुमुदे—जीवन का आनन्द लिया; अहः-गणान्—दिन प्रतिदिन; बहून्—अनेक।

उर्वशी का शरीर कमल के केसर की भाँति सुगन्धित था। उसके मुख तथा शरीर की सुगन्ध से अनुप्राणित होकर पुरुरवा ने अत्यन्त उल्लासपूर्वक अनेक दिनों तक उसके साथ रमण किया।

अपश्यन्नुर्वशीमिन्द्रो गन्धर्वान्समचोदयत् ।
उर्वशीरहितं मह्यमास्थानं नातिशोभते ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

अपश्यन्—न देखने से; उर्वशीम्—उर्वशी को; इन्द्रः—स्वर्ग के राजा इन्द्र ने; गन्धर्वान्—गन्धर्वों को; समचोदयत्—आदेश दिया; उर्वशी-रहितम्—बिना उर्वशी के; मह्यम्—मेरा; आस्थानम्—स्थान; न—नहीं; अतिशोभते—अच्छा लगता है।

उर्वशी को अपनी सभा में न देखकर स्वर्ग के राजा इन्द्र ने कहा, ''उर्वशी के बिना मेरी सभा सुन्दर नहीं लगती।'' यह सोचकर उसने गन्धर्वों से अनुरोध किया कि वे उसे पुनः स्वर्गलोक में ले आएँ।

ते उपेत्य महारात्रे तमसि प्रत्युपस्थिते ।
उर्वश्या उरणौ जह्रुर्न्यस्तौ राजनि जायया ॥ २७॥

शब्दार्थ

ते—वे गन्धर्वगण; उपेत्य—वहाँ जाकर; महा-रात्रे—आधीरात में; तमसि—अँधेरे में; प्रत्युपस्थिते—प्रकट हुए; उर्वश्या—उर्वशी द्वारा; उरणौ—दोनों मेमने; जह्रुः—चुरा लिया; न्यस्तौ—धरोहर रखे गये; राजनि—राजा के पास; जायया—पत्नी उर्वशी द्वारा।

इस तरह गन्धर्वगण पृथ्वी पर आये और अर्धरात्रि के अंधकार में पुरुरवा के घर में प्रकट हुए तथा उर्वशी द्वारा प्रदत्त दोनों मेमने चुरा लिए।

तात्पर्य : *महारात्रे* का अर्थ है अर्धरात्रि। *महानिशा द्वे घटिके रात्रेर् मध्यमयामयोः*—इस स्मृति मंत्र में महानिशा को अर्धरात्रि के बारह बजे बतलाया गया है।

निशम्याक्रन्दितं देवी पुत्रयोर्नीयमानयोः ।
हतास्म्यहं कुनाथेन नपुंसा वीरमानिना ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

निशम्य—सुनकर; आक्रन्दितम्—क्रन्दन, चीत्कार (चुराने के कारण); देवी—उर्वशी; पुत्रयोः—पुत्रस्वरूप दोनों मेमनों का; नीयमानयोः—ले जाये जाते हुए; हता—मारी गयी; अस्मि—हूँ; अहम्—मैं; कु-नाथेन—कुपति के संरक्षण में होने से; न-पुंसा—नपुंसक द्वारा; वीर-मानिना—अपने को वीर मानने वाला।

उर्वशी इन दोनों मेमनों को पुत्रस्वरूप मानती थी। अतएव जब उन्हें गन्धर्वगण लिए जा रहे थे और जब उन्होंने मिमियाना शुरू किया तो उर्वशी ने इसे सुना। उसने अपने पति को फटकारते हुए कहा, ''हाय! अब मैं ऐसे अयोग्य पति के संरक्षण में रहती हुई मारी जा रही हूँ जो कायर एवं नपुंसक है किन्तु अपने को परम वीर समझता है।

यद्विश्रम्भादहं नष्टा हृतापत्या च दस्युभिः ।
यः शेते निशि सन्त्रस्तो यथा नारी दिवा पुमान् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

यत्-विश्रम्भात्—जिस पर आश्रित रहने के कारण; अहम्—मैं; नष्टा—विनष्ट हो गई; हृत-अपत्या—अपने पुत्रों (मेमनों) से विहीन; च—भी; दस्युभिः—लुटेरों के द्वारा; यः—जो (मेरा तथाकथित पति); शेते—सोता है; निशि—रात में; सन्त्रस्तः—भयभीत; यथा—जिस तरह; नारी—स्त्री; दिवा—दिन में; पुमान्—पुरुष।

''चूँकि मैं उस (अपने पति) पर आश्रित थी, अतएव लुटेरों ने मुझसे मेरे दोनों पुत्रवत् मेमनों को छीन लिया है और अब मैं विनष्ट हो गई हूँ। मेरा पति रात्रि में डर के मारे उसी तरह सो रहा है जैसे

कोई स्त्री हो, यद्यपि दिन में वह पुरुष प्रतीत होता है।''

इति वाक्सायकैर्बिद्धः प्रतोत्त्रैरिव कुञ्जरः ।
निशि निस्त्रिंशमादाय विवस्त्रोऽभ्यद्रवद्रुषा ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; वाक्-सायकैः—कठोर शब्दों के बाणों से; बिद्धः—बींधकर; प्रतोत्त्रैः—अंकुश से; इव—सदृश; कुञ्जरः—हाथी; निशि—रात में; निस्त्रिंशम्—तलवार; आदाय—हाथ में लेकर; विवस्त्रः—नंगा; अभ्यद्रवत्—बाहर चला गया; रुषा—क्रोध से।

पुरुरवा उर्वशी के कर्कश शब्दों से आहत होने के कारण उसी तरह से अत्यधिक क्रुद्ध हुआ जिस तरह हाथी महावत के अंकुश से होता है। वह बिना उचित वस्त्र पहने, हाथ में तलवार लेकर मेमना चुराने वाले गन्धर्वों का पीछा करने के लिए नंगा बाहर चला गया।

ते विसृज्योरणौ तत्र व्यद्योतन्त स्म विद्युतः ।
आदाय मेषावायान्तं नग्नमैक्षत सा पतिम् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

ते—वे, गन्धर्व; विसृज्य—छोड़कर; उरणौ—दोनो मेमनों को; तत्र—उसी स्थान पर; व्यद्योतन्त स्म—प्रकाशमान हो उठे; विद्युतः—बिजली के समान; आदाय—हाथ में लेकर; मेषौ—दोनों मेमने; आयान्तम्—लौटकर; नग्नम्—नंगा; ऐक्षत—देखा; सा—उर्वशी ने; पतिम्—अपने पति को।

उन दोनों मेमनों को छोड़कर गन्धर्वगण बिजली के समान प्रकाशमान हो उठे जिससे पुरुरवा का घर प्रकाशित हो उठा। तब उर्वशी ने देखा कि उसका पति दोनों मेमनों को हाथ में लिए लौट आया है, किन्तु वह नग्न है; अतएव उसने उसका परित्याग कर दिया।

ऐलोऽपि शयने जायामपश्यन्विमना इव ।
तच्चित्तो विह्वलः शोचन्बभ्रामोन्मत्तवन्महीम् ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

ऐलः—पुरुरवा; अपि—भी; शयने—बिस्तर में; जायाम्—अपनी पत्नी को; अपश्यन्—न देखकर; विमनाः—खिन्न; इव—सदृश; तत्-चित्तः—उसके प्रति अत्यधिक आसक्त होने से; विह्वलः—मन में क्षुब्ध; शोचन्—विलाप करते; बभ्राम—घूमने लगे; उन्मत्त-वत्—पागल व्यक्ति की तरह; महीम्—पृथ्वी पर।

उर्वशी को अपने बिस्तर पर न देखकर पुरुरवा अत्यधिक दुखित हो उठा। उसके प्रति अत्यधिक आसक्ति के कारण वह मन में क्षुब्ध था। तत्पश्चात् विलाप करते हुए वह पागल की तरह सारी पृथ्वी में भ्रमण करने लगा।

स तां वीक्ष्य कुरुक्षेत्रे सरस्वत्यां च तत्सखीः ।
पञ्च प्रहृष्टवदनः प्राह सूक्तं पुरूरवाः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

सः—पुरुरवा ने; ताम्—उर्वशी को; वीक्ष्य—देखकर; कुरुक्षेत्रे—कुरुक्षेत्र नामक स्थान पर; सरस्वत्याम्—सरस्वती नदी के तट पर; च—भी; तत्-सखीः—उसकी सखियाँ; पञ्च—पाँच; प्रहृष्ट-वदनः—अत्यन्त प्रसन्न एवं हँसमुख; प्राह—कहा; सूक्तम्—मीठे वचन; पुरूरवाः—राजा पुरुरवा ने।

एक बार विश्व का भ्रमण करते हुए पुरुरवा ने उर्वशी को उसकी पाँच सखियों सहित सरस्वती नदी के तट पर कुरुक्षेत्र में देखा। प्रसन्न-मुख होकर वह उस से मधुर शब्दों में इस प्रकार बोला।

अहो जाये तिष्ठ तिष्ठ घोरे न त्यक्तुमर्हसि ।
मां त्वमद्याप्यनिर्वृत्य वचांसि कृणवावहै ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

अहो—ओह; जाये—मेरी प्रिय पत्नी; तिष्ठ तिष्ठ—जरा ठहरो, जरा ठहरो; घोरे—अत्यन्त क्रूर; न—नहीं; त्यक्तुम्—छोड़ना; अर्हसि—तुम्हें चाहिए; माम्—मुझको; त्वम्—तुम; अद्य अपि—अभी तक; अनिर्वृत्य—मेरे साथ का सुख न पाने से; वचांसि—कुछ शब्द; कृणवावहै—कुछ क्षण बातें करें।

हे प्रिय पत्नी! हे क्रूर! जरा ठहरो तो। मैं जानता हूँ कि अभी तक मैं तुम्हें कभी भी सुखी नहीं बना पाया, किन्तु तुम्हें इस कारण से मेरा परित्याग नहीं करना चाहिए। यह तुम्हारे लिए उचित नहीं है। मान लो कि तुम मेरा साथ छोड़ने का निश्चय कर चुकी हो, किन्तु तो भी आओ कुछ क्षण बैठकर बातें करें।

सुदेहोऽयं पतत्यत्र देवि दूरं हृतस्त्वया ।
खादन्त्येनं वृका गृध्रास्त्वत्प्रसादस्य नास्पदम् ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

सु-देहः—अत्यन्त सुन्दर शरीर; अयम्—यह; पतति—गिर जायेगा; अत्र—यहीं पर; देवि—हे उर्वशी; दूरम्—दूर, घर से दूर; हृतः—ले जाया गया; त्वया—तुम्हारे द्वारा; खादन्ति—खा जायें; एनम्—इस (शरीर) को; वृकाः—लोमड़ियाँ; गृध्राः—गीध; त्वत्—तुम्हारी; प्रसादस्य—कृपा का; न—नहीं; आस्पदम्—उपयुक्त।

हे देवी, चूँकि तुमने मुझे अस्वीकार कर दिया है अतएव मेरा यह सुन्दर शरीर यहीं धराशायी हो जायगा और चूँकि मैं तुम्हारे सुख के अनुकूल नहीं हूँ इसलिए इसे लोमड़ियाँ तथा गीध खा जायेंगे।

उर्वश्युवाच

मा मृथाः पुरुषोऽसि त्वं मा स्म त्वाद्युर्वृका इमे ।
क्वापि सख्यं न वै स्त्रीणां वृकाणां हृदयं यथा ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

उर्वशी उवाच—उर्वशी ने कहा; मा—मत; मृथाः—शरीर त्याग करो; पुरुषः—पुरुष; असि—हो; त्वम्—तुम; मा स्म—ऐसा न होने दो; त्वा—तुमको; अद्युः—खा सके; वृकाः—लोमड़ियाँ; इमे—इन इन्द्रियों को (अपनी इन्द्रियों के वश में न रहो); क्व अपि—कहीं भी; सख्यम्—मैत्री; न—नहीं; वै—निस्सन्देह; स्त्रीणाम्—स्त्रियों के; वृकाणाम्—लोमड़ियों की; हृदयम्—हृदय को; यथा—जिस तरह।

उर्वशी ने कहा : हे राजन, तुम पुरुष हो, वीर हो। अधीर मत होओ और अपने प्राणों को मत त्यागो। गम्भीर बनो और लोमड़ियों की भाँति अपनी इन्द्रियों के वश में मत होओ। तुम लोमड़ियों का भोजन मत बनो। दूसरे शब्दों में, तुम्हें अपनी इन्द्रियों के वशीभूत नहीं होना चाहिए। प्रत्युत तुम्हें स्त्री के हृदय को लोमड़ी जैसा जानना चाहिए। स्त्रियों से मित्रता करने से कोई लाभ नहीं।

तात्पर्य : चाणक्य पण्डित का उपदेश है—*विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च*—किसी स्त्री या राजनीतिज्ञ पर कभी भी विश्वास मत करो। आध्यात्मिक चेतना को प्राप्त किये बिना प्रत्येक व्यक्ति बद्ध और पतित है। फिर उन स्त्रियों के विषय में क्या कहा जाय जो मनुष्यों की अपेक्षा कम बुद्धिमान होती हैं। स्त्रियों की तुलना शूद्रों तथा वैश्यों से की जाती है (*स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्राः*)। किन्तु जब कोई आध्यात्मिक स्तर पर कृष्णभावनामृत पद को प्राप्त कर लेता है तो चाहे वह मनुष्य हो या स्त्री, शूद्र हो या अन्य कुछ, सभी बराबर होते हैं। अन्यथा उर्वशी, जो स्वयं स्त्री थी और स्त्री-स्वभाव को जानती थी, यह न कहती कि स्त्री का हृदय धूर्त लोमड़ी की तरह होता है। यदि मनुष्य अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं कर पाता तो वह ऐसी धूर्त लोमड़ियों का शिकार बन जाता है। किन्तु यदि वह इन्द्रियों को वश में कर लेता है तो वह धूर्त-लोमड़ी जैसी स्त्रियों का शिकार नहीं हो सकता। चाणक्य पण्डित ने यह भी उपदेश दिया है कि यदि किसी की पत्नी धूर्त लोमड़ी जैसी हो तो उसे तुरन्त ही गृहस्थ जीवन का परित्याग करके जंगल चले जाना चाहिए—

माता यस्य गृहे नास्ति भार्या चाप्रियवादिनी।

अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम्॥

(*चाणक्य-श्लोक* ५७)

कृष्णभावनाभावित गृहस्थों को धूर्त लोमड़ी जैसी स्त्रियों से अत्यन्त सावधान रहने की आवश्यकता है। यदि घर में स्वामिभक्त पत्नी हो और वह कृष्णभावनामृत में पति का सहयोग करती हो तो वह घर धन्य है।

अन्यथा मनुष्य को चाहिए कि घर छोड़कर जंगल चला जाय।

हित्वात्मपातं गृहमन्धकूपं

वनं गतो यद्धरिमाश्रयेत।

(भागवत ७.५.५)

मनुष्य को जंगल जाकर भगवान् हरि के चरणकमलों की शरण ग्रहण करनी चाहिए।

स्त्रियो ह्यकरुणाः क्रूरा दुर्मर्षाः प्रियसाहसाः ।
घ्नन्त्यल्पार्थेऽपि विश्रब्धं पतिं भ्रातरमप्युत ॥ ३७॥

शब्दार्थ

स्त्रियः—स्त्रियाँ; हि—निस्सन्देह; अकरुणाः—करुणारहित; क्रूराः—चालाक, मक्कार; दुर्मर्षाः—असहिष्णु; प्रिय-साहसाः—अपने आनन्द के लिए कुछ भी करने वाली, दुस्साहसी; घ्नन्ति—मार डालती हैं; अल्प-अर्थे—छोटे से कारण के लिए; अपि—निस्सन्देह; विश्रब्धम्—आज्ञाकारी; पतिम्—पति को; भ्रातरम्—भाई को; अपि—भी; उत—कहा गया है।

स्त्रियों की जाति करुणाविहीन तथा चतुर होती है। वे थोड़ा सा भी अपमान सहन नहीं कर सकतीं। वे अपने आनन्द के लिए कुछ भी अधर्म कर सकती हैं; अतएव वे अपने आज्ञाकारी पति या भाई तक का वध करते हुए नहीं डरतीं।

तात्पर्य : राजा पुरुरवा उर्वशी पर आसक्त था किन्तु उसके पत्नीभक्त होने पर भी उर्वशी ने उसे छोड़ दिया था। अब यह विचार करते हुए कि राजा दुर्लभ मनुष्य-जीवन को गँवा रहा है, उर्वशी ने स्पष्ट शब्दों में स्त्री की प्रकृति बतला दी। स्त्री अपनी प्रकृतिवश थोड़े से भी अपराध पर अपने पति का न केवल परित्याग अपितु उस की हत्या भी कर देती है। यही नहीं, वह अपने भाई को भी मार सकती है। यह स्त्री की प्रकृति है। अतएव इस भौतिक जगत में जब तक स्त्रियों को सती तथा पतिपरायणा होने का प्रशिक्षण नहीं दिया जाता तब तक समाज में न तो शान्ति हो सकती है न सम्पन्नता।

विधायालीकविश्रम्भमज्ञेषु त्यक्तसौहृदाः ।
नवं नवमभीप्सन्त्यः पुंश्चल्यः स्वैरवृत्तयः ॥ ३८॥

शब्दार्थ

विधाय—स्थापित करके; अलीक—झूठा; विश्रम्भम्—विश्वास; अज्ञेषु—मूर्ख पुरुषों से; त्यक्त-सौहृदाः—जिन्होंने शुभचिन्तकों का साथ छोड़ दिया है; नवम्—नवीन; नवम्—नवीन; अभीप्सन्त्यः—चाहते हुए; पुंश्चल्यः—अन्य पुरुषों के द्वारा आसानी से आकृष्ट होने वाली स्त्रियाँ; स्वैर—स्वतंत्र रूप से; वृत्तयः—पेशेवर।

स्त्रियाँ पुरुषों द्वारा आसानी से ठग ली जाती हैं, अतएव दूषित स्त्रियाँ अपने शुभेच्छु पुरुष की मित्रता छोड़कर मूर्खों से झूठी दोस्ती स्थापित कर लेती हैं। निस्सन्देह, वे एक के बाद एक नित नये मित्रों की खोज में रहती हैं।

तात्पर्य : चूँकि स्त्रियाँ आसानी से ठग ली जाती हैं अतएव *मनु-संहिता* का आदेश है कि स्त्रियों को स्वतंत्रता न दी जाय। स्त्री की रक्षा उसके पिता, पति या बड़े पुत्र द्वारा की जानी चाहिए। यदि स्त्रियों को पुरुषों के साथ समान रूप से मिलने की छूट दे दी जाय, जैसा कि वे आजकल दावा करती हैं तो वे अपने सतीत्व को बनाये नहीं रह सकतीं। जैसा कि उर्वशी बयान करती है कि स्त्री का स्वभाव है पुरुष से झूठी मित्रता स्थापित करना और एक के बाद दूसरा पुरुष संगी खोजते रहना, भले ही इससे उसे अपने शुभचिन्तक को छोड़ना क्यों न पड़े।

संवत्सरान्ते हि भवानेकरात्रं मयेश्वरः ।
रंस्यत्यपत्यानि च ते भविष्यन्त्यपराणि भोः ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

संवत्सर-अन्ते—हर एक साल के बाद; हि—निस्सन्देह; भवान्—आप; एक-रात्रम्—एक रात के लिए; मया—मेरे साथ; ईश्वरः—मेरे पति; रंस्यति—रमण करोगे; अपत्यानि—सन्तान; च—भी; ते—तुम्हारी; भविष्यन्ति—उत्पन्न होगी; अपराणि—अन्य, एक के बाद एक; भोः—हे राजा।

हे राजा, तुम हर एक साल के बाद केवल एक रात के लिए मेरे साथ पति रूप में रमण कर सकोगे। इस तरह तुम्हें एक-एक करके अन्य सन्तानें भी मिलती रहेंगी।

तात्पर्य : यद्यपि उर्वशी ने स्त्री-स्वभाव को विपरीत ढंग का बतलाया था, किन्तु महाराज पुरुरवा उस पर अत्यधिक अनुरक्त था अतएव उसने राजा को कुछ छूट देनी चाही। इस तरह उसने हर वर्ष के अन्त में केवल एक रात के लिए उसकी पत्नी बनना स्वीकार कर लिया।

अन्तर्वत्नीमुपालक्ष्य देवीं स प्रययौ पुरीम् ।
पुनस्तत्र गतोऽब्दान्ते उर्वशीं वीरमातरम् ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

अन्तर्वत्नीम्—गर्भिणी; उपालक्ष्य—देखकर; देवीम्—उर्वशी को; सः—वह; प्रययौ—लौट आया; पुरीम्—अपने महल में; पुनः—फिर; तत्र—उसी स्थान पर; गतः—गया; अब्द-अन्ते—एक साल के बाद; उर्वशीम्—उर्वशी को; वीर-मातरम्—एक क्षत्रिय पुत्र की माता।

यह जानकर कि उर्वशी गर्भवती है, पुरुरवा अपने महल में वापस आ गया। एक वर्ष बाद कुरुक्षेत्र में ही उर्वशी से पुनः उसकी भेंट हुई; तब वह एक वीर पुत्र की माता थी।

उपलभ्य मुदा युक्तः समुवास तया निशाम् ।
अथैनमुर्वशी प्राह कृपणं विरहातुरम् ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

उपलभ्य—साथ पाकर; मुदा—अत्यधिक खुशी में; युक्तः—मिलकर; समुवास—संभोग किया; तया—उसके साथ; निशाम्—उस रात्रि; अथ—तत्पश्चात्; एनम्—राजा को; उर्वशी—उर्वशी ने; प्राह—कहा; कृपणम्—दुर्बल हृदय वाले; विरह-आतुरम्—विरह के विचारभाव से पीड़ित।

वर्ष के अन्त में उर्वशी को फिर से पाकर राजा पुरुरवा अत्यधिक हर्षित था और उसने एक रात उसके साथ संभोग में बिताई। किन्तु उससे विलग होने के विचार से वह अत्यधिक दुखी था; इसलिए उर्वशी ने उससे इस प्रकार कहा।

गन्धर्वानुपधावेमांस्तुभ्यं दास्यन्ति मामिति ।
तस्य संस्तुवतस्तुष्टा अग्निस्थालीं ददुर्नृप ।
उर्वशीं मन्यमानस्तां सोऽबुध्यत चरन्वने ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

गन्धर्वान्—गन्धर्वों की; उपधाव—जाकर शरण लो; इमान्—इन; तुभ्यम्—तुमको; दास्यन्ति—देंगे; माम् इति—मेरे ही जैसी; तस्य—उसके द्वारा; संस्तुवतः—स्तुति करने पर; तुष्टाः—प्रसन्न होकर; अग्नि-स्थालीम्—अग्नि से उत्पन्न कन्या; ददुः—दिया; नृप—हे राजा; उर्वशीम्—उर्वशी को; मन्य-मानः—सोचते हुए; ताम्—उसको; सः—वह (पुरुरवा); अबुध्यत—समझ गया; चरन्—विचरण करते हुए; वने—वन में।

उर्वशी ने कहा : हे राजन, तुम गन्धर्वों की शरण में जाओ क्योंकि वे मुझे पुनः तुम्हें दे सकेंगे। इन वचनों के अनुसार राजा ने स्तुतियों द्वारा गन्धर्वों को प्रसन्न किया और जब गन्धर्व प्रसन्न हुए तो उन्होंने उसे उर्वशी जैसी ही एक अग्निस्थाली कन्या प्रदान की। यह सोचकर कि यह कन्या उर्वशी ही है, वह राजा उसके साथ जंगल में विचरण करने लगा, किन्तु बाद में उसकी समझ में आ गया कि वह उर्वशी नहीं अपितु अग्निस्थाली है।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की टिप्पणी है कि पुरुरवा अत्यन्त कामी था। अग्निस्थाली को प्राप्त करते ही उसने उसके साथ संभोग करना चाहा, किन्तु संभोग के समय उसे पता चल गया कि वह कन्या उर्वशी नहीं अपितु अग्निस्थाली है। इसका अर्थ यह हुआ कि प्रत्येक व्यक्ति, जिस स्त्री के प्रति

आसक्त रहता है उसके विशिष्ट लक्षणों को वह संभोग के समय जान लेता है। इस तरह पुरुरवा संभोग के समय समझ गया कि अग्निस्थाली कन्या उर्वशी नहीं थी।

स्थालीं न्यस्य वने गत्वा गृहानाध्यायतो निशि ।
त्रेतायां सम्प्रवृत्तायां मनसि त्रय्यवर्तत ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

स्थालीम्—अग्निस्थली को; न्यस्य—तुरन्त त्यागकर; वने—वन में; गत्वा—लौटने पर; गृहान्—घर पर; आध्यायतः—ध्यान करने लगा; निशि—सारी रात; त्रेतायाम्—त्रेतायुग में; सम्प्रवृत्तायाम्—प्रारम्भ होने को था; मनसि—मन में; त्रयी—तीन वेदों के सिद्धान्त; अवर्तत—प्रकट हुए।

तब राजा पुरुरवा ने अग्निस्थाली को जंगल में छोड़ दिया और स्वयं घर वापस चला आया जहाँ उसने रात भर उर्वशी का ध्यान किया। उसके ध्यान के ही समय त्रेतायुग का शुभारम्भ हो गया; अतएव वेदत्रयी के सारे सिद्धान्त, जिनमें कर्म की पूर्ति के लिए यज्ञ करने की विधियाँ भी सम्मिलित थीं, उसके हृदय के भीतर प्रकट हुए।

तात्पर्य : कहा गया है—*त्रेतायां यजतो मखै*—यदि त्रेतायुग में कोई यज्ञ करता है तो उसे इन यज्ञों का फल प्राप्त होता है। विशेष रूप से यदि कोई *विष्णु यज्ञ* करे तो उसे भगवान् के चरणकमल तक प्राप्त हो सकते हैं। निस्सन्देह, यज्ञ भगवान् को तुष्ट करने के निमित्त किये जाते हैं। जब पुरुरवा उर्वशी के ध्यान में मग्न था तभी त्रेतायुग का शुभारम्भ हो गया; अतएव उसके हृदय में वैदिक यज्ञों का उदय हुआ। किन्तु पुरुरवा भौतिकतावादी था, विशेष रूप से, वह तो इन्द्रियों के भोग में रुचि रखता था। इन्द्रियभोग के लिए किये जानेवाले यज्ञ *कर्मकाण्डीय यज्ञ* कहलाते हैं। अतएव उसने अपनी विषयवासनाओं की पूर्ति के लिए कर्मकाण्डीय यज्ञ करने का निश्चय किया। दूसरे शब्दों में, *कर्मकाण्डीय यज्ञ* कामी पुरुषों के निमित्त हैं जब कि यज्ञ भगवान् को प्रसन्न करने के लिए। कलियुग में भगवान् को प्रसन्न करने के लिए *संकीर्तन यज्ञ* की संस्तुति की जाती है। *यज्ञै संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः*—जो लोग बुद्धिमान हैं केवल वे अपनी भौतिक तथा आध्यात्मिक इच्छाओं की पूर्ति के लिए संकीर्तन यज्ञ करते हैं, किन्तु जो इन्द्रिय-भोग के लिए कामी हैं वे *कर्मकाण्डीय यज्ञ* करते हैं।

स्थालीस्थानं गतोऽश्वत्थं शमीगर्भं विलक्ष्य सः ।

तेन द्वे अरणी कृत्वा उर्वशीलोककाम्यया ॥ ४४॥
उर्वशीं मन्त्रतो ध्यायन्नधरारणिमुत्तराम् ।
आत्मानमुभयोर्मध्ये यत्तत्प्रजननं प्रभुः ॥ ४५॥

शब्दार्थ

स्थाली-स्थानम्—जहाँ अग्निस्थाली को छोड़ा था; गतः—वहाँ जाकर; अश्वत्थम्—अश्वत्थ वृक्ष; शमी-गर्भम्—शमी वृक्ष के भीतर से; विलक्ष्य—देखकर; सः—वह पुरुरवा; तेन—उससे; द्वे—दो; अरणी—यज्ञ की अग्नि जलाने के काम आने वाली लकड़ी के टुकड़े; कृत्वा—बनाकर; उर्वशी-लोक-काम्यया—उस लोक को जाने की इच्छा से जहाँ उर्वशी थी; उर्वशीम्—उर्वशी को; मन्त्रतः—मंत्रोच्चार द्वारा; ध्यायन्—ध्यान करते हुए; अधर—नीचे के; अरणिम्—अरणिम् काष्ठ को; उत्तराम्—तथा ऊपर वाले को; आत्मानम्—अपने को; उभयोः मध्ये—दोनों के बीच में; यत् तत्—उसे (जिसका वह ध्यान कर रहा था); प्रजननम्—पुत्ररूप में; प्रभुः—राजा ने।

जब पुरुरवा के हृदय के कर्मकाण्डीय यज्ञ की विधि प्रकट हुई तो वह उसी स्थान पर गया जहाँ उसने अग्निस्थाली को छोड़ा था। वहाँ उसने देखा कि शमी वृक्ष के भीतर से एक अश्वत्थ वृक्ष उग आया है। उसने उस वृक्ष से लकड़ी का एक टुकड़ा लिया और उससे दो अरणियाँ बना लीं। उसने उर्वशी के रहने वाले लोक में जाने की इच्छा से, निचली अरणी में उर्वशी का और ऊपरी अरणी में अपना ध्यान तथा बीच के काष्ठ में अपने पुत्र का ध्यान करते हुए मंत्रोच्चार किया। इस तरह वह अग्नि प्रज्वलित करने लगा।

तात्पर्य : यज्ञ के लिए वैदिक अग्नि सामान्य दियासलाई से या ऐसी ही किसी वस्तु से नहीं जलाई जाती थी। वैदिक यज्ञ-अग्नि को अरणियों से जलाया जाता था। ये अरणियाँ लकड़ी के दो शुद्ध खंड होते थे जिन्हें तीसरे खंड में रगड़ने से अग्नि उत्पन्न होती थी। यज्ञ करने के लिए ऐसी अग्नि आवश्यक होती थी। यदि यज्ञ सफल होता था तो यज्ञकर्ता की मनोकामना पूरी होती थी। इस तरह पुरुरवा ने अपनी कामेच्छाओं को पूरा करने के लिए यज्ञ की प्रक्रिया का सहारा लिया। उसने निचली अरणी को उर्वशी मान लिया, ऊपरी अरणी को स्वयं मान लिया और बीच की लकड़ी को अपना पुत्र मान लिया। यहाँ पर विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने एक प्रासंगिक मंत्र उद्धृत किया है जो इस प्रकार है—*शमी गर्भाद् अग्निं मन्थ।* इसी प्रकार का एक और मंत्र है—*उर्वश्याम् उरसि पुरुरवाः ।* पुरुरवा उर्वशी के गर्भ से निरन्तर सन्तान चाहता था। उसका एकमात्र ध्येय यह था कि वह उर्वशी से संभोग करे जिससे पुत्र उत्पन्न हो। दूसरे शब्दों में, उसके हृदय में इतनी वासना थी कि जब वह यह यज्ञ कर रहा था तो उसके मन में यज्ञेश्वर भगवान् विष्णु का ध्यान न होकर उर्वशी का ध्यान था।

**तस्य निर्मन्थनाज्जातो जातवेदा विभावसुः ।
त्रय्या स विद्यया राज्ञा पुत्रत्वे कल्पितस्त्रिवृत् ॥ ४६ ॥**

शब्दार्थ

तस्य—पुरुरवा के; निर्मन्थनात्—मन्थन या घर्षण से; जातः—उत्पन्न हुआ; जात-वेदाः—वैदिक सिद्धान्तों के अनुसार भौतिक भोग के निमित्त; विभावसुः—अग्नि; त्रय्या—वैदिक सिद्धान्तों का पालन करते हुए; सः—अग्नि; विद्यया—ऐसी विधि से; राज्ञा—राजा द्वारा; पुत्रत्वे—पुत्र उत्पन्न होना; कल्पितः—ऐसा हुआ कि; त्रि-वृत्—तीन अक्षर.

पुरुरवा द्वारा अरणियों के रगड़ने से अग्नि उत्पन्न हुई। ऐसी अग्नि से मनुष्य को भौतिक भोग में पूर्ण सफलता मिल सकती है और वह सन्तान उत्पत्ति, दीक्षा तथा यज्ञ करते समय शुद्ध हो सकता है जिन्हें अ, उ, म् (ओम्) शब्दों के द्वारा आवाहन किया जा सकता है। इस प्रकार वह अग्नि राजा पुरुरवा का पुत्र मान ली गई।

तात्पर्य : वैदिक विधि के अनुसार मनुष्य को वीर्य (*शुक्र*) द्वारा पुत्र प्राप्ति हो सकती है, दीक्षा द्वारा (*सावित्र*) प्रामाणिक शिष्य प्राप्त हो सकता है अथवा यज्ञ की अग्नि (*यज्ञ*) द्वारा पुत्र या शिष्य प्राप्त हो सकता है। इस तरह जब महाराज पुरुरवा ने अरणियों के मन्थन से अग्नि उत्पन्न की तो अग्नि उसका पुत्र बन गई। मनुष्य को वीर्य, दीक्षा अथवा यज्ञ द्वारा पुत्रलाभ हो सकता है। ओङ्कार या प्रणव वैदिक मंत्र में तीन अक्षर अ, उ, म् होते हैं जो इन तीनों विधियों का आवाहन कर सकते हैं। अतएव *निर्मन्थनाज्जात:* शब्द बतलाते हैं कि अरणियों के रगड़ने से पुत्र उत्पन्न हुआ।

**तेनायजत यज्ञेशं भगवन्तमधोक्षजम् ।
उर्वशीलोकमन्विच्छन्सर्वदेवमयं हरिम् ॥ ४७ ॥**

शब्दार्थ

तेन—ऐसी अग्नि उत्पन्न करने से; अयजत—पूजा की; यज्ञ-ईशम्—यज्ञ के स्वामी की; भगवन्तम्—भगवान्; अधोक्षजम्—इन्द्रियों की अनुभूति से परे; उर्वशी-लोकम्—वह लोक जहाँ उर्वशी रहती थी; अन्विच्छन्—जाना चाहते हुए; सर्व-देव-मयम्—सभी देवताओं का आगार; हरिम्—भगवान् को।.

उर्वशी-लोक जाने के इच्छुक पुरुरवा ने उस अग्नि के द्वारा एक यज्ञ किया जिससे उसने यज्ञफल के भोक्ता भगवान् हरि को तुष्ट किया। इस प्रकार उसने इन्द्रियानुभूति से परे एवं समस्त देवताओं के आगार भगवान् की पूजा की।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* में आया है—*भोक्तारं यज्ञ तपसां सर्वलोकमहेश्वरम्*—चाहे जिस लोक को भी जाने की इच्छा की जाय वह यज्ञ के भोक्ता भगवान् की सम्पत्ति है। यज्ञ का उद्देश्य भगवान् को तुष्ट करना

है। इस युग में, जैसा हम ने कई बार बताया है भगवान् को तुष्ट करने के लिए एकमात्र यज्ञ हरे कृष्ण महामंत्र का संकीर्तन करना है। भगवान् के तुष्ट होने पर भौतिक या आध्यात्मिक कोई भी इच्छा पूरी की जा सकती है। *भगवद्गीता* (३.१४) का भी यह कथन है—*यज्ञाद् भवति पर्जन्यः*—भगवान् विष्णु को यज्ञ अर्पित करने से पर्याप्त वर्षा होती है। पर्याप्त वर्षा होने से भूमि से सब कुछ उत्पन्न हो सकता है (*सर्वकाम दुघा मही*)। तब भूमि का समुचित उपयोग हो सकता है, जिससे जीवन की सभी आवश्यकताएँ पूरी की जा सकती हैं—यथा अन्न, फल, फूल तथा तरकारियाँ। भौतिक सम्पत्ति की सारी वस्तुएँ भूमि से उत्पन्न होती हैं अतएव उसे *सर्वकाम दुघा मही* (*भागवत* १.१०.४) कहा गया है। यज्ञ सम्पन्न करने पर सभी कुछ सम्भव है। अतएव पुरुरवा ने भौतिक वस्तु चाहकर भी भगवान् को प्रसन्न करने के लिए यथार्थ में यज्ञ सम्पन्न किया।भगवान् अधोक्षज हैं—वे पुरुरवा तथा अन्य सबों की अनुभूति के परे हैं। फलस्वरूप जीव को अपनी इच्छापूर्ति के लिए कोई न कोई यज्ञ करना ही होता है। मानव समाज में यज्ञ तभी सम्भव है जब समाज वर्णाश्रम धर्म द्वारा चार वर्णों तथा चार आश्रमों में बँटा हो। ऐसे विधान के बिना कोई यज्ञ नहीं कर सकता और यज्ञ सम्पन्न किये बिना चाहे कितनी योजनाएँ क्यों न बनाई जाएँ; मानव समाज कभी सुखी नहीं हो सकता। अतएव हर एक को यज्ञ सम्पन्न करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इस कलियुग में जिस यज्ञ की संस्तुति की जाती है वह संकीर्तन है, जो हरे कृष्ण महामंत्र का व्यक्तिगत या सामूहिक कीर्तन है। इससे मानव समाज की सारी आवश्यकताएँ पूरी हो सकेंगी।

एक एव पुरा वेदः प्रणवः सर्ववाङ्मयः ।
देवो नारायणो नान्य एकोऽग्निर्वर्ण एव च ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

एकः—एकमात्र; एव—निस्सन्देह; पुरा—प्राचीन काल में; वेदः—दिव्य ज्ञान का ग्रंथ; प्रणवः—ओंकार; सर्व-वाक्-मयः—सारे वैदिक मंत्रों से युक्त; देवः—ईश्वर; नारायणः—एकमात्र नारायण (सत्ययुग में पूज्य थे); न अन्यः—अन्य कोई नहीं; एकः अग्निः—अग्नि का केवल एक विभाग; वर्णः—जीवन व्यवस्था, जाति; एव च—तथा निश्चय ही।

प्रथम युग, सत्ययुग में, सारे वैदिक मंत्र एक ही मंत्र प्रणव में सम्मिलित थे जो सारे वैदिक मंत्रों का मूल है। दूसरे शब्दों में अथर्ववेद ही समस्त वैदिक ज्ञान का स्त्रोत था। भगवान् नारायण ही एकमात्र आराध्य थे और देवताओं की पूजा की संस्तुति नहीं की जाती थी। अग्नि केवल एक थी और मानव समाज में केवल एक वर्ण था जो हंस कहलाता था।

तात्पर्य : सत्ययुग में चार वेद नहीं अपितु केवल एक वेद था। बाद में कलियुग शुरू होने के पूर्व यही एक वेद—अथर्ववेद (या उसे कुछ लोग यजुर्वेद कहते हैं) चार में विभक्त हो गया—साम, यजु, ऋग् तथा अथर्व। सत्ययुग में एकमात्र मंत्र ओंकार (ॐ तत् सत्) था। यही ओङ्कार नाम हरे कृष्ण महामंत्र में प्रकट है। जब तक कोई ब्राह्मण न हो वह ओङ्कार का उच्चारण नहीं कर सकता और वांछित फल नहीं पा सकता। किन्तु कलियुग में लगभग सभी शूद्र हैं, अतएव प्रणव या ओङ्कार का उच्चारण करने के अयोग्य हैं। फलत: शास्त्रों ने हरे कृष्ण महामंत्र कीर्तन करने की संस्तुति की है। ओङ्कार एक मंत्र या महामंत्र है और हरे कृष्ण भी महामंत्र है। ओङ्कार के उच्चारण का उद्देश्य भगवान् वासुदेव को सम्बोधित करना है (*ॐ नमो भगवते वासुदेवाय*) और हरे कृष्ण मंत्र उच्चारण करने का भी यही उद्देश्य है। *हरे* का अर्थ है हे भगवान् की शक्ति! *कृष्ण* का अर्थ है हे कृष्ण! *हरे* का अर्थ है हे भगवान् की शक्ति तथा *राम* का अर्थ है हे परम भोक्ता परमेश्वर। एकमात्र आराध्य भगवान् हरि हैं जो वेदों के गन्तव्य हैं (*वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः*)। देवताओं की पूजा करके मनुष्य भगवान् के विभिन्न अंशों की पूजा करता है जिस प्रकार कोई वृक्ष की टहनियों को सींचे। किन्तु सर्वेश्वर नारायण की पूजा उसी तरह है जिस तरह वृक्ष की जड़ को सींचना जिससे तने, शाखाओं, पत्तियों इत्यादि को पानी मिलता है। सत्ययुग में लोगों को पता था कि मात्र नारायण की पूजा करके जीवन की आवश्यकताएँ कैसे पूरी की जा सकती हैं। वही उद्देश्य इस कलियुग में हरे कृष्ण महामंत्र के कीर्तन से पूरा किया जा सकता है जैसा कि *भागवत* में निर्दिष्ट है। *कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत्।* हरे कृष्ण महामंत्र के उच्चारण मात्र से मनुष्य भवबन्धन से छूट जाता है और भगवद्धाम वापस जाने का पात्र बनता है।

पुरूरवस एवासीत्त्रयी त्रेतामुखे नृप ।
अग्निना प्रजया राजा लोकं गान्धर्वमेयिवान् ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

पुरूरवसः—राजा पुरुरवा से; एव—इस प्रकार; आसीत्—था; त्रयी—कर्म, ज्ञान तथा उपासना के वैदिक सिद्धान्त; त्रेता-मुखे—त्रेतायुग के प्रारम्भ में; नृप—हे राजा परीक्षित; अग्निना—यज्ञ की अग्नि उत्पन्न करने से ही; प्रजया—अपने पुत्र द्वारा; राजा—पुरुरवा ने; लोकम्—लोक को; गान्धर्वम्—गन्धर्वों के; एयिवान्—प्राप्त किया।

हे महाराज परीक्षित, त्रेतायुग के प्रारम्भ में राजा पुरुरवा ने एक कर्मकाण्ड यज्ञ का सूत्रपात किया। इस प्रकार यज्ञिक अग्नि को पुत्र मानने वाला पुरुरवा इच्छानुसार गन्धर्वलोक जाने में समर्थ हुआ।

तात्पर्य : सत्ययुग में नारायण की पूजा ध्यान द्वारा की जाती थी (*कृते यद् ध्यायतो विष्णुम्*)। निस्सन्देह, हर व्यक्ति सदैव विष्णु या नारायण का ध्यान करता था और इस ध्यान से उसे हर सफलता मिलती रहती थी। अगले युग, त्रेतायुग में, यज्ञ का प्रारम्भ हुआ (*त्रेतायां यजतो मुखै*)। इसीलिए इस श्लोक में *त्रयी त्रेता मुखे* आया है। कर्मकाण्ड वास्तव में सकाम कर्म कहलाते हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं कि स्वायंभुव मन्वन्तर में प्रारम्भ त्रेतायुग में प्रियव्रत इत्यादि ने कर्मकाण्ड प्रारम्भ किया था।

इस प्रकार *श्रीमद्भागवत* के नवम स्कन्ध के अन्तर्गत ''पुरुरवा का उर्वशी पर मोहित होना'' नामक चौदहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter पन्द्रह

भगवान् का योद्धा अवतार, परशुराम

इस अध्याय में ऐल के वंशज गाधि की कथा का वर्णन हुआ है।

उर्वशी के गर्भ से छः पुत्र उत्पन्न हुए जिनके नाम थे आयु, श्रुतायु, सत्यायु, रय, जय तथा विजय। श्रुतायु का पुत्र वसुमान था, सत्यायु का पुत्र श्रुतञ्जय हुआ, रय के पुत्र का नाम एक था, जय का पुत्र अमित था और विजय का पुत्र भीम हुआ। भीम के पुत्र का नाम कांचन था, उसके पुत्र का नाम होत्रक तथा होत्रक के पुत्र का नाम जह्नु था जो एक ही घूँट में गंगा का सारा पानी पी लेने के लिए विख्यात था। जह्नु के वंशजों के नाम क्रमशः पुरु, बलाक, अजक तथा कुश थे। कुश के पुत्रों के नाम थे कुशाम्बु, तनय, वसु तथा कुशनाभ। कुशाम्बु का पुत्र गाधि हुआ जिसके सत्यवती नाम की एक कन्या हुई। सत्यवती ने ऋचीक मुनि के साथ विवाह किया जब मुनि ने प्रचुर दहेज दिया और उन दोनों से जमदग्नि नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। जमदग्नि का पुत्र राम या परशुराम था। जब कार्तवीर्यार्जुन नामक राजा ने जमदग्नि की कामधेनु चुरा ली तो भगवान् के शक्त्यावेश अवतार परशुराम ने उसका वध किया। बाद में परशुराम ने इक्कीस बार क्षत्रिय वंश का संहार किया। जब परशुराम ने कार्तवीर्यार्जुन का वध कर दिया तो जमदग्नि ने उसे बताया कि राजा का वध पापपूर्ण होता है और उसे ब्राह्मण होने के नाते इस अपराध को सह लेना चाहिए था। अतएव जमदग्नि ने परशुराम को अपने पापों का प्रायश्चित्त करने के लिए विविध तीर्थस्थानों की यात्रा करने की सलाह दी।

श्रीबादरायणिरुवाच
ऐलस्य चोर्वशीगर्भात्षडासन्नात्मजा नृप ।
आयुः श्रुतायुः सत्यायू रयोऽथ विजयो जयः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-बादरायणिः उवाच—श्रील शुकेदव गोस्वामी ने कहा; ऐलस्य—पुरुरवा के; च—भी; उर्वशी-गर्भात्—उर्वशी के गर्भ से; षट्—छः; आसन्—थे; आत्मजाः—पुत्र; नृप—हे राजा परीक्षित; आयुः—आयु; श्रुतायुः—श्रुतायु; सत्यायुः—सत्यायु; रयः—रय; अथ—तथा; विजयः—विजय; जयः—जय।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : हे राजा परीक्षित, पुरुरवा ने उर्वशी के गर्भ से छः पुत्र उत्पन्न किये। उनके नाम थे—आयु, श्रुतायु, सत्यायु, रय, विजय तथा जय।

श्रुतायोर्वसुमान्पुत्रः सत्यायोश्च श्रुतञ्जयः ।
रयस्य सुत एकश्च जयस्य तनयोऽमितः ॥ २॥
भीमस्तु विजयस्याथ काञ्चनो होत्रकस्ततः ।
तस्य जह्नुः सुतो गङ्गां गण्डूषीकृत्य योऽपिबत् ॥ ३॥

शब्दार्थ

श्रुतायोः—श्रुतायु का; वसुमान्—वसुमान; पुत्रः—पुत्र; सत्यायोः—सत्यायु का; च—भी; श्रुतञ्जयः—श्रुतञ्जय; रयस्य—रय का; सुतः—पुत्र; एकः—एक नामक; च—तथा; जयस्य—जय का; तनयः—पुत्र; अमितः—अमित; भीमः—भीम; तु—निस्सन्देह; विजयस्य—विजय का; अथ—तत्पश्चात्; काञ्चनः—काञ्चन, भीम का पुत्र; होत्रकः—होत्रक; ततः—तब; तस्य—होत्रक का; जह्नुः—जह्नु; सुतः—पुत्र; गङ्गाम्—गंगा के सारे जल को; गण्डूषी-कृत्य—एक ही घूँट में; यः—जिसने; अपिबत्—पी लिया।

श्रुतायु का पुत्र वसुमान हुआ, सत्यायु का पुत्र श्रुतञ्जय हुआ, रय के पुत्र का नाम एक था, जय का पुत्र अमित था और विजय का पुत्र भीम हुआ। भीम का पुत्र काञ्चन, काञ्चन का पुत्र होत्रक और होत्रक का पुत्र जह्नु था जिसने एक ही घूँट में गंगा का सारा पानी पी लिया था।

जह्नोस्तु पुरुस्तस्याथ बलाकश्चात्मजोऽजकः ।
ततः कुशः कुशस्यापि कुशाम्बुस्तनयो वसुः ।
कुशनाभश्च चत्वारो गाधिरासीत्कुशाम्बुजः ॥ ४॥

शब्दार्थ

जह्नोः—जह्नु का; तु—निस्सन्देह; पुरुः—पुरु नामक; तस्य—उसका; अथ—तत्पश्चात्; बलाकः—बलाक; च—तथा; आत्मजः—बलाक का पुत्र; अजकः—अजक; ततः—तत्पश्चात्; कुशः—कुश; कुशस्य—कुश का; अपि—तब; कुशाम्बुः—कुशाम्बु; तनयः—तनय; वसुः—वसु; कुशनाभः—कुशनाभ; च—तथा; चत्वारः—चार पुत्र; गाधिः—गाधि; आसीत्—था; कुशाम्बुजः—कुशाम्बुज का पुत्र।

जह्नु का पुत्र पुरु था, पुरु का बलाक, बलाक का अजक और अजक का पुत्र कुश हुआ। कुश के चार पुत्र हुए जिनके नाम थे कुशाम्बुज, तनय, वसु तथा कुशनाभ। कुशाम्बु का पुत्र गाधि था।

तस्य सत्यवतीं कन्यामृचीकोऽयाचत द्विजः ।
वरं विसदृशं मत्वा गाधिर्भार्गवमब्रवीत् ॥ ५॥
एकतः श्यामकर्णानां हयानां चन्द्रवर्चसाम् ।
सहस्रं दीयतां शुल्कं कन्यायाः कुशिका वयम् ॥ ६॥

शब्दार्थ

तस्य—उस (गाधि) की; सत्यवतीम्—सत्यवती; कन्याम्—पुत्री को; ऋचीकः—महामुनि ऋचीक ने; अयाचत—विवाह के लिए माँगा; द्विजः—ब्राह्मण; वरम्—पति रूप में; विसदृशम्—अनुपयुक्त; मत्वा—मानकर; गाधिः—राजा गाधि; भार्गवम्—ऋचीक से; अब्रवीत्—बोला; एकतः—एक; श्याम-कर्णानाम्—जिसका कान काला हो; हयानाम्—घोड़ों का; चन्द्र-वर्चसाम्—चाँदनी सा उज्ज्वल; सहस्रम्—एक हजार; दीयताम्—दें; शुल्कम्—दहेज के रूप में; कन्यायाः—मेरी कन्या को; कुशिकाः—कुश के परिवार में; वयम्—हम हैं।

गाधि के एक पुत्री थी जिसका नाम सत्यवती था जिससे विवाह करने के लिए ऋचीक नामक

ब्रह्मर्षि ने राजा से विनती की। किन्तु राजा गाधि ने इस ब्रह्मर्षि को अपनी पुत्री के लिए अयोग्य पति समझ कर उससे कहा, ''महोदय, मैं कुशवंशी हूँ। चूँकि हम लोग राजसी क्षत्रिय हैं अतएव आपको मेरी पुत्री के लिए कुछ दहेज देना होगा। अतः आप कम से कम एक हजार ऐसे घोड़े लायें जो चाँदनी की तरह उज्ज्वल हों और जिनके एक कान, दायाँ या बायाँ, काला हो।''

तात्पर्य : राजा गाधि का पुत्र विश्वामित्र हुआ जो ब्राह्मण तथा क्षत्रिय का मिश्रित रूप कहा जाता था। विश्वामित्र ने ब्रह्मर्षि का पद प्राप्त किया जैसा कि आगे बताया गया है। ऋचीक मुनि के साथ सत्यवती का विवाह होने से उनका जो पुत्र होगा वह क्षत्रिय गुणों वाला होगा। राजा गाधि ने कहा कि वह अपनी पुत्री की शादी ऋचीक ब्राह्मण से तभी कर सकता है जब उसकी एक असाधारण माँग पूरी हो जाय।

इत्युक्तस्तन्मतं ज्ञात्वा गतः स वरुणान्तिकम् ।
आनीय दत्त्वा तानश्वानुपयेमे वराननाम् ॥ ७॥

शब्दार्थ

इति—इस तरह; उक्तः—कहे जाने पर; तत्-मतम्—उसका विचार; ज्ञात्वा—जानकर; गतः—चला गया; सः—वह; वरुण-अन्तिकम्—वरुण लोक को; आनीय—लाकर; दत्त्वा—तथा देकर; तान्—उन; अश्वान्—घोड़ों को; उपयेमे—विवाह कर लिया; वर-आननाम्—राजा गाधि की सुमुखी पुत्री का।

जब राजा गाधि ने यह माँग पेश की तो महर्षि ऋचीक को राजा के मन की बात समझ में आ गई। अतएव वह वरुणदेव के पास गया और वहाँ से गाधि द्वारा माँगे गये एक हजार घोड़े ले आया। इन घोड़ों को भेंट करके मुनि ने राजा की सुन्दर पुत्री के साथ विवाह कर लिया।

स ऋषिः प्रार्थितः पत्न्या श्वश्र्वा चापत्यकाम्यया ।
श्रपयित्वोभयैर्मन्त्रैश्चरुं स्नातुं गतो मुनिः ॥ ८॥

शब्दार्थ

सः—वह (ऋचीक); ऋषिः—ऋषि; प्रार्थितः—प्रार्थना किये जाने पर; पत्न्या—अपनी पत्नी द्वारा; श्वश्र्वा—अपनी सास द्वारा; च—भी; अपत्य-काम्यया—पुत्र की इच्छा से; श्रपयित्वा—पकाकर; उभयैः—दोनों; मन्त्रैः—विशेष मंत्रोच्चार से; चरुम्—यज्ञ में आहुति देने के लिए खीर; स्नातुम्—स्नान करने के लिए; गतः—चला गया; मुनिः—मुनि।

तत्पश्चात् ऋचीक मुनि की पत्नी तथा सास दोनों ने पुत्र की इच्छा से मुनि से प्रार्थना की कि वह चरु (आहुति) तैयार करे। तब मुनि ने अपनी पत्नी के लिए ब्राह्मण मंत्र से एक चरु और क्षत्रिय मंत्र से अपनी सास के लिए एक अन्य चरु तैयार किया। फिर वह स्नान करने चला गया।

तावत्सत्यवती मात्रा स्वचरुं याचिता सती ।
श्रेष्ठं मत्वा तयायच्छन्मात्रे मातुरदत्स्वयम् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

तावत्—इसी बीच; सत्यवती—ऋचीक पत्नी सत्यवती; मात्रा—अपनी माता से; स्व-चरुम्—अपने लिए तैयार की गई चरु; याचिता—माँगे जाने पर; सती—होने से; श्रेष्ठम्—उत्तम; मत्वा—सोचकर; तया—उसके द्वारा; अयच्छत्—प्रदान किया गया; मात्रे—माता का; मातुः—माता का; अदत्—खाया; स्वयम्—स्वयं, खुद।

इसी बीच सत्यवती की माता ने सोचा कि उसकी पुत्री के लिए तैयार की गई चरु अवश्य ही श्रेष्ठ होगी अतएव उसने अपनी पुत्री से वह चरु माँग ली। सत्यवती ने वह चरु अपनी माता को दे दी और स्वयं अपनी माता की चरु खा ली।

तात्पर्य : पति में अपनी पत्नी के लिए कुछ स्नेह होना स्वाभाविक है। अतएव सत्यवती की माता ने सोचा कि ऋषि ने सत्यवती के लिए जो चरु तैयार की है वह अवश्य ही उसकी चरु से श्रेष्ठ होगी। फलत: ऋचीक की अनुपस्थिति में माता ने सत्यवती से श्रेष्ठ चरु लेकर खा ली।

तद्विदित्वा मुनिः प्राह पत्नीं कष्टमकारषीः ।
घोरो दण्डधरः पुत्रो भ्राता ते ब्रह्मवित्तमः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

तत्—यह तथ्य; विदित्वा—जानकर; मुनिः—मुनि ने; प्राह—कहा; पत्नीम्—अपनी पत्नी से; कष्टम्—अत्यन्त दुखद; अकारषीः—तुमने कर डाला; घोरः—भयानक; दण्ड-धरः—महापुरुष जो अन्यों को दण्ड दे सकता है; पुत्रः—ऐसा पुत्र; भ्राता—भाई; ते—तुम्हारा; ब्रह्म-वित्तमः—अध्यात्म विद्या में पंडित।

जब ऋषि ऋचीक स्नान करके घर लौटे और उन्हें यह पता लगा कि उनकी अनुपस्थिति में क्या घटना घटी है तो उन्होंने अपनी पत्नी सत्यवती से कहा, ''तुमने बहुत बड़ी भूल की है। तुम्हारा पुत्र घोर क्षत्रिय होगा, जो हर एक को दण्ड दे सकेगा और तुम्हारा भाई अध्यात्म विद्या का पण्डित होगा।''

तात्पर्य : वही ब्राह्मण योग्य कहलाता है जो अपनी इन्द्रियों तथा मन को वश में रख सकता हो, जो अध्यात्म विद्या का पण्डित हो और जो सहिष्णु तथा क्षमावान हो। किन्तु क्षत्रिय वही योग्य है जो अपराधियों को कड़ा से कड़ा दण्ड दे। *भगवद्गीता* (१८.४२-४३) में इन गुणों का उल्लेख है। चूँकि सत्यवती ने अपनी चरु न खाकर अपनी माता की चरु खा ली थी अतएव उससे जो पुत्र होगा वह क्षत्रिय

गुणों से सम्पन्न होगा। यह अवांछनीय था। सामान्यतया ब्राह्मण का पुत्र ब्राह्मण के गुणों वाला होना चाहिए, किन्तु यदि वह क्षत्रिय की भाँति खूँख्वार हो जाय तो उसका नामकरण *भगवद्गीता* में वर्णित चारों वर्णों के अनुसार होगा (*चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः*)। यदि ब्राह्मण का पुत्र ब्राह्मण-जैसा आचरण नहीं करता तो उसे उसकी योग्यता के अनुसार क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र कहा जायेगा। समाज को विभाजित करने का मूल सिद्धान्त मनुष्य का जन्म नहीं अपितु उसके गुण तथा कर्म हैं।

प्रसादितः सत्यवत्या मैवं भूरिति भार्गवः ।
अथ तर्हि भवेत्पौत्रो जमदग्निस्ततोऽभवत् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

प्रसादितः—शान्त किया गया; सत्यवत्या—सत्यवती द्वारा; मा—नहीं; एवम्—इस प्रकार; भूः—हो; इति—इस प्रकार; भार्गवः—ऋषि; अथ—यदि तुम्हारा पुत्र ऐसा न हुआ; तर्हि—तो; भवेत्—होगा; पौत्रः—पोता; जमदग्निः—जमदग्नि; ततः—तत्पश्चात्; अभवत्—उत्पन्न हुआ।

किन्तु सत्यवती ने मधुर वचनों से ऋचीक मुनि को शान्त किया और प्रार्थना की कि उसका पुत्र क्षत्रिय की तरह भयंकर न हो। ऋचीक मुनि ने उत्तर दिया, "तो तुम्हारा पौत्र क्षत्रिय गुणवाला होगा।" इस प्रकार सत्यवती के पुत्र रूप में जमदग्नि का जन्म हुआ।

तात्पर्य : ऋषि ऋचीक अत्यधिक कुपित थे, किन्तु सत्यवती ने उन्हें किसी तरह मनाया और उसकी प्रार्थना पर उन्होंने अपना विचार बदल लिया। यहाँ इसका संकेत है कि जमदग्नि के पुत्र रूप में परशुराम का जन्म होगा।

सा चाभूत्सुमहत्पुण्या कौशिकी लोकपावनी ।
रेणोः सुतां रेणुकां वै जमदग्निरुवाह याम् ॥ १२ ॥
तस्यां वै भार्गवऋषेः सुता वसुमदादयः ।
यवीयाञ्जज्ञ एतेषां राम इत्यभिविश्रुतः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

सा—वह (सत्यवती); च—भी; अभूत्—हो गई; सुमहत्-पुण्या—अत्यन्त महान् एवं पवित्र; कौशिकी—कौशिकी नामक नदी; लोक-पावनी—समस्त संसार को पवित्र करने वाली; रेणोः—रेणु की; सुताम्—कन्या; रेणुकाम्—रेणुका को; वै—निस्सन्देह; जमदग्निः—सत्यवती-पुत्र जमदग्नि ने; उवाह—विवाह कर लिया; याम्—जिससे; तस्याम्—रेणुका के गर्भ से; वै—निस्सन्देह; भार्गव-ऋषेः—जमदग्नि मुनि के वीर्य से; सुताः—कई पुत्र; वसुमत्-आदयः—वसुमान इत्यादि; यवीयान्—सबसे छोटा; जज्ञे—उत्पन्न हुआ; एतेषाम्—उनमें से; रामः—परशुराम; इति—इस प्रकार; अभिविश्रुतः—विश्वविख्यात।

बाद में सत्यवती समस्त संसार को पवित्र करने वाली कौशिकी नामक पुण्य नदी बन गई और

उसके पुत्र जमदग्नि ने रेणु की पुत्री रेणुका से विवाह किया। जमदग्नि के वीर्य से रेणुका की कुक्षि से वसुमान इत्यादि कई पुत्र हुए जिनमें से राम या परशुराम सबसे छोटा था।

यमाहुर्वासुदेवांशं हैहयानां कुलान्तकम् ।
त्रिःसप्तकृत्वो य इमां चक्रे निःक्षत्रियां महीम् ॥ १४॥

शब्दार्थ

यम्—जिसको; आहुः—सारे विद्वान कहते हैं; वासुदेव-अंशम्—भगवान् वासुदेव का अवतार; हैहयानाम्—हैहयों के; कुल-अन्तकम्—कुल का विनाशकर्ता; त्रिः-सप्त-कृत्वः—इक्कीस बार; यः—जिसने (परशुराम); इमाम्—इस; चक्रे—बनाया; निःक्षत्रियाम्—क्षत्रियविहीन; महीम्—पृथ्वी को।.

विद्वान लोग इस परशुराम को भगवान् वासुदेव का विख्यात अवतार मानते हैं जिसने कार्तवीर्य के वंश का विनाश किया। परशुराम ने पृथ्वी के सभी क्षत्रियों का इक्कीस बार वध किया।

दृप्तं क्षत्रं भुवो भारमब्रह्मण्यमनीनशत् ।
रजस्तमोवृतमहन्फल्गुन्यपि कृतेऽंहसि ॥ १५॥

शब्दार्थ

दृप्तम्—अत्यन्त गर्वित; क्षत्रम्—क्षत्रियों को; भुवः—पृथ्वी के; भारम्—भार को; अब्रह्मण्यम्—पापी, ब्राह्मणों के बनाये धार्मिक नियमों की परवाह न करने वाले; अनीनशत्—निकाल दिया या विनष्ट कर दिया; रजः-तमः—रजो तथा तमो गुणों से; वृतम्—ढके हुए; अहन्—मार डाला; फल्गुनि—बहुत बड़े नहीं; अपि—यद्यपि; कृते—किया गया; अंहसि—अपराध।.

जब राजवंश रजो तथा तमो गुणों के कारण अत्यधिक गर्वित होकर अधार्मिक बन गया और ब्राह्मणों द्वारा बनाये गये नियमों की परवाह न करने लगा तो परशुराम ने उन सबको मार डाला। यद्यपि उनके अपराध बहुत बड़े न थे, किन्तु धरती का भार कम करने के लिए उन्होंने उन्हें मार डाला।

तात्पर्य : क्षत्रियों या शासक वर्ग को महान् ब्राह्मणों तथा साधु पुरुषों द्वारा बनाये गये विधि-विधानों के अनुसार संसार पर शासन करना चाहिए। ज्यों ही शासक वर्ग धार्मिक नियमों की अवहेलना करने लगता है त्योंही वह पृथ्वी के लिए भार बन जाता है। जैसा कि यहाँ पर कहा गया है—*रजस्तमोवृतं, भारम् अब्रह्मण्यम्*—जब शासक वर्ग रजो तथा तमो गुणों से प्रभावित हो जाता है तो वह विश्व के लिए भार बन जाता है और तब उसे महती शक्ति द्वारा विनष्ट किया जाना चाहिए। हम आधुनिक इतिहास में स्पष्ट देखते हैं कि राजतंत्रों को विभिन्न क्रान्तियों ने विनष्ट किया है, किन्तु दुर्भाग्यवश राजतंत्रों के विनाश के बाद तृतीय

तथा चतुर्थ श्रेणी के व्यक्तियों का प्रभुत्व स्थापित हो गया है। यद्यपि राजतंत्रों को रजो तथा तमो गुणों ने परास्त कर दिया है और विश्व से उनका लोप हो गया है, किन्तु विश्व के वासी अब भी दुखी हैं क्योंकि यद्यपि इन राजाओं के गुण तमोगुण के कारण क्षीण हो गए थे, इनका स्थान व्यापारी तथा श्रमिक वर्ग के लोगों ने ले लिया है जो और भी गिरे हुए हैं। जब सरकार का मार्गदर्शन ब्राह्मण या ईश्वरभक्त लोग करते हैं तभी लोग वास्तव में सुखी रह सकते हैं। अतएव प्राचीन काल में जब शासक वर्ग रजो तथा तमो गुणों के स्तर पर पतित हो गया तो परशुराम जैसे क्षत्रियतुल्य ब्राह्मणों ने उनका इक्कीस बार वध किया।

जैसा कि *श्रीमद्भागवत* में (१२.२.१३) कहा गया है कलियुग में—*दस्यु प्रायेषु राजसु*—शासक वर्ग (राजन्य) लुटेरों (दुस्युओं) की तरह होगा क्योंकि सरकारी राजकाज में तृतीय तथा चतुर्थ श्रेणी के लोगों का प्राधान्य हो जायेगा। वे धार्मिक नियमों तथा ब्राह्मणों के द्वारा निर्मित विधि-विधानों की अवहेलना करते हुए नागरिकों की सम्पत्ति को मनमाना ढंग से लूटने का प्रयास करेंगे। जैसा कि *श्रीमद्भागवत* में (१२.१.४०) अन्यत्र आया है—

असंस्कृताः क्रियाहीना रजसा तमसावृताः।

प्रजास्ते भक्षयिष्यन्ति म्लेच्छा राजन्यरूपिणः॥

अशुद्ध होने, मानव कर्तव्यों को ठीक से न करने एवं रजो तथा तमो गुणों से प्रभावित होने के कारण, अशुद्ध लोग (म्लेच्छ) सरकारी कर्मचारी बनकर (*राजन्यरूपिणः*) नागरिकों को निगल जायेंगे (*प्रजास्ते भक्षयिष्यन्ति*)। एक अन्य स्थान पर भी *श्रीमद्भागवत* में (१२.२.७-८) कहा गया है—

एवं प्रजाभिर्दुष्टाभिराकीर्णे क्षितिमण्डले।

ब्रह्मविट्क्षत्रशूद्राणां यो बली भविता नृपः॥

प्रजा हि लुब्धै राजन्यैर्निघृणैर्दस्युधर्मभिः।

आच्छिन्नदारद्रविणा यास्यन्ति गिरिकाननम्॥

जैसा कि *भगवद्गीता* में बतलाया गया है मानव समाज चार विभागों में बँटा है (*चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टम् गुणकर्म विभागशः*), किन्तु यदि इस तंत्र की अवहेलना की जाती है और समाज के गुण एवं विभागों पर ध्यान नहीं दिया जाता तो इसका परिणाम होगा—*ब्रह्म विट्क्षत्रशूद्राणां यो बली भविता नृपः*—अर्थात्

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र की तथाकथित जाति-प्रथा निरर्थक होगी। फलस्वरूप जो भी येनकेन प्रकारेण शक्तिशाली होगा वही राजा या राष्ट्रपति बन जायेगा और इस प्रकार प्रजा को इतना सताया जायेगा कि लोग घरबार छोड़कर जंगल चले जायेंगे (*यास्यन्ति गिरिकाननम्*) जिससे वे उन सरकारी अफसरों के उत्पीड़न से बच सकें जो निर्दय एवं लुटेरों-जैसी वृत्ति के हैं। इसलिए प्रजा को कृष्णभावनामृत आन्दोलन या हरे कृष्ण आन्दोलन को ग्रहण करना चाहिए क्योंकि यह भगवान् का शब्द अवतार है। *कलि-काले नाम-रूपे कृष्ण-अवतार*—अब अपने पवित्र नाम के अवतार रूप में कृष्ण प्रकट हुए हैं। अतएव जब प्रजा कृष्णभावनाभावित हो जायेगी तभी वह अच्छी सरकार, अच्छा समाज, पूर्ण जीवन तथा भवबन्धन से मुक्ति की आशा रख सकती है।

श्रीराजोवाच
किं तदंहो भगवतो राजन्यैरजितात्मभिः ।
कृतं येन कुलं नष्टं क्षत्रियाणामभीक्ष्णशः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—महाराज परीक्षित ने पूछा; किम्—क्या; तत् अंहः—वह अपराध; भगवतः—भगवान् के प्रति; राजन्यैः—राज परिवार द्वारा; अजित-आत्मभिः—जो अपनी इन्द्रियों को वश में न कर सकने के कारण पतित हो गये; कृतम्—किया गया; येन—जिससे; कुलम्—कुल; नष्टम्—नष्ट हो गया; क्षत्रियाणाम्—राजवंश का; अभीक्ष्णशः—पुनः पुनः।

राजा परीक्षित ने शुकदेव गोस्वामी से पूछाः अपनी इन्द्रियों को वश में न रख सकने वाले राजाओं का वह कौन सा अपराध था जिसके कारण भगवान् के अवतार परशुराम ने क्षत्रियवंश का बारम्बार विनाश किया?

श्रीबादरायणिरुवाच
हैहयानामधिपतिरर्जुनः क्षत्रियर्षभः ।
दत्तं नारायणांशांशमाराध्य परिकर्मभिः ॥ १७॥
बाहून्दशशतं लेभे दुर्धर्षत्वमरातिषु ।
अव्याहतेन्द्रियौजः श्रीतेजोवीर्ययशोबलम् ॥ १८ ॥
योगेश्वरत्वमैश्वर्यं गुणा यत्राणिमादयः ।
चचाराव्याहतगतिर्लोकेषु पवनो यथा ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

श्री-बादरायणिः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने उत्तर दिया; हैहयानाम् अधिपतिः—हैहयों का राजा; अर्जुनः—कार्तवीर्यार्जुन; क्षत्रिय-ऋषभः—क्षत्रियों में सर्वश्रेष्ठ; दत्तम्—दत्तात्रेय को; नारायण-अंश-अंशम्—नारायण के अंशांश को; आराध्य—पूजा करके;

परिकर्मभिः—विधि-विधान के अनुसार पूजा द्वारा; बाहून्—बाँहें; दश-शतम्—एक हजार (दस सौ); लेभे—प्राप्त कीं; दुर्धर्षत्वम्—कठिनाई से जीते जाने का गुण; अरातिषु—शत्रुओं के मध्य; अव्याहत—अपराजेय; इन्द्रिय-ओजः—इन्द्रियों की शक्ति; श्री—सौन्दर्य; तेजः—प्रताप प्रभाव; वीर्य—शक्ति; यशः—यश; बलम्—शारीरिक बल; योग-ईश्वरत्वम्—योगशक्ति के द्वारा अर्जित ईश्वरत्व; ऐश्वर्यम्—ऐश्वर्य; गुणाः—गुण; यत्र—जहाँ; अणिमा-आदयः—आठ सिद्धियाँ (अणिमा, लघिमा इत्यादि).); चचार—गया; अव्याहत-गतिः—जिसकी प्रगति न थकने वाली थी; लोकेषु—सारे विश्व में; पवनः—वायु; यथा—के समान।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : क्षत्रियश्रेष्ठ हैहयराज कार्तवीर्यार्जुन ने भगवान् नारायण के स्वांश दत्तात्रेय की पूजा करके एक हजार भुजाएँ प्राप्त कीं। वह शत्रुओं द्वारा अपराजेय बन गया और उसे अव्याहत इन्द्रिय शक्ति, सौन्दर्य, प्रभाव, बल, यश तथा अणिमा, लघिमा जैसी आठ योग सिद्धियाँ प्राप्त करने की योग शक्ति मिल गई। इस तरह पूर्ण ऐश्वर्यशाली बनकर वह सारे संसार में वायु की तरह बेजोड़ बनकर घूमने लगा।

स्त्रीरत्नैरावृतः क्रीडन्रेवाम्भसि मदोत्कटः ।
वैजयन्तीं स्रजं बिभ्रद्रुरोध सरितं भुजैः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

स्त्री-रत्नैः—सुन्दर स्त्रियों द्वारा; आवृतः—घिरा हुआ; क्रीडन्—भोगरत; रेवा-अम्भसि—रेवा या नर्मदा नदी के जल में; मद-उत्कटः—ऐश्वर्य से अत्यन्त गर्वित होकर; वैजयन्तीम् स्रजम्—विजय की माला से; बिभ्रत्—सुशोभित; रुरोध—प्रवाह को रोक दिया; सरितम्—नदी के; भुजैः—अपनी भुजाओं से।

एक बार नर्मदा नदी के जल में क्रीड़ा करते हुए सुन्दरी स्त्रियों से घिरे एवं विजय की माला धारण किये हुए गर्वोन्नत कार्तवीर्यार्जुन ने अपनी बाँहों से जल के प्रवाह को रोक दिया।

विप्लावितं स्वशिबिरं प्रतिस्रोतःसरिज्जलैः ।
नामृष्यत्तस्य तद्वीर्यं वीरमानी दशाननः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

विप्लावितम्—जलमग्न करके; स्व-शिबिरम्—अपने ही खेमे को; प्रतिस्रोतः—विपरीत दिशा में बहने वाले; सरित्-जलैः—नदी के जल से; न—नहीं; अमृष्यत्—सहन कर सका; तस्य—कार्तवीर्यार्जुन का; तत् वीर्यम्—वह प्रभाव; वीरमानी—अपने को वीर मानने वाला; दश-आननः—दस शिरों वाला रावण।

चूँकि कार्तवीर्यार्जुन ने जलप्रवाह की दिशा पलट दी थी अतः नर्मदा नदी के तट पर महिष्मती नगर के निकट रावण का लगा खेमा जलमग्न हो गया। यह दससिरों वाले रावण के लिए असह्य हो उठा क्योंकि वह अपने को महान् वीर मानता था और वह कार्तवीर्यार्जुन के बल को सहन नहीं कर सका।

तात्पर्य : रावण दिग्विजय प्राप्त करने के उद्देश्य से भ्रमण कर रहा था और नर्मदा नदी के तट पर

माहिष्मती नगर के निकट खेमा डाले हुए था।

गृहीतो लीलया स्त्रीणां समक्षं कृतकिल्बिषः ।
माहिष्मत्यां सन्निरुद्धो मुक्तो येन कपिर्यथा ॥ २२॥

शब्दार्थ

गृहीतः—बलपूर्वक बन्दी बनाया गया; लीलया—आसानी से; स्त्रीणाम्—स्त्रियों की; समक्षम्—उपस्थिति में; कृत-किल्बिषः—अपराधी होने के कारण; माहिष्मत्याम्—माहिष्मती नामक नगर में; सन्निरुद्धः—बन्दी बनाया गया; मुक्तः—छोड़ा गया; येन—जिसके (कार्तवीर्यार्जुन के) द्वारा; कपिः यथा—जिस प्रकार बन्दर छोड़ दिया जाय।

जब रावण ने स्त्रियों के समक्ष कार्तवीर्यार्जुन का अपमान करना चाहा और उसे नाराज कर दिया तो उसने रावण को खेल-खेल में उसी प्रकार बन्दी बनाकर माहिष्मती नगर के कारागार में डाल दिया जिस प्रकार कोई बन्दर को पकड़ ले। बाद में उसने परवाह किए बिना उसे मुक्त कर दिया।

स एकदा तु मृगयां विचरन्विजने वने ।
यदृच्छयाश्रमपदं जमदग्नेरुपाविशत् ॥ २३॥

शब्दार्थ

सः—वह, कार्तवीर्यार्जुन; एकदा—एक बार; तु—लेकिन; मृगयाम्—शिकार करते हुए; विचरन्—घूमते हुए; विजने—एकान्त; वने—वन में; यदृच्छया—किसी कार्यक्रम के बिना; आश्रम-पदम्—रिहायशी स्थान में; जमदग्नेः—जमदग्नि मुनि के; उपाविशत्—घुस गया।

एक बार जब कार्तवीर्यार्जुन बिना किसी कार्यक्रम के एकान्त जंगल में घूमकर शिकार कर रहा था तो वह जमदग्नि के निवास के निकट पहुँचा।

तात्पर्य : कार्तवीर्यार्जुन को जमदग्नि के आवास तक जाने का कोई कारण न था, किन्तु अपनी अद्वितीय शक्ति से गर्वित होकर वह वहाँ गया और उसने परशुराम का अपमान किया। परशुराम द्वारा उसके मारे जाने की यही पूर्वपीठिका थी।

तस्मै स नरदेवाय मुनिरर्हणमाहरत् ।
ससैन्यामात्यवाहाय हविष्मत्या तपोधनः ॥ २४॥

शब्दार्थ

तस्मै—उस; सः—उस (जमदग्नि); नरदेवाय—राजा कार्तवीर्यार्जुन को; मुनिः—मुनि ने; अर्हणम्—पूजा की सामग्री; आहरत्—प्रदान की; स-सैन्य—सेना समेत उसको; अमात्य—उसके मंत्रियों को; वाहाय—तथा रथों, हाथियों, घोड़ों या पालकी वाहकों को; हविष्मत्या—कामधेनु रखने के कारण; तपः-धनः—मुनि, जिसकी तपस्या ही उसका धन था, अथवा जो तपस्या में लगा था।

जंगल में कठिन तपस्या में रत ऋषि जमदग्नि ने सैनिकों, मंत्रियों तथा पालकी वाहकों समेत

राजा का अच्छी तरह स्वागत किया। उन्होंने इन अतिथियों को पूजा करने की सारी सामग्री जुटाई क्योंकि उनके पास कामधेनु गाय थी जो हर वस्तु प्रदान करने में सक्षम थी।

तात्पर्य : *ब्रह्म-संहिता* से हमें जानकारी मिलती है कि वैकुण्ठ लोक, विशेष रूप से कृष्ण का निवासस्थल गोलोक वृन्दावन सुरभि गायों से पूर्ण है (*सुरभीरभिपालयन्तम्*)। सुरभि गाय को कामधेनु भी कहते हैं। यद्यपि जमदग्नि के पास एक ही कामधेनु थी, किन्तु वे उससे कोई भी इच्छित वस्तु प्राप्त कर सकते थे। इस तरह वे राजा के अनेक अनुचरों, मंत्रियों, सैनिकों, पशुओं तथा कहारों समेत राजा का स्वागत कर सके। जब हम राजा की बात करते हैं तो इसका अर्थ होता है कि उसके साथ अनेक अनुचर होंगे। जमदग्नि उस सबों का ठीक से स्वागत कर सके और उन्हें घी में बना पेट भर कर भोजन खिला सके। राजा आश्चर्यचकित था कि जमदग्नि केवल एक गाय के होने से ही कितना ऐश्वर्यशाली है अतएव उसे इस ऋषि से ईर्ष्या होने लगी। उसके अपराध की यही शुरुआत है। भगवान् के अवतार परशुराम ने कार्तवीर्यार्जुन को मार डाला क्योंकि वह अत्यधिक घमंडी था। इस भौतिक जगत में किसी के पास कितना ही धन क्यों न हो, किन्तु यदि वह गर्वित होकर मनमाना कार्य करता है तो भगवान् उसे दण्ड देते हैं। इस कथा से यही शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए, जिसमें परशुराम ने कार्तवीर्यार्जुन पर क्रुद्ध होकर उसे मार डाला और फिर २१ बार सारे संसार को क्षत्रियविहीन कर दिया।

स वै रत्नं तु तद्दृष्ट्वा आत्मैश्वर्यातिशायनम् ।
तन्नाद्रियताग्निहोत्र्यां साभिलाषः सहैहयः ॥ २५॥

शब्दार्थ

सः—वह (कार्तवीर्यार्जुन); वै—निस्सन्देह; रत्नम्—सम्पत्ति के स्रोत को; तु—निस्सन्देह; तत्—जमदग्नि की कामधेनु; दृष्ट्वा—देखकर; आत्म-ऐश्वर्य—निजी ऐश्वर्य; अति-शायनम्—अतिशय; तत्—वह; न—नहीं; आद्रियत—अत्यधिक प्रशंसा की; अग्निहोत्र्याम्—उस गाय में जो अग्निहोत्र यज्ञ करने के लिए अत्यन्त लाभदायक थी; स-अभिलाषः—इच्छुक; स-हैहयः—हैहयवंशी, अपने व्यक्तियों सहित।

कार्तवीर्यार्जुन ने सोचा कि जमदग्नि उसकी तुलना में अधिक शक्तिशाली एवं सम्पन्न है क्योंकि उसके पास कामधेनु रूपी रत्न है अतएव उसने तथा उसके हैहयजनों ने जमदग्नि के सत्कार की अधिक प्रशंसा नहीं की। उल्टे, वे उस कामधेनु को लेना चाहते थे जो अग्निहोत्र यज्ञ के लिए लाभदायक थी।

तात्पर्य : जमदग्नि कार्तवीर्यार्जुन की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली थे क्योंकि वे कामधेनु से प्राप्त घी से अग्निहोत्र यज्ञ करते थे। ऐसी गाय हर किसी के पास होनी सम्भव नहीं। तो भी एक सामान्य व्यक्ति एक सामान्य गाय रखकर उसकी रक्षा करते हुए उससे प्रचुर दूध प्राप्त कर सकता है जिससे वह अग्निहोत्र यज्ञ के लिए घी बना सकता है। यह हर एक के लिए सम्भव है। इस तरह हम देखते हैं कि *भगवद्गीता* में कृष्ण *गोरक्ष्य* अर्थात् गोरक्षा का उपदेश देते हैं। यह अत्यावश्यक है क्योंकि यदि गायों की ठीक से देखभाल की जाय तो उनसे प्रचुर दूध मिल सकता है। हमें अमरीका में इसका व्यावहारिक अनुभव हुआ है जहाँ हम इस्कॉन के विविध फार्मों में गायों को ठीक से सुरक्षा प्रदान करके पर्याप्त दूध प्राप्त कर रहे हैं। अन्य फार्मों की गाएँ उतना दूध नहीं देतीं जितना कि हमारी गाएँ देती हैं। क्योंकि हमारी गाएँ जानती हैं कि हम उनका वध नहीं करेंगे अतएव वे सुखी हैं और पर्याप्त दूध देती हैं। अतएव कृष्ण जी द्वारा दिया गया गोरक्ष्य का उपदेश अत्यन्त सार्थक है। सारे विश्व को कृष्ण से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए कि किस प्रकार मात्र अन्न उत्पादन करके (*अन्नाद् भवन्ति भूतानि*) तथा गायों को सुरक्षा प्रदान करके (*गोरक्ष्य*) लोग बिना किसी अभाव के सुखपूर्वक रह सकते हैं। *कृषि-गोरक्ष्य-वाणिज्यं वैश्य कर्म स्वभावजम्।* मानव समाज के तृतीय श्रेणी के लोगों अर्थात् व्यापारी वर्ग को अन्नोत्पादन तथा गायों की रक्षा के लिए भूमि अवश्य रखनी चाहिए। यह *भगवद्गीता* का आदेश है। गायों की सुरक्षा के प्रश्न पर मांसाहारियों को आपत्ति होगी; अतएव इसके जवाब में हमें उनसे कहना चाहिए कि चूँकि कृष्ण गोरक्षा पर बल देते हैं अतएव जो मांस खाना ही चाहते हैं वे कूकरों-सूकरों, भेड़-बकरियों का मांस खायें, किन्तु वे गायों के जीवन पर आँच न आने दें क्योंकि यह मानव समाज की आध्यात्मिक प्रगति को विनष्ट करने वाला है।

हविर्धानीमृषेर्दर्पान्नरान्हर्तुमचोदयत् ।
ते च माहिष्मतीं निन्युः सवत्सां क्रन्दतीं बलात् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

हविः-धानीम्—कामधेनु को; ऋषेः—ऋषि जमदग्नि की; दर्पात्—भौतिक शक्ति से गर्वित होने से; नरान्—अपने सारे आदमियों (सैनिकों) को; हर्तुम्—चुरा या ले जाने के लिए; अचोदयत्—प्रोत्साहित किया; ते—वे; च—भी; माहिष्मतीम्—कार्तवीर्यार्जुन की राजधानी में; निन्युः—ले आये; स-वत्साम्—उसके बछड़े समेत; क्रन्दतीम्—रोती हुई को; बलात्—बलपूर्वक, जबरन।

भौतिक शक्ति से गर्वित कार्तवीर्यार्जुन ने अपने व्यक्तियों को जमदग्नि की कामधेनु चुरा लेने के लिए प्रेरित किया। फलतः वे व्यक्ति रोती-विलपती कामधेनु को उसके बछड़े समेत बलपूर्वक

कार्तवीर्यार्जुन की राजधानी माहिष्मती ले आये।

तात्पर्य : इस श्लोक में *हविर्धानीम्* शब्द महत्त्वपूर्ण है। इसका अर्थ है यज्ञ के अनुष्ठानों को सम्पन्न करने के लिए हवि या घी प्रदान करने वाली गाय। मनुष्य को इस जीवन में यज्ञ सम्पन्न करने की शिक्षा दी जानी चाहिए। जैसा कि हमें *भगवद्गीता* से (३.९) जानकारी मिलती है— *यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः*—यदि हम यज्ञ नहीं करते तो हम इन्द्रियतृप्ति के लिए कूकरों-सूकरों की तरह कठिन श्रम करते रहेंगे। यह सभ्यता नहीं है। मनुष्य को यज्ञ करने की शिक्षा दी जानी चाहिए। *यज्ञाद् भवति पर्जन्यः*। यदि यज्ञ नियमित रूप से सम्पन्न होते रहें तो समुचित वर्षा होती रहेगी और ठीक से वर्षा होने पर भूमि उपजाऊ होगी तथा जीवन की समस्त आवश्यकताओं को पूरा कर सकेगी। अतएव यज्ञ आवश्यक है। यज्ञ के लिए घी चाहिए और घी के लिए गाय की सुरक्षा होनी चाहिए।इसलिए यदि हम वैदिक सभ्यता की उपेक्षा करेंगे तो हमें अवश्य ही कष्ट मिलेगा। तथाकथित विद्वान तथा दार्शनिक जीवन में सफलता के रहस्य को नहीं जानते अतएव उन्हें प्रकृति के हाथों में पड़कर कष्ट सहना पड़ता है (*प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणै कर्माणि सर्वशः*)। कष्ट सहन करने पर विवश होने पर भी वे सोचते हैं कि वे सभ्यता में आगे बढ़ रहे हैं (*अहंकार विमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते*)। अतएव कृष्णभावनामृत आन्दोलन उस सभ्यता को पुनर्जीवित करने के लिए है जिसमें हर व्यक्ति सुखी रह सके। हमारे कृष्णभावनामृत आन्दोलन का यही उद्देश्य है। *यज्ञे सुखेन भवन्तु।*

अथ राजनि निर्याते राम आश्रम आगतः ।
श्रुत्वा तत्तस्य दौरात्म्यं चुक्रोधाहिरिवाहतः ॥ २७॥

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात्; राजनि—राजा के; निर्याते—चले जाने पर; रामः—जमदग्नि का सबसे छोटा पुत्र परशुराम; आश्रमे—आश्रम में; आगतः—वापस आया; श्रुत्वा—सुनकर; तत्—जो; तस्य—कार्तवीर्यार्जुन का; दौरात्म्यम्—दुष्कर्म; चुक्रोध—अत्यन्त क्रुद्ध हुआ; अहिः—साँप; इव—सदृश; आहतः—कुचले जाने पर या चोट खाने पर।

जब कामधेनु सहित कार्तवीर्यार्जुन चला गया तो जमदग्नि का सबसे छोटा पुत्र परशुराम आश्रम में लौटा। जब उसने कार्तवीर्यार्जुन के दुष्कर्म के विषय में सुना तो वह कुचले हुए साँप की तरह क्रुद्ध हो उठा।

घोरमादाय परशुं सतूणं वर्म कार्मुकम् ।
अन्वधावत दुर्मर्षो मृगेन्द्र इव यूथपम् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

घोरम्—अत्यन्त भयानक; आदाय—हाथ में लेकर; परशुम्—फरसा; स-तूणम्—तूणीर सहित; वर्म—ढाल; कार्मुकम्—धनुष; अन्वधावत—पीछा किया; दुर्मर्षः—अत्यधिक क्रोध में भरे परशुराम ने; मृगेन्द्रः—सिंह; इव—सदृश; यूथपम्—हाथी पर (आक्रमण करने के लिए)।

अपना भयानक फरसा, ढाल, धनुष तथा तरकस लेकर अत्यधिक क्रुद्ध परशुराम ने कार्तवीर्यार्जुन का पीछा किया जिस तरह सिंह हाथी का पीछा करता है।

तमापतन्तं भृगुवर्यमोजसा
धनुर्धरं बाणपरश्वधायुधम् ।
ऐणेयचर्माम्बरमर्कधामभि-
र्युतं जटाभिर्ददृशे पुरीं विशन् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस; आपतन्तम्—पीछा करते; भृगु-वर्यम्—भृगुवंशी भगवान् परशुराम को; ओजसा—अत्यन्त दारुण; धनुः-धरम्—धनुष धारण किये; बाण—बाण; परश्वध—फरसा; आयुधम्—इन सारे हथियारों को; ऐणेय-चर्म—श्याम हिरन की खाल; अम्बरम्—अपने शरीर को ढके; अर्क-धामभिः—सूर्यप्रकाश की भाँति प्रकट होकर; युतम् जटाभिः—जटाओं से युक्त; ददृशे—उसने देखा; पुरीम्—राजधानी में; विशन्—प्रवेश करते हुए।

अभी राजा कार्तवीर्यार्जुन अपनी राजधानी माहिष्मती पुरी में प्रवेश कर ही रहा था कि उसने भृगुवंशियों में श्रेष्ठ भगवान् परशुराम को फरसा, ढाल, धनुष तथा बाण लिए अपना पीछा करते देखा। परशुरामजी ने काले हिरन की खाल पहन रखी थी और उनका जटाजूट सूर्य के तेज जैसा प्रतीत हो रहा था।

अचोदयद्धस्तिरथाश्वपत्तिभि-
र्गदासिबाणर्ष्टिशतघ्निशक्तिभिः ।
अक्षौहिणीः सप्तदशातिभीषणा-
स्ता राम एको भगवानसूदयत् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

अचोदयत्—लड़ने के लिए भेजा; हस्ति—हाथी; रथ—रथ; अश्व—घोड़े; पत्तिभिः—पैदल सेना समेत; गदा—गदा; असि—तलवार; बाण—बाण; ऋष्टि—ऋष्टि नामक औजार; शतघ्नि—शतघ्नि नामक हथियार; शक्तिभिः—तथा शक्ति नामक हथियार से; अक्षौहिणीः—अक्षौहिणी; सप्त-दश—सत्रह; अति-भीषणाः—अत्यन्त भयानक; ताः—उन सबों को; रामः—परशुराम ने; एकः—अकेले; भगवान्—भगवान्; असूदयत्—मार डाला।

परशुराम को देखते ही कार्तवीर्यार्जुन डर गया और उसने तुरन्त ही उनसे युद्ध करने के लिए

अनेक हाथी, रथ, घोड़े तथा पैदल सैनिक भेजे जो गदा, तलवार, बाण, ऋष्टि, शतघ्नि, शक्ति इत्यादि विविध हथियारों से युक्त थे। उसने परशुराम को रोकने के लिए पूरे सत्रह अक्षौहिणी सैनिक भेजे, किन्तु भगवान् परशुराम ने अकेले ही सबों का सफाया कर दिया।

तात्पर्य : *अक्षौहिणी* शब्द २१८७० रथ तथा इतने हाथी, १०९३५० पैदल सैनिक तथा ६५६१० घोड़ों से युक्त सैन्य व्यूह है। इसका सही-सही वर्णन *महाभारत* के आदिपर्व के द्वितीय अध्याय में दिया हुआ है—

एको रथो गजश्चैक: नरा: पञ्च पदातय:।
त्रयश्च तुरगास्तज्ज्ञै पत्तिरित्यभिधीयते॥
पत्तिं तु त्रिगुणाम् एतां विदु: सेनामुखं बुधा:।
त्रीणि सेनामुखान्येको गुल्म इत्यभिधीयते॥
त्रयोगुल्मा गणो नाम वाहिनी तु गणास्त्रय:।
श्रुतास्तिस्रस्तु वाहिन्य: पृतनेति विचक्षणै॥
चमूस्तु पृतनास्तिस्रश्चंवस्तिस्रस्त्वनीकिनी।
अनीकिनीं दशगुणामाहुरक्षौहिणीं बुधा:॥
अक्षौहिण्यस्तु संख्याता रथानां द्विज सत्तमा:।
संख्यागणिततत्त्वज्ञै सहस्राण्येकविशंति॥
शतान्युपरि चाष्टौ च भूयस्तथा च सप्तति:।
गजानां तु परीमाणं तावदेवात्र निर्दिशेत्॥
ज्ञेयं शतसहस्रं तु सहस्राणि तथा नव।
नराणामधि पञ्चाशच्छतानि त्रीणि चानघा:॥
पञ्चषष्टिसहस्राणि तथाश्वानां शतानि च।
दशोत्तराणि षट् चाहुर्यथावद् अभिसंख्यया।
एतामक्षणौहिणीं प्राहु: संख्यातत्त्वविदो जना:॥

''ज्ञाताओं का कहना है कि एक रथ, एक हाथी, पाँच पैदल सैनिक तथा तीन घोड़े मिलकर एक पत्ति

कहलाते हैं। चतुर व्यक्ति यह भी जानते हैं कि ऐसे तीन पत्ति का एक सेनामुख होता है। तीन सेनामुख मिलकर एक गुल्म बनाते हैं, तीन गुल्म मिलकर एक गण एवं तीन गण मिलकर एक वाहिनी कहलाते हैं। विद्वान लोग तीन वाहिनियों को एक पृतना, तीन पृतनाओं को एक चमू, तीन चमुओं को एक अनीकिनी कहते हैं। ऐसी दस अनीकिनियों से एक अक्षौहिणी बनती है। हे द्विज! एक अक्षौहिणी में रथों की संख्या २१८७० होती है और हाथियों की संख्या भी इतनी ही है। पैदल सैनिकों की संख्या १०९३५० है और घोड़ों की संख्या ६५६१० है। यह एक अक्षौहिणी कहलाती है।''

यतो यतोऽसौ प्रहरत्परश्वधो
मनोऽनिलौजाः परचक्रसूदनः ।
ततस्ततश्छिन्नभुजोरुकन्धरा
निपेतुरुर्व्यां हतसूतवाहनाः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

यतः—जहाँ; यतः—जहाँ; असौ—भगवान् परशुराम; प्रहरत्—प्रहार करते हुए; परश्वधः—परशु नामक हथियार चलाने में निपुण; मनः—मन की तरह; अनिल—वायु की तरह; ओजाः—शक्तिशाली; पर-चक्र—शत्रु की सैन्य शक्ति का; सूदनः—वध करने वाला; ततः—वहाँ; ततः—वहाँ; छिन्न—कटकर तितर-बितर; भुज—बाहें; ऊरु—पाँव; कन्धराः—धड़; निपेतुः—गिर पड़े; उर्व्याम्—पृथ्वी पर; हत—मारे हुए; सूत—सारथी; वाहनाः—घोड़े तथा हाथी की सवारियाँ।

शत्रु की सेना को मारने में कुशल भगवान् परशुराम ने मन तथा वायु की गति से काम करते हुए अपने फरसे से शत्रुओं के टुकड़े कर दिये। वे जहाँ-जहाँ गये सारे शत्रु खेत होते रहे, उनके पाँव, हाथ तथा धड़ अलग-अलग हो गये, उनके सारथी मार डाले गये और उनके वाहन, हाथी तथा घोड़े सभी विनष्ट कर दिये गये।

तात्पर्य : प्रारम्भ में जब शत्रुसेना युद्ध करने वाले सैनिकों, हाथियों तथा घोड़ों से भरी थी तो भगवान् परशुराम मन के वेग से उनके बीच उनका वध करने के लिए आगे बढ़े। जब वे कुछ थक गए तो उनकी गति वायु जैसी हो गई और फिर वे तेजी से शत्रुओं का वध करते रहे। मन का वेग वायु के वेग से अधिक है।

दृष्ट्वा स्वसैन्यं रुधिरौघकर्दमे
रणाजिरे रामकुठारसायकैः ।
विवृक्णवर्मध्वजचापविग्रहं

निपातितं हैहय आपतद्रुषा ॥ ३२॥

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देखकर; स्व-सैन्यम्—अपने सैनिकों को; रुधिर-ओघ-कर्दमे—रक्त बहने से गँदले हुए; रण-अजिरे—युद्धभूमि में; राम-कुठार—भगवान् परशुराम के फरसे से; सायकै:—बाणों से; विवृक्ण—तितर-बितर; वर्म—ढाल; ध्वज—ध्वजा; चाप—धनुष; विग्रहम्—शरीर; निपातितम्—गिरे हुए; हैहय:—कार्तवीर्यार्जुन; आपतत्—तेजी से वहाँ आया; रुषा—क्रोध से।

अपने फरसे तथा बाणों को व्यवस्थित करके परशुराम ने कार्तवीर्यार्जुन के सिपाहियों की ढालों, उनके झंडों, धनुषों तथा उनके शरीरों के टुकड़े-टुकड़े कर डाले जो युद्धभूमि में गिर गये और जिनके रक्त से भूमि पंकिल हो गई। अपनी पराजय होते देखकर अत्यन्त क्रुद्ध होकर कार्तवीर्यार्जुन युद्धभूमि की ओर लपका।

अथार्जुनः पञ्चशतेषु बाहुभिर्
धनुःषु बाणान्युगपत्स सन्दधे ।
रामाय रामोऽस्त्रभृतां समग्रणी-
स्तान्येकधन्वेषुभिराच्छिनत्समम् ॥ ३३॥

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात्; अर्जुन:—कार्तवीर्यार्जुन; पञ्च-शतेषु—पाँच सौ; बाहुभि:—अपनी बाहुओं से; धनु:षु—धनुषों पर; बाणान्—बाणों को; युगपत्—एकसाथ; स:—उसने; सन्दधे—स्थिर किया; रामाय—परशुराम को मारने के लिए; राम:—परशुराम ने; अस्त्र-भृताम्—अस्त्र प्रयोग करने वाले सारे सैनिकों में से; समग्रणी:—सर्वप्रमुख; तानि—कार्तवीर्यार्जुन के सारे बाण; एक-धन्वा—एक धनुषधारी; इषुभि:—बाणों से; आच्छिनत्—टुकड़े कर डाले; समम्—के साथ।

तब कार्तवीर्यार्जुन ने परशुराम को मारने के लिए एक हजार भुजाओं में एकसाथ पाँच सौ धनुषों पर बाण चढ़ा लिए। किन्तु श्रेष्ठ लड़ाकू भगवान् परशुराम ने एक ही धनुष से इतने बाण छोड़े कि कार्तवीर्यार्जुन के हाथों के सारे धनुष तथा बाण तुरन्त कटकर टुकड़े-टुकड़े हो गये।

पुनः स्वहस्तैरचलान्मृधेऽङ्घ्रिपा-
नुत्क्षिप्य वेगादभिधावतो युधि ।
भुजान्कुठारेण कठोरनेमिना
चिच्छेद रामः प्रसभं त्वहेरिव ॥ ३४॥

शब्दार्थ

पुन:—फिर; स्व-हस्तै:—अपने हाथों से; अचलान्—पर्वतों को; मृधे—युद्धभूमि में; अङ्घ्रिपान्—वृक्षों को; उत्क्षिप्य—उखाड़ कर; वेगात्—वेग से; अभिधावत:—तेजी से दौते हुए; युधि—युद्धभूमि में; भुजान्—सारी भुजाएँ; कुठारेण—अपने फरसे से; कठोर-नेमिना—अत्यन्त तीक्ष्ण; चिच्छेद—काट डाला; राम:—परशुराम ने; प्रसभम्—अत्यन्त वेग से; तु—लेकिन; अहे: इव—सर्प के फनों की भाँति।

जब कार्तवीर्यार्जुन के बाण छिन्न-भिन्न हो गये तो उसने अपने हाथों से अनेक वृक्ष तथा पर्वत

उखाड़ लिये और वह फिर से परशुरामजी को मारने के लिए उनकी ओर तेजी से दौा। किन्तु परशुराम ने अपने फरसे से अत्यन्त वेग से कार्तवीर्यार्जुन की भुजाएँ काट लीं जिस तरह कोई सर्प के फनों को काट ले।

कृत्तबाहोः शिरस्तस्य गिरेः शृङ्गमिवाहरत् ।
हते पितरि तत्पुत्रा अयुतं दुद्रुवुर्भयात् ॥ ३५ ॥
अग्निहोत्रीमुपावर्त्य सवत्सां परवीरहा ।
समुपेत्याश्रमं पित्रे परिक्लिष्टां समर्पयत् ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

कृत्त-बाहोः—बाँह कटे कार्तवीर्यार्जुन का; शिरः—शिर; तस्य—उसका; गिरेः—पर्वत की; शृङ्गम्—चोटी; इव—सदृश; आहरत्—(परशुराम ने) उसके शरीर से काट लिया; हते पितरि—अपने पिता के मारे जाने पर; तत्-पुत्राः—उसके पुत्र; अयुतम्—दस हजार; दुद्रुवुः—भाग गये; भयात्—डर के मारे; अग्निहोत्रीम्—कामधेनु को; उपावर्त्य—पास लाकर; स-वत्साम्—बछडे सहित; पर-वीर-हा—शत्रुओं के वीरों को मारने वाले परशुराम; समुपेत्य—लौटकर; आश्रमम्—अपने पिता के आवास में; पित्रे—पिता को; परिक्लिष्टाम्—अत्यधिक कष्ट पाई हुई; समर्पयत्—लाकर दे दिया।

तत्पश्चात् परशुराम ने बाँह-कटे कार्तवीर्यार्जुन के सिर को पर्वतशृंग के समान काट लिया। जब कार्तवीर्यार्जुन के दस हजार पुत्रों ने अपने पिता को मारा गया देखा तो वे सब डर के मारे भाग गये। तब शत्रु का वध करके परशुराम ने कामधेनु को छुड़ाया, जिसे काफी कष्ट मिल चुका था और वे उसे बछड़े समेत अपने घर ले आये तथा उसे अपने पिता जमदग्नि को दे दिया।

स्वकर्म तत्कृतं रामः पित्रे भ्रातृभ्य एव च ।
वर्णयामास तच्छ्रुत्वा जमदग्निरभाषत ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

स्व-कर्म—अपना कार्य; तत्—वे सारे कर्म; कृतम्—जो किये जा चुके थे; रामः—परशुराम ने; पित्रे—अपने पिता से; भ्रातृभ्यः—अपने भाइयों से; एव च—तथा; वर्णयाम् आस—वर्णन किया; तत्—वह; श्रुत्वा—सुनकर; जमदग्निः—परशुराम के पिता ने; अभाषत—इस प्रकार कहा।

परशुराम ने कार्तवीर्यार्जुन के वध सम्बन्धी अपने कार्यकलापों का वर्णन अपने पिता तथा भाइयों से किया। इन कार्यों को सुनकर जमदग्नि अपने पुत्र से इस प्रकार बोले।

राम राम महाबाहो भवान्पापमकारषीत् ।
अवधीन्नरदेवं यत्सर्वदेवमयं वृथा ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

राम राम—हे प्रिय पुत्र परशुराम; महाबाहो—हे महान् वीर; भवान्—तुमने; पापम्—पापपूर्ण कृत्य; अकारषीत्—किया है; अवधीत्—मार डाला है; नरदेवम्—राजा को; यत्—जो; सर्व-देव-मयम्—सारे देवताओं के मूर्तरूप; वृथा—व्यर्थ ही।

हे वीर, हे पुत्र परशुराम, तुमने व्यर्थ ही राजा को मार डाला है क्योंकि वह सारे देवताओं का मूर्तरूप माना जाता है। इस प्रकार तुमने पाप किया है।

वयं हि ब्राह्मणास्तात क्षमयार्हणतां गताः ।
यया लोकगुरुर्देवः पारमेष्ठ्यमगात्पदम् ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

वयम्—हम; हि—निस्सन्देह; ब्राह्मणाः—योग्य ब्राह्मण हैं; तात—हे पुत्र; क्षमया—क्षमा के गुण से; अर्हणताम्—पूजनीय होने का पद; गताः—हमने प्राप्त किया है; यया—इस योग्यता से; लोक-गुरुः—इस ब्रह्माण्ड के गुरु; देवः—ब्रह्मा ने; पारमेष्ठ्यम्—इस संसार के भीतर परम पुरुष; अगात्—प्राप्त किया; पदम्—पद को।

हे पुत्र, हम सभी ब्राह्मण हैं और अपनी क्षमाशीलता के कारण जनसामान्य के लिए पूज्य बने हुए हैं। इस गुण के कारण ही इस ब्रह्माण्ड के परम गुरु ब्रह्माजी को उनका पद प्राप्त हुआ है।

क्षमया रोचते लक्ष्मीर्ब्राह्मी सौरी यथा प्रभा ।
क्षमिणामाशु भगवांस्तुष्यते हरिरीश्वरः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

क्षमया—केवल क्षमा के कारण; रोचते—रोचक बनता है; लक्ष्मीः—लक्ष्मी जी; ब्राह्मी—ब्राह्मणों के गुणों से; सौरी—सूर्यदेव; यथा—जिस तरह; प्रभा—प्रकाश; क्षमिणाम्—क्षमाशील ब्राह्मणों से; आशु—शीघ्र ही; भगवान्—भगवान्; तुष्यते—प्रसन्न हो जाते हैं; हरिः—हरि; ईश्वरः—परम नियन्ता।

ब्राह्मणों का कर्तव्य है कि वे क्षमाशीलता के गुण का संवर्धन करें क्योंकि यह सूर्य के समान तेजवान है। भगवान् हरि क्षमाशील व्यक्तियों से प्रसन्न होते हैं।

तात्पर्य : विभिन्न व्यक्ति विभिन्न गुणों के कारण सुन्दर बनते हैं। चाणक्य पंडित कहते हैं कि यद्यपि कोयल काली होती है, किन्तु अपनी मीठी वाणी के कारण सुन्दर है। इसी प्रकार स्त्री अपने सतीत्व तथा पति के प्रति आज्ञाकारिता से सुन्दर बनती है और कुरूप व्यक्ति पंडित बनने पर सुन्दर बनता है। इसी प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र अपने-अपने गुणों के कारण सुन्दर होते हैं। ब्राह्मण तब सुन्दर बनते हैं जब वे क्षमाशील होते है, क्षत्रिय तब जब वे वीर हों और युद्ध से मुख न मोड़ें, वैश्य तब जब वे सांस्कृतिक कार्योंको समृद्ध करते हैं और गायों की रक्षा करते हैं तथा शूद्र तब जब वे अपने स्वामियों को प्रसन्न करते हुए अपने कर्तव्यों का विश्वासपूर्वक पालन करते हैं। इस तरह व्यक्ति अपने विशिष्ट गुणों से सुन्दर बन जाता

है और जैसा कि यहाँ वर्णन हुआ है, ब्राह्मण का विशिष्ट गुण क्षमाशीलता है।

राज्ञो मूर्धाभिषिक्तस्य वधो ब्रह्मवधाद्गुरुः ।
तीर्थसंसेवया चांहो जह्यङ्गाच्युतचेतनः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

राज्ञः—राजा का; मूर्ध-अभिषिक्तस्य—जो सम्राट के नाम से विख्यात है; वधः—वध, हत्या; ब्रह्म-वधात्—ब्राह्मण की हत्या की अपेक्षा; गुरुः—अत्यन्त कठोर; तीर्थ-संसेवया—तीर्थस्थानों की पूजा करके; च—भी; अंहः—पापकर्म; जहि—धो डालो; अङ्ग—हे प्रिय पुत्र; अच्युत-चेतनः—पूर्णतया कृष्णभावनाभावित होकर।

हे प्रिय पुत्र, एक सम्राट का वध ब्राह्मण की हत्या से भी अधिक पापमय है। किन्तु अब यदि तुम कृष्णभावनाभावित होकर तीर्थस्थानों की पूजा करो तो इस महापाप का प्रायश्चित हो सकता है।

तात्पर्य : जो पूर्णतया भगवान् की शरण में चला जाता है वह सारे पापों से मुक्त हो जाता है (*अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि*)। जिस दिन या जिस क्षण से कोई श्रीकृष्ण को आत्मसमर्पण कर देता है, तो वह कितना ही बड़ा पापी क्यों न हो मुक्त हो जाता है। फिर भी, उदाहरण के रूप में, जमदग्नि ने अपने पुत्र परशुराम को तीर्थस्थानों की पूजा करने की सलाह दी। चूँकि सामान्य व्यक्ति तुरन्त ही भगवान् को आत्मसमर्पण नहीं कर पाता अतएव उसे तीर्थस्थानों को जाने की सलाह दी जाती है जिससे वह साधु पुरुषों को खोजे और धीरे-धीरे अपने पापकर्मों के फल से मुक्त हो जाय।

इस प्रकार *श्रीमद्भागवत* के नवम स्कंध के अन्तर्गत "भगवान् का योद्धा अवतार, परशुराम" नामक पंद्रहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter सोलह

भगवान् परशुराम द्वारा विश्व के क्षत्रियों का विनाश

जैसा कि इस अध्याय में वर्णन हुआ है, जब कार्तवीर्यार्जुन के पुत्रों ने जमदग्नि को मार डाला तो परशुराम ने सम्पूर्ण संसार को इक्कीस बार क्षत्रियों से विहीन किया। इस अध्याय में विश्वामित्र के वंशजों का भी वर्णन हुआ है।

एक बार जब जमदग्नि की पत्नी रेणुका गंगा नदी से जल लेने गई तो वह गन्धर्वों के राजा को अप्सराओं के साथ विहार करते देखकर मोहित हो गई और उसने मन ही मन उसके साथ रमण करने की इच्छा की। इस पापपूर्ण इच्छा के कारण वह अपने पति द्वारा दंडित हुई। परशुराम ने अपनी माता तथा भाइयों को मार डाला, किन्तु बाद में जमदग्नि की तपस्या से वे सब जीवित हो उठे। उधर कार्तवीर्यार्जुन के पुत्र अपने पिता की मृत्यु का बदला भगवान् परशुराम से लेना चाहते थे; अतएव जब परशुराम आश्रम से बाहर गये हुए थे तो उन्होंने ध्यान में मग्न जमदग्नि को मार डाला। जब परशुराम आश्रम लौटे और उन्होंने अपने पिता को मरा पाया, तो वे अत्यन्त दुखी हुए। अपने भाइयों को मृत शरीर की रखवाली करने के लिए कह कर उन्होंने स्वयं इस पृथ्वी पर के सारे क्षत्रियों का विनाश करने का संकल्प किया और वे बाहर चले गये। वे अपना फरसा लेकर कार्तवीर्यार्जुन की राजधानी माहिष्मतीपुर गये और उसके सभी पुत्रों को मार डाला जिसके रक्त से एक बड़ी नदी बह चली। वे केवल कार्तवीर्याजुन के पुत्रों को मार कर ही संतुष्ट नहीं हुए; बाद में जब क्षत्रिय उत्पात करने लगे तो उन्होंने उनका इक्कीस बार वध किया जिससे पृथ्वी पर एक भी क्षत्रिय नहीं बच पाया। तत्पश्चात् परशुराम ने अपने पिता के सिर को मृत शरीर से जोड़कर भगवान् को प्रसन्न करने के लिए अनेक यज्ञ किये। इस प्रकार जमदग्नि के शरीर में फिर से प्राण का संचार हुआ और बाद में वे सप्तर्षि मंडल को प्राप्त हुए। जमदग्नि के पुत्र परशुराम आज भी महेन्द्र पर्वत में निवास करते हैं। अगले मन्वन्तर में वे वैदिक ज्ञान के प्रचारक होंगे।

गाधिवंश में अत्यन्त पराक्रमी विश्वामित्र ने जन्म लिया। वह अपनी तपस्या से ब्राह्मण बन गया। उसके १०१ पुत्र हुए जो मधुच्छन्दा नाम से विख्यात थे। हरिश्चन्द्र की यज्ञशाला में अजीगर्त के पुत्र शुन:शेफ की बलि होनी थी, किन्तु प्रजापतियों ने दया करके उसे मुक्त करा दिया। तत्पश्चात् वह गाधिवंश में देवराट के

नाम से विख्यात हुआ। किन्तु विश्वामित्र के पचास ज्येष्ठ पुत्रों ने शुन:शेफ को अपना अग्रज नहीं स्वीकार किया, अतएव विश्वामित्र ने उन्हें म्लेच्छ बनने का शाप दे दिया जो वैदिक सभ्यता के विरोधी थे। तब विश्वामित्र के इक्यावनवें पुत्र तथा उसके अन्य छोटे भाइयों ने शुन:शेफ को अग्रज स्वीकार किया। इस तरह उनके पिता विश्वामित्र ने प्रसन्न होकर उन्हें आशीर्वाद दिया। इस प्रकार देवराट को कौशिक कुल का वंशज मान लिया गया; फलस्वरूप उस वंश के अनेक विभाग हो गये।

श्रीशुक उवाच
पित्रोपशिक्षितो रामस्तथेति कुरुनन्दन ।
संवत्सरं तीर्थयात्रां चरित्वाश्रममाव्रजत् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; पित्रा—अपने पिता द्वारा; उपशिक्षितः—शिक्षा दिये जाने पर; रामः—परशुराम; तथा इति—एवमस्तु; कुरु-नन्दन—हे कुरुवंशी महाराज परीक्षित; संवत्सरम्—एक वर्ष तक; तीर्थ-यात्राम्—सारे तीर्थस्थलों की यात्रा; चरित्वा—सम्पन्न करके; आश्रमम्—अपने आश्रम में; आव्रजत्—लौटा।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे महाराज परीक्षित, हे कुरुवंशी, जब भगवान् परशुराम को उनके पिता ने यह आदेश दिया तो उन्होंने तुरन्त ही यह कहते हुए उसे स्वीकार किया, "ऐसा ही होगा।" वे एक वर्ष तक तीर्थस्थलों की यात्रा करते रहे। तत्पश्चात् वे अपने पिता के आश्रम में लौट आये।

कदाचिद्रेणुका याता गङ्गायां पद्ममालिनम् ।
गन्धर्वराजं क्रीडन्तमप्सरोभिरपश्यत ॥ २ ॥

शब्दार्थ

कदाचित्—एक बार; रेणुका—परशुराम की माता एवं जमदग्नि की पत्नी; याता—गई; गङ्गायाम्—गंगा नदी के तट पर; पद्म-मालिनम्—कमल के फूल की माला से अलंकृत; गन्धर्व-राजम्—गन्धर्वों के राजा; क्रीडन्तम्—विहार करते; अप्सरोभिः—अप्सराओं के साथ; अपश्यत—देखा।

एक बार जब जमदग्नि की पत्नी रेणुका गंगा नदी के तट पर पानी भरने गई तो उन्होंने कमल-फूल की माला से अलंकृत तथा अप्सराओं के साथ गंगा में विहार करते गन्धर्वों के राजा को देखा।

विलोकयन्ती क्रीडन्तमुदकार्थं नदीं गता ।
होमवेलां न सस्मार किञ्चिच्चित्ररथस्पृहा ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

विलोकयन्ती—देखते हुए; क्रीडन्तम्—क्रीड़ा करते हुए; उदक-अर्थम्—कुछ जल लेने के लिए; नदीम्—नदी पर; गता—गई; होम-वेलाम्—होम करने की वेला में; न सस्मार—याद नहीं रही; किञ्चित्—थोड़ा; चित्ररथ—गन्धर्व राज चित्ररथ; स्पृहा—संसर्ग की इच्छा की।

वह गंगा नदी से जल लाने गई थी, किन्तु जब उसने गन्धर्वराज चित्ररथ को अप्सराओं के साथ विहार करते देखा तो वह उसकी ओर उन्मुख सी हुई और यह भूल ही गई कि अग्निहोत्र का समय बीत रहा है।

कालात्ययं तं विलोक्य मुनेः शापविशङ्किता ।
आगत्य कलशं तस्थौ पुरोधाय कृताञ्जलिः ॥ ४॥

शब्दार्थ

काल-अत्ययम्—समय बिताते; तम्—उसको; विलोक्य—देखकर; मुनेः—जमदग्नि के; शाप-विशङ्किता—शाप के भय से; आगत्य—लौटकर; कलशम्—जल के पात्र को; तस्थौ—खड़ी हो गई; पुरोधाय—मुनि के सामने रखकर; कृत-अञ्जलिः—हाथ जोड़कर।

तत्पश्चात् यह समझकर कि यज्ञ करने का समय बीत चुका है, रेणुका अपने पति द्वारा शापित होने से भयभीत हो उठी। अतएव जब वह लौटकर आई तो वह उनके समक्ष जलपात्र रखकर हाथ जोड़कर खड़ी हो गई।

व्यभिचारं मुनिर्ज्ञात्वा पत्न्याः प्रकुपितोऽब्रवीत् ।
घ्नतैनां पुत्रकाः पापामित्युक्तास्ते न चक्रिरे ॥ ५॥

शब्दार्थ

व्यभिचारम्—व्यभिचार; मुनिः—जमदग्नि मुनि ने; ज्ञात्वा—जानकर; पत्न्याः—अपनी पत्नी का; प्रकुपितः—क्रुद्ध होकर; अब्रवीत्—बोला; घ्नत—मार डालो; एनाम्—इसको; पुत्रकाः—मेरे बेटो; पापाम्—पापी स्त्री को; इति उक्ताः—ऐसा कहे जाने पर; ते—उन पुत्रों ने; न—नहीं; चक्रिरे—आज्ञा का पालन किया।

मुनि जमदग्नि अपनी पत्नी के मन के पाप को समझ गये। अतएव वे अत्यन्त कुपित हुए और अपने बेटों से बोले, ''पुत्रो, इस पापिनी स्त्री को मार डालो।'' लेकिन बेटों ने उनकी आज्ञा का पालन नहीं किया।

रामः सञ्चोदितः पित्रा भ्रातृन्मात्रा सहावधीत् ।
प्रभावज्ञो मुनेः सम्यक्समाधेस्तपसश्च सः ॥ ६॥

शब्दार्थ

रामः—परशुराम ने; सञ्चोदितः—(अपनी माता तथा भाइयों को मारने के लिए) प्रोत्साहित किये जाने पर; पित्रा—अपने पिता द्वारा; भ्रातॄन्—सारे भाइयों को; मात्रा सह—माता समेत; अवधीत्—तुरन्त मारा डाला; प्रभाव-ज्ञः—पराक्रम से अवगत; मुनेः—मुनि के; सम्यक्—पूर्णतया; समाधेः—ध्यान से; तपसः—तपस्या से; च—भी; सः—वह।

तब जमदग्नि ने अपने सबसे छोटे पुत्र परशुराम को अवज्ञाकारी भाइयों तथा मानसिक रूप से पाप करने वाली उसकी माता को मार डालने की आज्ञा दी। परशुराम ने तुरन्त ही अपनी माता तथा भाइयों का वध कर दिया क्योंकि उन्हें ध्यान तथा तपस्या द्वारा अर्जित अपने पिता के पराक्रम का ज्ञान था।

तात्पर्य : *प्रभावज्ञः* शब्द महत्त्वपूर्ण है। परशुराम को अपने पिता के पराक्रम का ज्ञान था अतएव उन्होंने अपने पिता की आज्ञा का पालन करने की हामी भर दी। उन्होंने सोचा कि यदि वे उनकी आज्ञा नहीं मानते तो वे शाप दे देंगे, किन्तु आज्ञा पालने पर वे प्रसन्न हो जायेंगे और उनके प्रसन्न होने पर परशुराम अपनी माता तथा भाइयों को वर माँग कर पुनः जीवन दिला सकेंगे। उन्हें इसका विश्वास था इसीलिए उन्होंने अपनी माता तथा भाइयों का वध करने की हामी भर दी।

वरेण च्छन्दयामास प्रीतः सत्यवतीसुतः ।
वव्रे हतानां रामोऽपि जीवितं चास्मृतिं वधे ॥ ७॥

शब्दार्थ

वरेण च्छन्दयाम् आस—इच्छानुसार वर माँगने के लिए कहा; प्रीतः—उससे प्रसन्न होकर; सत्यवती-सुतः—सत्यवती-पुत्र जमदग्नि ने; वव्रे—कहा; हतानाम्—मेरी मृत माता तथा भाई; रामः—परशुराम; अपि—भी; जीवितम्—उन्हें जीवित कर दें; च—भी; अस्मृतिम्—कोई स्मरण नहीं; वधे—मेरे द्वारा मारे हुओं का।

सत्यवती-पुत्र जमदग्नि परशुराम से अत्यधिक प्रसन्न हुए और उनसे इच्छानुसार वर माँगने के लिए कहा। परशुराम ने कहा, ''मेरी माता तथा मेरे भाइयों को फिर से जीवित हो जाने दें और उन्हें यह स्मरण न रहे कि मैंने उन्हें मारा था। मैं आपसे इतना ही वर माँगता हूँ।''

उत्तस्थुस्ते कुशलिनो निद्रापाय इवाञ्जसा ।
पितुर्विद्वांस्तपोवीर्यं रामश्चक्रे सुहृद्वधम् ॥ ८॥

शब्दार्थ

उत्तस्थुः—तुरन्त उठ खड़े हुए; ते—परशुराम की माता तथा भाई; कुशलिनः—कुशलपूर्वक; निद्रा-अपाये—गहरी नींद के अन्त में; इव—सदृश; अञ्जसा—तुरन्त; पितुः—अपने पिता का; विद्वान्—अवगत; तपः—तपस्या; वीर्यम्—बल; रामः—परशुराम ने; चक्रे—सम्पन्न किया; सुहृत्-वधम्—अपने परिजनों का वध।

तत्पश्चात् जमदग्नि के वर से भगवान् परशुराम की माता तथा उनके सारे भाई तुरन्त जीवित हो

उठे और वे सभी अत्यन्त प्रसन्न हुए मानो गहरी नींद से जगे हों। परशुराम ने अपने पिता के आदेश पर अपने परिजनों का वध कर दिया था क्योंकि वे अपने पिता के बल, तपस्या तथा विद्वत्ता से परिचित थे।

येऽर्जुनस्य सुता राजन्स्मरन्तः स्वपितुर्वधम् ।
रामवीर्यपराभूता लेभिरे शर्म न क्वचित् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

ये—जो; अर्जुनस्य—कार्तवीर्यार्जुन के; सुताः—पुत्र; राजन्—हे महाराज परीक्षित; स्मरन्तः—सदैव स्मरण करते हुए; स्व-पितुः वधम्—(परशुराम द्वारा) अपने पिता के वध; राम-वीर्य-पराभूताः—भगवान् परशुराम की श्रेष्ठ शक्ति द्वारा पराजित; लेभिरे—प्राप्त किया; शर्म—सुख; न—नहीं; क्वचित्—कभी।

हे राजा परीक्षित, परशुराम की श्रेष्ठ शक्ति द्वारा पराजित कार्तवीर्यार्जुन के पुत्रों को कभी सुख नहीं मिल पाया क्योंकि उन्हें अपने पिता का वध सदैव याद आता रहा।

तात्पर्य : जमदग्नि सचमुच अपनी तपस्या के कारण अत्यन्त शक्तिशाली थे, किन्तु अपनी पत्नी रेणुका के थोड़े से अपराध के लिए उन्होंने उसके वध किये जाने का आदेश दे डाला। यह निश्चय ही पापपूर्ण कृत्य था; अतएव कार्तवीर्यार्जुन के पुत्रों ने जमदग्नि को मार डाला, जैसा कि यहाँ पर बतलाया गया है। भगवान् परशुराम को भी कार्तवीर्यार्जुन के वध का थोड़ा पाप लगा, किन्तु यह इतना बड़ा पाप न था। अतएव चाहे कोई कार्तवीर्यार्जुन हो, भगवान् परशुराम हो, जमदग्नि हो या अन्य कोई, उसे सावधानी तथा बुद्धिमत्ता से कर्म करना चाहिए अन्यथा उसे पापकृत्यों का फल भुगतना पड़ता है। वैदिक साहित्य से हमें यही शिक्षा मिलती है।

एकदाश्रमतो रामे सभ्रातरि वनं गते ।
वैरं सिषाधयिषवो लब्धच्छिद्रा उपागमन् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

एकदा—एक बार; आश्रमतः—जमदग्नि के आश्रम से; रामे—जब परशुराम; स-भ्रातरि—अपने भाइयों के साथ; वनम्—वन में; गते—गये थे; वैरम्—पुरानी दुश्मनी; सिषाधयिषवः—पूरा करने के लिए; लब्ध-छिद्राः—अवसर का लाभ उठाकर; उपागमन्—आश्रम के निकट आये।

एकबार जब परशुराम वसुमान तथा अन्य भाइयों के साथ आश्रम से जंगल गये हुए थे तो कार्तवीर्यार्जुन के पुत्र अवसर का लाभ उठा कर अपनी शत्रुता का बदला लेने के उद्देश्य से जमदग्नि

के आश्रम में गये।

दृष्ट्वाग्न्यागार आसीनमावेशितधियं मुनिम् ।
भगवत्युत्तमश्लोके जघ्नुस्ते पापनिश्चयाः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देखकर; अग्नि-आगारे—उस स्थान पर जहाँ अग्नियज्ञ सम्पन्न किया जाता था; आसीनम्—बैठे हुए; आवेशित—पूर्णतया मग्न; धियम्—बुद्धि से; मुनिम्—मुनि जमदग्नि को; भगवति—भगवान् में; उत्तम-श्लोके—उत्तम श्लोकों से प्रशंसित; जघ्नुः—मार डाला; ते—कार्तवीर्यार्जुन के पुत्रों ने; पाप-निश्चयाः—महान् पापकृत्य करने के लिए कृतसंकल्प।

कार्तवीर्यार्जुन के पुत्र पापकृत्य करने के लिए कृतसंकल्प थे। अतएव जब उन्होंने जमदग्नि को अग्नि के निकट यज्ञ करते एवं उत्तमश्लोक भगवान् का ध्यान करते देखा तो उन्होंने इस अवसर का लाभ उठाकर उसे मार डाला।

याच्यमानाः कृपणया राममात्रातिदारुणाः ।
प्रसह्य शिर उत्कृत्य निन्युस्ते क्षत्रबन्धवः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

याच्यमानाः—अपने पति के जीवन की याचना करती हुई; कृपणया—बेचारी असुरक्षित स्त्री द्वारा; राम-मात्रा—भगवान् परशुराम की माता द्वारा; अति-दारुणाः—अत्यन्त क्रूर; प्रसह्य—बलपूर्वक; शिरः—जमदग्नि का सिर; उत्कृत्य—विलग करके; निन्युः—ले गये; ते—कार्तवीर्यार्जुन के पुत्र; क्षत्र-बन्धवः—क्षत्रिय नहीं अपितु क्षत्रियों में सबसे नीच।

परशुराम की माता तथा जमदग्नि की पत्नी रेणुका ने अपने पति के जीवन की भीख माँगी, किन्तु कार्तवीर्यार्जुन के पुत्र क्षत्रिय गुणों से रहित होने के कारण इतने क्रूर निकले कि उसकी याचना के बावजूद उन्होंने उसका सिर काट लिया और उसे अपने साथ लेते गये।

रेणुका दुःखशोकार्ता निघ्नन्त्यात्मानमात्मना ।
राम रामेति तातेति विचुक्रोशोच्चकैः सती ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

रेणुका—जमदग्नि-पत्नी रेणुका; दुःख-शोक-अर्ता—(अपने पति की मृत्यु के) शोक से अत्यन्त दुखी; निघ्नन्ती—पीटते हुए; आत्मानम्—अपने शरीर को; आत्मना—स्वयं; राम—हे परशुराम; राम—हे परशुराम; इति—इस प्रकार; तात—हे पुत्र; इति—इस प्रकार; विचुक्रोश—रोने लगी; उच्चकैः—जोर जोर से; सती—वह सती स्त्री।

अपने पति की मृत्यु के कारण शोक से विलाप करती सती रेणुका अपने ही हाथों से अपने शरीर को पीट रही थी और जोर जोर से चिल्ला रही थी, "हे राम, मेरे पुत्र राम।"

तदुपश्रुत्य दूरस्था हा रामेत्यार्तवत्स्वनम् ।
त्वरयाश्रममासाद्य ददृशुः पितरं हतम् ॥ १४॥

शब्दार्थ

तत्—वह क्रन्दन; उपश्रुत्य—सुनकर; दूर-स्थाः—दूरी पर स्थित; हा राम—हे राम, हे राम; इति—इस प्रकार; आर्त-वत्—अत्यन्त दुखी; स्वनम्—शब्द; त्वरया—तेजी से; आश्रमम्—जमदग्नि के आश्रम में; आसाद्य—आकर; ददृशुः—देखा; पितरम्—अपने पिता को; हतम्—मारा हुआ।

यद्यपि परशुराम सहित जमदग्नि के सारे पुत्र घर से बहुत दूरी पर थे, किन्तु ज्योंही उन्होंने रेणुका की "हे राम! हे पुत्र!" की तेज पुकार सुनी, वे तुरन्त आश्रम लौट आये जहाँ उन्होंने अपने पिता को मरा हुआ पाया।

ते दुःखरोषामर्षार्तिशोकवेगविमोहिताः ।
हा तात साधो धर्मिष्ठ त्यक्त्वास्मान्स्वर्गतो भवान् ॥ १५॥

शब्दार्थ

ते—वे, जमदग्नि के सारे पुत्र; दुःख—दुख; रोष—क्रोध; अमर्ष—अपमान; आर्ति—सन्ताप; शोक—तथा शोक का; वेग—वेग के साथ; विमोहिताः—मोहग्रस्त; हा तात—पिता; साधो—साधु; धर्मिष्ठ—अत्यन्त धर्मात्मा; त्यक्त्वा—छोड़कर; अस्मान्—हमको; स्वः-गतः—स्वर्ग चले गये; भवान्—आप।

शोक, क्रोध, अपमान, सन्ताप तथा शोक से ग्रस्त जमदग्नि के सारे पुत्र चिल्ला पड़े, "हे साधु एवं धर्मात्मा पिता, आप हमें छोड़कर स्वर्ग लोक को चले गये हैं।"

विलप्यैवं पितुर्देहं निधाय भ्रातृषु स्वयम् ।
प्रगृह्य परशुं रामः क्षत्रान्ताय मनो दधे ॥ १६॥

शब्दार्थ

विलप्य—विलाप करते हुए; एवम्—इस प्रकार; पितुः—अपने पिता के; देहम्—शरीर को; निधाय—सौंपकर; भ्रातृषु—भाइयों को; स्वयम्—खुद; प्रगृह्य—लेकर; परशुम्—फरसा; रामः—भगवान् परशुराम; क्षत्र-अन्ताय—सारे क्षत्रियों का अन्त करने के लिए; मनः—मन; दधे—निश्चय कर लिया।

इस प्रकार विलाप करते हुए परशुराम ने अपने पिता का शव अपने भाइयों को सौंप दिया और स्वयं पृथ्वी तल से सारे क्षत्रियों का अन्त करने का निश्चय करते हुए अपना फरसा ग्रहण किया।

गत्वा माहिष्मतीं रामो ब्रह्मघ्नविहतश्रियम् ।
तेषां स शीर्षभी राजन्मध्ये चक्रे महागिरिम् ॥ १७॥

शब्दार्थ

गत्वा—जाकर; माहिष्मतीम्—माहिष्मती में; रामः—परशुराम; ब्रह्म-घ्न—ब्राह्मण का वध करने वाले; विहत-श्रियम्—सारे ऐश्वर्य से विहीन, विनष्ट; तेषाम्—उन सबों का (कार्तवीर्यार्जुन के पुत्रों तथा अन्य क्षत्रियों का); सः—परशुराम ने; शीर्षभिः—शरीर से छिन्न सिरों से; राजन्—हे महाराज परीक्षित; मध्ये—माहिष्मती के बीचोंबीच; चक्रे—बना दिया; महा-गिरिम्—विशाल पर्वत।

हे राजन, तब परशुराम उस माहिष्मती नगरी में गये जो एक ब्राह्मण के पापपूर्ण वध के कारण पहले ही विनष्ट हो चुकी थी। उन्होंने उस नगरी के बीचोंबीच कार्तवीर्यार्जुन के पुत्रों के शरीरों से छिन्न किये गये सिरों का एक पर्वत बना दिया।

तद्रक्तेन नदीं घोरामब्रह्मण्यभयावहाम् ।
हेतुं कृत्वा पितृवधं क्षत्रेऽमङ्गलकारिणि ॥ १८ ॥
त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियां प्रभुः ।
समन्तपञ्चके चक्रे शोणितोदान्ह्रदान्नव ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

तत्-रक्तेन—कार्तवीर्यार्जुन के पुत्रों के रक्त से; नदीम्—नदी को; घोराम्—भयानक; अब्रह्मण्य-भय-आवहाम्—उन राजाओं को भय दिखाती हुई जिन्हें ब्राह्मण संस्कृति के लिए कोई सम्मान नहीं है; हेतुम्—कारण; कृत्वा—स्वीकार करके; पितृ-वधम्—पिता का वध; क्षत्रे—जब सम्पूर्ण राज वर्ग; अमङ्गल-कारिणि—अत्यन्त अशुभ ढंग से कार्य कर रहा था; त्रिः-सप्त-कृत्वः—इक्कीस बार; पृथिवीम्—पृथ्वी को; कृत्वा—करके; निःक्षत्रियाम्—क्षत्रियविहीन; प्रभुः—भगवान् परशुराम; समन्त-पञ्चके—समन्त पञ्चक नामक स्थान पर; चक्रे—बनाया; शोणित-उदान्—जल के बजाय रक्त से पूरित; ह्रदान्—झीलें; नव—नौ।

इन पुत्रों के रक्त से भगवान् परशुराम ने एक वीभत्स नदी तैयार कर दी जिससे उन राजाओं को बड़ा खतरा उत्पन्न हो गया जिनमें ब्राह्मण संस्कृति के प्रति आदरभाव नहीं था। चूँकि सरकार के अधिकारी लोग अर्थात् क्षत्रिय पापकर्म कर रहे थे अतएव परशुराम ने अपने पिता की हत्या का बदला लेने के बहाने सारे क्षत्रियों का इक्कीस बार पृथ्वी से सफाया कर दिया। निस्सन्देह, उन्होंने समन्तपञ्चक नामक स्थान पर उन सबों के रक्त से नौ झीलें उत्पन्न कर दीं।

तात्पर्य : परशुराम भगवान् हैं और उनका शाश्वत ध्येय है—*परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्*—भक्तों की रक्षा और दुष्टों का विनाश करना। भगवान् के अवतार लेने के कार्यों में से एक है सभी पापी लोगों का वध करना। भगवान् परशुराम ने सारे क्षत्रियों का क्रमशः इक्कीस बार वध किया क्योंकि वे ब्राह्मण संस्कृति के पालक नहीं थे। यह तो बहाना था कि क्षत्रियों ने उनके पिता का वध कर डाला था। वास्तविकता तो यह थी कि राजन्य वर्ग या क्षत्रिय दूषित हो चुके थे और उनकी स्थिति अशुभ थी। शास्त्र में, विशेष रूप से *भगवद्गीता* में ब्राह्मण संस्कृति के लिए आदेश है (*चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टम् गुणकर्मविभागशः*)। प्रकृति के नियमानुसार चाहे वह परशुराम का युग हो या वर्तमान युग, यदि सरकार

निकम्मी तथा पापमय हो जाती है और वह ब्राह्मण संस्कृति की परवाह नहीं करती तो परशुराम के समान ईश्वर का अवतार अवश्यम्भावी है जो अग्नि, अकाल, बीमारी या अन्य विपदा से प्रलय उत्पन्न कर देगा। जब भी सरकार ईश्वर की सर्वश्रेष्ठता का अनादर करती है और *वर्णाश्रम धर्म* की रक्षा नहीं करती तो उसे उसी प्रकार की तबाही सहनी पड़ेगी जैसी कि पहले परशुराम द्वारा उत्पन्न की जा चुकी है।

पितुः कायेन सन्धाय शिर आदाय बर्हिषि ।
सर्वदेवमयं देवमात्मानमयजन्मखैः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

पितुः—पिता के; कायेन—शरीर के साथ; सन्धाय—जोड़कर; शिरः—सिर को; आदाय—रखकर; बर्हिषि—कुशा के ऊपर; सर्व-देव-मयम्—समस्त देवताओं के स्वामी, सर्वव्यापी भगवान्; देवम्—भगवान् वासुदेव को; आत्मानम्—जो सर्वत्र परमात्मा रूप में विद्यमान हैं; अयजत्—पूजा की; मखैः—यज्ञों के द्वारा।

तत्पश्चात् परशुराम ने अपने पिता के सिर को मृत शरीर से जोड़ दिया और पूरे शरीर एवं सिर को कुशों के ऊपर रख दिया। वे यज्ञों के द्वारा भगवान् वासुदेव की पूजा करने लगे जो समस्त देवताओं तथा हर जीव के सर्वव्यापी परमात्मा हैं।

ददौ प्राचीं दिशं होत्रे ब्रह्मणे दक्षिणां दिशम् ।
अध्वर्यवे प्रतीचीं वै उद्गात्रे उत्तरां दिशम् ॥ २१ ॥
अन्येभ्योऽवान्तरदिशः कश्यपाय च मध्यतः ।
आर्यावर्तमुपद्रष्ट्रे सदस्येभ्यस्ततः परम् ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

ददौ—दान में दिया; प्राचीम्—पूर्वी; दिशम्—दिशा; होत्रे—होता को; ब्रह्मणे—ब्रह्मा को; दक्षिणाम्—दक्षिणी; दिशम्—दिशा; अध्वर्यवे—अध्वर्यु को; प्रतीचीम्—पश्चिमी दिशा; वै—निस्सन्देह; उद्गात्रे—उद्गाता को; उत्तराम्—उत्तरी; दिशम्—दिशा; अन्येभ्यः—अन्यों को; अवान्तर-दिशः—विभिन्न कोने (उत्तर पूर्व, दक्षिण पूर्व, उत्तर पश्चिम तथा दक्षिण पश्चिम); कश्यपाय—कश्यप मुनि को; च—भी; मध्यतः—बीच का भाग; आर्यावर्तम्—आर्यावर्त नाम से विख्यात; उपद्रष्ट्रे—उपद्रष्टा को, मंत्र को सुनकर उस पर निगरानी रखने वाले पुरोहित को; सदस्येभ्यः—सदस्य या सहयोगी पुरोहितों को; ततः परम्—जो भी शेष था।

यज्ञ-समाप्ति पर परशुराम ने पूर्वी दिशा होता को, दक्षिणी दिशा ब्रह्मा को, पश्चिमी दिशा अध्वर्यु को, उत्तरी दिशा उद्गाता को एवं चारों कोने—उत्तर पूर्व, दक्षिण पूर्व, उत्तर पश्चिम तथा दक्षिण पश्चिम—अन्य पुरोहितों को दान में दे दिये। उन्होंने मध्य भाग कश्यप को तथा आर्यावर्त उपद्रष्टा को दे दिया। शेष भाग सदस्यों अर्थात् सहयोगी पुरोहितों में बाँट दिया।

तात्पर्य : भारत में हिमालय पर्वत तथा विन्ध्याचल पर्वत के मध्य का भूभाग आर्यावर्त कहलाता है।

ततश्चावभृथस्नानविधूताशेषकिल्बिषः ।
सरस्वत्यां महानद्यां रेजे व्यब्भ्र इवांशुमान् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; च—भी; अवभृथ-स्नान—यज्ञ सम्पन्न करने के बाद स्नान करके; विधूत—धो डाला; अशेष—असीम; किल्बिषः—पापकर्मों के फल; सरस्वत्याम्—सरस्वती नदी के तट पर; महा-नद्याम्—भारत की महान् नदी; रेजे—परशुराम प्रकट हुए; व्यब्भ्रः—निरभ्र, बादलों से रहित; इव अंशुमान्—सूर्यप्रकाश।.

तत्पश्चात् भगवान् परशुराम ने यज्ञ-अनुष्ठान पूरा करके अवभृथ स्नान किया। महान् नदी सरस्वती के तट पर खड़े समस्त पापों से विमुक्त परशुराम जी बादलरहित आकाश में सूर्य के समान लग रहे थे।

तात्पर्य : जैसा कि *भगवद्गीता* (३.९) में कहा गया है—*यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः*—विष्णु के लिए यज्ञ रूप में कर्म करना होता है अन्यथा कर्म मनुष्य को इस भौतिक जगत से बाँध देता है। *कर्मबन्धनः* एक के बाद दूसरा भौतिक शरीर ग्रहण करते रहने का द्योतक है। यह जन्म-मृत्यु का चक्र ही जीवन की सारी समस्या है। इसीलिए सलाह दी जाती है कि विष्णु को तुष्ट करने के लिए यज्ञ करने का कर्म किया जाय। यद्यपि परशुराम भगवान् के अवतार थे, किन्तु अपने पापकर्मों के लिए उन्हें प्रायश्चित्त करना पड़ा। इस भौतिक जगत में कोई कितना ही जागरूक क्यों न रहे, कुछ न कुछ पापकर्म करता ही है, भले ही वह पाप न करना चाहता हो। उदाहरणार्थ, सड़क पर चलते हुए उसके पाँव के नीचे अनेक चीटियाँ तथा कीड़े कुचले जा सकते हैं और अनजाने ही अनेक जीवों की हत्या हो सकती है। इसीलिए *पञ्चयज्ञ* का वैदिक सिद्धान्त अनिवार्य है। किन्तु इस कलियुग में लोगों को बहुत बड़ी छूट मिली हुई है। *यज्ञै संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः*—हम कृष्ण के प्रच्छन्न अवतार भगवान् चैतन्य की पूजा कर सकते हैं। *कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णम्*—यद्यपि वे साक्षात् कृष्ण हैं, किन्तु वे सदैव हरे कृष्ण कीर्तन करते रहते हैं और कृष्णभावनामृत का प्रचार करते हैं। मनुष्य को सलाह दी जाती है कि वह *संकीर्तन यज्ञ* द्वारा इस अवतार की पूजा करे। संकीर्तन यज्ञ सम्पन्न करना मानव समाज के लिए विशेष छूट है जिससे लोगों को ज्ञात या अज्ञात पापकर्मों से प्रभावित होने से बचाया जा सकता है। हम अनन्त पापों से घिरे हैं अतएव हमारे लिए अनिवार्य है कि हम कृष्णभावनामृत स्वीकार करके हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन करें।

स्वदेहं जमदग्निस्तु लब्ध्वा संज्ञानलक्षणम् ।
ऋषीणां मण्डले सोऽभूत्सप्तमो रामपूजितः ॥ २४॥

शब्दार्थ

स्व-देहम्—अपना शरीर; जमदग्निः—मुनि जमदग्नि; तु—लेकिन; लब्ध्वा—फिर से पाकर; संज्ञान-लक्षणम्—जीवन, ज्ञान तथा स्मृति के सारे लक्षणों से युक्त; ऋषीणाम्—ऋषियों के; मण्डले—सात नक्षत्रों के समूह में; सः—वह, जमदग्नि; अभूत्—बन गया; सप्तमः—सातवाँ; राम-पूजितः—परशुराम द्वारा पूजित होकर।

इस प्रकार परशुराम द्वारा पूजा किये जाने पर जमदग्नि को अपनी पूर्ण स्मृति सहित पुनः जीवन प्राप्त हो गया और वे सात नक्षत्रों के समूह में सातवें ऋषि बन गये।

तात्पर्य : ध्रुवतारा के चारों ओर चक्कर लगाने वाले सात नक्षत्र *सप्तर्षि मण्डल* कहलाते हैं। हमारे लोक के सबसे ऊपरी भाग में स्थित इन सातों नक्षत्रों में सात ऋषि निवास करते हैं, जिनके नाम हैं कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि तथा भरद्वाज। ये सातों नक्षत्र रात में रोज दिखते हैं और चौबीस घण्टों में ध्रुवतारा की एक परिक्रमा कर लेते हैं। इन सात नक्षत्रों के साथ अन्य नक्षत्र भी पूर्व से पश्चिम की ओर चक्कर लगाते हैं। ब्रह्माण्ड का ऊपरी भाग उत्तर कहलाता है और निचला भाग दक्षिण। हम लोग अपने सामान्य व्यवहार में यहाँ तक कि मानचित्र का अध्ययन करते समय भी ऊपरी भाग को उत्तर मानते हैं।

जामदग्न्योऽपि भगवान्रामः कमललोचनः ।
आगामिन्यन्तरे राजन्वर्तयिष्यति वै बृहत् ॥ २५॥

शब्दार्थ

जामदग्न्यः—जमदग्नि का पुत्र; अपि—भी; भगवान्—भगवान्; रामः—परशुराम; कमल-लोचनः—कमल की पँखड़ियों जैसे नेत्र वाला; आगामिनि—आगमन; अन्तरे—मन्वन्तर में; राजन्—हे राजा परीक्षित; वर्तयिष्यति—स्थापित करेगा; वै—निस्सन्देह; बृहत्—वैदिक ज्ञान।

हे परीक्षित, अगले मन्वन्तर में जमदग्निपुत्र कमलनेत्र भगवान् परशुराम वैदिक ज्ञान के महान् संस्थापक होंगे। दूसरे शब्दों में, वे सप्तर्षियों में से एक होंगे।

आस्तेऽद्यापि महेन्द्राद्रौ न्यस्तदण्डः प्रशान्तधीः ।
उपगीयमानचरितः सिद्धगन्धर्वचारणैः ॥ २६॥

शब्दार्थ

आस्ते—विद्यमान है; अद्य अपि—अब भी; महेन्द्र-अद्रौ—महेन्द्र नामक पहाड़ी प्रदेश में; न्यस्त-दण्डः—क्षत्रिय के हथियार (बाण, धनुष तथा फरसा) त्याग कर; प्रशान्त—ब्राह्मण के समान पूरी तरह तुष्ट; धीः—बुद्धि; उपगीयमान-चरितः—अपने उच्च चरित्र तथा कार्यों के लिए पूजित एवं वन्दित; सिद्ध-गन्धर्व-चारणैः—सिद्धों, गन्धर्वों तथा चारणों के द्वारा।

आज भी भगवान् परशुराम महेन्द्र नामक पहाड़ी प्रदेश में बुद्धिमान ब्राह्मण के रूप में रह रहे हैं।

पूर्ण तुष्ट एवं क्षत्रिय के सारे हथियारों को त्याग कर वे अपने उच्च चरित्र तथा कार्यों के लिए सदैव सिद्धों, गन्धर्वों एवं चारणों के द्वारा पूजित, वन्दित एवं प्रशंसित हैं।

एवं भृगुषु विश्वात्मा भगवान्हरिरीश्वरः ।
अवतीर्य परं भारं भुवोऽहन्बहुशो नृपान् ॥ २७॥

शब्दार्थ

एवम्—इस तरह; भृगुषु—भृगुवंश में; विश्व-आत्मा—परमात्मा; भगवान्—भगवान्; हरिः—हरि; ईश्वरः—परम नियन्ता; अवतीर्य—अवतार लेकर; परम्—महान; भारम्—भार को; भुवः—पृथ्वी के; अहन्—मारा; बहुशः—अनेक बार; नृपान्—राजाओं को।

इस तरह परमात्मा भगवान् हरि तथा ईश्वर ने भृगुवंश में अवतार लिया और अवाञ्छित राजाओं को अनेक बार मारकर उनके भार से पृथ्वी को उबारा।

गाधेरभून्महातेजाः समिद्ध इव पावकः ।
तपसा क्षात्रमुत्सृज्य यो लेभे ब्रह्मवर्चसम् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

गाधेः—महाराज गाधि से; अभूत्—उत्पन्न हुआ; महा-तेजाः—अत्यन्त तेजस्वी; समिद्धः—प्रज्ज्वलित; इव—सदृश; पावकः—अग्नि; तपसा—तपस्या से; क्षात्रम्—क्षत्रिय पद; उत्सृज्य—त्याग कर; यः—जो (विश्वामित्र); लेभे—प्राप्त किया; ब्रह्म-वर्चसम्—ब्राह्मण का गुण।

महाराज गाधि का पुत्र विश्वामित्र अग्नि की लपटों के समान शक्तिशाली था; उसने तपस्या द्वारा क्षत्रिय पद से तेजस्वी ब्राह्मण का पद प्राप्त किया।

तात्पर्य : परशुराम का वृत्तान्त बताने के बाद शुकदेव गोस्वामी विश्वामित्र की कथा प्रारम्भ करते हैं। परशुराम के इतिहास से पता चलता है कि यद्यपि वे ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे, किन्तु परिस्थितिवश उन्हें क्षत्रिय के रूप में कार्य करना पड़ा। क्षत्रिय का कार्य पूरा कर लेने के बाद वे पुन: ब्राह्मण बन गये और महेन्द्र पर्वत लौट आये। इसी प्रकार हम देख सकते हैं कि यद्यपि विश्वामित्र क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुए थे, किन्तु तपस्या के द्वारा उन्होंने ब्राह्मण पद प्राप्त किया था। इन इतिहासों से शास्त्रों के इन कथनों की पुष्टि होती है कि वांछित गुण अर्जित करके ब्राह्मण क्षत्रिय बन सकता है, क्षत्रिय ब्राह्मण या वैश्य बन सकता है और वैश्य ब्राह्मण बन सकता है। किसी का पद उसके जन्म पर निर्भर नहीं करता। *श्रीमद्भागवत* में (७.११.३५) नारद मुनि ने पुष्टि की है—

यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम्।

यदन्यत्रापि दृश्येत तत् तेनैव विनिर्दिशेत् ॥

"यदि किसी में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र के लक्षण दिखें तो भले ही वह अन्य जाति में क्यों न पैदा हुआ हो, उसे उन लक्षणों के अनुसार ही स्वीकार करना चाहिए।" यह जानने के लिए कि कौन ब्राह्मण है और कौन क्षत्रिय है, मनुष्य के गुण तथा कर्म पर विचार करना चाहिए। यदि सारे अयोग्य शूद्र तथाकथित ब्राह्मण तथा क्षत्रिय बन जायँ तो सामाजिक व्यवस्था बनाये रखना असम्भव हो जाय। इस तरह अनेक त्रुटियाँ आ जायेंगी और मानव समाज पशु समाज बन जायेगा जिससे सारे संसार में नारकीय स्थिति उत्पन्न हो जायेगी।

विश्वामित्रस्य चैवासन्पुत्रा एकशतं नृप ।
मध्यमस्तु मधुच्छन्दा मधुच्छन्दस एव ते ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

विश्वामित्रस्य—विश्वामित्र के; च—भी; एव—निस्सन्देह; आसन्—थे; पुत्राः—पुत्र; एक-शतम्—एक सौ एक, १०१; नृप—हे राजा परीक्षित; मध्यमः—बीच का; तु—निस्सन्देह; मधुच्छन्दाः—मधुच्छन्दा नामक; मधुच्छन्दसः—मधुच्छन्दा; एव—निस्सन्देह; ते—वे सभी।

हे राजा परीक्षित, विश्वामित्र के १०१ पुत्र थे जिनमें से बीच के पुत्र का नाम मधुच्छन्दा था। उसके कारण अन्य सारे पुत्र मधुच्छन्दा नाम से विख्यात हुए।

तात्पर्य : इस प्रसंग में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर वेदों का यह कथन उद्धृत करते हैं—*तस्य ह विश्वामित्रस्यैकशतं पुत्राः आसुः पञ्चाशदेव ज्यायांसो मधुच्छन्दसः पञ्चाशत् कनीयांसः*—विश्वामित्र के एक सौ एक पुत्र थे। इनमें पचास मधुच्छन्दा से बड़े थे और पचास छोटे थे।

पुत्रं कृत्वा शुनःशेफं देवरातं च भार्गवम् ।
आजीगर्तं सुतानाह ज्येष्ठ एष प्रकल्प्यताम् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

पुत्रम्—पुत्र; कृत्वा—स्वीकार करके; शुनःशेफम्—शुनःशेफ को; देवरातम्—देवरात, जिसके प्राणों की रक्षा देवताओं ने की थी; च—भी; भार्गवम्—भृगुवंशी; आजीगर्तम्—अजीगर्त का पुत्र; सुतान्—अपने पुत्रों को; आह—आदेश दिया; ज्येष्ठः—सबसे बड़ा; एषः—शुनःशेफ; प्रकल्प्यताम्—इसी रूप में स्वीकार किया।

विश्वामित्र ने अजीगर्त के पुत्र शुनःशेफ को अपने पुत्र रूप में स्वीकार कर लिया जो भृगुवंश में उत्पन्न हुआ था और देवरात नाम से भी विख्यात था। विश्वामित्र ने अपने अन्य पुत्रों को आज्ञा दी कि

वे शुन:शेफ को अपना सबसे बड़ा भाई मान लें।

यो वै हरिश्चन्द्रमखे विक्रीतः पुरुषः पशुः ।
स्तुत्वा देवान्प्रजेशादीन्मुमुचे पाशबन्धनात् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

यः—जो (शुन:शेफ); वै—निस्सन्देह; हरिश्चन्द्र-मखे—राजा हरिश्चन्द्र द्वारा सम्पन्न यज्ञ में; विक्रीतः—बेचा गया; पुरुषः—व्यक्ति; पशुः—बलिपशु; स्तुत्वा—स्तुति करके; देवान्—देवताओं को; प्रजा-ईश-आदीन्—ब्रह्मा इत्यादि; मुमुचे—छोड़ दिया गया; पाश-बन्धनात्—पशु की भाँति रस्सी के बन्धन से।

शुन:शेफ के पिता ने शुन:शेफ को राजा हरिश्चन्द्र के यज्ञ में बलिपशु के रूप में बलि दिये जाने के लिए बेच दिया। जब शुन:शेफ को यज्ञशाला में लाया गया तो उसने देवताओं से प्रार्थना की कि वे उसे छुड़ा दें और वह उनकी कृपा से छुड़ा दिया गया।

तात्पर्य : शुन:शेफ का वर्णन इस प्रकार है : हरिश्चन्द्र को अपने पुत्र रोहित की बलि देनी थी, किन्तु रोहित ने अपने प्राण की रक्षा करने के लिए शुन:शेफ के पिता से शुन:शेफ को यज्ञ में बलि दिए जाने के लिए खरीद लिया था। शुन:शेफ इसलिए हरिश्चन्द्र महाराज को बेच दिया गया क्योंकि वह मझला बेटा था। ऐसा प्रतीत होता है कि यज्ञ में मनुष्य की पशु रूप में बलि की प्रथा बहुत काल से चली आ रही थी।

यो रातो देवयजने देवैर्गाधिषु तापसः ।
देवरात इति ख्यातः शुन:शेफस्तु भार्गवः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

यः—जो; रातः—रक्षित; देव-यजने—देवताओं के पूजा स्थल में; देवैः—उन्हीं देवताओं द्वारा; गाधिषु—गाधि कुल में; तापसः—आध्यात्मिक जीवन में बढ़ा-चढ़ा; देव-रातः—देवताओं द्वारा रक्षित; इति—इस प्रकार; ख्यातः—प्रसिद्ध; शुन:शेफः तु—तथा शुन:शेफ; भार्गवः—भृगुवंश में।

यद्यपि शुन:शेफ भार्गव कुल में उत्पन्न हुआ था, किन्तु आध्यात्मिक जीवन में बढ़ा-चढ़ा होने के कारण यज्ञ में सम्बधित देवताओं ने उसकी रक्षा की। फलतः वह देवरात नाम से गाधि के वंशज के रूप में भी विख्यात हुआ।

ये मधुच्छन्दसो ज्येष्ठाः कुशलं मेनिरे न तत् ।
अशपत्तान्मुनिः क्रुद्धो म्लेच्छा भवत दुर्जनाः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

ये—जो; मधुच्छन्दसः—विश्वामित्र के पुत्र जो मधुछन्दा कहलाये; ज्येष्ठाः—सबसे बड़ा; कुशलम्—अच्छे स्वभाव का; मेनिरे—स्वीकार करके; न—नहीं; तत्—वह; अशपत्—शाप दे दिया; तान्—उन सबों को; मुनिः—विश्वामित्र मुनि ने; क्रुद्धः—कुपित; म्लेच्छाः—वैदिक सिद्धान्तों का उल्लंघन करने वाले; भवत—तुम सभी हो जाओ; दुर्जनाः—बुरे पुत्र।

जब विश्वामित्र ने शुनःशेफ को सबसे बड़ा पुत्र स्वीकार करने के लिए कहा तो विश्वामित्र के पचास ज्येष्ठ मधुच्छन्दा पुत्र इसके लिए राजी नहीं हुए। फलतः विश्वामित्र क्रुद्ध हो गये और उन्होंने उन सबों को शाप दे दिया, ''निकम्मे पुत्रो! तुम सारे म्लेच्छ बन जाओ क्योंकि तुम वैदिक संस्कृति के नियमों के विरुद्ध हो।''

तात्पर्य : वैदिक साहित्य में म्लेच्छ तथा यवन जैसे शब्द मिलते हैं। म्लेच्छ वे हैं जो वैदिक सिद्धान्तों का पालन नहीं करते। पुराने जमाने में म्लेच्छों की संख्या कम थी और विश्वामित्र ने अपने पुत्रों को शाप दिया कि वे म्लेच्छ बन जाएँ। किन्तु कलियुग में शाप देने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि लोग स्वयं में म्लेच्छ हैं। अभी तो कलियुग की शुरुआत है, किन्तु कलियुग के अन्त तक सारे लोग म्लेच्छ हो जायेंगे क्योंकि कोई भी व्यक्ति वैदिक नियमों का पालन नहीं करेगा। तब कल्कि अवतार होगा। *म्लेच्छनिवहनिधने कलयसि करबालम्*—वह अपनी तलवारों से सभी म्लेच्छों का अंधाधुंध विनाश करेगा।

स होवाच मधुच्छन्दाः सार्धं पञ्चाशता ततः ।
यन्नो भवान्सञ्जानीते तस्मिंस्तिष्ठामहे वयम् ॥ ३४॥

शब्दार्थ

सः—विश्वामित्र के बीच के पुत्र ने; ह—निस्सन्देह; उवाच—कहा; मधुच्छन्दाः—मधुच्छन्दा; सार्धम्—साथ; पञ्चाशता—अन्य पचास पुत्र, जो मधुच्छन्दा कहलाते थे; ततः—तब, जब पहले पचास पुत्रों को शाप मिल गया; यत्—जो; नः—हमको; भवान्—हे पिता; सञ्जानीते—आप जैसा चाहें; तस्मिन्—उसमें; तिष्ठामहे—रहेंगे; वयम्—हम सब।

जब बड़े पचास मधुच्छन्दाओं को शाप मिल गया तो मधुच्छन्दा समेत छोटे पचास पुत्र अपने पिता के पास गये और उनके प्रस्ताव को यह कहकर स्वीकार किया, ''हे पिता, आप जैसा चाहेंगे हम उसी को मानेंगे।''

ज्येष्ठं मन्त्रदृशं चक्रुस्त्वामन्वञ्चो वयं स्म हि ।
विश्वामित्रः सुतानाह वीरवन्तो भविष्यथ ।
ये मानं मेऽनुगृह्णन्तो वीरवन्तमकर्त माम् ॥ ३५॥

शब्दार्थ

ज्येष्ठम्—बड़ा, ज्येष्ठ; मन्त्र-दृशम्—मंत्रद्रष्टा; चक्रुः—स्वीकार कर लिया; त्वाम्—तुमको; अन्वञ्चः—पालन करने के लिए राजी हो गये हैं; वयम्—हम; स्म—निस्सन्देह; हि—निश्चय ही; विश्वामित्रः—विश्वामित्र मुनि ने; सुतान्—आज्ञाकारी पुत्रों से; आह—कहा; वीर-वन्तः—पुत्रों के पिता; भविष्यथ—भविष्य में बनो; ये—जो; मानम्—मान, सम्मान; मे—मेरा; अनुगृह्णन्तः—स्वीकार किया; वीर-वन्तम्—अच्छे पुत्रों के पिता; अकर्त—तुमने बनाया है; माम्—मुझको।

इस तरह छोटे मधुच्छान्दाओं ने शुनःशेफ को अपना बड़ा भाई मान लिया और उससे कहा "हम आपके आदेशों का पालन करेंगे।" तब विश्वामित्र ने अपने इन आज्ञाकारी पुत्रों से कहा "चूँकि तुम लोगों ने शुनःशेफ को अपना बड़ा भाई मान लिया है अतएव मैं सन्तुष्ट हूँ। तुम लोगों ने मेरे आदेश को स्वीकार करके मुझे योग्य पुत्रों का पिता बना दिया है अतएव मैं तुम सबों को आशीर्वाद देता हूँ कि तुम भी पुत्रों के पिता बनो।"

तात्पर्य : विश्वामित्र के एक सौ पुत्रों में आधों ने शुनःशेफ को बड़ा भाई नहीं माना, किन्तु आधों ने उनके आदेश को मान लिया; अतएव पिता ने आज्ञाकारी पुत्रों को पुत्रवान होने का आशीर्वाद दिया। अन्यथा उन्हें भी पुत्रविहीन म्लेच्छ बनने का शाप दे दिया होता।

एष वः कुशिका वीरो देवरातस्तमन्वित ।
अन्ये चाष्टकहारीतजयक्रतुमदादयः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

एषः—यह (शुनःशेफ); वः—तुम्हारी तरह; कुशिकाः—हे कुशिको; वीरः—मेरा पुत्र; देवरातः—देवरात; तम्—उसकी; अन्वित—आज्ञा पालन करो; अन्ये—अन्य; च—भी; अष्टक—अष्टक; हारीत—हारीत; जय—जय; क्रतुमत्—क्रतुमान; आदयः—इत्यादि।

विश्वामित्र ने कहा "हे कुशिको, यह देवरात मेरा पुत्र है और तुममें से एक है। उसकी आज्ञा का पालन करो।" हे परीक्षित, विश्वामित्र के अन्य अनेक पुत्र थे—अष्टक, हारीत, जय तथा क्रतुमान इत्यादि।

एवं कौशिकगोत्रं तु विश्वामित्रैः पृथग्विधम् ।
प्रवरान्तरमापन्नं तद्धि चैवं प्रकल्पितम् ॥ ३७॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार (कुछ शापित होकर और कुछ आशीर्वाद पाकर); कौशिक-गोत्रम्—कौशिक का वंश; तु—निस्सन्देह; विश्वामित्रैः—विश्वामित्र के पुत्रों द्वारा; पृथक्-विधम्—विभिन्न प्रकार से; प्रवर-अन्तरम्—एक दूसरे में अन्तर; आपन्नम्—प्राप्त किया; तत्—वह; हि—निस्सन्देह; च—भी; एवम्—इस प्रकार; प्रकल्पितम्—निश्चित किया।

विश्वामित्र ने कुछ पुत्रों को शाप दिया और अन्यों को आशीर्वाद दिया और एक पुत्र को गोद भी लिया। इस तरह कौशिक वंश में काफी विविधता थी, किन्तु सारे पुत्रों में देवरात ही ज्येष्ठ माना गया।

इस प्रकार *श्रीमद्भागवत* के नवम स्कन्ध के अन्तर्गत ''भगवान् परशुराम द्वारा विश्व के क्षत्रियों का विनाश'' नामक सोलहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter सत्रह

पुरूरवा के पुत्रों की वंशावली

पुरूरवा के ज्येष्ठ पुत्र आयु से पाँच पुत्र हुए। इस अध्याय में क्षत्रवृद्ध से लेकर चार पुत्रों के वंशों का वर्णन है।

पुरूरवा के पुत्र आयु से पाँच पुत्र हुए—नहुष, क्षत्रवृद्ध, रजी, राभ तथा अनेना। क्षत्रवृद्ध का पुत्र सुहोत्र था, जिसके तीन पुत्र हुए—काश्य, कुश तथा गृत्समद। गृत्समद का पुत्र शुनक था और उसका पुत्र था शौनक। काश्य का पुत्र काशि था। काशि के पुत्र-पौत्रों के नाम थे राष्ट्र, दीर्घतम तथा धन्वन्तरि। धन्वन्तरि आयुर्वेद विज्ञान का सूत्रपात करने वाला था और भगवान् वासुदेव का शक्त्यावेश अवतार था। धन्वन्तरि के वंशजों में केतुमान, भीमरथ, दिवोदास तथा द्युमान हुए। द्युमान के अन्य नाम प्रतर्दन, शत्रुजित, वत्स, ऋतध्वज तथा कुवलयाश्व थे। द्युमान का पुत्र अलर्क था जिसने अनेकानेक वर्षों तक राज्य किया। अलर्क के ही वंश में सन्तति, सुनीथ, निकेतन, धर्मकेतु, सत्यकेतु, धृष्टकेतु, सुकुमार, वीतिहोत्र, भर्ग तथा भार्गभूमि हुए। ये सभी क्षत्रवृद्ध के वंशज काशी के कुल से सम्बद्ध थे।

राभ का पुत्र रभस हुआ जिसके पुत्र का नाम गम्भीर था। गम्भीर का पुत्र अक्रिय हुआ और उसका पुत्र ब्रह्मवित हुआ। अनेना का पुत्र शुद्ध था और उसका पुत्र शुचि था। शुचि के पुत्र का नाम चित्रकृत था जिसका पुत्र शान्तरज हुआ। रजी के पाँच सौ पुत्र हुए जो एक से एक बढ़कर महाबली थे। रजी स्वयं अत्यन्त बलवान था जिसे इन्द्र ने स्वर्ग का राज्य सौंपा था। रजी की मृत्यु के बाद जब उसके पुत्रों ने इन्द्र को साम्राज्य वापस देने से मना कर दिया, बृहस्पति की योजना से वे मूर्ख बन गये उन्हें मूर्ख बना दिया और तब इन्द्र ने उन्हें पराजित किया।

क्षत्रवृद्ध के पौत्र कुश से प्रति नाम का पुत्र हुआ जिससे सञ्जय, फिर उससे जय, जय से कृत और कृत से हर्यबल हुआ। हर्यबल के पुत्र का नाम सहदेव था, उसके पुत्र का नाम हीन, हीन के पुत्र का नाम जयसेन, जयसेन के पुत्र का नाम संकृति तथा संकृति के पुत्र का नाम जय था।

श्रीबादरायणिरुवाच

य: पुरूरवस: पुत्र आयुस्तस्याभवन्सुता: ।
नहुष: क्षत्रवृद्धश्च रजी राभश्च वीर्यवान् ॥ १॥
अनेना इति राजेन्द्र शृणु क्षत्रवृधोऽन्वयम् ।
क्षत्रवृद्धसुतस्यासन्सुहोत्रस्यात्मजास्त्रय: ॥ २॥
काश्य: कुशो गृत्समद इति गृत्समदादभूत् ।
शुनक: शौनको यस्य बह्वृचप्रवरो मुनि: ॥ ३॥

शब्दार्थ

श्री-बादरायणि: उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; य:—जो; पुरूरवस:—पुरूरवा का; पुत्र:—पुत्र; आयु:—आयु; तस्य—उसका; अभवन्—हुए; सुता:—पुत्र; नहुष:—नहुष; क्षत्रवृद्ध: च—तथा क्षत्रवृद्ध; रजी—रजी; राभ:—राभ; च—भी; वीर्यवान्—अत्यन्त शक्तिशाली; अनेना:—अनेना; इति—इस प्रकार; राज-इन्द्र—हे महाराज परीक्षित; शृणु—सुनो; क्षत्रवृध:—क्षत्रवृध का; अन्वयम्—वंश; क्षत्रवृद्ध—क्षत्रवृद्ध के; सुतस्य—पुत्र के; आसन्—थे; सुहोत्रस्य—सुहोत्र के; आत्मजा:—पुत्र; त्रय:—तीन; काश्य:—काश्य; कुश:—कुश; गृत्समद:—गृत्समद; इति—इस प्रकार; गृत्समदात्—गृत्समद से; अभूत्—हुए; शुनक:—शुनक; शौनक:—शौनक; यस्य—जिसका (शुनक का); बहु-ऋच-प्रवर:—ऋग्वेद में सर्वाधिक पटु; मुनि:—मुनि।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : पुरूरवा से आयु नामक पुत्र हुआ जिससे नहुष, क्षत्रवृद्ध, रजी, राभ तथा अनेना नाम के अत्यन्त शक्तिशाली पुत्र उत्पन्न हुए। हे महाराज परीक्षित, अब क्षत्रवृद्ध के वंश के विषय में सुनो। क्षत्रवृद्ध का पुत्र सुहोत्र था जिसके तीन पुत्र हुए—काश्य, कुश तथा गृत्समद। गृत्समद से शुनक हुआ और शुनक से शौनक मुनि उत्पन्न हुए जो ऋग्वेद में सर्वाधिक पटु थे।

काश्यस्य काशिस्तत्पुत्रो राष्ट्रो दीर्घतम:पिता ।
धन्वन्तरिर्दीर्घतमस आयुर्वेदप्रवर्तक: ।
यज्ञभुग्वासुदेवांश: स्मृतमात्रार्तिनाशन: ॥ ४॥

शब्दार्थ

काश्यस्य—काश्य का; काशि:—काशि; तत्-पुत्र:—उसका पुत्र; राष्ट्र:—राष्ट्र; दीर्घतम:-पिता—जो दीर्घतम का पिता बना; धन्वन्तरि:—धन्वन्तरि; दीर्घतमस:—दीर्घतम से; आयु:-वेद-प्रवर्तक:—आयुर्वेद के जनक; यज्ञ-भुक्—यज्ञफलों का भोक्ता; वासुदेव-अंश:—भगवान् वासुदेव का अवतार; स्मृत-मात्र—नाम लेने से ही; आर्ति-नाशन:—सारे रोग विनष्ट हो जाते हैं।

काश्य का पुत्र काशि था और उसका पुत्र राष्ट्र हुआ जो दीर्घतम का पिता था। दीर्घतम के धन्वन्तरि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जो आयुर्वेद का जनक तथा समस्त यज्ञफलों के भोक्ता भगवान् वासुदेव का अवतार था। जो धन्वन्तरि का नाम याद करता है उसके सारे रोग दूर हो सकते हैं।

तत्पुत्र: केतुमानस्य जज्ञे भीमरथस्तत: ।
दिवोदासो द्युमांस्तस्मात्प्रतर्दन इति स्मृत: ॥ ५॥

शब्दार्थ

तत्-पुत्रः—उसका (धन्वन्तरि का) पुत्र; केतुमान्—केतुमान; अस्य—उसका; जज्ञे—जन्म लिया; भीमरथः—भीमरथ नाम के पुत्र ने; ततः—उससे; दिवोदासः—दिवोदास; द्युमान्—द्युमान; तस्मात्—उससे; प्रतर्दनः—प्रतर्दन; इति—इस प्रकार; स्मृतः—ज्ञात।

धन्वन्तरि का पुत्र केतुमान हुआ और उसका पुत्र भीमरथ था। भीमरथ का पुत्र दिवोदास था और उसका पुत्र द्युमान हुआ जो प्रतर्दन भी कहलाता था।

स एव शत्रुजिद्वत्स ऋतध्वज इतीरितः ।
तथा कुवलयाश्वेति प्रोक्तोऽलर्कादयस्ततः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

सः—वह, द्युमान; एव—निस्सन्देह; शत्रुजित्—शत्रुजित; वत्सः—वत्स; ऋतध्वजः—ऋतध्वज; इति—इस तरह; ईरितः—विख्यात; तथा—और; कुवलयाश्व—कुवलयाश्व; इति—इस प्रकार; प्रोक्तः—विख्यात; अलर्क-आदयः—अलर्क तथा अन्य पुत्र; ततः—उससे।

द्युमान शत्रुजित, वत्स, ऋतध्वज तथा कुवलयाश्व नामों से भी विख्यात था। उससे अलर्क तथा अन्य पुत्र उत्पन्न हुए।

षष्टिं वर्षसहस्राणि षष्टिं वर्षशतानि च ।
नालर्कादपरो राजन्बुभुजे मेदिनीं युवा ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

षष्टिम्—साठ; वर्ष-सहस्राणि—हजार वर्ष; षष्टिम्—साठ; वर्ष-शतानि—सैकड़ों वर्ष; च—भी; न—नहीं; अलर्कात्—अलर्क के अलावा; अपरः—कोई दूसरा; राजन्—हे राजा परीक्षित; बुभुजे—भोग किया; मेदिनीम्—पृथ्वी का; युवा—युवक पुरुष की भाँति।

हे राजा परीक्षित, द्युमान के पुत्र अलर्क ने पृथ्वी पर छियाछठ हजार वर्षों से भी अधिक समय तक राज्य किया। इस पृथ्वी पर उनके अतिरिक्त किसी अन्य ने युवक के रूप में इतने दीर्घकाल तक राज्य नहीं भोगा।

अलर्कात्सन्ततिस्तस्मात्सुनीथोऽथ निकेतनः ।
धर्मकेतुः सुतस्तस्मात्सत्यकेतुरजायत ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

अलर्कात्—अलर्क से; सन्ततिः—सन्तति; तस्मात्—उससे; सुनीथः—सुनीथ; अथ—उससे; निकेतनः—निकेतन; धर्मकेतुः—धर्मकेतु; सुतः—पुत्र; तस्मात्—तथा धर्मकेतु से; सत्यकेतुः—सत्यकेतु; अजायत—उत्पन्न हुआ।

अलर्क से सन्तति नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका पुत्र सुनीथ हुआ। सुनीथ का पुत्र निकेतन था। निकेतन का पुत्र धर्मकेतु हुआ और धर्मकेतु का पुत्र सत्यकेतु था।

धृष्टकेतुस्ततस्तस्मात्सुकुमारः क्षितीश्वरः ।
वीतिहोत्रोऽस्य भर्गोऽतो भार्गभूमिरभून्नृप ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

धृष्टकेतुः—धृष्टकेतु; ततः—तत्पश्चात्; तस्मात्—धृष्टकेतु से; सुकुमारः—सुकुमार; क्षिति-ईश्वरः—सारे संसार का सम्राट; वीतिहोत्रः—वीतिहोत्र; अस्य—उसका पुत्र; भर्गः—भर्ग; अतः—उससे; भार्गभूमिः—भार्गमूमि; अभूत्—उत्पन्न हुआ; नृप—हे राजा।

हे राजा परीक्षित, सत्यकेतु का पुत्र धृष्टकेतु हुआ और धृष्टकेतु का पुत्र सुकुमार हुआ जो पूरे विश्व का सम्राट था। सुकुमार का पुत्र वीतिहोत्र हुआ, जिसका पुत्र भर्ग था और भर्ग का पुत्र भार्गभूमि हुआ।

इतीमे काशयो भूपाः क्षत्रवृद्धान्वयायिनः ।
राभस्य रभसः पुत्रो गम्भीरश्चाक्रियस्ततः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; इमे—ये सभी; काशयः—काशि के वंश में उत्पन्न; भूपाः—राजा; क्षत्रवृद्ध-अन्वय-आयिनः—क्षत्रवृद्ध के वंश के भीतर भी; राभस्य—राभ का; रभसः—रभस; पुत्रः—पुत्र; गम्भीरः—गम्भीर; च—भी; अक्रियः—अक्रिय; ततः—उससे।

हे महाराज परीक्षित, ये सारे राजा काशि के वंशज थे और इन्हें क्षत्रवृद्ध के उत्तराधिकारी भी कहा जा सकता है। राभ का पुत्र रभस हुआ, रभस का पुत्र गम्भीर और गम्भीर का पुत्र अक्रिय कहलाया।

तद्गोत्रं ब्रह्मविज्जज्ञे शृणु वंशमनेनसः ।
शुद्धस्ततः शुचिस्तस्माच्चित्रकृद्धर्मसारथिः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

तत्-गोत्रम्—अक्रिय का उत्तराधिकारी; ब्रह्मवित्—ब्रह्मवित ने; जज्ञे—जन्म लिया; शृणु—सुनो; वंशम्—वंश वालों को; अनेनसः—अनेना का; शुद्धः—शुद्ध; ततः—उससे; शुचिः—शुचि; तस्मात्—उससे; चित्रकृत्—चित्रकृत; धर्म-सारथिः—धर्मसारथि।

हे राजा, अक्रिय का पुत्र ब्रह्मवित कहलाया। अब अनेना के वंशजों के विषय में सुनो। अनेना का पुत्र शुद्ध था और उसका पुत्र शुचि था। शुचि का पुत्र धर्मसारथि था जो चित्रकृत भी कहलाता था।

ततः शान्तरजो जज्ञे कृतकृत्यः स आत्मवान् ।
रजेः पञ्चशतान्यासन्पुत्राणाममितौजसाम् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

ततः—चित्रकृत से; शान्तरजः—शान्तरज; जज्ञे—उत्पन्न हुआ; कृत-कृत्यः—सारे अनुष्ठान सम्पन्न किये; सः—उसने; आत्मवान्—स्वरूपसिद्ध; रजेः—रजी के; पञ्च-शतानि—पाँच सौ; आसन्—थे; पुत्राणाम्—पुत्रों का; अमित-ओजसाम्—अत्यन्त शक्तिशाली।

चित्रकृत के शान्तरज नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जो स्वरूपसिद्ध व्यक्ति था जिसने समस्त वैदिक कर्मकाण्ड सम्पन्न किये। फलतः उसने कोई सन्तान उत्पन्न नहीं की। रजी के पाँच सौ पुत्र हुए जो सारे के सारे अत्यन्त शक्तिशाली थे।

देवैरभ्यर्थितो दैत्यान्हत्वेन्द्रायाददाद्दिवम् ।
इन्द्रस्तस्मै पुनर्दत्त्वा गृहीत्वा चरणौ रजेः ।
आत्मानमर्पयामास प्रह्लादाद्यरिशङ्कितः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

देवैः—देवताओं द्वारा; अभ्यर्थितः—प्रार्थना किये जाने पर; दैत्यान्—दैत्यों को; हत्वा—मारकर; इन्द्राय—स्वर्ग के राजा इन्द्र को; अददात्—प्रदान किया; दिवम्—स्वर्ग का राज्य; इन्द्रः—इन्द्र ने; तस्मै—उसको, रजी को; पुनः—फिर से; दत्त्वा—लौटाते हुए; गृहीत्वा—ग्रहण करके; चरणौ—दोनों पाँव; रजेः—रजी के; आत्मानम्—स्वयं को; अर्पयाम् आस—समर्पित कर दिया; प्रह्लाद-आदि—प्रह्लाद इत्यादि; अरि-शङ्कितः—ऐसे शत्रुओं से डर कर।

देवताओं की प्रार्थना पर रजी ने दैत्यों का वध किया और स्वर्ग का राज्य इन्द्रदेव को लौटा दिया। किन्तु इन्द्र ने प्रह्लाद जैसे दैत्यों के डर से स्वर्ग का राज्य रजी को लौटा दिया और स्वयं उसके चरणकमलों की शरण ग्रहण कर ली।

पितर्युपरते पुत्रा याचमानाय नो ददुः ।
त्रिविष्टपं महेन्द्राय यज्ञभागान्समाददुः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

पितरि—जब उनका पिता; उपरते—दिवंगत हो गया; पुत्राः—लड़कों ने; याचमानाय—माँगने पर; नो—नहीं; ददुः—लौटाया; त्रिविष्टपम्—स्वर्ग का राज्य; महेन्द्राय—महेन्द्र को; यज्ञ-भागान्—यज्ञ के भाग; समाददुः—दिया।

रजी की मृत्यु के बाद इन्द्र ने रजी के पुत्रों से स्वर्ग का राज्य लौटाने के लिए याचना की। किन्तु उन्होंने नहीं लौटाया, यद्यपि वे इन्द्र का यज्ञ-भाग लौटाने के लिए राजी हो गये।

तात्पर्य : रजी ने स्वर्ग का राज्य जीता था; अतएव जब इन्द्र ने रजी के पुत्रों से राज्य लौटाने के लिए याचना की तो उन्होंने मना कर दिया। चूँकि उन्होंने स्वर्ग का राज्य इन्द्र से नहीं लिया था, अपितु इसे अपने पिता से उत्तराधिकार में प्राप्त किया था अतएव वे इसे पैतृक सम्पत्ति मानते थे। तो फिर वे इसे देवताओं को क्यों लौटाते?

गुरुणा हूयमानेऽग्नौ बलभित्तनयान्रजेः ।
अवधीद्भ्रंशितान्मार्गान्न कश्चिदवशेषितः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

गुरुणा—गुरु (बृहस्पति) द्वारा; हूयमाने अग्नौ—अग्नि में आहुति डालते समय; बलभित्—इन्द्र ने; तनयान्—पुत्रों को; रजेः—रजी के; अवधीत्—मार डाला; भ्रंशितान्—गिरे हुए; मार्गात्—नैतिक सिद्धान्तों से; न—नहीं; कश्चित्—कोई; अवशेषितः—जीवित रहा।

तत्पश्चात् देवताओं के गुरु बृहस्पति ने अग्नि में आहुति डाली जिससे रजी के पुत्र नैतिक सिद्धान्तों से नीचे गिर सकें। जब वे गिर गये तो इन्द्र ने उनके पतन के कारण उन्हें सरलता से मार डाला। उनमें से एक भी नहीं बच पाया।

कुशात्प्रतिः क्षात्रवृद्धात्सञ्जयस्तत्सुतो जयः ।
ततः कृतः कृतस्यापि जज्ञे हर्यबलो नृपः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

कुशात्—कुश से; प्रतिः—प्रति नामक पुत्र; क्षात्रवृद्धात्—क्षत्रवृद्ध का पौत्र; सञ्जयः—सञ्जय; तत्-सुतः—उसका पुत्र; जयः—जय; ततः—उससे; कृतः—कृत; कृतस्य—कृत का; अपि—भी; जज्ञे—उत्पन्न हुआ; हर्यबलः—हर्यबल; नृपः—राजा।

क्षत्रवृद्ध के पौत्र कुश से प्रति नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। प्रति का पुत्र सञ्जय, सञ्जय का पुत्र जय, जय का पुत्र कृत और कृत का पुत्र राजा हर्यबल हुआ।

सहदेवस्ततो हीनो जयसेनस्तु तत्सुतः ।
सङ्कृतिस्तस्य च जयः क्षत्रधर्मा महारथः ।
क्षत्रवृद्धान्वया भूपा इमे श‍ृण्वथ नाहुषान् ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

सहदेवः—सहदेव; ततः—उससे; हीनः—हीन नामक; जयसेनः—जयसेन; तु—भी; तत्-सुतः—हीन का पुत्र; सङ्कृतिः—संकृति; तस्य—उसका; च—भी; जयः—जय; क्षत्र-धर्मा—क्षत्रिय के कर्तव्यों में पटु; महा-रथः—अत्यन्त शक्तिशाली योद्धा; क्षत्रवृद्ध-अन्वयाः—क्षत्रवृद्ध के वंश में; भूपाः—राजा; इमे—ये सारे; श‍ृणु—सुनो; अथ—अब; नाहुषान्—नहुष के उत्तराधिकारियों के बारे में।

हर्यबल का पुत्र सहदेव, सहदेव का पुत्र हीन, हीन का पुत्र जयसेन और जयसेन का पुत्र संकृति हुआ। संकृति का पुत्र जय अत्यन्त शक्तिशाली एवं निपुण योद्धा था। ये सभी राजा क्षत्रवृद्ध वंश के सदस्य थे। अब मैं नहुष के वंश का वर्णन करूँगा।

इस प्रकार *श्रीमद्भागवत* के नवम स्कन्ध के अन्तर्गत "पुरूरवा के पुत्रों की वंशावली" नामक सत्रहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter अठारह

राजा ययाति को यौवन की पुनःप्राप्ति

इस अध्याय में नहुष के पुत्र राजा ययाति की कथा का वर्णन हुआ है। ययाति के पाँच पुत्रों में से सबसे छोटे पूरु ने ययाति की वृद्धावस्था स्वीकार की।

जब नहुष को अजगर बनने का शाप मिल गया तो उसके छः पुत्रों में सबसे बड़े पुत्र यति ने संन्यास ले लिया। फलस्वरूप बाकी पुत्रों में से बड़े पुत्र ययाति को राजगद्दी पर बैठाया गया। दैववश ययाति ने शुक्राचार्य की बेटी से व्याह कर लिया। शुक्राचार्य ब्राह्मण था और ययाति क्षत्रिय था; तो भी ययाति ने उसकी बेटी से शादी कर ली। शुक्राचार्य की बेटी देवयानी की सखी का नाम शर्मिष्ठा था जो वृषपर्वा की पुत्री थी। राजा ययाति ने शर्मिष्ठा के साथ भी विवाह कर लिया। इस विवाह की कथा इस प्रकार है—

एक बार शर्मिष्ठा अपनी हजारों सखियों के साथ जलविहार कर रही थी और देवयानी भी वहीं थी। जब युवतियों ने शिवजी को उमा समेत बैल पर सवार देखा तो उन्होंने तुरन्त अपने वस्त्र पहन लिये, किन्तु शर्मिष्ठा भूल से देवयानी के कपड़े पहन बैठी। इस पर देवयानी अत्यन्त क्रुद्ध हुई और उसने शर्मिष्ठा को खूब झिड़का। फलतः वह भी क्रुद्ध होकर गाली देने लगी और देवयानी को उसने एक कुएँ में धकेल दिया। दैवयोग से राजा ययाति उस कुएँ पर पानी पीने आये और देवयानी को देखकर उसे बाहर निकाला। फलतः देवयानी ने महाराज ययाति को पति रूप में स्वीकार कर लिया। तत्पश्चात् देवयानी रोती पीटती अपने पिता के पास गई और उसने शर्मिष्ठा की करतूत कह सुनाई। यह घटना सुनकर शुक्राचार्य अत्यन्त क्रुद्ध हुए और उन्होंने शर्मिष्ठा के पिता वृषपर्वा को दण्डित करना चाहा, किन्तु वृषपर्वा ने शर्मिष्ठा को देवयानी की दासी बनाकर भेंट करके शुक्राचार्य को शान्त किया। इस तरह शर्मिष्ठा दासी बनकर देवयानी की ससुराल में गई। जब उसकी सखी देवयानी को पुत्र-प्राप्ति हुई तो उसे भी पुत्र पाने की इच्छा हुई। अतएव गर्भाधान का उचित अवसर पाकर उसने ययाति से संभोग करने की प्रार्थना की। जब शर्मिष्ठा भी गर्भवती हो गई तो देवयानी को ईर्ष्या हुई। क्रोध में आकर वह तुरन्त अपने मायके चली गई और वहाँ अपने पिता से सारी बातें कह सुनाईं। शुक्राचार्य पुनः कुपित हुए और उन्होंने ययाति को वृद्ध होने का शाप दे दिया, किन्तु जब ययाति ने दयाकी भीख माँगी तो शुक्राचार्य ने उसे यह वर दिया कि वह अपनी वृद्धावस्था तथा अशक्तता को

किसी युवक से बदल सकता है। ययाति ने अपने सबसे छोटे पुत्र पूरु से यौवन लेकर अपनी वृद्धावस्था उसे दे दी और इस तरह वह युवतियों के साथ भोग-विलास करने लगा।

श्रीशुक उवाच
यतिर्ययातिः संयातिरायतिर्वियतिः कृतिः ।
षडिमे नहुषस्यासन्निन्द्रियाणीव देहिनः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; यतिः—यति; ययातिः—ययाति; संयातिः—संयाति; आयतिः—आयति; वियतिः—वियति; कृतिः—कृति; षट्—छः; इमे—ये सभी; नहुषस्य—राजा नहुष के; आसन्—थे; इन्द्रियाणि—छः इन्द्रियों; इव—सदृश; देहिनः—देहधारी का।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजा परीक्षित, जिस तरह देहधारी आत्मा के छह इन्द्रियाँ होती हैं उसी तरह राजा नहुष के छह पुत्र थे जिनके नाम थे यति, ययाति, संयाति, आयति, वियति तथा कृति।

राज्यं नैच्छद्यतिः पित्रा दत्तं तत्परिणामवित् ।
यत्र प्रविष्टः पुरुष आत्मानं नावबुध्यते ॥ २ ॥

शब्दार्थ

राज्यम्—राज्य; न ऐच्छत्—स्वीकार नहीं किया; यतिः—ज्येष्ठ पुत्र, यति ने; पित्रा—अपने पिता द्वारा; दत्तम्—दिया गया; तत्-परिणाम-वित्—राजा के शक्तिशाली होने का फल जानते हुए; यत्र—जहाँ; प्रविष्टः—घुसकर; पुरुषः—व्यक्ति; आत्मानम्—आत्म-साक्षात्कार; न—नहीं; अवबुध्यते—गम्भीरतापूर्वक ग्रहण करके समझेगा।

जब कोई मनुष्य राजा या सरकार के अध्यक्ष के पद को ग्रहण करता है तो वह आत्म-साक्षात्कार का अर्थ नहीं समझ पाता। यह जानकर, नहुष के सबसे बड़े पुत्र यति ने शासन सँभालना स्वीकार नहीं किया यद्यपि उसके पिता ने राज्य को उसे ही सौंपा था।

तात्पर्य : आत्म-साक्षात्कार मानव सभ्यता का मूल उद्देश्य है और जो लोग सतोगुणी हैं तथा जिनमें ब्राह्मण-गुणों का विकास हुआ होता है वे इसे गम्भीरतापूर्वक ग्रहण करते हैं। सामान्यतया क्षत्रिय उन भौतिक गुणों से सम्पन्न होते हैं जो भौतिक सम्पत्ति प्राप्त करने तथा इन्द्रियतृप्ति भोगने के अनुकूल होते हैं, किन्तु जो लोग आध्यात्मिक रूप से बढ़े-चढ़े रहते हैं वे भौतिक ऐश्वर्य के प्रति कोई रुचि नहीं दिखलाते। निस्सन्देह, वे आत्म-साक्षात्कार में आध्यात्मिक जीवन-विकास के लिए न्यूनतम आवश्यकताएँ स्वीकार करते हैं। यहाँ विशेष उल्लेख हुआ है कि यदि कोई राजनीतिक जीवन में प्रवेश करता है, विशेषकर वर्तमान

युग में, तो मानव सिद्धि उसके हाथ से जाती रहती है। तो भी यदि कोई *श्रीमद्भागवत* को सुने तो वह सर्वोच्च सिद्धि पा सकता है। यह सुनना *नित्यं भागवतसेवया* कहा गया है। महाराज परीक्षित राजनीति में लिप्त थे, किन्तु चूँकि अपने जीवन के अन्तकाल में उन्होंने शुकदेव गोस्वामी से *श्रीमद्भागवत* सुनी अतएव उन्हें सरलता से सिद्धि मिल गई। इसीलिए श्रीचैतन्य महाप्रभु ने सुझाव दिया है—

स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभिः

ये प्रायशोऽजित जितोऽप्यसि तैस्त्रिलोक्याम्

(भागवत *१०.१४.३*)

कोई चाहे सतोगुणी हो या रजोगुणी अथवा तमोगुणी, यदि वह नियमपूर्वक किसी स्वरूपसिद्ध व्यक्ति से *श्रीमद्भागवत* सुनता है तो वह भवबन्धन से छूट जाता है।

पितरि भ्रंशिते स्थानादिन्द्राण्या धर्षणाद्द्विजैः ।
प्रापितेऽजगरत्वं वै ययातिरभवन्नृपः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

पितरि—पिता के; भ्रंशिते—पतित किए जाने पर; स्थानात्—स्वर्गलोक से; इन्द्राण्याः—इन्द्र की पत्नी शची का; धर्षणात्—अपमान करने से; द्विजैः—ब्राह्मणों से (शिकायत करने पर उनके द्वारा); प्रापिते—नीचे गिराये जाने पर; अजगरत्वम्—अजगर का जीवन; वै—निस्सन्देह; ययातिः—ययाति नामक पुत्र; अभवत्—हुआ; नृपः—राजा।

चूँकि ययाति के पिता नहुष ने इन्द्र की पत्नी शची को छेड़ा था, अतएव शची के अगस्त्य तथा अन्य ब्राह्मणों से शिकायत करने पर इन ब्राह्मणों ने नहुष को शाप दिया कि वह स्वर्ग से गिरकर अजगर बन जाय। फलतः ययाति राजा बना।

चतसृष्वादिशद्दिक्षु भ्रातृन्भ्राता यवीयसः ।
कृतदारो जुगोपोर्वीं काव्यस्य वृषपर्वणः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

चतसृषु—चारों; आदिशत्—शासन करने की अनुमति दी; दिक्षु—दिशाओं में; भ्रातृन्—चारों भाइयों को; भ्राता—ययाति; यवीयसः—तरुण; कृत-दारः—विवाह किया; जुगोप—शासन किया; ऊर्वीम्—संसार पर; काव्यस्य—शुक्राचार्य की लड़की; वृषपर्वणः—वृषपर्वा की पुत्री।

राजा ययाति के चार छोटे भाई थे जिन्हें उसने चारों दिशाओं में शासन चलाने की अनुमति दे दी थी। ययाति ने शुक्राचार्य की बेटी देवयानी से एवं वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा से विवाह किया और वह

सारी पृथ्वी पर शासन करने लगा।

श्रीराजोवाच
ब्रह्मर्षिर्भगवान्काव्यः क्षत्रबन्धुश्च नाहुषः ।
राजन्यविप्रयोः कस्माद्विवाहः प्रतिलोमकः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

श्री-राजा उवाच—महाराज परीक्षित ने जिज्ञासा की; ब्रह्म-ऋषिः—ब्राह्मणों में श्रेष्ठ; भगवान्—अत्यन्त शक्तिशाली; काव्यः—शुक्राचार्य; क्षत्र-बन्धुः—क्षत्रिय जाति से सम्बन्धित; च—भी; नाहुषः—राजा ययाति; राजन्य-विप्रयोः—ब्राह्मण तथा क्षत्रिय का; कस्मात्—कैसे; विवाहः—विवाह; प्रतिलोमकः—प्रथा के विपरीत।

महाराज परीक्षित ने कहा : शुक्राचार्य अत्यन्त शक्तिशाली ब्राह्मण थे और महाराज ययाति क्षत्रिय थे। अतएव मैं यह जानने का इच्छुक हूँ कि ब्राह्मण तथा क्षत्रिय के बीच यह प्रतिलोम विवाह कैसे सम्पन्न हुआ?

तात्पर्य : वैदिक पद्धति के अनुसार परस्पर क्षत्रियों में या परस्पर ब्राह्मणों में विवाह होना सर्वसामान्य प्रथा है। यदि कभी विभिन्न वर्णों के बीच विवाह होते हैं तो ये दो प्रकार के होते हैं—*अनुलोम* तथा *प्रतिलोम*। एक ब्राह्मण तथा क्षत्रियपुत्री के मध्य विवाह की अनुमति है। यह अनुलोम है, किन्तु एक क्षत्रिय तथा ब्राह्मणपुत्री के मध्य विवाह प्रतिलोम है और सामान्यतया इसकी अनुमति नहीं है। इसीलिए महाराज परीक्षित जानने को उत्सुक थे कि शुक्राचार्य जैसे शक्तिशाली ब्राह्मण ने प्रतिलोम विवाह किस प्रकार स्वीकार किया। वे इस असामान्य विवाह के कारण को जानने के लिए उत्सुक थे।

श्रीशुक उवाच
एकदा दानवेन्द्रस्य शर्मिष्ठा नाम कन्यका ।
सखीसहस्रसंयुक्ता गुरुपुत्र्या च भामिनी ॥ ६ ॥
देवयान्या पुरोद्याने पुष्पितद्रुमसङ्कुले ।
व्यचरत्कलगीतालिनलिनीपुलिनेऽबला ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एकदा—एकबार; दानव-इन्द्रस्य—वृषपर्वा की; शर्मिष्ठा—शर्मिष्ठा; नाम—नामक; कन्यका—कन्या; सखी-सहस्र-संयुक्ता—अपनी हजारों सखियों के साथ-साथ; गुरु-पुत्र्या—गुरु शुक्राचार्य की पुत्री सहित; च—भी; भामिनी—सरलता से चिढ़ने वाली; देवयान्या—देवयानी सहित; पुर-उद्याने—महल के बगीचे में; पुष्पित—फूलों से युक्त; द्रुम—सुन्दर वृक्ष; सङ्कुले—सँटे हुए; व्यचरत्—टहल रही थी; कल-गीत—मधुर ध्वनि से; अलि—भौंरा; नलिनी—कमलिनियों से युक्त; पुलिने—ऐसे बगीचे में; अबला—निर्दोष।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : एकबार वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा, जो अबोध, किन्तु स्वभाव से

क्रोधी थी, शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी तथा उसकी सैकड़ों सखियों के साथ राजमहल के बगीचे में घूम रही थी। यह बगीचा कमलिनियों तथा फूल-फल के वृक्षों से पूर्ण था और उसमें मधुर गीत गाते पक्षी तथा भौरें निवास कर रहे थे।

ता जलाशयमासाद्य कन्या: कमललोचना: ।
तीरे न्यस्य दुकूलानि विजह्रु: सिञ्चतीर्मिथ: ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

ता:—वे; जल-आशयम्—झील पर; आसाद्य—पहुँच कर; कन्या:—सारी लड़कियाँ; कमल-लोचना:—कमल की पंखुड़ियों जैसे नेत्रों वाली; तीरे—किनारे पर; न्यस्य—रख कर; दुकूलानि—अपने-अपने वस्त्र; विजह्रु:—खेलने लगीं; सिञ्चती:—जल फेंककर; मिथ:—परस्पर।

जब तरुणी, कमलनयनी लड़कियाँ जलाशय के तीर पर आईं तो उन्होंने स्नान का आनन्द लेना चाहा। फलत: किनारे पर अपने वस्त्र रखकर वे एक दूसरे पर जल उछाल कर जल-क्रीड़ा करने लगीं।

वीक्ष्य व्रजन्तं गिरिशं सह देव्या वृषस्थितम् ।
सहसोत्तीर्य वासांसि पर्यधुर्व्रीडिता: स्त्रिय: ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

वीक्ष्य—देखकर; व्रजन्तम्—जाते हुए; गिरिशम्—शिवजी को; सह—साथ; देव्या—पार्वती के; वृष-स्थितम्—बैल के ऊपर आसीन; सहसा—एकाएक; उत्तीर्य—जल से निकल कर; वासांसि—वस्त्र; पर्यधु:—शरीर पर पहन लिया; व्रीडिता:—लज्जित होकर; स्त्रिय:—युवतियों ने।

जलक्रीड़ा करते हुए लड़कियों ने सहसा शिवजी को ऊपर से जाते देखा जो अपने बैल की पीठ पर अपनी पत्नी पार्वती समेत आसीन थे। नंगी होने के कारण लज्जित वे लड़कियाँ तुरन्त जल से बाहर निकल आईं और उन्होंने अपने वस्त्रों से अपने-अपने शरीर ढक लिये।

शर्मिष्ठाजानती वासो गुरुपुत्र्या: समव्ययत् ।
स्वीयं मत्वा प्रकुपिता देवयानीदमब्रवीत् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

शर्मिष्ठा—वृषपर्वा की पुत्री ने; अजानती—अनजाने; वास:—वस्त्र; गुरु-पुत्र्या:—अपने गुरु की पुत्री देवयानी का; समव्ययत्—पहन लिया; स्वीयम्—अपना; मत्वा—मानकर; प्रकुपिता—क्रुद्ध; देवयानी—शुक्राचार्य की पुत्री ने; इदम्—यह; अब्रवीत्—कहा।

शर्मिष्ठा ने अनजाने ही देवयानी का वस्त्र पहन लिया जिससे देवयानी को क्रोध आ गया और वह

इस प्रकार बोली।

अहो निरीक्ष्यतामस्या दास्याः कर्म ह्यसाम्प्रतम् ।
अस्मद्धार्यं धृतवती शुनीव हविरध्वरे ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

अहो—अरे; निरीक्ष्यताम्—देखो तो; अस्याः—इसका (शर्मिष्ठा का); दास्याः—हमारी दासी की तरह; कर्म—कार्य; हि—निस्सन्देह; असाम्प्रतम्—बिना किसी शिष्टाचार के; अस्मत्-धार्यम्—मेरे वस्त्र को; धृतवती—उसने पहन लिया; शुनी इव—कुत्ते की तरह; हविः—घी; अध्वरे—यज्ञ में डालने के निमित्त।

अरे जरा देखो न इस दासी शर्मिष्ठा की करतूतों को, इसने सारे शिष्टाचार को ताक पर रखकर मेरे वस्त्र धारण कर लिये हैं मानो यज्ञ के निमित्त रखे घी को कोई कुत्ता छीन ले।

यैरिदं तपसा सृष्टं मुखं पुंसः परस्य ये ।
धार्यते यैरिह ज्योतिः शिवः पन्थाः प्रदर्शितः ॥ १२ ॥
यान्वन्दन्त्युपतिष्ठन्ते लोकनाथाः सुरेश्वराः ।
भगवानपि विश्वात्मा पावनः श्रीनिकेतनः ॥ १३ ॥
वयं तत्रापि भृगवः शिष्योऽस्या नः पितासुरः ।
अस्मद्धार्यं धृतवती शूद्रो वेदमिवासती ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

यैः—जिन व्यक्तियों के द्वारा; इदम्—यह सारा विश्व; तपसा—तपस्या से; सृष्टम्—उत्पन्न हुआ था; मुखम्—मुँह; पुंसः—परम पुरुष का; परस्य—दिव्य; ये—जो (हैं); धार्यते—सदैव उत्पन्न होता है; यैः—जिन व्यक्तियों के द्वारा; इह—यहाँ; ज्योतिः—ब्रह्मज्योति; शिवः—शुभ; पन्थाः—मार्ग; प्रदर्शितः—दिखलाया गया; यान्—जिनको; वन्दन्ति—वन्दना करते हैं; उपतिष्ठन्ते—सम्मान करते तथा अनुगमन करते हैं; लोक-नाथाः—विभिन्न लोकों के निर्देशक; सुर-ईश्वराः—देवतागण; भगवान्—भगवान्; अपि—भी; विश्व-आत्मा—परमात्मा; पावनः—पवित्र करने वाला; श्री-निकेतनः—लक्ष्मी के पति; वयम्—हम (हैं); तत्र अपि—अन्य ब्राह्मणों से भी बड़े; भृगवः—भृगवंशी; शिष्यः—शिष्य; अस्याः—उसका; नः—हमारा; पिता—पिता; असुरः—असुर; अस्मत्-धार्यम्—हमारे पहनने के निमित्त; धृतवती—पहन लिया है; शूद्रः—अब्राह्मण सेवक; वेदम्—वेद; इव—सदृश; असती—जो सती न हो, कुलटा।

हम उन योग्य ब्राह्मणों में से हैं जिन्हें भगवान् का मुख माना गया है। ब्राह्मणों ने अपनी तपस्या से समग्र विश्व को उत्पन्न किया है और वे परम सत्य को अपने अन्तःकरण में सदैव धारण करते हैं। उन्होंने सौभाग्य के पथ का निर्देशन किया है जो कि वैदिक सभ्यता का पथ है। वे इस जगत में एकमात्र पूजनीय हैं अतएव उनकी स्तुति की जाती है और विभिन्न लोकों के नायक बड़े से बड़े देवता भी उनकी पूजा करते हैं—यहाँ तक कि सब को पवित्र करने वाले, लक्ष्मी देवी के पति, परमात्मा द्वारा भी वे पूजित हैं और हम तो इसलिए भी अधिक पूज्य हैं क्योंकि हम भृगुवंशी हैं। यद्यपि इस स्त्री का पिता असुर होकर हमारा शिष्य है तो भी इसने मेरे वस्त्र को उसी तरह धारण कर

लिया है जिस तरह कोई शूद्र वैदिक ज्ञान का भार सँभाले।

एवं क्षिपन्तीं शर्मिष्ठा गुरुपुत्रीमभाषत ।
रुषा श्वसन्त्युरङ्गीव धर्षिता दष्टदच्छदा ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; क्षिपन्तीम्—अपमानित की गई; शर्मिष्ठा—वृषपर्वा की पुत्री ने; गुरु-पुत्रीम्—गुरु शुक्राचार्य की पुत्री से; अभाषत—कहा; रुषा—क्रुद्ध हाने से; श्वसन्ती—गहरी साँस लेती; उरङ्गी इव—सर्पिणी की तरह; धर्षिता—कुचली हुई, अपमानित; दष्ट-दत्-छदा—अपने दाँतों से अपने होठ चबाती।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : शर्मिष्ठा को जब इस तरह कठोर शब्दों से डाँटा गया तो वह अत्यधिक क्रुद्ध हो उठी। सर्पिणी की तरह गहरी साँस छोड़ती और अपने निचले होठ को अपने दाँतों से चबाती वह शुक्राचार्य की पुत्री से इस तरह बोली।

आत्मवृत्तमविज्ञाय कत्थसे बहु भिक्षुकि ।
किं न प्रतीक्षसेऽस्माकं गृहान्बलिभुजो यथा ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

आत्म-वृत्तम्—अपनी स्थिति; अविज्ञाय—न समझकर; कत्थसे—तुम पागलों की तरह बातें कर रही हो; बहु—अधिक; भिक्षुकि—भिखारिन; किम्—क्या; न—नहीं; प्रतीक्षसे—प्रतीक्षा करती हो; अस्माकम्—हमारे; गृहान्—घर पर; बलिभुजः—कौवे; यथा—जिस तरह।

अरे भिखारिन, जब तुम्हें अपनी स्थिति का पता नहीं है तो व्यर्थ ही क्यों इतना बोल रही हो? क्या तुम लोग अपनी जीविका के लिए हम पर आश्रित रहकर कौवों की भाँति हमारे घर पर प्रतीक्षा नहीं करते हो?

तात्पर्य : कौवे का कोई स्वतंत्र जीवन नहीं होता; वे गृहस्थों द्वारा कूड़ादानों में फेंके गये जूठन पर पूरी तरह आश्रित होते हैं। ब्राह्मण अपने शिष्यों पर आश्रित रहते हैं अतएव जब शर्मिष्ठा देवयानी द्वारा बुरी तरह अपमानित की गई तो उसने देवयानी को कौवे-जैसे भिक्षुकों के परिवार से सम्बन्धित बतलाया। स्त्रियों का स्वभाव है कि थोड़ा सा उकसाने पर भी वे वाक्युद्ध करने लगती हैं। जैसा हम इस घटना में देख सकते हैं, उनका ऐसा स्वभाव बहुत लम्बे समय से चला आ रहा है।

एवंविधैः सुपरुषैः क्षिप्त्वाचार्यसुतां सतीम् ।
शर्मिष्ठा प्राक्षिपत्कूपे वासश्चादाय मन्युना ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

एवम्-विधैः—इस प्रकार से; सु-परुषैः—अत्यन्त अप्रिय वचनों द्वारा; क्षिप्त्वा—अपमानित होकर; आचार्य-सुताम्—शुक्राचार्य की पुत्री को; सतीम्—देवयानी को; शर्मिष्ठा—शर्मिष्ठा ने; प्राक्षिपत्—फेंक दिया; कूपे—कुएँ में; वासः—वस्त्र; च—तथा; आदाय—लेकर; मन्युना—क्रोध में आकर।

ऐसे अप्रिय वचनों का उपयोग करते हुए शर्मिष्ठा ने शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी को फटकारा। उसने क्रोध में आकर देवयानी के वस्त्र छीन लिए और उसे एक कुएँ में धकेल दिया।

तस्यां गतायां स्वगृहं ययातिर्मृगयां चरन् ।
प्राप्तो यदृच्छया कूपे जलार्थी तां ददर्श ह ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

तस्याम्—उसके; गतायाम्—चले जाने पर; स्व-गृहम्—अपने घर; ययातिः—राजा ययाति; मृगयाम्—शिकार करने; चरन्—घूमते हुए; प्राप्तः—आया; यदृच्छया—संयोगवश; कूपे—कुएँ में; जल-अर्थी—जल पीने की इच्छा से; ताम्—उसको (देवयानी को); ददर्श—देखा; ह—निस्सन्देह।

देवयानी को कुएँ में धकेल कर शर्मिष्ठा अपने घर चली गई। तभी शिकार के लिए निकला राजा ययाति उस कुएँ पर पानी पीने के लिए आया और संयोगवश देवयानी को देखा।

दत्त्वा स्वमुत्तरं वासस्तस्यै राजा विवाससे ।
गृहीत्वा पाणिना पाणिमुज्जहार दयापरः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

दत्त्वा—देकर; स्वम्—अपना; उत्तरम्—उत्तरीय, ऊपरी; वासः—वस्त्र; तस्यै—उस (देवयानी) को; राजा—राजा; विवाससे—नग्न होने के कारण; गृहीत्वा—पकड कर; पाणिना—हाथ से; पाणिम्—उसके हाथ को; उज्जहार—उद्धार किया; दया-परः—अत्यन्त दयालु।

देवयानी को कुएँ में नग्न देखकर राजा ययाति ने तुरन्त ही अपना ऊपरी वस्त्र उसे दे दिया। उस पर अत्यन्त दयालु होकर उसने अपने हाथ से उसका हाथ पकड़ कर उसे बाहर निकाला।

तं वीरमाहौशनसी प्रेमनिर्भरया गिरा ।
राजंस्त्वया गृहीतो मे पाणिः परपुरञ्जय ॥ २० ॥
हस्तग्राहोऽपरो मा भूद्गृहीतायास्त्वया हि मे ।
एष ईशकृतो वीर सम्बन्धो नौ न पौरुषः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस; वीरम्—वीर ययाति से; आह—कहा; औशनसी—उशना कवि या शुक्राचार्य की पुत्री ने; प्रेम-निर्भरया—प्रेम तथा दया से सिक्त; गिरा—वाणी से; राजन्—हे राजा; त्वया—तुम्हारे द्वारा; गृहीतः—अंगीकृत; मे—मेरा; पाणिः—हाथ; पर-पुरञ्जय—अन्यों के राज्यों का विजेता; हस्त-ग्राहः—मेरा हाथ थामने वाला; अपरः—दूसरा; मा—मत; भूत्—होये; गृहीतायाः—स्वीकृत; त्वया—तुम्हारे

द्वारा; हि—निस्सन्देह; मे—मेरा; एषः—यह; ईश-कृतः—दैव द्वारा नियोजित; वीर—हे वीर; सम्बन्धः—सम्बन्ध; नौ—हमारा; न—नहीं; पौरुषः—मानवनिर्मित।

देवयानी प्रेमसिक्त शब्दों में राजा ययाति से बोली ''हे परम वीर! हे राजा! हे शत्रुओं के नगरों के विजेता! आपने मेरा हाथ थामकर मुझे अपनी विवाहिता पत्नी के रूप में स्वीकार किया है। अब मुझे कोई दूसरा नहीं छूने पाये क्योंकि हमारा यह पति-पत्नी का सम्बन्ध भाग्य द्वारा सम्भव हो सका है, किसी व्यक्ति द्वारा नहीं।

तात्पर्य : देवयानी को कुएँ से निकालते हुए राजा ययाति ने उसके सौन्दर्य तथा जवानी की अवश्य प्रशंसा की होगी अतएव उसने यह भी पूछा होगा कि तुम किस जाति की हो। तब देवयानी ने तुरन्त उत्तर दिया होगा, ''हमारा पहले ही विवाह हो चुका है क्योंकि आपने मेरा हाथ थामा है।'' पति तथा पत्नी के हाथों को मिलाना सभी समाजों की स्थायी प्रथा है। अतएव ज्योंही ययाति ने उसका हाथ थामा होगा त्योंही दोनों को विवाहित मान लिया जा सकता है। चूँकि देवयानी वीर ययाति पर मुग्ध थी अतएव उसने प्रार्थना की कि वह न तो अपना मन बदले न किसी अन्य से उसका विवाह होने दे।

यदिदं कूपमग्नाया भवतो दर्शनं मम ।
न ब्राह्मणो मे भविता हस्तग्राहो महाभुज ।
कचस्य बार्हस्पत्यस्य शापाद्यमशपं पुरा ॥ २२॥

शब्दार्थ

यत्—चूँकि; इदम्—इस; कूप-मग्नायाः—कुएँ में गिरी; भवतः—आपकी; दर्शनम्—भेंट; मम—मुझसे; न—नहीं; ब्राह्मणः—योग्य ब्राह्मण; मे—मेरा; भविता—हो सकोगे; हस्त-ग्राहः—पति; महा-भुज—हे शक्तिशाली भुजावाले; कचस्य—कच का; बार्हस्पत्यस्य—विद्वान ब्राह्मण एवं देवों के पुरोहित बृहस्पति के पुत्र के; शापात्—शाप से; यम्—जिसको; अशपम्—मैंने शाप दिया; पुरा—भूतकाल में।

''कुएँ में गिर जाने के कारण मैं आपसे मिली। निस्सन्देह, यह विधि का विधान था। जब मैंने प्रकाण्ड विद्वान बृहस्पति के पुत्र कच को शाप दिया तो उसने मुझे यह शाप दिया कि तुझे ब्राह्मण पति नहीं प्राप्त हो सकेगा। अतएव हे महाभुज! मेरे किसी ब्राह्मण की पत्नी बनने की कोई सम्भावना नहीं है।''

तात्पर्य : विद्वान पुरोहित बृहस्पति का पुत्र कच शुक्राचार्य का शिष्य था। उसने अपने गुरु से अकाल मृत्युप्राप्त व्यक्ति को जिलाने की कला सीखी थी। यह कला *मृतसञ्जीवनी* कहलाती है और विशेष रूप से युद्ध के समय काम में लाई जाती थी। जब युद्ध होता था तो योद्धाओं की अकाल मृत्यु हो जाती थी, किन्तु

यदि किसी योद्धा का शरीर अक्षत रहता तो वह इस मृतसञ्जीवनी कला के द्वारा फिर से जीवित किया जा सकता था। यह कला शुक्राचार्य तथा अन्य बहुत से लोगों को ज्ञात थी और बृहस्पति का पुत्र कच इसे सीखने के लिए ही शुक्राचार्य का शिष्य बना था। देवयानी कच को अपना पति बनाना चाहती थी, किन्तु कच, शुक्रचार्य के प्रति सम्मान के कारण, उसे गुरु-पुत्री समझ कर अपने से श्रेष्ठ समझता था अतएव उसने विवाह करने से मना कर दिया। देवयानी ने क्रुद्ध होकर कच को यह शाप दिया कि तुमने मेरे पिता से जो मृतसंजीवनी विद्या सीखी है वह व्यर्थ हो जाय। कच ने भी पलट कर शाप दिया कि उसे ब्राह्मण पति कभी न मिले। चूँकि देवयानी ययाति को चाहती थी, जो क्षत्रिय था अतएव उसने प्रार्थना की कि वह उसे अपनी प्रामाणिक पत्नी के रूप में स्वीकार कर ले। यद्यपि यह प्रतिलोम विवाह था, अर्थात् उच्च कुल की कन्या का निम्न कुल के लड़के से विवाह था, किन्तु उसने कहा कि यह विधाता का विधान है।

ययातिरनभिप्रेतं दैवोपहृतमात्मनः ।
मनस्तु तद्गतं बुद्ध्वा प्रतिजग्राह तद्वचः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

ययातिः—राजा ययाति; अनभिप्रेतम्—न चाहते हुए; दैव-उपहृतम्—विधाता द्वारा की गई व्यवस्था को; आत्मनः—निजी हित; मनः—मन; तु—फिर भी; तत्-गतम्—उससे आकृष्ट होकर; बुद्ध्वा—ऐसी बुद्धि द्वारा; प्रतिजग्राह—स्वीकार कर लिया; तत्-वचः—देवयानी के शब्द।

शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा : चूँकि शास्त्रों द्वारा ऐसे विवाह की अनुमति नहीं है अतएव राजा ययाति को यह अच्छा नहीं लगा, किन्तु विधाता द्वारा व्यवस्थित होने तथा देवयानी के सौन्दर्य के प्रति आकृष्ट होने से उसने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली।

तात्पर्य : वैदिक पद्धति में जिस लड़के तथा लड़की की शादी होनी होती है उनकी कुंडलियों पर उनके माता-पिता विचार करते हैं। यदि ज्योतिष-गणना के अनुसार लड़के तथा लड़की के बीच हर प्रकार का मेल बैठ जाए तो यह संयोग योटक कहलाता था और विवाह हो जाता था। यहाँ तक कि पचास वर्ष पूर्व भी यह पद्धति हिन्दू समाज में प्रचलित थी। कोई लड़का चाहे कितना धनवान क्यों न हो या कोई लड़की चाहे कितनी रूपवती क्यों न हो, इस ज्योतिष-मेल के बिना विवाह नहीं हो सकता था। मनुष्य का जन्म तीन कोटियों में से किसी एक में होता है। ये हैं—*देवगण, मनुष्यगण* तथा *राक्षसगण*। विश्व के विभिन्न भागों में देवता तथा राक्षस हैं और मानव समाज में भी कुछ लोग देवताओं के समान हैं तो कुछ राक्षस जैसे हैं।

यदि ज्योतिष-गणना के अनुसार देव तथा राक्षस प्रकृति (गण) में विरोध होता था तो ऐसा विवाह नहीं होता था। इसी प्रकार प्रतिलोम तथा अनुलोम की भी गणनाएँ थीं। मूल-भाव यह था कि यदि लड़का तथा लड़की समान स्तर के हों तो विवाह सुखमय होगा, किन्तु असमानता से दुख ही मिलेगा। चूँकि अब विवाह में इस पर ध्यान नहीं दिया जाता इसीलिए अनेक विवाह-विच्छेद होते हैं। निस्सन्देह, अब तो विवाह-विच्छेद सामान्य बात बन चुकी है जब कि प्राचीन काल में विवाह आजीवन चलता था और स्त्री तथा पुरुष में इतना प्रेम होता था कि पति के मर जाने पर पत्नी अपने पति के साथ स्वेच्छा से मर जाती थी या आजीवन स्वामिभक्त विधवा बनी रहती थी। किन्तु अब ऐसा सम्भव नहीं रह गया क्योंकि मानव समाज पतित होकर पशु-समाज की स्थिति को प्राप्त हो गया है। अब तो केवल समझौते से विवाह सम्पन्न होते हैं। *दाम्पत्येऽभिरुचिर्हेतुः* (*भागवत* १२.२.३) *अभिरुचि* का अर्थ है समझौता या स्वीकृति। यदि लड़के तथा लड़की को विवाह स्वीकार हो तो वह विवाह सम्पन्न हो जाता है, किन्तु वैदिक पद्धति का दृढ़ता से पालन न होने पर विवाह का अन्त प्राय: विवाह-विच्छेद में होता है।

गते राजनि सा धीरे तत्र स्म रुदती पितुः ।
न्यवेदयत्ततः सर्वमुक्तं शर्मिष्ठया कृतम् ॥ २४॥

शब्दार्थ

गते राजनि—राजा के चले जाने के बाद; सा—उस (देवयानी) ने; धीरे—विद्वान; तत्र स्म—अपने घर लौटकर; रुदती—रोती हुई; पितुः—अपने पिता के समक्ष; न्यवेदयत्—कह सुनाया; ततः—तत्पश्चात्; सर्वम्—सारा; उक्तम्—कहा गया; शर्मिष्ठया—शर्मिष्ठा द्वारा; कृतम्—किया गया।

तत्पश्चात् जब विद्वान राजा अपने महल को वापस चला गया तो देवयानी रोती हुई घर लौटी और उसने अपने पिता शुक्राचार्य को शर्मिष्ठा के कारण घटी सारी घटना कह सुनाई। उसने बतलाया कि वह किस तरह कुएँ में धकेली गयी थी किन्तु एक राजा द्वारा बचा ली गई।

दुर्मना भगवान्काव्यः पौरोहित्यं विगर्हयन् ।
स्तुवन्वृत्तिं च कापोतीं दुहित्रा स ययौ पुरात् ॥ २५॥

शब्दार्थ

दुर्मनाः—अत्यन्त अप्रसन्न होकर; भगवान्—अत्यन्त शक्तिशाली; काव्यः—शुक्राचार्य ने; पौरोहित्यम्—पुरोहिती कर्म को; विगर्हयन्—धिक्कारते हुए; स्तुवन्—प्रशंसा करते हुए; वृत्तिम्—पेशे को; च—तथा; कापोतीम्—खेत से अन्न बीनने के; दुहित्रा—अपनी पुत्री समेत; सः—वह (शुक्राचार्य); ययौ—गया; पुरात्—अपने आवास से।

जब शुक्राचार्य ने देवयानी के साथ घटी घटना सुनी तो वे मन में अत्यन्त दुखी हुए। पुरोहिती वृत्ति को धिक्कारते एवं उञ्छवृत्ति (खेत से अन्न बीनने) की प्रशंसा करते हुए उन्होंने पुत्री सहित अपना घर छोड़ दिया।

तात्पर्य : जब ब्राह्मण कपोत अर्थात् कबूतर की वृत्ति ग्रहण करता है तो वह खेत से अन्न बीन कर जीवन-निर्वाह करता है। यह *उञ्छवृत्ति* कहलाती है। जो ब्राह्मण उञ्छवृत्ति अपनाता है वह सर्वश्रेष्ठ माना जाता है क्योंकि वह भगवान् की कृपा पर पूर्णतया निर्भर रहता है और किसी से कुछ नहीं माँगता। यद्यपि ब्राह्मण या संन्यासी को भिक्षा माँगने की अनुमति प्राप्त है, किन्तु यदि इससे वह बच सके और अपने उदर-भरण के लिए भगवान् की कृपा पर पूर्णतया निर्भर रहे तो वह अच्छा माना जाता है। शुक्राचार्य निश्चय ही अत्यन्त दुखी थे क्योंकि अपनी पुत्री द्वारा शिकायत किये जाने के कारण उन्हें अपने शिष्य के यहाँ भिक्षा माँगने के लिए बाध्य होना पड़ा क्योंकि उन्होंने पुरोहिती वृत्ति स्वीकार कर रखी थी। शुक्राचार्य मन से इस वृत्ति को पसन्द नहीं करते थे, किन्तु चूँकि उन्होंने इसे स्वीकार कर रखा था अतएव अनिच्छित रूप से उन्हें अपने शिष्य के पास अपनी पुत्री की शिकायत का निबटारा करने के लिए जाना पड़ रहा था।

वृषपर्वा तमाज्ञाय प्रत्यनीकविवक्षितम् ।
गुरुं प्रसादयन्मूर्ध्ना पादयोः पतितः पथि ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

वृषपर्वा—असुरों का राजा; तम् आज्ञाय—शुक्राचार्य का मन्तव्य समझकर; प्रत्यनीक—कोई शाप; विवक्षितम्—कहने की इच्छा करते हुए; गुरुम्—गुरु शुक्राचार्य को; प्रसादयत्—तुरन्त प्रसन्न कर लिया; मूर्ध्ना—अपने सिर से; पादयोः—चरणों पर; पतितः—गिर पड़ा; पथि—मार्ग पर।

राजा वृषपर्वा समझ गया कि शुक्राचार्य उसे प्रताड़ित करने या शाप देने आ रहे हैं। फलस्वरूप, इसके पूर्व कि शुक्राचार्य उसके महल में आयें, वृषपर्वा बाहर आ गया और मार्ग में ही अपने गुरु के चरणों पर गिर पड़ा तथा उनके रोष को रोकते हुए उन्हें प्रसन्न कर लिया।

क्षणार्धमन्युर्भगवाञ्शिष्यं व्याचष्ट भार्गवः ।
कामोऽस्याः क्रियतां राजन्नैनां त्यक्तुमिहोत्सहे ॥ २७॥

शब्दार्थ

क्षण-अर्ध—कुछ ही क्षण; मन्युः—क्रोध; भगवान्—अत्यन्त शक्तिशाली; शिष्यम्—अपने शिष्य वृषपर्वा से; व्याचष्ट—कहा; भार्गवः—भृगुवंशी शुक्राचार्य से; कामः—इच्छा; अस्याः—इस देवयानी की; क्रियताम्—पूरी करो; राजन्—हे राजा; न—नहीं; एनाम्—इस लड़की को; त्यक्तुम्—त्यागने के लिए; इह—इस संसार में; उत्सहे—समर्थ हूँ।

शक्तिशाली शुक्राचार्य कुछ क्षणों तक क्रुद्ध रहे, किन्तु प्रसन्न हो जाने पर उन्होंने वृषपर्वा से कहाः हे राजन, देवयानी की इच्छा पूरी कीजिये क्योंकि वह मेरी पुत्री है और मैं इस संसार में न तो उसे छोड़ सकता हूँ न उसकी उपेक्षा कर सकता हूँ।

तात्पर्य : कभी-कभी शुक्राचार्य जैसा महापुरुष अपने पुत्र-पुत्रियों की अवहेलना नहीं कर सकता क्योंकि पुत्र-पुत्रियाँ स्वभावतः पिता पर आश्रित रहती हैं और पिता का उन पर स्नेह होता है। यद्यपि शुक्राचार्य जानते थे कि देवयानी तथा शर्मिष्ठा का झगड़ा बचकाना है लेकिन देवयानी के पिता के रूप में उन्हें अपनी पुत्री का पक्ष लेना पड़ रहा था। यद्यपि वे ऐसा करना नहीं चाहते थे, किन्तु स्नेहवश विवश थे। उन्होंने यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि उन्हें राजा की कृपा की याचना नहीं करनी चाहिए थी, किन्तु पुत्री-स्नेह के कारण वे ऐसा करने से अपने को बचा नहीं पाये।

तथेत्यवस्थिते प्राह देवयानी मनोगतम् ।
पित्रा दत्ता यतो यास्ये सानुगा यातु मामनु ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

तथा इति—जब राजा वृषपर्वा ने शुक्राचार्य के प्रस्ताव को मान लिया; अवस्थिते—जब इस तरह मामला तय हो गया; प्राह—कहा; देवयानी—शुक्राचार्य की पुत्री ने; मनोगतम्—अपनी इच्छा; पित्रा—पिता द्वारा; दत्ता—दिया गया; यतः—चाहे जिस किसी को; यास्ये—मैं जाऊँगी; स-अनुगा—अपनी सखियों सहित; यातु—जाऊँ; माम् अनु—मेरी दासी के रूप में।

शुक्राचार्य के निवेदन को सुनकर वृषपर्वा देवयानी की मनोकामना पूरी करने के लिए राजी हो गया और वह उसके वचनों की प्रतीक्षा करने लगा। तब देवयानी ने अपनी इच्छा इस प्रकार व्यक्त की, ''जब भी मैं अपने पिता की आज्ञा से विवाह करूँ तो मेरी सखी शर्मिष्ठा अपनी सखियों समेत मेरी दासी के रूप में मेरे साथ चले।''

पित्रा दत्ता देवयान्यै शर्मिष्ठा सानुगा तदा ।
स्वानां तत्सङ्कटं वीक्ष्य तदर्थस्य च गौरवम् ।
देवयानीं पर्यचरत्स्त्रीसहस्रेण दासवत् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

पित्रा—पिता द्वारा; दत्ता—दी गई; देवयान्यै—देवयानी को; शर्मिष्ठा—वृषपर्वा की पुत्री; स-अनुगा—अपनी सखियों सहित; तदा—उस समय; स्वानाम्—अपनी; तत्—वह; सङ्कटम्—कठिन परिस्थिति को; वीक्ष्य—देखकर; तत्—उससे; अर्थस्य—लाभ का; च—भी; गौरवम्—महानता; देवयानीम्—देवयानी को; पर्यचरत्—सेवा की; स्त्री-सहस्रेण—अन्य हजारों स्त्रियों सहित; दास-वत्—दासी के समान।

वृषपर्वा ने बुद्धिमानी के साथ सोचा कि शुक्राचार्य की अप्रसन्नता से संकट आ सकता है और उनकी प्रसन्नता से भौतिक लाभ प्राप्त हो सकता है। अतएव उसने शुक्राचार्य का आदेश शिरोधार्य किया और दास की तरह उनकी सेवा की। उसने अपनी पुत्री शर्मिष्ठा को देवयानी को सौंप दिया और शर्मिष्ठा ने अपनी अन्य हजारों सखियों सहित दासी की तरह उसकी सेवा की।

तात्पर्य : प्रारम्भ में हम शर्मिष्ठा तथा देवयानी के विषय में देख चुके हैं कि शर्मिष्ठा की अनेक सखियाँ थीं। अब ये सखियाँ देवयानी की दासी बन गईं। जब किसी लड़की की शादी क्षत्रिय राजा से होती थी तो उसकी सारी सखियों को उसके साथ ससुराल जाने की प्रथा थी। उदाहरणार्थ, जब वसुदेव ने कृष्ण की माता देवकी से विवाह किया तो उन्होंने उसकी छहों बहनों से शादी की और उनकी जितनी सखियाँ थीं वे भी साथ-साथ ससुराल गई थीं। राजा को न केवल अपनी पत्नी का भरण करना होता था अपितु अपनी पत्नी की अनेक सखियों तथा दासियों का भी पोषण करना पड़ता था। इनमें से कुछ दासियाँ गर्भवती हो जाती थीं तो उनके बच्चे उत्पन्न होते थे। ऐसे बालकों को दासीपुत्र के रूप में स्वीकार किया जाता था और राजा उनका भी भरण करता था। स्त्रियों की जनसंख्या सदैव पुरुषों से अधिक रही है, किन्तु स्त्री को पुरुष द्वारा सुरक्षा प्रदान किए जाने की आवश्यकता होती है अतएव राजा उन अनेक लड़कियों का भरण करता था जो रानी की सखियाँ या दासियाँ होती थीं। कृष्ण को गृहस्थ जीवन में हम १६१०८ पत्नियों से विवाहित पाते हैं। ये दासियाँ नहीं थीं अपितु रानियाँ थीं और कृष्ण ने इनमें से प्रत्येक के भरण-पोषण के लिए उतने ही रूपों में अपना विस्तार किया था। यह सामान्य लोगों के लिए सम्भव नहीं है। अतएव भले ही राजाओं को अनेक दासियों तथा पत्नियों का पालन करना पड़ता रहा हो लेकिन उन सबों के पृथक्-पृथक् निवास नहीं होते थे।

नाहुषाय सुतां दत्त्वा सह शर्मिष्ठयोशना ।
तमाह राजञ्छर्मिष्ठामाधास्तल्पे न कर्हिचित् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

नाहुषाय—नहुष के पुत्र ययाति को; सुताम्—पुत्री; दत्त्वा—विवाह में देकर; सह—साथ; शर्मिष्ठया—वृषपर्वा की पुत्री तथा देवयानी की दासी शर्मिष्ठा के; उशना—शुक्राचार्य ने; तम्—उस (राजा से); आह—कहा; राजन्—हे राजा; शर्मिष्ठाम्—वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा को; आधाः—अनुमति दें; तल्पे—अपने बिस्तर में; न—नहीं; कर्हिचित्—कभी भी।

जब शुक्राचार्य ने देवयानी का विवाह ययाति से कर दिया तो उसने शर्मिष्ठा को भी उसके साथ जाने दिया लेकिन राजा को चेतावनी दी "हे राजन, इस शर्मिष्ठा को कभी अपनी सेज में अपने साथ शयन करने की अनुमति मत देना।"

विलोक्यौशनसीं राजञ्छर्मिष्ठा सुप्रजां क्वचित् ।
तमेव वव्रे रहसि सख्याः पतिमृतौ सती ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

विलोक्य—देखकर; औशनसीम्—शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी को; राजन्—हे राजा परीक्षित; शर्मिष्ठा—वृषपर्वा की पुत्री ने; सु-प्रजाम्—सुन्दर सन्तान वाली; क्वचित्—किसी समय; तम्—उस (राजा ययाति) से; एव—निस्सन्देह; वव्रे—प्रार्थना की; रहसि—एकान्त में; सख्याः—अपनी सखी के; पतिम्—पति को; ऋतौ—उपयुक्त समय पर; सती—उस स्थिति में रहकर।

हे राजा परीक्षित, देवयानी के सुन्दर पुत्र को देखकर एक बार शर्मिष्ठा संभोग के लिए उचित अवसर पर राजा ययाति के पास पहुँची। उसने एकान्त में अपनी सखी देवयानी के पति राजा ययाति से प्रार्थना की कि उसे भी पुत्रवती बनायें।

राजपुत्र्यार्थितोऽपत्ये धर्मं चावेक्ष्य धर्मवित् ।
स्मरञ्छुक्रवचः काले दिष्टमेवाभ्यपद्यत ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

राज-पुत्र्या—शर्मिष्ठा से जो एक राजा की पुत्री थी; अर्थितः—अनुरोध किए जाने पर; अपत्ये—पुत्र लाभ के लिए; धर्मम्—धर्म को; च—भी; अवेक्ष्य—विचार करके; धर्म-वित्—धर्म का ज्ञाता; स्मरन्—स्मरण करते हुए; शुक्र-वचः—शुक्राचार्य की चेतावनी; काले—समय पर; दिष्टम्—संयोगवश; एव—निस्सन्देह; अभ्यपद्यत—(शर्मिष्ठा की इच्छा पूरी करने के लिए) स्वीकार कर लिया।

जब राजकुमारी शर्मिष्ठा ने राजा ययाति से पुत्र के लिए याचना की तो अपने धर्म से अवगत राजा उसकी इच्छा पूरी करने के लिए राजी हो गया। यद्यपि उसे शुक्राचार्य की चेतावनी स्मरण थी, किन्तु इस मिलन को परमेश्वर की इच्छा मानकर उसने शर्मिष्ठा के साथ संभोग किया।

तात्पर्य : राजा ययाति को क्षत्रिय-धर्म का पूरा-पूरा ज्ञान था। यदि कोई स्त्री क्षत्रिय के पास पहुँचे तो वह उसे ना नहीं कर सकता। यही धर्म का नियम है। इसीलिए जब धर्मराज युधिष्ठिर ने देखा कि द्वारका से लौटने पर अर्जुन अप्रसन्न है तो उन्होंने पूछा कि कहीं उसने पुत्र की कामना से आई हुई किसी स्त्री को ना तो नहीं की। यद्यपि महाराज ययाति को शुक्राचार्य की चेतावनी स्मरण थी, किन्तु वे शर्मिष्ठा से ना नहीं कर

पाये। उन्होंने सोचा कि उसे पुत्र-दान देना बुद्धिमानी होगी; अतएव उन्होंने उसके मासिक-धर्म के बाद उससे संभोग किया। इस प्रकार की भोगेच्छा धर्म के विरुद्ध नहीं है। जैसा कि *भगवद्गीता* (७.११) में कहा गया है— *धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि*—ऐसा विषयी जीवन जो धर्म के विरुद्ध न हो उसकी छूट कृष्ण देते हैं। चूँकि राजपुत्री शर्मिष्ठा ने ययाति से पुत्र-प्राप्ति की इच्छा व्यक्त की थी इसलिए उनका संयोग विषय-सुख के लिए नहीं था अपितु वह धर्म-कार्य था।

यदुं च तुर्वसुं चैव देवयानी व्यजायत ।
द्रुह्युं चानुं च पूरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

यदुम्—यदु को; च—तथा; तुर्वसुम्—तुर्वसु को; च एव—तथा; देवयानी—देवयानी ने; व्यजायत—जन्म दिया; द्रुह्युम्—द्रुह्यु को; च—तथा; अनुम्—अनु को; च—भी; पूरुम्—पुरु को; च—भी; शर्मिष्ठा—शर्मिष्ठा ने; वार्षपर्वणी—वृषपर्वा की पुत्री।

देवयानी ने यदु तथा तुर्वसु को जन्म दिया और शर्मिष्ठा ने द्रुह्यु, अनु तथा पुरु को जन्म दिया।

गर्भसम्भवमासुर्या भर्तुर्विज्ञाय मानिनी ।
देवयानी पितुर्गेहं ययौ क्रोधविमूर्छिता ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

गर्भ-सम्भवम्—गर्भ-धारण; आसुर्याः—शर्मिष्ठा का; भर्तुः—अपने पति से सम्भव बनाया गया; विज्ञाय—जानकर (ब्राह्मण ज्योतिषियों से); मानिनी—अत्यन्त गर्वीली; देवयानी—शुक्राचार्य की पुत्री; पितुः—अपने पिता के; गेहम्—घर को; ययौ—गई; क्रोध-विमूर्छिता—क्रोध से मूर्छित।

जब गर्वीली देवयानी बाहरी स्रोतों से जान गई कि शर्मिष्ठा उसके पति से गर्भवती हुई है तो वह क्रोध से मूर्छित हो उठी और वह अपने पिता के घर (मायके) चली गई।

प्रियामनुगतः कामी वचोभिरुपमन्त्रयन् ।
न प्रसादयितुं शेके पादसंवाहनादिभिः ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

प्रियाम्—अपनी प्रियतमा के; अनुगतः—पीछे-पीछे जाकर; कामी—अत्यन्त विषयी; वचोभिः—शब्दों से; उपमन्त्रयन्—खुश करने; न—नहीं; प्रसादयितुम्—प्रसन्न करने के लिए; शेके—समर्थ था; पाद-संवाहन-आदिभिः—उसके पाँव दबाकर के भी।

चूँकि राजा ययाति अत्यन्त विषयी था अतएव वह अपनी पत्नी के पीछे-पीछे हो लिया। उसने उसे पकड़ कर मीठे शब्द कहे तथा उसके पाँव दबाकर उसे प्रसन्न करने का प्रयास किया, किन्तु वह उसे किसी भी तरह मना न पाया।

शुक्रस्तमाह कुपितः स्त्रीकामानृतपूरुष ।
त्वां जरा विशतां मन्द विरूपकरणी नृणाम् ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

शुक्रः—शुक्राचार्य; तम्—उस (राजा ययाति) से; आह—बोला; कुपितः—उस पर क्रुद्ध होकर; स्त्री-काम—स्त्रियों से विषय-भोग की इच्छा करने वाले; अनृत-पूरुष—हे झूठे व्यक्ति; त्वाम्—तुमको; जरा—वृद्धावस्था, अशक्तता; विशताम्—प्रवेश करे; मन्द—अरे मूर्ख; विरूप-करणी—कुरूप बनाने वाली; नृणाम्—मनुष्यों के शरीरों को।

शुक्राचार्य अत्यन्त क्रुद्ध थे। उन्होंने कहा, ''अरे झूठे! मूर्ख! स्त्रीकामी! तुमने बहुत बड़ी गलती की है। अतएव मैं शाप देता हूँ कि तुम पर बुढ़ापा तथा अशक्तता का आक्रमण हो जिससे तुम कुरूप बन जाओ।''

श्रीययातिरुवाच
अतृप्तोऽस्म्यद्य कामानां ब्रह्मन्दुहितरि स्म ते ।
व्यत्यस्यतां यथाकामं वयसा योऽभिधास्यति ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

श्री-ययातिः उवाच—राजा ययाति ने कहा; अतृप्तः—असंतुष्ट; अस्मि—मैं हूँ; अद्य—आज तक; कामानाम्—अपनी विषयवासनाओं को तृप्त करने के लिए; ब्रह्मन्—हे विद्वान ब्राह्मण; दुहितरि—पुत्री के सम्बन्ध में; स्म—भूतकाल में; ते—तुम्हारी; व्यत्यस्यताम्—आदान-प्रदान करो; यथा-कामम्—जब तक तुम विषयी हो; वयसा—युवावस्था (जवानी) से; यः अभिधास्यति—जो तुम्हारी वृद्धावस्था से अपनी युवावस्था को बदलने के लिए इच्छुक हो।

राजा ययाति ने कहा : ''हे विद्वान पूज्य ब्राह्मण, अभी भी तुम्हारी पुत्री के साथ मेरी कामेच्छाएँ पूरी नहीं हुईं।'' तब शुक्राचार्य ने उत्तर दिया, ''चाहो तो तुम अपने बुढ़ापे को किसी ऐसे व्यक्ति से बदल लो जो तुम्हें अपनी युवावस्था देने को तैयार हो।''

तात्पर्य : जब राजा ययाति ने कहा कि उसकी विषय-वासनाएँ शुक्राचार्य की पुत्री के साथ भोग करने से पूरी नहीं हुईं तो शुक्राचार्य ने देखा कि यह तो उनकी पुत्री के अहित में है कि ययाति वृद्धावस्था में रहने लगे क्योंकि तब उनकी कामिनी पुत्री की भोगेच्छा पूरी नहीं होगी। अतएव शुक्राचार्य ने अपने दामाद को यह वर दिया कि वह अपने बुढ़ापे को किसी की जवानी से बदल ले। उन्होंने संकेत किया कि यदि ययाति का पुत्र अपनी जवानी देकर ययाति का बुढ़ापा स्वीकार कर ले तो ययाति देवयानी के साथ संभोग कर सकता है।

इति लब्धव्यवस्थानः पुत्रं ज्येष्ठमवोचत ।
यदो तात प्रतीच्छेमां जरां देहि निजं वयः ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; लब्ध-व्यवस्थानः—अपना बुढ़ापा बदलने का अवसर पाकर; पुत्रम्—अपने बेटे से; ज्येष्ठम्—सबसे बड़े; अवोचत—प्रार्थना की; यदो—हे यदु; तात—तुम मेरे प्रिय पुत्र हो; प्रतीच्छ—बदल लो; इमाम्—इस; जराम्—बुढ़ापे को, अशक्तता को; देहि—तथा दे दो; निजम्—अपनी; वयः—जवानी।

जब ययाति को शुक्राचार्य से यह वर प्राप्त हो गया तो उसने अपने सबसे बड़े पुत्र से अनुरोध किया, ''हे पुत्र यदु, तुम मेरी वृद्धावस्था तथा अशक्तता के बदले में मुझे अपनी जवानी दे दो।''

मातामहकृतां वत्स न तृप्तो विषयेष्वहम् ।
वयसा भवदीयेन रंस्ये कतिपयाः समाः ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

मातामह-कृताम्—तुम्हारे नाना शुक्राचार्य द्वारा प्रदत्त; वत्स—मेरे बेटे; न—नहीं; तृप्तः—सन्तुष्ट; विषयेषु—विषयी जीवन में, इन्द्रियतृप्ति में; अहम्—मैं; वयसा—उम्र से; भवदीयेन—तुम्हारी; रंस्ये—विषयभोग का आनन्द लूँगा; कतिपयाः—कुछ; समाः—वर्ष।

''हे पुत्र, मैं अपनी विषयेच्छाओं से अभी भी तुष्ट नहीं हो पाया। किन्तु यदि तुम मुझ पर दया करो तो अपने नाना द्वारा प्रदत्त बुढ़ापे को ले सकते हो तथा अपनी जवानी मुझे दे सकते हो जिससे मैं कुछ वर्ष और जीवन का भोग कर लूँ।''

तात्पर्य : विषय-वासनाओं की यही प्रकृति है। *भगवद्गीता* (७.२०) में कहा गया है *कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः* जब कोई इन्द्रियतृप्ति के प्रति अत्यधिक अनुरक्त रहता है तो वह वास्तव में अपना ज्ञान खो देता है। *हृतज्ञानाः* शब्द ज्ञान खोने वाले का सूचक है। यहाँ ऐसा उदाहरण है जिसमें एक पिता ने निर्लज्जतापूर्वक अपने पुत्र से वृद्धावस्था के बदले अपनी जवानी देने के लिए कहा। निस्सन्देह, सारा संसार ऐसे ही मोह से ग्रस्त है। इसीलिए कहा गया है कि हर व्यक्ति *प्रमत्तः* या पागल है। *नूनं प्रमत्तः कुरुते विकर्म* जब मनुष्य उन्मत्त जैसा हो जाता है तो वह विषय-भोग तथा इन्द्रियतृप्ति में लिप्त रहने लगता है। किन्तु विषयभोग तथा इन्द्रियतृप्ति को वश में किया जा सकता है और जब विषयभोग की इच्छा नहीं रह जाती तो मनुष्य को सिद्धि प्राप्त होती है। ऐसा तभी सम्भव है जब कोई पूरी तरह कृष्णभावनाभावित हो

यदवधि मम चेतः कृष्णपादारविन्दे

नवनवरसधामन्युद्यतं रन्तुमासीत्।

तदवधि बत नारीसङ्गमे स्मर्यमाने

भवति मुखविकारः सुष्ठुनिष्ठीवनं च॥

"जब से मैं कृष्ण की दिव्य प्रेमाभक्ति में लगा हूँ और नित्य नये आनन्द का अनुभव करने लगा हूँ तब से जब भी मैं विषय-सुख के बारे में सोचता हूँ तो इस विचार पर थूकता हूँ और मेरे होठ घृणा से टेढ़े हो जाते हैं।" विषय-भोग की इच्छा तभी रोकी जा सकती है जब कोई पूरी तरह कृष्णभावनाभावित हो, अन्यथा ऐसा सम्भव नहीं है। जब तक मनुष्य में भोगेच्छा रहती है तब तक उसे शरीर बदल कर विभिन्न योनियों में विषय-सुख भोगने के लिए देहान्तर करना पड़ता है। भले ही योनियाँ या रूप बदल जाए, किन्तु विषय-व्यापार तो जैसे का तैसा रहता है। इसीलिए कहा गया है *पुनःपुनश्चर्वितचर्वणानाम्।* जो लोग विषय-भोग में अत्यधिक लिप्त रहते हैं वे देहान्तर करते रहते हैं और उनका एक ही व्यापार रहता है चर्वित-चर्वण करना, अर्थात् कूकरों-सूकरों या देवताओं की तरह विषय-सुख का स्वाद लेना।

श्रीयदुरुवाच
नोत्सहे जरसा स्थातुमन्तरा प्राप्तया तव ।
अविदित्वा सुखं ग्राम्यं वैतृष्ण्यं नैति पूरुषः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

श्री-यदुः उवाच—ययाति के ज्येष्ठ पुत्र यदु ने उत्तर दिया; न उत्सहे—मैं उत्सुक नहीं हूँ; जरसा—आपके बुढ़ापे तथा अशक्तता से; स्थातुम्—रहने के लिए; अन्तरा—जवानी में; प्राप्तया—स्वीकार किया हुआ; तव—आपका; अविदित्वा—बिना अनुभव किये; सुखम्—सुख; ग्राम्यम्—भौतिक या शारीरिक; वैतृष्ण्यम्—भौतिक सुख से विरक्ति; न—नहीं; एति—प्राप्त करता है; पूरुषः—व्यक्ति।

यदु ने उत्तर दिया: हे पिताजी, यद्यपि आप भी तरुण पुरुष थे, किन्तु आपने वृद्धावस्था प्राप्त कर ली है। किन्तु मुझे आपका बुढ़ापा तथा जर्जरता तनिक भी मान्य नहीं है क्योंकि भौतिक सुख का भोग किये बिना कोई विरक्ति प्राप्त नहीं कर सकता।

तात्पर्य : भौतिक भोग से विरक्ति ही मानव जीवन का चरम लक्ष्य है। इसीलिए वर्णाश्रम व्यवस्था अत्यन्त वैज्ञानिक है। इसका लक्ष्य मनुष्य को भगवद्धाम वापस जाने की सुविधा प्रदान करना है जिसे समस्त सांसारिक सम्बन्धों का परित्याग किये बिना प्राप्त कर सकना असम्भव है। श्रीचैतन्य महाप्रभु ने कहा था *निष्किञ्चनस्य भगवद्भजनोन्मुखस्य* जो भगवद्धाम वापस जाना चाहता है उसे *निष्किञ्चन* होना चाहिए अर्थात् भौतिक भोग के सारे आकर्षणों से मुक्त होना चाहिए। *ब्रह्मण्युपशमाश्रयम्* पूर्ण विरक्त हुए बिना ब्रह्म में या

भक्ति में स्थिर नहीं हुआ जा सकता। ब्रह्मपद पर ही भक्ति की जा सकती है। अतएव जब तक मनुष्य ब्रह्मपद को प्राप्त नहीं कर लेता तब तक वह भक्ति में नहीं लग सकता। अथवा दूसरे शब्दों में, भक्ति में संलग्न व्यक्ति पहले से ब्रह्मपद पर रहता है।

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।

स गुणान्समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते॥

''जो पूरी तरह भक्ति में लगा रहता है, जो किसी भी परिस्थिति में पतित नहीं होता वह तुरन्त ही प्रकृति के गुणों को पार करके ब्रह्मपद को प्राप्त होता है।'' (*भगवद्गीता* १४.२६) अतएव जिसे भक्ति प्राप्त हो जाती है वह निश्चित रूप से मुक्त हो जाता है। सामान्यतया जब तक कोई व्यक्ति भौतिक सुख का भोग न कर ले तब तक वह वैराग्य प्राप्त नहीं कर सकता। इसीलिए *वर्णाश्रम* क्रमशः उत्थान के लिए अवसर प्रदान करता है। महाराज ययाति के पुत्र यदु ने बतलाया कि वह अपनी जवानी त्याग पाने में असमर्थ है क्योंकि वह इसका उपयोग भविष्य में संन्यास आश्रम प्राप्त करने के लिए करना चाहता है।

महाराज यदु अपने भाइयों से भिन्न थे। जैसा कि अगले श्लोक में कहा गया है*तुर्वसुश्चोदितः पित्रा द्रुह्युश्चानुश्च भारत। प्रत्याचख्युरधर्मज्ञाः।* महाराज यदु के भाइयों ने अपने पिता के प्रस्ताव को मानने से इसलिए मना कर दिया क्योंकि वे धर्म से भलीभाँति अवगत न थे। उन आदेशों को स्वीकार करना जो धर्म का अनुसरण करते हैं, विशेष रूप से पिता के आदेशों का पालन, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अतएव जब महाराज यदु के भाइयों ने अपने पिता के आदेश को नहीं माना तो यह सचमुच धर्मविरुद्ध था। किन्तु महाराज यदु द्वारा निषेध धर्मसम्मत था। जैसा कि दशम स्कन्ध मे कहा गया है *यदोश्च धर्मशीलस्य* महाराज यदु धर्म के सिद्धान्तों से पूरी तरह अवगत थे। धर्म का चरम सिद्धान्त अपने को भगवान् की भक्ति में लगाना है। महाराज यदु स्वयं को भगवान् की सेवा में लगाने के लिए अत्यधिक उत्सुक थे, किन्तु एक अवरोध था जवानी में भौतिक इन्द्रियों के भोगने की इच्छा, निश्चय ही, होती है और जब तक इन इच्छाओं को जवानी में पूरी तरह तुष्ट नहीं कर लिया जाता तब तक भगवान् की सेवा करने में विघ्न उत्पन्न होने की सम्भावना बनी रहती है। हम ने वास्तव में देखा है कि ऐसे अनेक संन्यासी जो अपरिपक्वावस्था में संन्यास ग्रहण कर लेते हैं अपनी भौतिक इच्छाओं को तुष्ट न किये रहने के कारण विचलित होकर भ्रष्ट हो जाते हैं। इसलिए

सामान्य नियम यह है कि संन्यास के पूर्व गृहस्थ–जीवन तथा वानप्रस्थ–जीवन बिताया जाये और अन्त में संन्यास ग्रहण करके भगवान् की सेवा मे पूरी तरह संलग्न हुआ जाये। महाराज यदु अपने पिता के आदेश को मानने और वृद्धावस्था के बदले जवानी देने के लिए तैयार थे क्योंकि उन्हें विश्वास था कि यह जवानी उनके पिता लौटा देंगे। लेकिन इस आदान–प्रदान से उनकी अनन्य भक्ति में विलम्ब होता। अतएव वे अपने पिता की वृद्धावस्था को स्वीकार नहीं करना चाहते थे क्योंकि वे निर्विघ्न स्वतंत्रता चाहते थे। साथ ही, यदुवंशियों में ही भगवान् कृष्ण को जन्म लेना था और महाराज यदु उत्सुक थे कि भगवान् का प्राकट्य यथासम्भव शीघ्रातिशीघ्र हो। इसीलिए उन्होंने अपने पिता के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। यह धर्म–विहीन नहीं था क्योंकि यदु का उद्देश्य भगवान् की सेवा करना था। चूँकि यदु भगवान् के आज्ञाकारी दास थे, इसलिए कृष्ण ने उनके वंश में जन्म लिया। जैसा कि कुन्ती की प्रार्थना से पुष्टि होती है *यदोः प्रियस्यान्ववाये।* यदु कृष्ण को अत्यन्त प्रिय थे अतएव वे यदु वंश में अवतार लेने के लिए उत्सुक थे। निष्कर्षत: महाराज यदु को अधर्म–ज्ञ नहीं मानना चाहिए जैसा कि अगले श्लोक में उनके भाइयों के लिए कहा गया है। वे (यदु) चार सनक कुमारों (*चतुःसन*) की भाँति थे जिन्होंने उत्तम कार्य के लिए अपने पिता ब्रह्मा के आदेशों को ठुकरा दिया। चूँकि चारों कुमार ब्रह्मचारी के रूप में भगवान् की सेवा करना चाहते थे अतएव उनके द्वारा पिता की आज्ञा को न मानना अधर्म नहीं था।

तुर्वसुश्चोदितः पित्रा द्रुह्युश्चानुश्च भारत ।
प्रत्याचख्युरधर्मज्ञा ह्यनित्ये नित्यबुद्धयः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

तुर्वसुः—तुर्वसु, दूसरा पुत्र; चोदितः—निवेदन किये जाने पर; पित्रा—पिता द्वारा (बुढ़ापे और अशक्तता को जवानी से बदलने के लिए); द्रुह्युः—द्रुह्यु एक और पुत्र; च—तथा; अनुः—एक और पुत्र अनु ने; च—भी; भारत—हे राजा परीक्षित; प्रत्याचख्युः—मानने से मना कर दिया; अधर्म-ज्ञाः—धर्म के सिद्धान्तों को न जानने वाले; हि—निस्सन्देह; अ-नित्ये—नाशवान जवानी; नित्य-बुद्धयः—नित्य मानकर।

हे महाराज परीक्षित, ययाति ने इसी तरह अन्य पुत्रों सेतुर्वसु, द्रुह्यु तथा अनु से वृद्धावस्था के बदले अपनी जवानी देने के लिए निवेदन किया लेकिन वे सभी अधर्मज्ञ थे इसलिए उन्होंने सोचा कि उनकी नाशवान जवानी शाश्वत है अतएव उन्होंने अपने पिता के आदेश को मानने से मना कर दिया।

अपृच्छत्तनयं पूरुं वयसोनं गुणाधिकम् ।
न त्वमग्रजवद्वत्स मां प्रत्याख्यातुमर्हसि ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

अपृच्छत्—निवेदन किया; तनयम्—पुत्र; पूरुम्—पूरु से; वयसा—आयु से; ऊनम्—यद्यपि कम; गुण-अधिकम्—किन्तु गुणों में अन्यों से बढ़कर; न—नहीं; त्वम्—तुम; अग्रज-वत्—अपने बड़े भाइयों के समान; वत्स—हे पुत्र; माम्—मुझको; प्रत्याख्यातुम्—मना करना; अर्हसि—चाहिए।

तत्पश्चात् राजा ययाति ने पूरु से, जो अपने इन तीनों भाइयों से उम्र में छोटा था किन्तु अधिक योग्य था, इस तरह निवेदन किया, ''हे पुत्र, तुम अपने बड़े भाइयों की तरह अवज्ञाकारी मत बनो क्योंकि यह तुम्हारा कर्तव्य नहीं है।''

श्रीपूरुरुवाच
को नु लोके मनुष्येन्द्र पितुरात्मकृतः पुमान् ।
प्रतिकर्तुं क्षमो यस्य प्रसादाद्विन्दते परम् ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

श्री-पूरुः उवाच—पूरु ने कहा; कः—क्या; नु—निस्सन्देह; लोके—इस संसार में; मनुष्य-इन्द्र—मनुष्यों में श्रेष्ठ, हे महाराज; पितुः—पिता; आत्म-कृतः—इस शरीर को देने वाले; पुमान्—व्यक्ति; प्रतिकर्तुम्—चुकता करने के लिए; क्षमः—समर्थ है; यस्य—जिसकी; प्रसादात्—कृपा से; विन्दते—भोगता है; परम्—श्रेष्ठ जीवन।

पूरु ने उत्तर दिया, ''हे महाराज, ऐसा कौन होगा जो अपने पिता के ऋण से उऋण हो सके? पिता की ही कृपा से मनुष्य को मनुष्य-जीवन प्राप्त होता है जिससे वह भगवान् का संगी बनने में सक्षम हो सकता है।

तात्पर्य : पिता शरीर का बीजदाता है और यह बीज क्रमशः विकसित होकर मनुष्य का विकसित रूप धारण करता है जिसमें पशुओं की अपेक्षा उच्चतर चेतना होती है। इस मनुष्य-शरीर से मनुष्य स्वर्ग जा सकता है और यदि कोई कृष्णभावनामृत का विकास करे तो वह भगवद्धाम वापस जा सकता है। यह महत्त्वपूर्ण मानव शरीर पिता के अनुग्रह से प्राप्त होता है; अतएव हर व्यक्ति अपने पिता का ऋणी होता है। निस्सन्देह, दूसरी योनियों में भी उसे माता-पिता मिलते हैं, यहाँ तक कि कुत्ते-बिल्लियों के भी माता-पिता होते हैं। किन्तु मनुष्य-जीवन में पुत्र के माता-पिता जो सबसे बड़ा वर दे सकते हैं वह उसे भक्त बनने की शिक्षा है। जब कोई भक्त बन जाता है तो उसे सबसे बड़ा वर प्राप्त होता है क्योंकि वह जन्म-मरण के चक्कर से बच जाता है। अतएव जो पिता अपनी सन्तान को कृष्णभक्त बनने का प्रशिक्षण देता है वही इस संसार में सबसे बड़ा उपकारी पिता है। कहा गया है :

जनमे जनमे सबे पितामाता पाय।

कृष्ण गुरु नहि मिले भज हरि एइ॥

माता पिता तो हर एक को मिलते हैं, किन्तु यदि मनुष्य को कृष्ण तथा गुरु का वर प्राप्त हो जाय तो वह भौतिक प्रकृति को जीत सकता है और भगवद्धाम वापस जा सकता है।

उत्तमश्चिन्तितं कुर्यात्प्रोक्तकारी तु मध्यमः ।
अधमोऽश्रद्धया कुर्यादकर्तोच्चरितं पितुः ॥ ४४॥

शब्दार्थ

उत्तमः—सर्वश्रेष्ठ; चिन्तितम्—पिता के विचार को मानते हुए; कुर्यात्—तदनुसार कर्म करता है; प्रोक्त-कारी—जो अपने पिता के आदेशानुसार कार्य करता है; तु—निस्सन्देह; मध्यमः—बीच की कोटि के; अधमः—निम्न श्रेणी के; अश्रद्धया—श्रद्धाविहीन; कुर्यात्—करता है; अकर्ता—न करने की इच्छा से युक्त; उच्चरितम्—मल के समान; पितुः—पिता के।

''जो पुत्र अपने पिता की इच्छा को जानकर उसी के अनुसार कर्म करता है वह प्रथम श्रेणी का (उत्तम) होता है; जो अपने पिता की आज्ञा पाकर कार्य करता है वह द्वितीय श्रेणी का (मध्यम) होता है और जो पुत्र अपने पिता के आदेश का पालन अनादरपूर्वक करता है वह तृतीय श्रेणीका (अधम) होता है। किन्तु जो पुत्र अपने पिता की आज्ञा का उल्लंघन करता है वह अपने पिता के मल के समान है।''

तात्पर्य : ययाति के सबसे छोटे पुत्र पूरु ने तुरन्त ही अपने पिता के प्रस्ताव को मान लिया क्योंकि वह छोटा होने पर भी अत्यन्त योग्य था। पूरु ने सोचा, ''मुझे तो पिता के प्रस्ताव को उनके कहने के पूर्व ही मान लेना चाहिए था, किन्तु मैंने ऐसा नहीं किया। अतएव मैं उत्तमश्रेणी का पुत्र नहीं हूँ, मैं तो मध्यम कोटि का पुत्र हूँ। किन्तु मैं अधमतम श्रेणी का पुत्र नहीं बनना चाहता जो पिता के मल के समान होता है।'' एक भारतीय कवि ने पुत्र और मूत्र के बारे में कहा है। 'पुत्र' का अर्थ होता है 'बेटा' और 'मूत्र' का अर्थ हैं 'पेशाब'। पुत्र तथा मूत्र दोनों एक ही अंग से निकलते हैं। यदि पुत्र भगवान् का आज्ञाकारी भक्त हो तो वह पुत्र अर्थात् असली बेटा है अन्यथा अविद्वान तथा अभक्त पुत्र मूत्र के तुल्य होता है।

इति प्रमुदितः पूरुः प्रत्यगृह्णाज्जरां पितुः ।
सोऽपि तद्वयसा कामान्यथावज्जुजुषे नृप ॥ ४५॥

शब्दार्थ

इति—इस तरह; प्रमुदितः—अत्यन्त हर्षित; पूरुः—पूरु ने; प्रत्यगृह्णात्—स्वीकार कर लिया; जराम्—वृद्धावस्था को; पितुः—पिता की; सः—उस पिता ने; अपि—भी; तत्-वयसा—अपने पुत्र की जवानी से; कामान्—सारी इच्छाओं को; यथा-वत्—आवश्यकतानुसार; जुजुषे—तुष्ट किया; नृप—हे महाराज परीक्षित।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा: हे महाराज परीक्षित, इस तरह पूरु अपने पिता ययाति की वृद्धावस्था को ग्रहण करके अत्यन्त हर्षित था। पिता ने अपने पुत्र की जवानी ग्रहण कर ली और फिर इच्छानुसार इस भौतिक जगत का भोग किया।

सप्तद्वीपपतिः संयक्पितृवत्पालयन्प्रजाः ।
यथोपजोषं विषयाञ्जुजुषेऽव्याहतेन्द्रियः ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

सप्त-द्वीप-पतिः—सात द्वीपों वाले समस्त विश्व का स्वामी; संयक्—पूरी तरह; पितृ-वत्—पिता के समान; पालयन्—शासन करते हुए; प्रजाः—प्रजा; यथा-उपजोषम्—जी भरकर; विषयान्—भौतिक सुख को; जुजुषे—भोगा; अव्याहत—किसी व्यवधान के बिना; इन्द्रियः—अपनी इन्द्रियों को।

तत्पश्चात् राजा ययाति सात द्वीपों वाले विश्व का शासक बन गया और प्रजा पर पिता के समान शासन करने लगा। चूँकि उसने अपने पुत्र की जवानी ले ली थी अतएव उसकी इन्द्रियाँ अक्षत थीं और उसने जी भरकर भौतिक सुख का भोग किया।

देवयान्यप्यनुदिनं मनोवाग्देहवस्तुभिः ।
प्रेयसः परमां प्रीतिमुवाह प्रेयसी रहः ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

देवयानी—महाराज ययाति की पत्नी, शुक्राचार्य की बेटी ने; अपि—भी; अनुदिनम्—दिन प्रति दिन, चौबीसों घंटे; मनः-वाक्—अपने मन तथा वाणी; देह—शरीर; वस्तुभिः—सारी आवश्यक वस्तुओं से; प्रेयसः—अपने प्रिय पति का; परमाम्—दिव्य; प्रीतिम्—आनन्द; उवाह—सम्पन्न किया; प्रेयसी—अपने पति की अत्यन्त प्यारी; रहः—एकान्त में, बिना किसी उत्पात के।

महाराज ययाति की प्रेयसी देवयानी अपने मन, वचन, शरीर तथा विविध सामग्री से सदैव एकान्त में अपने पति को यथासम्भव दिव्य परमानन्द प्रदान करती रही।

अयजद्यज्ञपुरुषं क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ।
सर्वदेवमयं देवं सर्ववेदमयं हरिम् ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

अयजत्—पूजा की; यज्ञ-पुरुषम्—यज्ञपुरुष या भगवान् की; क्रतुभिः—विविध यज्ञों द्वारा; भूरि-दक्षिणैः—ब्राह्मणों को प्रभूत दक्षिणा देकर; सर्व-देव-मयम्—सारे देवताओं के आगार; देवम्—परमेश्वर को; सर्व-वेद-मयम्—सारे वैदिक ज्ञान के परम लक्ष्य; हरिम्—भगवान् हरि को।

राजा ययाति ने विविध यज्ञ सम्पन्न किये और उनमें उन्होंने समस्त देवताओं के आगार एवं समस्त वैदिक ज्ञान के लक्ष्य भगवान् हरि को तुष्ट करने के लिए ब्राह्मणों को प्रचुर दक्षिणाएँ दीं।

यस्मिन्निदं विरचितं व्योम्नीव जलदावलिः ।
नानेव भाति नाभाति स्वप्नमायामनोरथः ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

यस्मिन्—जिसमें; इदम्—यह पूरा विशाल जगत; विरचितम्—उत्पन्न; व्योम्नि—आकाश में; इव—सदृश; जलद-आवलिः—बादल; नाना इव—मानों विभिन्न प्रकार के; भाति—प्रकट होता है; न आभाति—प्रकट नहीं होता है; स्वप्न-माया—मोह जो स्वप्न की तरह है; मनः-रथः—मन रूपी रथ द्वारा चलने वाला।

भगवान् वासुदेव, जिन्होंने विराट जगत की सृष्टि की है, अपने को सर्वव्यापक रूप में प्रकट करते हैं जिस तरह आकाश बादलों को धारण करता है। जब इस सृष्टि का संहार हो जाता है तब सारी वस्तुएँ भगवान् विष्णु में प्रवेश करती हैं और सारे भेद-प्रभेद समाप्त हो जाते हैं।

तात्पर्य : जैसा कि स्वयं भगवान् ने *भगवद्गीता* (७.१९) में कहा है :

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते।

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥

''अनेकानेक जन्म-मरण के बाद जो वास्तव में ज्ञानी है वह मुझी को समस्त कारणों का कारण जानते हुए मेरी शरण में आता है। ऐसा महापुरुष अत्यन्त विरला होता है।'' भगवान् वासुदेव परब्रह्म हैं। प्रारम्भ में सारी वस्तुएँ उन्हीं में रहती हैं और अन्त में सब कुछ उन्हीं में प्रवेश कर जाता है। वे हर एक के हृदय में स्थित हैं (*सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः*)। उन्हीं से सारी वस्तुएँ उद्भूत हैं। (*जन्माद्यस्य यतः*), किन्तु सारी भौतिक वस्तुएँ क्षणिक या नाशवान हैं। स्वप्न, माया तथा मनोरथ क्षणिक हैं। इसी प्रकार सारी भौतिक सृष्टि भी क्षणिक है लेकिन भगवान् वासुदेव, जो परब्रह्म हैं, शाश्वत हैं।

तमेव हृदि विन्यस्य वासुदेवं गुहाशयम् ।
नारायणमणीयांसं निराशीरयजत्प्रभुम् ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

तम् एव—उसको ही; हृदि—हृदय में; विन्यस्य—रखकर; वासुदेवम्—भगवान् वासुदेव को; गुह-आशयम्—सबके हृदय में विद्यमान रहने वाले; नारायणम्—नारायण या नारायण के अंश को; अणीयांसम्—सर्वत्र उपस्थित रहकर भी आँखों से अदृश्य; निराशीः—बिना किसी भौतिक इच्छा के ययाति ने; अयजत्—पूजा की; प्रभुम्—परमेश्वर की।

महाराज ययाति ने उन भगवान् की निष्काम भाव से पूजा की जो हर एक के हृदय में नारायण रूप में स्थित हैं और सर्वत्र विद्यमान रहकर भी आँखों से अदृश्य रहते हैं।

तात्पर्य : यद्यपि राजा ययाति ऊपर से भौतिक भोग के परम इच्छुक प्रतीत होते थे, किन्तु भीतर भीतर वे भगवान् का नित्य दास बनने के इच्छुक थे।

एवं वर्षसहस्राणि मनःषष्ठैर्मनःसुखम् ।
विदधानोऽपि नातृप्यत्सार्वभौमः कदिन्द्रियैः ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस तरह से; **वर्ष-सहस्राणि**—एक हजार वर्षों तक; **मनः-षष्ठैः**—पाँच ज्ञानेन्द्रियों तथा मन के द्वारा; **मनः-सुखम्**—मन द्वारा उत्पन्न क्षणिक सुख; **विदधानः**—सम्पन्न करते हुए; **अपि**—यद्यपि; **न अतृप्यत्**—संतुष्ट नहीं हुए; **सार्व-भौमः**—सारे जगत का राजा होकर भी; **कत्-इन्द्रियैः**—अशुद्ध इन्द्रियों के कारण।

यद्यपि महाराज ययाति सारे विश्व के राजा थे और उन्होंने एक हजार वर्षों तक अपने मन तथा पाँच इन्द्रियों को भौतिक सम्पत्ति को भोगने में लगाया, किन्तु वे सन्तुष्ट नहीं हो सके।

तात्पर्य : *कद्-इन्द्रिय* अर्थात् अशुद्ध इन्द्रियों को शुद्ध किया जा सकता है यदि इन्द्रियों और मन को कृष्णभावनामृत में लगाया जाय। *सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम्।* मनुष्य को समस्त उपाधियों से मुक्त हो जाना चाहिए। जब तक वह अपने को भौतिक जगत का भोक्ता मानता है तब तक उसकी इन्द्रियाँ अशुद्ध रहती हैं। किन्तु जिस क्षण से उसे आध्यात्मिक अनुभूति हो जाती है और वह अपने को भगवान् के दास के रूप में पहचानता है तो उसकी इन्द्रियाँ तुरन्त शुद्ध हो जाती हैं। शुद्ध की हुई इन्द्रियों को भगवान् की सेवा में लगाना भक्ति कहलाता है। *हृषीकेण हृषीकेशसेवनं भक्तिरुच्यते।* कोई भले ही हजारों वर्षों तक इन्द्रियों का भोग क्यों न करे, जब तक वह इन्द्रियों को शुद्ध नहीं कर लेता तब तक वह सुखी नहीं हो सकता।

इस प्रकार *श्रीमद्भागवत* के नवम स्कन्ध के अन्तर्गत "राजा ययाति को यौवन की पुन:प्राप्ति" नामक अठारहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter उन्नीस

राजा ययाति को मुक्ति-लाभ

इस अध्याय में बताया गया है कि जब महाराज ययाति ने बकरे तथा बकरी की प्रतीकात्मक कहानी सुनाई तो उन्हें किस प्रकार मुक्ति प्राप्त हुई।

भौतिक संसार में अनेकानेक वर्षों तक संभोगादि करने के बाद राजा ययाति को अन्ततः ऐसे भौतिक सुख से वितृष्णा हो गई। जब वे भौतिक भोग से ऊब चुके तो उन्होंने बकरे-बकरी की एक कहानी बनाई जो उनके निजी जीवन पर आधारित थी और इसे अपनी प्रियतमा देवयानी को सुनाया। यह कहानी इस प्रकार है।

एक बार जब एक बकरा जंगल में चरने के लिए विविध प्रकार की सब्जियों की तलाश में घूम रहा था तो उसे दैववशात् एक कुँआ मिला जिसके भीतर उसने एक बकरी देखी। वह उस बकरी पर आसक्त हो गया; अतएव उसने किसी तरह से उसे कुएँ से बाहर निकाला और इस तरह वे दोनों मिल गये। उसके बाद एक दिन जब बकरी ने उस बकरे को एक अन्य बकरी के साथ संभोग करते देखा तो वह क्रुद्ध हो उठी और उसने बकरे को त्याग दिया। वह अपने ब्राह्मण मालिक के पास लौट आई और उसने अपने पति के आचरण के विषय में उसे कह सुनाया। ब्राह्मण अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और उसने बकरे को शाप दे दिया कि वह संभोग-शक्ति से विहीन हो जाय। तत्पश्चात् बकरे ने ब्राह्मण से क्षमा माँगी तो उसे संभोग-शक्ति फिर से मिल गई। तब बकरा वर्षों तक बकरी के साथ संभोगरत रहा, किन्तु फिर भी वह अतृप्त रहा। यदि कोई कामी तथा लोभी हो तो विश्व का सारा सोना भी उसकी कामेच्छाओं को तृप्त नहीं कर सकता। ये इच्छाएँ अग्नि के समान हैं। यदि कोई प्रज्ज्वलित अग्नि पर घी डाले तो इससे अग्नि बुझने की आशा नहीं की जा सकती। अग्नि बुझाने के लिए कोई दूसरी विधि अपनानी होगी। इसीलिए शास्त्रों का उपदेश है कि बुद्धि से मनुष्य भोगमय जीवन का परित्याग कर दे। जो लोग अल्पज्ञ हैं वे महान् प्रयास के बिना इन्द्रिय-भोग, और वह भी विषय-भोग, नहीं त्याग सकते क्योंकि सुन्दर स्त्री बड़े से बड़े विद्वान को भी मोहित कर लेती है। किन्तु राजा ययाति ने सांसारिक जीवन का परित्याग कर दिया और अपनी सम्पत्ति अपने पुत्रों में बाँट दी। सारे भौतिक भोगों का आकर्षण त्याग कर संन्यासी का जीवन ग्रहण करके वह भगवान् की सेवा में दत्तचित्त

रहने लगा। इस तरह उसे सिद्धि प्राप्त हो गई। बाद में जब उसकी प्रिय पत्नी देवयानी भ्रमपूर्ण जीवन से मुक्त हुई तो वह भी भगवान् की भक्ति में लग गई।

श्रीशुक उवाच
स इत्थमाचरन्कामान्स्त्रैणोऽपह्नवमात्मनः ।
बुद्ध्वा प्रियायै निर्विण्णो गाथामेतामगायत ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; सः—महाराज ययाति; इत्थम्—इस तरह से; आचरन्—आचरण करते हुए; कामान्—कामेच्छाओं को; स्त्रैणः—स्त्री से अत्यधिक लिप्त; अपह्नवम्—प्रतिक्रिया; आत्मनः—अपने कल्याण के लिए; बुद्ध्वा—बुद्धि से समझते हुए; प्रियायै—अपनी प्रिया देवयानी को; निर्विण्णः—वितृष्णा से भरकर; गाथाम्—कहानी; एताम्—यह; अगायत—सुनायी।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे महाराज परीक्षित, ययाति स्त्री पर अत्यधिक अनुरक्त था। किन्तु कालक्रम से जब वह विषय-भोग तथा इसके बुरे प्रभावों से ऊब गया तो उसने यह जीवन-शैली त्याग दी और अपनी प्रिय पत्नी को निम्नलिखित कहानी सुनाई।

शृणु भार्गव्यमूं गाथां मद्विधाचरितां भुवि ।
धीरा यस्यानुशोचन्ति वने ग्रामनिवासिनः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

शृणु—सुनो; भार्गवि—हे शुक्राचार्य की पुत्री; अमूम्—इस; गाथाम्—कहानी को; मत्-विधा—मेरे आचरण से मिलते-जुलते; आचरिताम्—आचरण के; भुवि—इस संसार में; धीराः—धीर व्यक्ति; यस्य—जिसका; अनुशोचन्ति—पछताते हैं; वने—जंगल में; ग्राम-निवासिनः—भौतिक भोग के प्रति अत्यधिक अनुरक्त।

हे मेरी प्रिय पत्नी एवं शुक्राचार्य की बेटी, इस संसार में बिल्कुल मेरी ही तरह का कोई था। तुम मेरे द्वारा कही जा रही उसके जीवन की कथा सुनो। ऐसे गृहस्थ के जीवन के विषय में सुनकर वे लोग सदैव पछताते हैं जिन्होंने गृहस्थ जीवन से वैराग्य ले लिया है।

तात्पर्य : जो लोग गाँव में रहते हैं वे ग्राम निवासी कहलाते हैं और जो जंगल में रहते हैं वे वनवासी या वानप्रस्थ कहलाते हैं। गृहस्थ जीवन से वैराग्य ग्रहण करने वाले वानप्रस्थ सामान्यतया अपने विगत पारिवारिक जीवन के विषय में पछतावा करते हैं क्योंकि उसके कारण वे कामेच्छाओं की पूर्ति में लगे रहे। प्रह्लाद महाराज ने कहा है कि मनुष्य को चाहिए कि जितनी जल्दी हो सके गृहस्थ जीवन से विरक्त हो ले। उन्होंने गृहस्थ जीवन को अन्धकूप कहा है (*हित्वात्मपातं गृहमन्धकूपम्*)। यदि कोई लगातार या स्थायी

रूप से अपने परिवार के साथ रहने पर बल देता है तो यह समझना चाहिए कि वह आत्मघात कर रहा है। इसीलिए वैदिक सभ्यता में संस्तुति की गई है कि मनुष्य को चाहिए कि पचास वर्ष समाप्त होने पर पारिवारिक जीवन से विरक्त हो ले और वन में चला जाय। जब वह वन में रहने का अभ्यस्त हो ले या वानप्रस्थ में पटु हो जाय तो वह संन्यास ग्रहण कर ले। *वनं गतो यद्धरिमाश्रयेत। संन्यास* का अर्थ है भगवान् की सेवा में अनन्य तल्लीनता स्वीकार करना। इसीलिए वैदिक सभ्यता में जीवन की चार अवस्थाओं की संस्तुति की गई है—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास। मनुष्य को गृहस्थ जीवन में ही बने रहने एवं दो उच्चतर अवस्थाओं—वानप्रस्थ तथा संन्यास तक न उठ पाने के लिए लज्जित होना चाहिए।

बस्त एको वने कश्चिद्विचिन्वन्प्रियमात्मनः ।
ददर्श कूपे पतितां स्वकर्मवशगामजाम् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

बस्तः—बकरा; एकः—एक; वने—वन में; कश्चित्—किसी; विचिन्वन्—भोजन की तलाश करता; प्रियम्—प्रिय; आत्मनः—अपने लिए; ददर्श—संयोगवश देखा; कूपे—कुएँ के भीतर; पतिताम्—गिरी हुई; स्व-कर्म-वश-गाम्—अपने कर्मों के फल के प्रभाव से; अजाम्—बकरी को।

एक बकरा अपनी इन्द्रियों को तुष्ट करने के लिए चरते हुए किसी जंगल में घूमते-घूमते अचानक एक कुएँ के पास आया जिसके भीतर उसने एक बकरी को निस्सहाय खड़ी देखा जो अपने सकाम कर्मों के प्रभाव से कुएँ में गिर गई थी।

तात्पर्य : यहाँ पर महाराज ययाति अपनी तुलना बकरे से और देवयानी की तुलना एक बकरी से करते हैं तथा पुरुष और स्त्री के स्वभाव का वर्णन करते हैं। मनुष्य बकरे की तरह इधर उधर भटकता हुआ इन्द्रियतृप्ति की खोज करता है और स्त्री, पुरुष या पति के आश्रय के बिना, उस बकरी के समान है जो कुएँ में गिर गई है। पुरुष की देखभाल के बिना स्त्री कभी भी सुखी नहीं रह सकती। निस्सन्देह, वह कुएँ के भीतर गिरी हुई बकरी के समान है जो जीवन-संघर्ष कर रही है। अतएव स्त्री को चाहिए कि वह अपने पिता का संरक्षण ग्रहण करे जैसा कि देवयानी ने शुक्राचार्य की देखरेख में रहते हुए किया था। तब पिता को चाहिए कि अपनी पुत्री का दान उपयुक्त व्यक्ति को कर दे या वह उपयुक्त व्यक्ति स्त्री को पति की निगरानी में रख दे। देवयानी के जीवन से यह भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है। जब राजा ययाति ने देवयानी को कुएँ से निकाला था तो उसे बड़े आराम का अनुभव हुआ था और उसने ययाति से उसे अपनी पत्नी बनाने की

प्रार्थना की थी, किन्तु जब महाराज ययाति ने देवयानी को स्वीकार कर लिया तो वह इतना लिप्त रहने लगा कि वह न केवल उसी से संभोग करता अपितु शर्मिष्ठा जैसी अन्य स्त्रियों से भी करने लगा। तो भी वह असंतुष्ट रहा। अतएव मनुष्य को चाहिए कि ययाति जैसे गृहस्थ जीवन से जबरन विरक्त हो जाय। जब मनुष्य को यह पूरा पूरा विश्वास हो जाय कि सांसारिक गृहस्थ जीवन अधम है तो उसे ऐसा जीवन पूर्णतया त्याग कर संन्यास ग्रहण कर लेना चाहिए और भगवान् की सेवा में पूरी तरह लग जाना चाहिए। तभी मनुष्य का जीवन सफल होगा।

तस्या उद्धरणोपायं बस्तः कामी विचिन्तयन् ।
व्यधत्त तीर्थमुद्धृत्य विषाणाग्रेण रोधसी ॥ ४॥

शब्दार्थ

तस्याः—बकरी का; उद्धरण-उपायम्—(कुएँ से) उद्धार का उपाय; बस्तः—बकरे ने; कामी—विषयी; विचिन्तयन्—योजना बनाते हुए; व्यधत्त—सम्पन्न किया; तीर्थम्—बाहर निकालने का उपाय; उद्धृत्य—पृथ्वी खोदकर; विषाण-अग्रेण—पैने सींगों से; रोधसी—कुएँ के किनारे।

बकरी को कुएँ से बाहर निकालने की योजना बनाकर, विषयी बकरे ने अपने तीखे सींगों से कुएँ के किनारे की मिट्टी खोद डाली जिससे वह बकरी कुएँ से बाहर सरलता से निकल सकी।

तात्पर्य : स्त्री के प्रति आकर्षण ही इस संसार में सुखपूर्वक रहने के लिए आर्थिक विकास, आवास तथा अन्य वस्तुओं के प्रोत्साहन का कारण है। बकरी को बाहर निकालने के लिए मिट्टी खोदना अत्यन्त श्रमसाध्य कार्य था, किन्तु बकरी प्राप्त करने के पहले बकरे को यह श्रम करना पड़ा। *अहो गृहक्षेत्रसुताप्त वित्तैर्जनस्य मोहोऽयम् अहं ममेति।* नर तथा नारी के संयोग से अच्छा मकान, अच्छा वेतन, सन्तान तथा मित्र प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहन मिलता है। इस तरह मनुष्य इस भौतिक जगत में फँस जाता है।

सोत्तीर्य कूपात्सुश्रोणी तमेव चकमे किल ।
तया वृतं समुद्वीक्ष्य बह्व्योऽजाः कान्तकामिनीः ।
पीवानं श्मश्रुलं प्रेष्ठं मीढ्वांसं याभकोविदम् ॥ ५ ॥
स एकोऽजवृषस्तासां बह्वीनां रतिवर्धनः ।
रेमे कामग्रहग्रस्त आत्मानं नावबुध्यत ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

सा—वह बकरी; उत्तीर्य—बाहर निकलकर; कूपात्—कुएँ से; सु-श्रोणी—अच्छे पुट्ठों वाली; तम्—बकरे को; एव—निस्सन्देह; चकमे—पति रूप में पाना चाहा; किल—निस्सन्देह; तया—उसके द्वारा; वृतम्—स्वीकृत; समुद्वीक्ष्य—देखकर; बह्व्यः—अन्य

अनेक; अजाः—बकरियाँ; कान्त-कामिनीः—बकरे को अपना पति बनाने की इच्छुक; पीवानम्—अत्यन्त बलिष्ठ; श्मश्रुलम्—अच्छी मूछों तथा दाढ़ी वाले; प्रेष्ठम्—उच्चकोटि का; मीढ्वांसम्—वीर्यस्खलित करने में पटु; याभ-कोविदम्—मैथुन-क्रिया में पटु; सः—वह बकरा; एकः—अकेला; अज-वृषः—बकरियों का नायक; तासाम्—सारी बकरियों का; बह्वीनाम्—अनेक; रति-वर्धनः—कामेच्छा को बढ़ाने में समर्थ; रेमे—भोग किया; काम-ग्रह-ग्रस्तः—कामेच्छा के भूत से सताया हुआ; आत्मानम्—अपने आपको; न—नहीं; अवबुध्यत—समझ सका।

जब सुन्दर पुट्ठों वाली बकरी कुएँ से बाहर आ गई और उसने अत्यन्त सुन्दर बकरे को देखा तो उसने उसे अपना पति बनाना चाहा। जब उसने ऐसा कर लिया तो अन्य अनेक बकरियों ने भी उस बकरे को अपना पति बनाना चाहा क्योंकि उसका शारीरिक गठन अत्यन्त सुन्दर था, उसकी मूँछ तथा दाढ़ी सुन्दर थी और वह वीर्यस्खलन करने तथा संभोग कला में पटु था। अतएव, जिस तरह भूत से सताया गया मनुष्य पागलपन दिखलाता है उसी तरह वह श्रेष्ठ बकरा अनेक बकरियों से आकृष्ट होकर तथा अश्लील कार्यों में लिप्त रहने के कारण आत्म-साक्षात्कार के अपने असली कार्य को भूल गया।

तात्पर्य : भौतिकतावादी सचमुच ही संभोग के प्रति अत्यधिक आकृष्ट रहते हैं। *यन्मैथुनादि गृहमेधि सुखं हि तुच्छम्।* यद्यपि मनुष्य जी भरकर विषयी जीवन बिताने के लिए गृहस्थ बनता है लेकिन वह कभी भी तुष्ट नहीं होता। ऐसा विषयी भौतिकतावादी व्यक्ति बकरे के समान होता है क्योंकि यह कहा जाता है कि वध के लिए ले जाये जाने वाले बकरे को यदि संभोग करने का अवसर मिल जाय तो मरने के पूर्व भी वह संभोग कर लेता है, किन्तु मनुष्य-जीवन तो आत्म-साक्षात्कार के निमित्त है—

तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं

शुद्ध्येद् यस्माद् ब्रह्मसौख्यं त्वनन्तम्।

मनुष्य-जीवन आत्म-साक्षात्कार के लिए है, उस आत्मा के लिए जो शरीर के भीतर है (*देहिनोऽस्मिन् यथा देहे*)। भौतिकतावादी मूढ़ यह नहीं जानता कि वह शरीर नहीं, अपितु शरीर के भीतर का आत्मा है। फिर भी मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी वास्तविक स्थिति को समझे और ज्ञान का अनुशीलन करे जिससे वह इस शारीरिक बन्धन से मुक्त हो सके। जिस प्रकार कोई अभागा मनुष्य भूतप्रेत से सताये जाने पर पागल की तरह कार्य करता है उसी तरह भौतिकतावादी मनुष्य काम रूपी भूतप्रेत से सताये जाने पर अपने असली कार्य को भूल जाता है जिससे वह देहात्मबुद्धि में तथाकथित सुख को भोग सके।

तमेव प्रेष्ठतमया रममाणमजान्यया ।
विलोक्य कूपसंविग्ना नामृष्यद्बस्तकर्म तत् ॥ ७॥

शब्दार्थ

तम्—बकरे को; एव—निस्सन्देह; प्रेष्ठतमया—प्यारी, प्रियतमा द्वारा; रममाणम्—रमण की जाती हुई; अजा—बकरी; अन्यया—दूसरी बकरी से; विलोक्य—देखकर; कूप-संविग्ना—कुएँ में गिरी बकरी; न—नहीं; अमृष्यत्—सहन कर सकी; बस्त-कर्म—बकरे के कार्य को; तत्—वह (मैथुन ही बकरे का व्यापार माना गया है)।

जब उस बकरी ने, जो कुएँ में गिरी थी, देखा कि उसका प्रियतम बकरा किसी दूसरी बकरी से संभोग कर रहा है तो वह बकरे के इस कार्य को सहन नहीं कर पाई।

तं दुर्हृदं सुहृद्रूपं कामिनं क्षणसौहृदम् ।
इन्द्रियाराममुत्सृज्य स्वामिनं दु:खिता ययौ ॥ ८॥

शब्दार्थ

तम्—उस (बकरे) को; दुर्हृदम्—अत्यन्त क्रूर हृदय; सुहृत्-रूपम्—मित्र बनने वाले; कामिनम्—अत्यन्त कामी; क्षण-सौहृदम्—क्षण भर की मित्रता; इन्द्रिय-आरामम्—केवल इन्द्रियतृप्ति या विलासिता में रुचि रखने वाला; उत्सृज्य—छोड़कर; स्वामिनम्—अपने इस पति को या अपने पूर्व पालक को; दु:खिता—अत्यन्त दुखी; ययौ—वह चली गई।

अन्य बकरी के साथ अपने पति के इस आचरण से दुखी उस बकरी ने सोचा कि यह बकरा उसका वास्तविक मित्र नहीं अपितु कठोरहृदय वाला तथा कुछ क्षण के लिए ही मित्र है। अतएव अपने पति के कामी होने के कारण उस बकरी ने उसका साथ छोड़ दिया और अपने पहले वाले स्वामी के पास लौट गई।

तात्पर्य : *स्वामिनम्* शब्द महत्त्वपूर्ण है । स्वामी का अर्थ है रखवाली करने वाला अथवा पति। देवयानी का पालन विवाह के पूर्व शुक्राचार्य द्वारा हो रहा था और विवाह के बाद ययाति द्वारा, किन्तु यहाँ पर स्वामिनम् शब्द बताता है कि देवयानी ने अपने पति ययाति का संरक्षण त्याग दिया और वह अपने पहले वाले रक्षक शुक्राचार्य के यहाँ लौट गई। वैदिक सभ्यता की संस्तुति है कि स्त्री पुरुष के संरक्षण में रहे। बचपन में उसकी रक्षा पिता द्वारा की जानी चाहिए, युवावस्था में उसके पति द्वारा और बुढ़ापे में वयस्क पुत्र द्वारा।किसी भी अवस्था में स्त्री को स्वतंत्रता नहीं दी जानी चाहिए।

सोऽपि चानुगत: स्त्रैण: कृपणस्तां प्रसादितुम् ।
कुर्वन्निडविडाकारं नाशक्नोत्पथि सन्धितुम् ॥ ९॥

शब्दार्थ

सः—वह बकरा; अपि—भी; च—भी; अनुगतः—बकरी का पीछा करता; स्त्रैणः—स्त्री-प्रेमी; कृपणः—अत्यन्त गरीब; ताम्—उसको; प्रसादितुम्—प्रसन्न करने के लिए; कुर्वन्—करते हुए; इडविडा-कारम्—बकरी की भाषा में बोलते हुए; न—नहीं; अशक्नोत्—समर्थ था; पथि—मार्ग में; सन्धितुम्—प्रसन्न करने के लिए।

वह बकरा अत्यन्त दुखी होकर अपनी पत्नी का चाटुकार होने के कारण मार्ग में उसके पीछे-पीछे हो लिया और उसने उसकी भरसक चाटुकारी करनी चाही, किन्तु वह उसे मना नहीं पाया।

तस्य तत्र द्विजः कश्चिदजास्वाम्यच्छिनद्रुषा ।
लम्बन्तं वृषणं भूयः सन्दधेऽर्थाय योगवित् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

तस्य—बकरे का; तत्र—तत्पश्चात्; द्विजः—ब्राह्मण; कश्चित्—कोई; अजा-स्वामी—दूसरी बकरी के मालिक ने; अच्छिनत्—बधिया कर दिया; रुषा—क्रोध में आकर; लम्बन्तम्—लम्बे; वृषणम्—फोते, अण्डकोष को; भूयः—फिर; सन्दधे—जोड़ दिया; अर्थाय—अपने हित में; योग-वित्—योगशक्ति में पटु।

बकरी उस ब्राह्मण के घर गई जो एक दूसरी बकरी का मालिक था और उस ब्राह्मण ने गुस्से में आकर बकरे के लम्बे लटकते अण्डकोष काट लिये। किन्तु बकरे द्वारा प्रार्थना किये जाने पर उस ब्राह्मण ने योगशक्ति से उन्हें फिर से जोड़ दिया।

तात्पर्य : यहाँ पर शुक्राचार्य को आलंकारिक रूप में दूसरी बकरी का पति बताया गया है। इससे सूचित होता है कि किसी भी समाज में चाहे वह मानव समाज से उच्चतर हो या निम्नतर, बकरी बकरे जैसा ही सम्बन्ध होता है क्योंकि पुरुष और स्त्री का भौतिक सम्बन्ध संभोग का है। *यन्मैथुनादि गृहमेधिसुखं हि तुच्छम्।* शुक्राचार्य पारिवारिक मामलों के आचार्य थे जिसमें बकरे के वीर्य को बकरी में स्थानान्तरित करना होता है। *कश्चिद् अजास्वामी* शब्द निश्चित रूप से बताते हैं कि शुक्राचार्य किसी भी तरह ययाति से श्रेष्ठ न थे क्योंकि दोनों ही शुक्र या वीर्य द्वारा उत्पन्न पारिवारिक मामलों में रुचि रखते थे। शुक्राचार्य ने सर्वप्रथम ययाति को शाप दिया था कि वह वृद्ध हो जाय जिससे वह संभोग न कर सके, किन्तु जब उन्होंने देखा कि इससे उन्हीं की पुत्री को दण्ड मिलेगा तो उन्होंने अपनी योगशक्ति से ययाति के पुंसत्व को फिर से स्थापित कर दिया। चूँकि उन्होंने अपनी योगशक्ति का प्रयोग पारिवारिक मामलों में किया था, भगवान् की अनुभूति प्राप्त करने के लिए नहीं, अतएव यह योग के जादू का अभ्यास बकरा-बकरी के संभोग के समान था। योगशक्ति का समुचित प्रयोग भगवान् के साक्षात्कार करने में होना चाहिए जैसा कि साक्षात् भगवान् ने *भगवद्गीता* (६.४७) में संस्तुति की है—

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।

श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥

''समस्त योगियों में से जो योगी श्रद्धापूर्वक मुझमें विश्वास करता है और दिव्य प्रेमाभक्ति से मेरी पूजा करता है वह योग में मुझसे भलीभाँति युक्त रहता है और सबों में श्रेष्ठ है।''

सम्बद्धवृषणः सोऽपि ह्यजया कूपलब्धया ।
कालं बहुतिथं भद्रे कामैर्नाद्यापि तुष्यति ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

सम्बद्ध-वृषणः—जिसके अण्डकोषों को जोड़ दिया गया हो; सः—वह; अपि—भी; हि—निस्सन्देह; अजया—बकरी के साथ; कूप-लब्धया—कुएँ से मिली; कालम्—समय के लिए; बहु-तिथम्—दीर्घकालीन; भद्रे—हे प्रिय पत्नी; कामैः—कामेच्छाओं सहित; न—नहीं; अद्य अपि—आज तक; तुष्यति—संतुष्ट होता है।

हे प्रिये, जब बकरे के अण्डकोष जुड़ गये तो उसने कुएँ से मिली बकरी के साथ सम्भोग किया और यद्यपि वह अनेकानेक वर्षों तक भोग करता रहा, किन्तु आज भी वह पूरी तरह सन्तुष्ट नहीं हो पाया है।

तात्पर्य : जब कोई अपनी पत्नी के स्नेह में आबद्ध होता है तो वह संभोग-वासनाओं से लिप्त रहता है जिन्हें जीत पाना अत्यन्त कठिन है। अतएव वैदिक सभ्यता के अनुसार मनुष्य को चाहिए कि स्वेच्छा से अपने तथाकथित घर को छोड़कर जंगल चला जाय। *पञ्चाशोर्ध्वं वनं व्रजेत्।* मनुष्य जीवन ऐसी ही तपस्या के लिए है। घर पर संभोग के जीवन को स्वेच्छा से त्याग कर और जंगल जाकर भक्तों की संगति में आध्यात्मिक कार्यों में लगकर मनुष्य मानव जीवन के असली उद्देश्य को प्राप्त करता है।

तथाहं कृपणः सुभ्रु भवत्याः प्रेमयन्त्रितः ।
आत्मानं नाभिजानामि मोहितस्तव मायया ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

तथा—बकरे की तरह; अहम्—मैं; कृपणः—कंजूस, जिसे जीवन के महत्त्व का कोई ज्ञान नहीं है; सु-भ्रु—हे सुन्दर भौहों वाली; भवत्याः—तुम्हारे साथ; प्रेम-यन्त्रितः—मानों प्रेम में बँधा हूँ जो कि वास्तव में विषयवासना है; आत्मानम्—आत्मसाक्षात्कार (जो मैं हूँ और जो मेरा धर्म है); न अभिजानामि—अभी तक समझ नहीं पाया; मोहितः—मोहित होकर; तव—तुम्हारे; मायया—आकर्षक भौतिक स्वरूप के द्वारा।

हे सुन्दर भौहों वाली प्रिये, मैं उसी बकरे के सदृश हूँ क्योंकि मैं इतना मन्दबुद्धि हूँ कि मैं तुम्हारे सौन्दर्य से मोहित होकर आत्म-साक्षात्कार के असली कार्य को भूल गया हूँ।

तात्पर्य : यदि कोई अपनी पत्नी के तथाकथित सौन्दर्य में फँसा रहता है तो उसका गृहस्थ-जीवन अन्धकूप के तुल्य है। *हित्वात्मपातं गृहमन्धकूपम्।* ऐसे अन्धकूप में रहना निश्चित रूप से आत्मघात है। यदि कोई दयनीय भौतिक जीवन से छुटकारा चाहता है तो उसे स्वेच्छापूर्वक अपनी पत्नी के साथ अपने विषय-भोगों को त्यागना होगा अन्यथा आत्म-साक्षात्कार का प्रश्न ही नहीं उठता। जब तक कोई आध्यात्मिक चेतना में बहुत आगे न बढ़ा-चढ़ा हो तब तक गृहस्थ जीवन अन्धकूप के सिवा कुछ भी नहीं है जिसमें उसे आत्मघात करना होता है। इसीलिए महाराज प्रह्लाद ने संस्तुति की है कि यथासमय, कम से कम जब मनुष्य पचास वर्ष का हो जाय तो उसे घरबार छोड़कर वन में चले जाना चाहिए। *वनं गतो यद्धरिम् आश्रयेत।* वहाँ उसे हरि के चरणकमलों की शरण ग्रहण करनी चाहिए।

यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।
न दुह्यन्ति मनःप्रीतिं पुंसः कामहतस्य ते ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

यत्—जो भी; पृथिव्याम्—इस संसार के भीतर; व्रीहि—अन्न, धान; यवम्—जौ; हिरण्यम्—सोना; पशवः—पशु; स्त्रियः—स्त्रियाँ, पत्नियाँ; न दुह्यन्ति—नहीं देती हैं; मनः-प्रीतिम्—मन की तुष्टि; पुंसः—पुरुष को; काम-हतस्य—विषयवासनाओं के शिकार होने के कारण; ते—वे।

कामी पुरुष का मन कभी तुष्ट नहीं होता भले ही उसे इस संसार की हर वस्तु प्रचुर मात्रा में उपलब्ध क्यों न हो, जैसेकि धान, जौ, अन्य अनाज, सोना, पशु तथा स्त्रियाँ इत्यादि। उसे किसी वस्तु से संतोष नहीं होता।

तात्पर्य : भौतिकतावादी का लक्ष्य अपनी आर्थिक दशा को सुधारना है, किन्तु इस आर्थिक विकास का कोई अन्त नहीं है क्योंकि यदि मनुष्य अपनी कामेच्छाओं को वश में नहीं करता तो वह कभी भी सन्तुष्ट नहीं होगा, भले ही उसे विश्व भर की सम्पत्ति क्यों न मिल जाये। इस युग में हमें पर्याप्त भौतिक विकास दिखता है तो भी लोग अधिकाधिक भौतिक ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिए संघर्षरत हैं। *मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।* यद्यपि प्रत्येक जीव परम पुरुष का अंश है, किन्तु कामेच्छाओं के कारण वह अपनी तथाकथित आर्थिक दशा को सुधारने के नाम पर निरन्तर संघर्षशील रहता है। मनस्तुष्टि प्राप्त करने के लिए कामेच्छाओं के मनो-रोग को त्यागना होगा। यह तभी हो सकता है जब कोई कृष्णभावनाभावित हो।

भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं

हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीर:

(भागवत *१०.३३.३९*)

कृष्णभावनाभावित होने पर मनोरोग जाता रहता है अन्यथा कामेच्छाओं का यह रोग चलता रहेगा और मनुष्य को कभी भी मन:शान्ति प्राप्त नहीं हो सकेगी।

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शांयति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥ १४॥

शब्दार्थ

न—नहीं; जातु—किसी भी समय; कामः—कामेच्छा; कामानाम्—कामी पुरुषों की; उपभोगेन—कामेच्छाओं के भोग द्वारा; शांयति—शान्त की जा सकती है; हविषा—घी द्वारा; कृष्ण-वर्त्मा—अग्नि; इव—सदृश; भूयः—बार बार; एव—निस्सन्देह; अभिवर्धते—अधिकाधिक बढ़ती है।

जिस तरह अग्नि में घी डालने से अग्नि शान्त नहीं होती अपितु अधिकाधिक बढ़ती जाती है उसी प्रकार निरन्तर भोग द्वारा कामेच्छाओं को रोकने का प्रयास कभी भी सफल नहीं हो सकता। (तथ्य तो यह है कि मनुष्य को स्वेच्छा से भौतिक इच्छाएँ समाप्त करनी चाहिए।)

तात्पर्य : इन्द्रियों की तृप्ति के लिए मनुष्य के पास प्रचुर धन तथा साधन प्राप्त होने पर भी वह कभी तुष्ट नहीं हो पाता क्योंकि भोग द्वारा कामेच्छाओं को रोक पाने में सफलता नहीं मिल सकती। यहाँ पर दिया गया दृष्टान्त अत्यन्त उपयुक्त है। कोई व्यक्ति घी डालकर प्रज्ज्वलित अग्नि को बुझा नहीं सकता।

यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेष्वमङ्गलम् ।
समदृष्टेस्तदा पुंसः सर्वाः सुखमया दिशः ॥ १५॥

शब्दार्थ

यदा—जब; न—नहीं; कुरुते—करता है; भावम्—अनुरक्ति या द्वेष से भिन्न मनोवृत्ति; सर्व-भूतेषु—सारे जीवों पर; अमङ्गलम्—अशुभ; सम-दृष्टेः—समदृष्टि होने से; तदा—उस समय, तब; पुंसः—पुरुष का; सर्वाः—सारी; सुख-मयाः—सुखी अवस्था में; दिशः—दिशाएँ।

जब मनुष्य द्वेष-रहित होता है और किसी का बुरा नहीं चाहता तो वह समदर्शी होता है। ऐसे व्यक्ति के लिए सारी दिशाएँ सुखमय प्रतीत होती हैं।

तात्पर्य : प्रबोधानन्द सरस्वती ने कहा है—*विश्वं पूर्णसुखायते*—जब मनुष्य भगवान् चैतन्य के अनुग्रह से कृष्णभावनाभावित बनता है तो उसे सारा संसार सुखी दिखता है और उसे किसी वस्तु की लालसा नहीं

रह जाती। *ब्रह्म-भूत* अवस्था में या दिव्य-साक्षात्कार के पद पर न कोई संताप रहता है न कोई भौतिक आकांक्षा। (*न शोचति न कांक्षति*) जब तक मनुष्य इस जगत में रहता है तब तक कर्म-फल चलते रहते हैं, किन्तु जब मनुष्य कर्म तथा फल से अप्रभावित हो जाता है तो वह भौतिक इच्छाओं का शिकार बनने के खतरे से बच जाता है। इस श्लोक में उन लोगों के लक्षणों का वर्णन हुआ है जो कामेच्छाओं से ऊब गए हैं। जैसा कि श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने बतलाया है जब मनुष्य अपने शत्रु से भी द्वेष नहीं रखता, जब वह किसी से सम्मान नहीं चाहता, उल्टे वह अपने शत्रु तक का भला चाहता है तो वह *परमहंस* कहा जाता है अर्थात् जिसने अपनी कामवासनाओं को पूरी तरह दमित कर लिया है।

या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्जीर्यतो या न जीर्यते ।
तां तृष्णां दुःखनिवहां शर्मकामो द्रुतं त्यजेत् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

या—जो; दुस्त्यजा—जिसको छोड़ पाना अत्यन्त कठिन है; दुर्मतिभिः—भौतिक भोगों में अत्यधिक आसक्त व्यक्तियों द्वारा; जीर्यतः—वृद्धावस्था के कारण अत्यन्त अशक्तों द्वारा भी; या—जो; न—नहीं; जीर्यते—नष्ट होती है; ताम्—ऐसी; तृष्णाम्—इच्छा को; दुःख-निवहाम्—सारे दुखों का मूल कारण; शर्म-कामः—अपने सुख का इच्छुक व्यक्ति; द्रुतम्—शीघ्र ही; त्यजेत्—छोड़ दे।

जो लोग भौतिक भोग में अत्यधिक लिप्त रहते हैं उनके लिए इन्द्रियतृप्ति को त्याग पाना अत्यन्त कठिन है। यहाँ तक कि वृद्धावस्था के कारण अशक्त व्यक्ति भी इन्द्रियतृप्ति की ऐसी इच्छाओं को नहीं त्याग पाता। अतएव जो सचमुच सुख चाहता है उसे ऐसी अतृप्त इच्छाओं को त्याग देना चाहिए क्योंकि ये सारे कष्टों की जड़ हैं।

तात्पर्य : हमने पश्चिमी देशों में वास्तव में देखा है कि जो लोग अस्सी वर्ष के हो चुके हैं वे भी नाइटक्लबों में जाते हैं और शराब पीने तथा स्त्रियों की संगति करने में काफी धन व्यय करते हैं। यद्यपि ऐसे लोग किसी भी वस्तु का भोग करने के लिए पर्याप्त वृद्ध रहते हैं, किन्तु उनकी इच्छाएँ (तृष्णाएँ) नहीं मरती हैं। समय शरीर को भी जर्जर बना देता है जो ऐन्द्रिय तुष्टि का साधन है, किन्तु वृद्ध तथा अशक्त होने पर भी मनुष्य की इच्छाएँ इतनी प्रबल होती हैं कि वह अपनी इन्द्रियों की इच्छापूर्ति के लिए इधर-उधर मारा-मारा फिरने पर विवश हो जाता है। अतएव भक्तियोग के अभ्यास से मनुष्य को अपनी कामेच्छाएँ त्याग देनी चाहिए। जैसा कि श्री यामुनाचार्य ने बतलाया है—

यदवधि मम चेतः कृष्णपादारविन्दे

नवनवरसधामन्युद्यतं रन्तुमासीत्।

तदवधि बत नारीसंगमे स्मर्यमाने

भवति मुखविकारः सुष्ठुनिष्ठीवनं च॥

जब मनुष्य कृष्णभावनाभावित बन जाता है तो उसे कृष्ण के लिए कार्य करने से अधिकाधिक सुख मिलता है। ऐसा व्यक्ति इन्द्रियतृप्ति पर, विशेष रूप से विषय-भोग पर, थूकता है। अनुभवी प्रगत भक्त की रुचि विषयी जीवन में नहीं रहती। कृष्णभावनामृत में प्रगति के द्वारा ही संभोग की प्रबल इच्छा को दमित किया जा सकता है।

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा नाविविक्तासनो भवेत् ।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥ १७॥

शब्दार्थ

मात्रा—माता के साथ; स्वस्रा—बहन के साथ; दुहित्रा—पुत्री के साथ; वा—अथवा; न—नहीं; अविविक्त-आसनः—एक ही आसन पर सटकर बैठे; भवेत्—हो; बलवान्—अत्यन्त प्रबल; इन्द्रिय-ग्रामः—इन्द्रियसमूह; विद्वांसम्—अत्यन्त विद्वान व्यक्ति को; अपि—भी; कर्षति—उत्तेजित करता है।

मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी माता, बहन या पुत्री के साथ एक ही आसन पर न बैठे क्योंकि इन्द्रियाँ इतनी प्रबल होती हैं कि बड़े से बड़ा विद्वान भी यौन द्वारा आकृष्ट हो सकता है।

तात्पर्य : स्त्रियों के साथ बर्ताव करने का शिष्टाचार सीख लेने से कोई यौन-आकर्षण से मुक्त नहीं हो सकता। जैसा कि यहाँ पर विशेष उल्लेख हुआ है, ऐसा आकर्षण अपनी माता, बहन या पुत्री से भी हो सकता है। सामान्यतया कोई अपनी माता, बहन या पुत्री के प्रति विषयभोग की दृष्टि से आकृष्ट नहीं होता, किन्तु यदि कोई इनके सन्निकट बैठता है तो वह आकृष्ट हो सकता है। यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है। ऐसा कहा जा सकता है कि यदि कोई सभ्य जीवन में बढ़ा-चढ़ा नहीं है तो वह आकृष्ट हो सकता है, किन्तु जैसा कि यहाँ विशेष रूप से उल्लेख हुआ है *विद्वांसमपि कर्षति*—विद्वान भी, चाहे वह भौतिक या आध्यात्मिक दृष्टि से कितना ही बढ़ा-चढ़ा क्यों न हो, विषयवासनाओं द्वारा आकृष्ट हो सकता है। आकर्षण की वस्तु उसकी माता, बहन या पुत्री तक हो सकती है। अतएव स्त्रियों के साथ व्यवहार करते समय मनुष्य को अत्यधिक सावधान रहना चाहिए। चैतन्य महाप्रभु ऐसे व्यवहार में, विशेष रूप से संन्यास ग्रहण करने के बाद, अत्यन्त कठोर थे। उनके पास कोई भी स्त्री प्रणाम करने के लिए नहीं जा पाती थी। यहाँ पर भी यह चेतावनी दी गई

है कि मनुष्य को स्त्रियों के साथ व्यवहार करते हुए अत्यन्त सतर्क रहना चाहिए। ब्रह्मचारी को तो अपनी गुरुपत्नी को भी, यदि वह युवती हो, देखना मना है। कभी-कभी गुरुपत्नी अपने पति के शिष्य से कुछ काम ले सकती है, जिस तरह कि वह अपने पुत्र से ले सकती है, किन्तु यदि गुरुपत्नी युवती हो तो ब्रह्मचारी को उसकी सेवा करना वर्जित है।

पूर्णं वर्षसहस्रं मे विषयान्सेवतोऽसकृत् ।
तथापि चानुसवनं तृष्णा तेषूपजायते ॥ १८॥

शब्दार्थ

पूर्णम्—पूरे; वर्ष-सहस्रम्—एक हजार वर्ष; मे—मेरा; विषयान्—इन्द्रियतृप्ति; सेवतः—भोग करते हुए; असकृत्—निरन्तर; तथा अपि—फिर भी; च—निस्सन्देह; अनुसवनम्—अधिकाधिक; तृष्णा—कामेच्छाएँ; तेषु—इन्द्रियतृप्ति में; उपजायते—बढ़ती जाती है।

मैंने इन्द्रियतृप्ति के भोगने में पूरे एक हजार वर्ष बिता दिये हैं फिर भी ऐसे आनन्द को भोगने की मेरी इच्छा नित्य बढ़ती जाती है।

तात्पर्य : महाराज ययाति अपने वास्तविक अनुभव के आधार पर बताते हैं कि वृद्धावस्था में भी विषयवासनाएँ कितनी प्रबल होती हैं।

तस्मादेतामहं त्यक्त्वा ब्रह्मण्यध्याय मानसम् ।
निर्द्वन्द्वो निरहङ्कारश्चरिष्यामि मृगैः सह ॥ १९॥

शब्दार्थ

तस्मात्—इसलिए; एताम्—ऐसी प्रबल इच्छाओं को; अहम्—मैं; त्यक्त्वा—त्याग कर; ब्रह्मणि—परब्रह्म में; अध्याय—स्थिर करके; मानसम्—मन को; निर्द्वन्द्वः—द्वन्द्व रहित; निरहङ्कारः—मिथ्या अहंकार से रहित; चरिष्यामि—जंगल में विचरण करूँगा; मृगैः सह—जंगली पशुओं के साथ।

अतएव अब मैं इन सारी इच्छाओं को त्याग दूँगा और भगवान् का ध्यान करूँगा। मनोरथों के द्वन्द्वों से तथा मिथ्या अहंकार से रहित होकर मैं जंगल में पशुओं के साथ विचरण करूँगा।

तात्पर्य : जंगल जाकर पशुओं के साथ रहना और भगवान् का ध्यान करना ही कामवासनाओं को त्यागने का एकमात्र उपाय है। जब तक मनुष्य इन कामेच्छाओं को त्याग नहीं देता तब तक उसका मन भौतिक कल्मष से मुक्त नहीं हो सकता। अतएव यदि कोई जन्म, मरण, जरा तथा व्याधि के बन्धन से छूटना चाहता है तो उसे एक निश्चित आयु के बाद जंगल चले जाना चाहिए। *पञ्चाशोर्ध्वं वनं व्रजेत्।* पचास वर्ष के बाद मनुष्य को स्वेच्छा से पारिवारिक जीवन छोड़कर जंगल चले जाना चाहिए। सर्वश्रेष्ठ जंगल वृन्दावन है

जहाँ उसे पशुओं के साथ रहने की आवश्यकता नहीं अपितु वहाँ वह भगवान् के साथ रह सकता है क्योंकि वे वृन्दावन कभी नहीं छोड़ते। वृन्दावन में कृष्णभावनामृत का अनुशीलन करना भौतिक बंधन से मुक्त होने का सर्वोत्तम उपाय है क्योंकि वृन्दावन में मनुष्य स्वत: कृष्ण का ध्यान कर सकता है। वृन्दावन में अनेक मन्दिर हैं और इनमें से किसी न किसी में राधाकृष्ण या कृष्णबलराम के रूप में भगवान् के स्वरूप का दर्शन किया जा सकता है और इस स्वरूप का ध्यान किया जा सकता है। जैसा कि यहाँ *ब्रह्मण्यध्याय* शब्दों द्वारा व्यक्त किया गया है, मनुष्य को अपना मन परब्रह्म में केन्द्रित करना चाहिए। यह परब्रह्म कृष्ण है जिसकी पुष्टि *भगवद्गीता* में अर्जुन द्वारा की गई है (*परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्*)। कृष्ण तथा उनका धाम वृन्दावन पृथक् नहीं हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभु ने कहा है—*आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनम्।* वृन्दावन कृष्ण के ही समान है। अतएव यदि किसी को वृन्दावन में रहने का सौभाग्य प्राप्त हो और यदि वह धूर्त न हो अपितु वृन्दावन में केवल रहता ही हो तथा अपना मन कृष्ण में एकाग्र करता हो तो वह भवबन्धन से छूट जाता है। किन्तु उस का मन वृन्दावन में भी शुद्ध नहीं हो पाता, यदि वह कामेच्छाओं से विचलित हो। मनुष्य को वृन्दावन में रहते हुए अपराध नहीं करना चाहिए क्योंकि वृन्दावन में अपराधी जीवन बन्दरों तथा सूअरों के जीवन के तुल्य होगा। वृन्दावन में अनेक बंदर तथा सूअर रहते हैं और उन्हें संभोग की इच्छा बनी रहती है। जो लोग वृन्दावन जा करके भी संभोग के लिए लालायित रहते हैं उन्हें तुरन्त ही वृन्दावन छोड़ देना चाहिए और भगवान् के चरणकमलों पर किये जाने वाले गम्भीर अपराधों को रोक देना चाहिए। ऐसे अनेक दिग्भ्रमित व्यक्ति हैं जो अपनी कामेच्छा की पूर्ति के लिए वृन्दावन में रहते हैं, किन्तु वे बन्दरों तथा सूअरों के ही समान हैं। जो लोग माया के अधीन हैं और विशेष रूप से कामेच्छाओं के वशीभूत हैं वे *मायामृग* कहलाते हैं। निस्सन्देह, सभी लोग भौतिक जीवन की बद्ध अवस्था में मायामृग ही होते हैं। कहा गया है—*मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद्*—श्रीचैतन्य महाप्रभु ने इस संसार के मायामृगों अर्थात् उन मनुष्यों पर, जो कामेच्छाओं के कारण कष्ट पा रहे हैं, अपनी अहैतुकी कृपा दिखाने के लिए संन्यास ग्रहण किया। लोगों को श्रीचैतन्य महाप्रभु के सिद्धान्तों का पालन करना चाहिए और पूर्ण कृष्णभावनामृत में कृष्ण का सदैव चिन्तन करना चाहिए। तभी वे वृन्दावन में रहने के योग्य होंगे और उनका जीवन सफल हो सकेगा।

दृष्टं श्रुतमसद्बुद्ध्वा नानुध्यायेन्न सन्दिशेत् ।
संसृतिं चात्मनाशं च तत्र विद्वान्स आत्मदृक् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

दृष्टम्—हमारे द्वारा वर्तमान जीवन में अनुभूत भौतिक भोग; **श्रुतम्**—भौतिक भोग जो सकाम कर्मियों को भावी सुख के लिए मिलना है (वर्तमान या अगले जीवन में या स्वर्गलोक आदि में); **असत्**—जो क्षणिक तथा निकृष्ट है; **बुद्ध्वा**—जानकर; **न**—नहीं; **अनुध्यायेत्**—सोचना चाहिए; **न**—न तो; **सन्दिशेत्**—वास्तव में भोग करना चाहिए; **संसृतिम्**—भौतिक जीवन का दीर्घ होना; **च**—तथा; **आत्म-नाशम्**—अपनी स्वाभाविक स्थिति का विस्मरण; **च**—भी; **तत्र**—ऐसे विषय में; **विद्वान्**—पूर्णतया अवगत; **सः**—ऐसा व्यक्ति; **आत्म-दृक्**—स्वरूपसिद्ध ।

जो यह जानता है कि भौतिक सुख चाहे अच्छा हो या बुरा, इस जीवन में हो या अगले जीवन में, इस लोक में हो या स्वर्गलोक में हो, क्षणिक तथा व्यर्थ है और यह जानता है कि बुद्धिमान पुरुष को ऐसी वस्तुओं को भोगने या सोचने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। वह मनुष्य आत्मज्ञानी है। ऐसा स्वरूपसिद्ध व्यक्ति भलीभाँति जानता है कि भौतिक सुख बारम्बार जन्म एवं अपनी स्वाभाविक स्थिति के विस्मरण का एकमात्र कारण है।

तात्पर्य : जीव आत्मा है और भौतिक शरीर उसका बन्धन है। यही आध्यात्मिक ज्ञान का शुभारम्भ है।

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।

तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥

"जिस तरह इस शरीर में देहधारी आत्मा निरन्तर बालपन से युवावस्था और फिर वृद्धावस्था को प्राप्त होता है उसी प्रकार मृत्यु के समय आत्मा दूसरे शरीर में चला जाता है। जो स्वरूपसिद्ध व्यक्ति है वह ऐसे परिवर्तन से मोहग्रस्त नहीं होता।" (*भगवद्गीता* २.१३) मानव जीवन का असली उद्देश्य भौतिक शरीर के बन्धन से मुक्त होना है। इसीलिए कृष्ण बद्ध आत्मा को आत्म-साक्षात्कार सिखाने तथा भवबन्धन से मुक्त होने की विधि बताने के लिए अवतरित होते हैं। *यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। धर्मस्य ग्लानिः* का अर्थ है "जीवन का प्रदूषण।" हमारा जीवन अब प्रदूषित है। इसे शुद्ध किया जाना चाहिए (*सत्त्वं शुद्ध्येत*)। मानव जीवन इसी शुद्धि के लिए है न कि बाह्य शरीर के रूप में सुख का चिन्तन करने के लिए जो भवबन्धन का कारण है। अतएव इस श्लोक में महाराज ययाति उपदेश दे रहे हैं कि हमें जितना भी भौतिक सुख दिखता है तथा जितने की हमें आशा बँधाई जाती है वह सब केवल क्षणिक एवं नश्वर है। *आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।* यदि कोई ब्रह्मलोक भी चला जाय, किन्तु यदि वह भवबन्धन से

मुक्त नहीं है तो वह इस पृथ्वी लोक पर लौट आता है और संसार में दुखमय स्थिति में रहता जाता है (*भूत्वा भूत्वा प्रलीयते*)। मनुष्य को चाहिए कि वह इस जानकारी को सदा मन में रखे ताकि वह इस जीवन में या अगले जीवन में किसी प्रकार के इन्द्रियभोग के प्रति आकृष्ट न हो। जो इस सत्य से पूर्णतया अवगत रहता है वह स्वरूपसिद्ध है (*स आत्मदृक्*), किन्तु उसके अतिरिक्त अन्य सारे लोग जन्म-मृत्यु के चक्र में फँसे रहते हैं (*मृत्युसंसारवर्त्मनि*)। ऐसा ज्ञान असली बुद्धि का है और इसके विरुद्ध जो कुछ भी है वह दुख का कारण है। *कृष्ण भक्त—निष्काम, अतएव 'शान्त'*। केवल कृष्ण भक्त ही शान्त है क्योंकि वह जीवन के लक्ष्य को जानता है। अन्य सारे लोग, चाहे कर्मी हों या ज्ञानी अथवा योगी, अशान्त रहते हैं और असली शान्ति नहीं भोग पाते।

इत्युक्त्वा नाहुषो जायां तदीयं पूरवे वयः ।
दत्त्वा स्वजरसं तस्मादाददे विगतस्पृहः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

इति उक्त्वा—ऐसा कहकर; नाहुषः—नहुष पुत्र महाराज ययाति; जायाम्—अपनी पत्नी देवयानी से; तदीयम्—उसका; पूरवे—अपने पुत्र पूरु को; वयः—जवानी; दत्त्वा—देकर; स्व-जरसम्—अपने बुढ़ापे को; तस्मात्—उससे; आददे—वापस ले लिया; विगत-स्पृहः—सारी वासनाओं से मुक्त होकर, निस्पृह।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : अपनी पत्नी देवयानी से इस प्रकार कहकर समस्त इच्छाओं से मुक्त हुए राजा ययाति ने अपने सबसे छोटे पुत्र पूरु को बुलाया और उसे उसकी जवानी लौटाकर अपना बुढ़ापा वापस ले लिया।

दिशि दक्षिणपूर्वस्यां द्रुह्युं दक्षिणतो यदुम् ।
प्रतीच्यां तुर्वसुं चक्र उदीच्यामनुमीश्वरम् ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

दिशि—दिशा में; दक्षिण-पूर्वस्याम्—दक्षिण पूर्व; द्रुह्युम्—अपने बेटे द्रुह्यु को; दक्षिणतः—संसार की दक्षिण दिशा में; यदुम्—यदु को; प्रतीच्याम्—पश्चिम दिशा में; तुर्वसुम्—अपने पुत्र तुर्वसु को; चक्रे—बना दिया; उदीच्याम्—उत्तर दिशा में; अनुम्—अपने पुत्र अनु को; ईश्वरम्—राजा।

राजा ययाति ने अपने पुत्र द्रुह्यु को दक्षिण पूर्व की दिशा, अपने पुत्र यदु को दक्षिण की दिशा, अपने पुत्र तुर्वसु को पश्चिमी दिशा और अपने चौथे पुत्र अनु को उत्तरी दिशा दे दी। इस तरह उन्होंने राज्य का बँटवारा कर दिया।

भूमण्डलस्य सर्वस्य पूरुमर्हत्तमं विशाम् ।
अभिषिच्याग्रजांस्तस्य वशे स्थाप्य वनं ययौ ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

भू-मण्डलस्य—सारे पृथ्वीलोक का; सर्वस्य—सारी सम्पत्ति का; पूरुम्—अपने सब से छोटे पुत्र पूरु को; अर्हत्-तमम्—सर्वाधिक पूज्य व्यक्ति, राजा; विशाम्—प्रजा का; अभिषिच्य—अभिषेक करके; अग्रजान्—यदु से लेकर अपने बड़े भाइयों को; तस्य—पूरु के; वशे—नियंत्रण में; स्थाप्य—रखकर; वनम्—वन; ययौ—चला गया।.

ययाति ने अपने सबसे छोटे पुत्र पूरु को सारे विश्व का सम्राट तथा सारी सम्पत्ति का स्वामी बना दिया और पूरु से बड़े अपने अन्य सारे पुत्रों को पूरु के अधीन कर दिया।

आसेवितं वर्षपूगान्षड्वर्गं विषयेषु सः ।
क्षणेन मुमुचे नीडं जातपक्ष इव द्विजः ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

आसेवितम्—सदैव संलग्न रहकर; वर्ष-पूगान्—अनेकानेक वर्षों तक; षट्-वर्गम्—मन समेत छहों इन्द्रियों को; विषयेषु—इन्द्रियभोग में; सः—राजा ययाति ने; क्षणेन—एक ही क्षण के भीतर; मुमुचे—छोड़ दिया; नीडम्—नीड़, घोसला; जात-पक्षः—पंख उग आये हैं; इव—सदृश; द्विजः—पक्षी।.

हे राजा परीक्षित, ययाति ने अनेकानेक वर्षों तक विषयवासनाओं का भोग किया, क्योंकि वे इसके आदी थे, किन्तु उन्होंने एक क्षण के भीतर अपना सर्वस्व त्याग दिया जिस तरह पंख उगते ही पक्षी अपने घोंसले से उड़ जाता है।

तात्पर्य : महाराज ययाति बद्धजीवन के बन्धन से तुरन्त मुक्त हो गये, यह सचमुच आश्चर्यजनक है। लेकिन यहाँ पर जो दृष्टान्त दिया गया है वह उपयुक्त है। पक्षी का एक छोटा-सा बच्चा, जो खाने पीने के लिए भी अपने माता-पिता पर निर्भर रहता है, पंख उगते ही सहसा घोंसले से उड़ जाता है। इसी प्रकार यदि कोई पूर्णतया भगवान् के शरणागत हो जाता है तो वह तुरन्त बद्ध-जीवन के बन्धन से मुक्त हो जाता है जैसा कि स्वयं भगवान् ने वचन दिया है (*अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि*)। *श्रीमद्भागवत* में (२.४.१८) कहा गया है—

किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कशा

आभीरशुम्भा यवनाः खसादयः ।

येऽन्ये च पापा यदपाश्रयाश्रयाः

शुद्ध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ॥

''किरात, हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुल्कश, आभीर, शुम्भ, यवन तथा खस जातियाँ तथा पापकर्मों में लिप्त रहने वाले अन्य लोग भी भगवान् के भक्तों की शरण ग्रहण करने पर शुद्ध हो जाते हैं क्योंकि भगवान् सर्वोच्च शक्ति हैं। मैं उन्हें सादर नमस्कार करता हूँ।''भगवान् विष्णु इतने शक्तिशाली हैं कि यदि वे चाहें तो किसी का भी तुरन्त उद्धार कर सकते हैं और भगवान् विष्णु या कृष्ण को तो तुरन्त प्रसन्न किया जा सकता है यदि हम ययाति की भाँति भगवान् के आदेश को मानकर उनकी शरण ग्रहण कर लें। महाराज ययाति वासुदेव कृष्ण की सेवा करना चाहते थे अतएव ज्यों ही उन्होंने गृहस्थ जीवन से विरक्त होना चाहा त्योंही भगवान् वासुदेव ने उनकी सहायता की। अतएव भगवान् के चरणकमलों में अपने आपको समर्पित करते समय हमें अत्यन्त निष्ठावान होना चाहिए। तब हम बद्धजीवन के सारे बन्धन से तुरन्त छूट सकेंगे। अगले श्लोक में इसकी स्पष्ट व्याख्या की गई है।

स तत्र निर्मुक्तसमस्तसङ्ग
आत्मानुभूत्या विधुतत्रिलिङ्गः ।
परेऽमले ब्रह्मणि वासुदेवे
लेभे गतिं भागवतीं प्रतीतः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

सः—महाराज ययाति; तत्र—ऐसा करके; निर्मुक्त—तुरन्त मुक्त हो गया; समस्त-सङ्गः—सारा कल्मष; आत्म-अनुभूत्या—अपनी स्वाभाविक स्थिति को समझने मात्र से; विधुत—स्वच्छ; त्रि-लिङ्गः—प्रकृति के तीन गुणों (सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण) से उत्पन्न कल्मष; परे—ब्रह्म में; अमले—मलरहित; ब्रह्मणि—परमेश्वर में; वासुदेवे—भगवान् वासुदेव परम सत्य में; लेभे—प्राप्त किया; गतिम्—लक्ष्य; भागवतीम्—भगवान् के पार्षद रूप में; प्रतीतः—सुप्रसिद्ध।

चूँकि राजा ययाति ने भगवान् वासुदेव के चरणकमलों में पूरी तरह अपने को समर्पित कर दिया था अतएव वे प्रकृति के गुणों के सारे कल्मष से मुक्त हो गये। अपने आत्मसाक्षात्कार के कारण वे अपने मन को परब्रह्म वासुदेव में स्थिर कर सके और इस तरह अन्ततः उन्हें भगवान् के पार्षद का पद प्राप्त हुआ।

तात्पर्य : *विधुत्* का अर्थ है 'स्वच्छ' और यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस जगत में प्रत्येक प्राणी कल्मषग्रस्त है (*कारणं गुणसंगोऽस्य*)। क्योंकि हम भौतिक अवस्था में हैं, इस जगत में हम सतोगुण या रजोगुण या तमोगुण से कलुषित होते हैं। यदि कोई सतोगुण के कारण योग्य ब्राह्मण बन भी जाय तो भी वह

भौतिक दृष्टि से कल्मषग्रस्त ही रहता है। उसे सतोगुण पार करके *शुद्ध सत्त्व* पद प्राप्त करना होता है। तभी वह *विधुत-त्रिलिंग* होता है अर्थात् तीनों गुणों से उत्पन्न कल्मष से स्वच्छ बनता है। यह कृष्ण की कृपा से ही सम्भव है। जैसा कि *श्रीमद्भागवत* में (१.२.१७) कहा गया है—

शृण्वतां स्वकथा: कृष्ण: पुण्यश्रवणकीर्तन: ।

हृद्यन्त:स्थो ह्यभद्राणि विधुनोति सुहृत्सताम् ॥

"भगवान् श्रीकृष्ण जो कि हर एक के हृदय में परमात्मास्वरूप स्थित हैं और सच्चे भक्त का उपकार करने वाले हैं, उस भक्त के हृदय की भौतिक भोग की इच्छा को मिटा देते हैं जो उनके उन सन्देशों को सुनने के लिए उत्सुक है जो ठीक से सुनने और उच्चरित होने पर स्वयं वैभवशाली होते हैं।" जो व्यक्ति *श्रीमद्भागवत* या *भगवद्गीता* से कृष्ण के शब्दों को सुनकर पूर्णतया कृष्णभक्त बनने का प्रयास करता है उसके हृदय से निश्चित रूप से सारा मल दूर हो जाता है। चैतन्य महाप्रभु भी कहते हैं— *चेतोदर्पणमार्जनम्*— भगवान् की महिमा का श्रवण तथा कीर्तन करने से हृदय में जमा सारा मल धुल जाता है। ज्योंही मनुष्य भौतिक कल्मष के मल से मुक्त हो जाता है, जैसा कि महाराज ययाति हुए, तो उसे भगवान् के पार्षद का मूलपद प्राप्त हो जाता है। यह स्वरूपसिद्धि कहलाती है।

श्रुत्वा गाथां देवयानी मेने प्रस्तोभमात्मन: ।
स्त्रीपुंसो: स्नेहवैक्लव्यात्परिहासमिवेरितम् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

श्रुत्वा—सुनकर; गाथाम्—कथा; देवयानी—महाराज ययाति की पत्नी देवयानी; मेने—समझ गई; प्रस्तोभम् आत्मन:—अपने आत्म-साक्षात्कार के लिए उपदेश दिये जाने पर; स्त्री-पुंसो:—पति तथा पत्नी के बीच; स्नेह-वैक्लव्यात्—प्रेम तथा स्नेह के विनिमय से; परिहासम्—मजाक या कहानी; इव—सदृश; ईरितम्—कही गई (ययाति द्वारा)।

जब देवयानी ने महाराज ययाति द्वारा कही गई बकरे-बकरी की कथा सुनी तो वह समझ गयी कि हास-परिहास के रूप में पति-पत्नी के मध्य मनोरंजनार्थ कही गई यह कथा उसमें उसकी स्वाभाविक स्थिति को जागृत करने के निमित्त थी।

तात्पर्य : जब मनुष्य भौतिक जीवन के प्रति वास्तव में सजग होता है तो उसे कृष्ण के नित्य दास के रूप में अपनी असली स्थिति का ज्ञान होता है। यह मुक्ति कहलाती है। *मुक्तिर्हित्वान्यथा रूपं स्वरूपेण व्यवस्थिति:* (*भागवत* २.१०.६)। माया के वशीभूत इस जगत में हर जीव अपने को हर वस्तु का स्वामी

मानता है (*अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते*)। मनुष्य सोचता है कि न ईश्वर है, न कोई नियंत्रक और वह कुछ भी करने के लिए स्वतंत्र है। यह भौतिक दशा है और जब मनुष्य इस अज्ञान से जागता है तो वह मुक्त कहलाता है।महाराज ययाति ने देवयानी को कुएँ से निकाला था और अन्त में कर्तव्यनिष्ठ पति की तरह बकरे-बकरी की कथा सुनाकर उसे उपदेश देकर भौतिक सुख की भ्रान्त धारणा से मुक्त किया। देवयानी अपने मुक्त पति को समझ सकने में पूर्णतया सक्षम थी अतएव उसने आज्ञाकारिणी पत्नी के रूप में उसका अनुगमन करने का निश्चय किया।

सा सन्निवासं सुहृदां प्रपायामिव गच्छताम् ।
विज्ञायेश्वरतन्त्राणां मायाविरचितं प्रभोः ॥ २७॥
सर्वत्र सङ्गमुत्सृज्य स्वप्नौपम्येन भार्गवी ।
कृष्णे मनः समावेश्य व्यधुनोल्लिङ्गमात्मनः ॥ २८॥

शब्दार्थ

सा—देवयानी; सन्निवासम्—साथ में रहते हुए; सुहृदाम्—मित्रों तथा सम्बन्धियों के; प्रपायाम्—प्याऊ में; इव—सदृश; गच्छताम्—एक स्थान से दूसरे स्थान की यात्रा करने वालों का; विज्ञाय—जानकर; ईश्वर-तन्त्राणाम्—प्रकृति के कठोर नियमों के अन्तर्गत; माया-विरचितम्—माया द्वारा लागू नियमों को; प्रभोः—भगवान् के; सर्वत्र—इस जगत में सब जगह; सङ्गम्—साथ; उत्सृज्य—छोड़कर; स्वप्न-औपम्येन—स्वप्न के सदृश; भार्गवी—शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी; कृष्णे—कृष्ण में; मनः—पूर्ण ध्यान; समावेश्य—स्थिर करके; व्यधुनोत्—त्याग दिया; लिङ्गम्—स्थूल तथा सूक्ष्म शरीरों को; आत्मनः—आत्मा के।.

तत्पश्चात् शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी समझ गई कि पति, मित्रों तथा सम्बन्धियों का सांसारिक साथ प्याऊ में यात्रियों की संगति के समान है। भगवान् की माया से समाज के सम्बन्ध, मित्रता तथा प्रेम ठीक स्वप्न की ही भाँति उत्पन्न होते हैं। कृष्ण के अनुग्रह से देवयानी ने भौतिक जगत की अपनी काल्पनिक स्थिति छोड़ दी। उसने अपने मन को पूरी तरह कृष्ण में स्थिर कर दिया और स्थूल तथा सूक्ष्म शरीरों से मोक्ष प्राप्त कर लिया।

तात्पर्य : मनुष्य को आश्वस्त होना चाहिए कि वह परब्रह्म कृष्ण का अंश दिव्य आत्मा है, किन्तु न जाने किस तरह वह पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा अहंकार से रचित स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर के भौतिक आवरण में बन्दी हो गया है। मनुष्य को जान लेना चाहिए कि समाज का साथ, मित्रता, प्रेम, राष्ट्रीयता, धर्म इत्यादि माया की सृष्टियाँ हैं। मनुष्य का एकमात्र व्यापार कृष्णभक्त बनना और यथासम्भव कृष्ण की अधिकाधिक सेवा करना है। इस तरह मनुष्य भवबन्धन से छूटता है। कृष्ण के अनुग्रह

से देवयानी को यह स्थिति अपने पति के उपदेशों से प्राप्त हुई।

नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे ।
सर्वभूताधिवासाय शान्ताय बृहते नमः ॥ २९॥

शब्दार्थ

नमः—नमस्कार करती हूँ; तुभ्यम्—तुमको; भगवते—भगवान्; वासुदेवाय—वासुदेव को; वेधसे—स्रष्टा; सर्व-भूत-अधिवासाय—सर्वव्यापी (प्रत्येक जीव के हृदय में तथा प्रत्येक अणु में भी); शान्ताय—शान्त, मानो पूर्णतया निष्क्रिय हो; बृहते—सबों में विशालतम; नमः—नमस्कार करती हूँ।

हे भगवान् वासुदेव, हे पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर, आप समस्त विराट जगत के स्रष्टा हैं। आप सबों के हृदय में परमात्मा रूप में निवास करते हैं और सूक्ष्मतम से सूक्ष्मतर होते हुए भी बृहत्तम से बृहत्तर हैं तथा सर्वव्यापक हैं। आप परम शान्त लगते हैं मानो आपको कुछ करना-धरना न हो लेकिन ऐसा आपके सर्वव्यापक स्वभाव एवं सर्व ऐश्वर्य से पूर्ण होने के कारण है। अतएव मैं आपको सादर नमस्कार करती हूँ।

तात्पर्य : यहाँ पर इस बात का वर्णन किया गया है कि अपने महान् पति के अनुग्रह से देवयानी किस तरह स्वरूपसिद्ध बन सकी। ऐसे साक्षात्कार का वर्णन करना भक्ति सम्पन्न करने की दूसरी विधि है।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।

अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।

''भगवान् विष्णु के पवित्र नाम, रूप, गुण, साज-सामान तथा लीलाओं को सुनना और उनका कीर्तन करना, उनका स्मरण करना, भगवान् के चरणकमलों की सेवा करना, भगवान् की पूजा करना, प्रार्थना करना, उनका दास बनना, उन्हें अपना सर्वश्रेष्ठ मित्र मानना तथा उन्हें सर्वस्व अर्पित करना—शुद्ध भक्ति की ये नौ विधियाँ हैं। (*भागवत* ७.५.२३)। इनमें से *श्रवणं कीर्तनं* विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। अपने पति से भगवान् वासुदेव की महानता के विषय में श्रवण करके देवयानी निश्चित रूप से आश्वस्त हो गई और उसने भगवान् के चरणकमलों में अपने को समर्पित कर दिया (*ॐ नमो भगवते वासुदेवाय*)। यही ज्ञान है *बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।* भगवान् वासुदेव की शरणागति जन्मजन्मातंरों तक उनके विषय में श्रवण करने का परिणाम होती है। ज्योंही मनुष्य भगवान् वासुदेव की शरण में चला जाता है त्योंही वह मुक्त हो जाता है। देवयानी अपने महान् पति महाराज ययाति की संगति से शुद्ध हो गई, उसने भक्तियोग ग्रहण किया

और इस तरह वह मोक्ष को प्राप्त हुई।

इस तरह *श्रीमद्भागवत* के नवम स्कन्ध के अन्तर्गत ''राजा ययाति को मुक्ति-लाभ'' नामक उन्नीसवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter बीस

पूरु का वंश

इस अध्याय में पूरु तथा उसके वंशज दुष्मन्त का इतिहास दिया गया है। पूरु का पुत्र जनमेजय हुआ और उसका पुत्र था प्रचिन्वान। प्रचिन्वान की परम्परा में क्रमशः प्रवीर, मनुस्यु, चारुपद, सुद्यु, बहुगव, संयाति, अहंयाति तथा रौद्राश्व हुए। रौद्राश्व के दस पुत्र थे—ऋतेयु, कक्षेयु, स्थण्डिलेयु, कृतेयुक, जलेयु, सन्नतेयु, धर्मेयु, सत्येयु, व्रतेयु तथा वनेयु। ऋतेयु का पुत्र रन्तिनाव था जिसके तीन पुत्र थे—सुमति, ध्रुव तथा अप्रतिरथ। अप्रतिरथ का पुत्र कण्व था और कण्व का पुत्र मेधातिथि था। मेधातिथि के प्रस्कन्न आदि सभी पुत्र ब्राह्मण थे। रन्तिनाव के पुत्र सुमति से रेभि नामक पुत्र हुआ और रेभि का पुत्र था दुष्मन्त।

एक बार जंगल में शिकार करते हुए दुष्मन्त महर्षि कण्व के आश्रम में पहुँचा जहाँ उसने एक सुन्दर स्त्री को देखा जिस पर वह मोहित हो गया। यह स्त्री विश्वामित्र की पुत्री थी और उसका नाम था शकुन्तला। उसकी माता मेनका थी जिसने उसे जंगल में छोड़ दिया था जहाँ कण्व मुनि को वह मिली थी। कण्व मुनि उसे अपने आश्रम में ले आये और वहाँ उन्होंने उसका पालन-पोषण किया। जब शकुन्तला ने महाराज दुष्मन्त को पति रूप में स्वीकार कर लिया तो महाराज ने गन्धर्व विधि से उसके साथ विवाह कर लिया। बाद में जब शकुन्तला गर्भवती हो गई तो वे उसे कण्व मुनि के आश्रम में छोड़कर अपने राज्य में वापस चले गये।

समयानुसार शकुन्तला ने एक वैष्णव पुत्र को जन्म दिया, किन्तु दुष्मन्त अपनी राजधानी लौटकर सब कुछ भूल गये। अतएव जब शकुन्तला अपने नव-प्रसूत बालक के साथ दुष्मन्त के यहाँ गई, तो उन्होंने उसे अपनी पत्नी तथा पुत्र रूप में स्वीकार करने से मना कर दिया। किन्तु बाद में एक रहस्यपूर्ण शुभ शकुन होने पर राजा ने उसे स्वीकार कर लिया। दुष्मन्त की मृत्यु के बाद शकुन्तलापुत्र भरत राजगद्दी पर बैठा। उसने अनेक महा-यज्ञ किये और ब्राह्मणों को प्रचुर दान दिया। इस अध्याय का अन्त भरद्वाज के जन्म के वर्णन एवं महाराज भरत द्वारा उसे पुत्र रूप में अपनाये जाने के साथ होता है।

श्रीबादरायणिरुवाच

पूरोर्वंशं प्रवक्ष्यामि यत्र जातोऽसि भारत ।
यत्र राजर्षयो वंश्या ब्रह्मवंश्याश्च जज्ञिरे ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-बादरायणिः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; पूरोः वंशम्—महाराज पूरु का वंश; प्रवक्ष्यामि—अब वर्णन करूँगा; यत्र—जिस वंश में; जातः असि—तुम उत्पन्न हुए हो; भारत—हे महाराज भरत के वंशज; यत्र—जिस वंश में; राज-ऋषयः—सारे राजा, जो ऋषि तुल्य थे; वंश्याः—एक के बाद एक; ब्रह्म-वंश्याः—अन्य ब्राह्मण वंश; च—भी; जज्ञिरे—निकले हैं।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे महाराज भरत के वंशज महाराज परीक्षित, अब मैं पूरु के वंश का वर्णन करूँगा जिसमें तुम उत्पन्न हुए हो, जिसमें अनेक राजर्षि हुए हैं, जिनसे अनेक ब्राह्मण वंशों का प्रारम्भ हुआ है।

तात्पर्य : इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण प्राप्त हैं जिनसे हमें ज्ञात होता है कि क्षत्रियों से अनेक ब्राह्मण उत्पन्न हुए और ब्राह्मणों से अनेक क्षत्रिय उत्पन्न हुए। स्वयं भगवान् ने *भगवद्गीता* (४.१३) में कहा है— *चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः*—मैंने प्रकृति के तीनों गुणों तथा उनके कार्यों के अनुसार मानव समाज को चार विभागों में बाँटा है। अतएव कोई चाहे जिस कुल में जन्म ले, जब वह किसी विशेष वर्ग के लक्षणों से युक्त होता है तो उसका वर्णन उसी के अनुसार किया जाता है। *यल्लक्षणं प्रोक्तम्।* समाज के किसी वर्ण में मनुष्य का स्थान उसके लक्षणों या गुणों के अनुसार निश्चित होता है। शास्त्रों में सर्वत्र यही कथन मिलता है। जन्म तो गौण है; पहले तो मनुष्य के गुण तथा कर्म पर विचार किया जाता है।

जनमेजयो ह्यभूत्पूरोः प्रचिन्वांस्तत्सुतस्ततः ।
प्रवीरोऽथ मनुस्युर्वै तस्माच्चारुपदोऽभवत् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

जनमेजयः—राजा जनमेजय; हि—निस्सन्देह; अभूत्—उत्पन्न हुआ; पूरोः—पूरु से; प्रचिन्वान्—प्रचिन्वान; तत्—उसका; सुतः—पुत्र; ततः—उससे (प्रचिन्वान से); प्रवीरः—प्रवीर; अथ—तत्पश्चात्; मनुस्युः—प्रवीर का पुत्र मनुस्यु; वै—निस्सन्देह; तस्मात्—उससे; चारुपदः—राजा चारुपद; अभवत्—हुआ।

पूरु के ही इस वंश में राजा जनमेजय उत्पन्न हुआ। उसका पुत्र प्रचिन्वान था और उसका पुत्र था प्रवीर। तत्पश्चात् प्रवीर का पुत्र मनुस्यु हुआ जिसका पुत्र चारुपद था।

तस्य सुद्युरभूत्पुत्रस्तस्माद्बहुगवस्ततः ।
संयातिस्तस्याहंयाती रौद्राश्वस्तत्सुतः स्मृतः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उस (चारुपद) का; सुद्युः—सुद्यु; अभूत्—उत्पन्न हुआ; पुत्रः—पुत्र; तस्मात्—उससे; बहुगवः—बहुगव नाम का पुत्र; ततः—उससे; संयातिः—संयाति; तस्य—तथा उसका पुत्र; अहंयातिः—अहंयाति; रौद्राश्वः—रौद्राश्व; तत्-सुतः—उसका पुत्र; स्मृतः—विख्यात।

चारुपद का पुत्र सुद्यु था और सुद्यु का पुत्र बहुगव था। बहुगव का पुत्र संयाति था, जिससे अहंयाति नामक पुत्र हुआ और फिर उससे रौद्राश्व उत्पन्न हुआ।

ऋतेयुस्तस्य कक्षेयुः स्थण्डिलेयुः कृतेयुकः ।
जलेयुः सन्नतेयुश्च धर्मसत्यव्रतेयवः ॥ ४॥
दशैतेऽप्सरसः पुत्रा वनेयुश्चावमः स्मृतः ।
घृताच्यामिन्द्रियाणीव मुख्यस्य जगदात्मनः ॥ ५॥

शब्दार्थ

ऋतेयुः—ऋतेयु; तस्य—उसका (रौद्राश्व) का; कक्षेयुः—कक्षेयु; स्थण्डिलेयुः—स्थण्डिलेयु; कृतेयुकः—कृतेयुक; जलेयुः—जलेयु; सन्नतेयुः—सन्नतेयु; च—भी; धर्म—धर्मेयु; सत्य—सत्येयु; व्रतेयवः—तथा व्रतेयु; दश—दस; एते—ये सभी; अप्सरसः—अप्सरा से उत्पन्न; पुत्राः—पुत्र; वनेयुः—वनेयु; च—तथा; अवमः—सबसे छोटा; स्मृतः—विख्यात; घृताच्याम्—घृताची; इन्द्रियाणि इव—दस इन्द्रियों के समान; मुख्यस्य—प्राण का; जगत्-आत्मनः—सारे विश्व का प्राण।

रौद्राश्व के दस पुत्र थे जिनके नाम ऋतेयु, कक्षेयु, स्थण्डिलेयु, कृतेयुक, जलेयु, सन्नतेयु, धर्मेयु, सत्येयु, व्रतेयु तथा वनेयु थे। इन दसों में वनेयु सबसे छोटा था। ये दसों पुत्र रौद्राश्व के पूर्ण नियंत्रण में उसी प्रकार कार्य करते थे जिस तरह विश्वात्मा से उत्पन्न दसों इन्द्रियाँ प्राण के नियंत्रण में कार्य करती हैं। ये सभी घृताची नामक अप्सरा से उत्पन्न हुए थे।

ऋतेयो रन्तिनावोऽभूत्त्रयस्तस्यात्मजा नृप ।
सुमतिर्ध्रुवोऽप्रतिरथः कण्वोऽप्रतिरथात्मजः ॥ ६॥

शब्दार्थ

ऋतेयोः—ऋतेयु से; रन्तिनावः—रन्तिनाव नामक पुत्र; अभूत्—प्रकट हुआ; त्रयः—तीन; तस्य—उसके (रन्तिनाव के); आत्मजाः—पुत्र; नृप—हे राजा; सुमतिः—सुमति; ध्रुवः—ध्रुव; अप्रतिरथः—अप्रतिरथ; कण्वः—कण्व; अप्रतिरथ-आत्मजः—अप्रतिरथ का बेटा।

ऋतेयु से रन्तिनाव नामक पुत्र हुआ जिसके तीन पुत्र हुए जिनके नाम थे सुमति, ध्रुव तथा अप्रतिरथ। अप्रतिरथ के एकमात्र पुत्र का नाम कण्व था।

तस्य मेधातिथिस्तस्मात्प्रस्कन्नाद्या द्विजातयः ।
पुत्रोऽभूत्सुमते रेभिर्दुष्मन्तस्तत्सुतो मतः ॥ ७॥

शब्दार्थ

तस्य—कण्व का; मेधातिथिः—मेधातिथि; तस्मात्—उससे; प्रस्कन्न-आद्याः—प्रस्कन्न आदि; द्विजातयः—सभी ब्राह्मण; पुत्रः—पुत्र; अभूत्—हुए; सुमतेः—सुमति से; रेभिः—रेभि; दुष्मन्तः—महाराज दुष्मन्त; तत्-सुतः—रेभि का पुत्र; मतः—विख्यात है।

कण्व का पुत्र मेधातिथि था जिसके सारे पुत्र ब्राह्मण थे और उनमें प्रमुख प्रस्कन्न था। रन्तिनाव का पुत्र सुमति, सुमति का पुत्र रेभि और रेभि का पुत्र था महाराज दुष्मन्त।

दुष्मन्तो मृगयां यातः कण्वाश्रमपदं गतः ।
तत्रासीनां स्वप्रभया मण्डयन्तीं रमामिव ॥ ८ ॥
विलोक्य सद्यो मुमुहे देवमायामिव स्त्रियम् ।
बभाषे तां वरारोहां भटैः कतिपयैर्वृतः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

दुष्मन्तः—महाराज दुष्मन्त; मृगयाम् यातः—शिकार करने के लिए गया हुआ; कण्व-आश्रम-पदम्—कण्व के आश्रम में; गतः—आया; तत्र—वहाँ; आसीनाम्—बैठी हुई; स्व-प्रभया—अपने सौन्दर्य से; मण्डयन्तीम्—प्रकाशित करती हुई; रमाम् इव—लक्ष्मी जी की तरह; विलोक्य—देखकर; सद्यः—तुरन्त; मुमुहे—मोहित हो गया; देव-मायाम् इव—भगवान् की माया के सदृश; स्त्रियम्—सुन्दर स्त्री को; बभाषे—सम्बोधित किया; ताम्—उसको; वर-आरोहाम्—सुन्दर स्त्रियों में सर्वश्रेष्ठ; भटैः—सैनिकों द्वारा; कतिपयैः—कुछ; वृतः—घिरा हुआ।

एक बार जब राजा दुष्मन्त शिकार करने जंगल गया और अत्यधिक थक गया तो वह महाराज कण्व के आश्रम में जा पहुँचा। वहाँ उसने एक अत्यन्त सुन्दर स्त्री देखी जो लक्ष्मी जी के समान लग रही थी और वहाँ अपने तेज से सारे आश्रम को प्रकाशित करती हुई बैठी थी। स्वभावतः राजा उसके सौन्दर्य से आकृष्ट हो गया अतएव वह अपने कुछ सैनिकों के साथ उसके पास गया और उससे बोला।

तद्दर्शनप्रमुदितः सन्निवृत्तपरिश्रमः ।
पप्रच्छ कामसन्तप्तः प्रहसञ्श्लक्ष्णया गिरा ॥ १० ॥

शब्दार्थ

तत्-दर्शन-प्रमुदितः—सुन्दर स्त्री को देखकर अत्यन्त प्रफुल्लित; सन्निवृत्त-परिश्रमः—शिकार करने की थकान से निवृत्त होकर; पप्रच्छ—उससे पूछा; काम-सन्तप्तः—कामेच्छाओं से उद्विग्न होकर; प्रहसन्—हँसी करते हुए; श्लक्ष्णया—सुन्दर तथा सुहावने; गिरा—शब्दों से।

उस सुन्दर स्त्री को देखकर राजा अत्यधिक हर्षित हुआ और शिकार-भ्रमण से उत्पन्न उसकी सारी थकावट जाती रही। वह निस्सन्देह कामेच्छाओं के कारण अत्यधिक आकृष्ट था अतएव उसने हँसी-हँसी में उससे इस प्रकार पूछा।

का त्वं कमलपत्राक्षि कस्यासि हृदयङ्गमे ।
किं स्विच्चिकीर्षितं तत्र भवत्या निर्जने वने ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

का—कौन; त्वम्—तुम हो; कमल-पत्र-अक्षि—हे कमलनेत्री; कस्य असि—तुम किससे सम्बन्धित हो; हृदयम्-गमे—हृदय को सुहावनी लगने वाली अतीव सुन्दरी; किम् स्वित्—कौन सा काम; चिकीर्षितम्—सोच रही हो; तत्र—वहाँ; भवत्याः—तुम्हारे द्वारा; निर्जने—एकान्त; वने—वन में।

हे सुन्दर कमल नयनों वाली, तुम कौन हो? तुम किसकी पुत्री हो? इस एकान्त वन में तुम्हारा क्या कार्य है? तुम यहाँ क्यों रह रही हो?

व्यक्तं राजन्यतनयां वेद्म्यहं त्वां सुमध्यमे ।
न हि चेतः पौरवाणामधर्मे रमते क्वचित् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

व्यक्तम्—ऐसा लगता है; राजन्य-तनयाम्—क्षत्रिय की पुत्री; वेद्मि—अनुभव कर सकता हूँ; अहम्—मैं; त्वाम्—तुमको; सु-मध्यमे—हे अतीव सुन्दरी; न—नहीं; हि—निश्चय ही; चेतः—मन; पौरवाणाम्—पूरुवंशी लोगों का; अधर्मे—अधर्म में; रमते—भोग करता है; क्वचित्—कभी भी।

हे अतीव सुन्दरी, मुझे ऐसा लगता है कि तुम किसी क्षत्रिय की पुत्री हो। चूँकि मैं पूरुवंशी हूँ अतएव मेरा मन कभी भी अधार्मिक रीति से किसी वस्तु का भोग करने की चेष्टा नहीं करता।

तात्पर्य : महाराज दुष्मन्त ने अप्रत्यक्ष रूप से शकुन्तला से विवाह करने की अपनी इच्छा व्यक्त की क्योंकि उसे लगा कि शकुन्तला किसी क्षत्रिय राजा की पुत्री है।

श्रीशकुन्तलोवाच
विश्वामित्रात्मजैवाहं त्यक्ता मेनकया वने ।
वेदैतद्भगवान्कण्वो वीर किं करवाम ते ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

श्री-शकुन्तला उवाच—श्री शकुन्तला ने कहा; विश्वामित्र-आत्मजा—विश्वामित्र की पुत्री; एव—निस्सन्देह; अहम्—मैं (हूँ); त्यक्ता—छोड़ी गई; मेनकया—मेनका द्वारा; वने—वन में; वेद—जानता है; एतत्—इन सारी घटनाओं को; भगवान्—शक्तिशाली ऋषि; कण्वः—कण्व मुनि; वीर—हे वीर; किम्—क्या; करवाम—कर सकती हूँ; ते—तुम्हारे लिए।

शकुन्तला ने कहा : मैं विश्वामित्र की पुत्री हूँ। मेरी माता मेनका ने मुझे जंगल में छोड़ दिया था। हे वीर, अत्यन्त शक्तिशाली सन्त कण्व मुनि इसके विषय में सब कुछ जानते हैं। अब आप कहिए कि मैं आपकी किस तरह सेवा करूँ?

तात्पर्य : शकुन्तला ने महाराज दुष्मन्त को बतलाया कि यद्यपि उसने अपने पिता या माता को न तो

कभी देखा है, न उनके विषय में वह कुछ जानती है लेकिन कण्व मुनि उसके विषय में पूरी तरह जानते हैं। उसने उन्हीं से जाना है कि वह विश्वामित्र की पुत्री है और मेनका उसकी माता है जिसने उसे जंगल में छोड़ दिया था।

आस्यतां ह्यरविन्दाक्ष गृह्यतामर्हणं च नः ।
भुज्यतां सन्ति नीवारा उष्यतां यदि रोचते ॥ १४॥

शब्दार्थ

आस्यताम्—कृपया यहाँ बैठें; हि—निस्सन्देह; अरविन्द-अक्ष—कमल जैसे नेत्रों वाले वीर; गृह्यताम्—स्वीकार करें; अर्हणम्—आतिथ्य; च—तथा; नः—हमारा; भुज्यताम्—कृपया भोजन करें; सन्ति—जो कुछ है; नीवाराः—नीवार चावल; उष्यताम्—यहाँ पर रुकें; यदि—यदि; रोचते—आपको अच्छा लगे।

हे कमल जैसे नेत्रों वाले राजा, कृपया बैठ जायें और हमारे यथासम्भव आतिथ्य को स्वीकार करें। हमारे पास नीवार चावल हैं जिन्हें आप ग्रहण कर सकते हैं और यदि आप चाहें तो बिना किसी हिचक के यहाँ रुक सकते हैं।

श्रीदुष्मन्त उवाच
उपपन्नमिदं सुभ्रु जातायाः कुशिकान्वये ।
स्वयं हि वृणुते राज्ञां कन्यकाः सदृशं वरम् ॥ १५॥

शब्दार्थ

श्री-दुष्मन्तः उवाच—राजा दुष्मन्त ने कहा; उपपन्नम्—तुम्हारी स्थिति के अनुरूप; इदम्—यह; सु-भ्रु—हे सुन्दर भौहों वाली शकुन्तला; जातायाः—अपने जन्म के कारण; कुशिक-अन्वये—विश्वामित्र के कुल में; स्वयम्—स्वयं; हि—निस्सन्देह; वृणुते—चुनती हैं; राज्ञाम्—राज परिवार की; कन्यकाः—लड़कियाँ; सदृशम्—समान स्तर के; वरम्—पति को।

राजा दुष्मन्त ने उत्तर दिया: हे सुन्दर भौहों वाली शकुन्तला, तुमने महर्षि विश्वामित्र के कुल में जन्म लिया है और तुम्हारा आतिथ्य तुम्हारे कुल के अनुरूप है। इसके अतिरिक्त राजा की कन्याएँ सामान्यतया अपना वर स्वयं चुनती हैं।

तात्पर्य : महाराज दुष्मन्त का स्वागत करते हुए शुकन्तला ने स्पष्ट कहा, "आप यहाँ रुक सकते हैं और हमारा यथासम्भव आतिथ्य ग्रहण कर सकते हैं।" इस तरह उसने इंगित कर दिया कि वह महाराज दुष्मन्त को पति रूप में चाहती है। जहाँ तक दुष्मन्त की बात थी, वह तो प्रारम्भ से ही, जब से उसने देखा था, शकुन्तला को पत्नी के रूप में चाह रहा था; अतएव पति-पत्नी के रूप में मिलने की स्वीकृति स्वाभाविक थी। शकुन्तला को विवाह के लिए प्रोत्साहित करने के लिए ही महाराज दुष्मन्त ने उसे स्मरण कराया कि

राजकन्या के नाते उसे अपना वर खुली सभा में चुनना चाहिए (स्वयंवर)। आर्य सभ्यता के इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जिनमें सुप्रसिद्ध राजकुमारियों ने स्वयंवर द्वारा पति का चुनाव किया है। उदाहरणार्थ, सीतादेवी ने रामचन्द्र जी को ऐसी ही प्रतियोगिता में, पति रूप में चुना और द्रौपदी ने अर्जुन को चुना था। ऐसे और बहुत से उदाहरण हैं। अतएव सहमति से या खुली प्रतियोगिता में अपना वर चुनने की छूट थी। विवाह आठ प्रकार के होते हैं जिनमें पारस्परिक सहमति द्वारा विवाह करना *गान्धर्व* विवाह कहलाता है। सामान्यतया माता-पिता अपने पुत्र-पुत्री के लिए वर-कन्या का चुनाव करते हैं परन्तु गंधर्व-विवाह स्वयंवर से होता है। यद्यपि भूतकाल में स्वयंवर द्वारा या सहमति से विवाह होते थे, किन्तु विवाह-विच्छेद जैसी वस्तु नहीं पाई जाती थी। निस्सन्देह, निम्न जातियों में असहमति होने पर विवाह-विच्छेद होता था, किन्तु सहमति से विवाह की प्रथा उच्चतम जातियों में भी थी, और राजसी क्षत्रिय परिवारों में यह विशेष रूप से प्रचलित थी। महाराज दुष्मन्त द्वारा शकुन्तला को पत्नी रूप में ग्रहण करना वैदिक संस्कृति के अनुरूप था। यह विवाह जिस रूप में हुआ उसका वर्णन अगले श्लोक में हुआ है।

ओमित्युक्ते यथाधर्ममुपयेमे शकुन्तलाम् ।
गान्धर्वविधिना राजा देशकालविधानवित् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

ओम् इति उक्ते—वैदिक प्रणव का उच्चारण करके भगवान् को विवाह के साक्षी के रूप में आह्वान करते हुए; **यथा-धर्मम्**—धार्मिक नियमों के अनुकूल (क्योंकि सामान्य धार्मिक विवाहों में भी नारायण साक्षी बनते है); **उपयेमे**—विवाह कर लिया; **शकुन्तलाम्**—शकुन्तला से; **गान्धर्व-विधिना**—गान्धर्व विधि से, धार्मिक नियमानुसार; **राजा**—महाराज दुष्मन्त ने; **देश-काल-विधान-वित्**—समय, स्थान तथा लक्ष्य के अनुसार कर्तव्यों से पूर्णतया अवगत।

जब शकुन्तला महाराज दुष्मन्त के प्रस्ताव पर मौन रही तो सहमति पूर्ण हो गई। तब विवाह के नियमों को जानने वाले राजा ने तुरन्त ही वैदिक प्रणव (ओङ्कार) का उच्चारण किया, जैसा कि गन्धर्वों में विवाह के अवसर पर किया जाता है।

तात्पर्य : ओङ्कार या प्रणव भगवान् का शब्द रूप है। *भगवद्गीता* में कहा गया है कि अ, उ, म ये तीन अक्षर मिलकर ओम् द्वारा भगवान् का प्रतिनिधित्व करते हैं। धार्मिक सिद्धान्तों का अभिप्राय भगवान् कृष्ण के आशीर्वाद तथा अनुग्रह का आह्वान करना है क्योंकि *भगवद्गीता* में कृष्ण स्वयं कहते हैं कि जो कामेच्छाएँ धर्म के विरुद्ध नहीं हैं, उनमें वे स्वयं उपस्थित रहते हैं। *विधिना* शब्द का अर्थ ‘‘धार्मिक

सिद्धान्तों के अनुसार।'' वैदिक संस्कृति में धार्मिक सिद्धान्तों के अनुसार स्त्री तथा पुरुष के संयोग की अनुमति है। हम अपने कृष्णभावनामृत आन्दोलन में धार्मिक सिद्धान्तों के अनुसार विवाह करने की अनुमति प्रदान करते हैं, किन्तु मित्रों के रूप में स्त्रियाँ तथा पुरुषों का यौन संयोग अधार्मिक है और इसकी अनुमति नहीं दी जाती।

अमोघवीर्यो राजर्षिर्महिष्यां वीर्यमादधे ।
श्वोभूते स्वपुरं यातः कालेनासूत सा सुतम् ॥ १७॥

शब्दार्थ

अमोघ-वीर्यः—ऐसा व्यक्ति जिसका वीर्य व्यर्थ नहीं बहता अर्थात् जिसके वीर्य से सन्तान उत्पन्न होती है; राज-ऋषिः—साधु प्रकृति वाला राजा दुष्मन्त; महिष्याम्—रानी शकुन्तला में (विवाह के बाद वह रानी हो गई); वीर्यम्—वीर्य; आदधे—स्थापित किया; श्वः-भूते—सबेरा होने पर; स्व-पुरम्—अपने स्थान को; यातः—चला गया; कालेन—समय पर; असूत—जन्म दिया; सा—उसने (शकुन्तला) ने; सुतम्—पुत्र को।

अमोघवीर्य राजा दुष्मन्त ने रात्रि में अपनी रानी शकुन्तला के गर्भ में वीर्य स्थापित किया और प्रातः होते ही अपने महल को लौट गया। तत्पश्चात् समयानुसार शकुन्तला ने एक पुत्र को जन्म दिया।

कण्वः कुमारस्य वने चक्रे समुचिताः क्रियाः ।
बद्ध्वा मृगेन्द्रं तरसा क्रीडति स्म स बालकः ॥ १८॥

शब्दार्थ

कण्वः—कण्व मुनि ने; कुमारस्य—शकुन्तला से उत्पन्न बालक का; वने—जंगल में; चक्रे—सम्पन्न किया; समुचिताः—विहित; क्रियाः—संस्कार; बद्ध्वा—पकड़ कर; मृग-इन्द्रम्—शेर को; तरसा—बलपूर्वक; क्रीडति—खेलता; स्म—था; सः—वह; बालकः—बालक।

कण्व मुनि ने वन में नवजात शिशु के सारे संस्कार सम्पन्न किये। बाद में यह बालक इतना बलवान बन गया कि वह किसी सिंह को पकड़ कर उसके साथ खेलता था।

तं दुरत्ययविक्रान्तमादाय प्रमदोत्तमा ।
हरेरंशांशसम्भूतं भर्तुरन्तिकमागमत् ॥ १९॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; दुरत्यय-विक्रान्तम्—जिसकी शक्ति को दबाया नहीं जा सकता था; आदाय—अपने साथ लेकर; प्रमदा-उत्तमा—स्त्रियों में श्रेष्ठ शकुन्तला; हरेः—ईश्वर का; अंश-अंश-सम्भूतम्—अंशावतार; भर्तुः अन्तिकम्—अपने पति के पास; आगमत्—गई।

सुन्दरियों में श्रेष्ठ शकुन्तला अपने पुत्र को, जो दुर्दमनीय था तथा भगवान् का अंशावतार था, अपने साथ लेकर अपने पति दुष्मन्त के पास गई।

यदा न जगृहे राजा भार्यापुत्रावनिन्दितौ ।
शृण्वतां सर्वभूतानां खे वागाहाशरीरिणी ॥ २० ॥

शब्दार्थ

यदा—जब; न—नहीं; जगृहे—स्वीकार किया; राजा—राजा ने; भार्या-पुत्रौ—अपनी असली स्त्री तथा असली पुत्र को; अनिन्दितौ—जो निर्दोष थे, अनिन्दित; शृण्वताम्—सुनते हुए; सर्व-भूतानाम्—सारे लोगों के; खे—आकाश में; वाक्—शब्द ध्वनि ने; आह—घोषणा की; अशरीरिणी—शरीरविहीन।.

जब राजा ने अपनी निर्दोष पत्नी तथा पुत्र दोनों को स्वीकार करने से इनकार कर दिया तो आकाश से शकुन के रूप में एक अदृश्य आवाज सुनाई दी जिसे वहाँ उपस्थित सबों ने सुना।

तात्पर्य : महाराज दुष्मन्त जानते थे कि शकुन्तला उनकी पत्नी और छोटा बालक उनका पुत्र है, किन्तु बाहर से आने और प्रजा को ज्ञान न होने से, दुष्मन्त ने उन्हे पहले स्वीकार नहीं किया। किन्तु शकुन्तला इतनी सती थी कि आकाशवाणी ने सारी सचाई बतला दी जिसे दूसरे लोग सुन सके। जब सब लोगों को पता चल गया कि शकुन्तला तथा उसका पुत्र राजा के ही पत्नी एवं पुत्र हैं तो राजा ने बाद में उन्हें स्वीकार कर लिया।

माता भस्त्रा पितु: पुत्रो येन जात: स एव स: ।
भरस्व पुत्रं दुष्मन्त मावमंस्था: शकुन्तलाम् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

माता—माता; भस्त्रा—धौंकनी की तरह; पितु:—पिता का; पुत्र:—पुत्र; येन—जिसके द्वारा; जात:—उत्पन्न; स:—पिता; एव—निश्चित; स:—पुत्र; भरस्व—पालो; पुत्रम्—अपने पुत्र को; दुष्मन्त—हे महाराज दुष्मन्त; मा—मत; अवमंस्था:—अपमानित करो; शकुन्तलाम्—शकुन्तला को।.

आकाशवाणी ने कहा: हे महाराज दुष्मन्त, पुत्र वास्तव में अपने पिता का ही होता है जब कि माता मात्र चमड़े की धौंकनी के समान धारक होती है। वैदिक आदेशानुसार पिता पुत्र रूप में उत्पन्न होता है। अतएव तुम अपने पुत्र का पालन करो और शकुन्तला का अपमान न करो।

तात्पर्य : वैदिक आदेशों के अनुसार *आत्मा वै पुत्र नामासि*—पिता ही पुत्र बनता है। माता तो मात्र संग्राहक है क्योंकि वह वीर्य को गर्भ में धारण करती है, किन्तु पिता ही सन्तान के पालन-पोषण के लिए उत्तरदायी होता है। *भगवद्गीता* में भगवान् कहते हैं कि वे सारे जीवों के वीर्यदाता पिता हैं (*अहं बीजप्रद: पिता*) इसीलिए वे उनके पालन-पोषण के लिए उत्तरदायी हैं। वेदों से भी इसकी पुष्टि होती है। *एको बहूनां*

यो विदधाति कामान्—यद्यपि ईश्वर एक है, किन्तु वह सारे जीवों की आवश्यकताओं को पूरा करने वाला है। सारे जीव विविध रूपों में भगवान् के पुत्र हैं अतएव पिता के रूप में वे उन्हें विभिन्न शरीरों के अनुसार भोजन प्रदान करते हैं। चींटी को चीनी का एक कण प्रदान किया जाता है और हाथी को प्रभूत भोजन दिया जाता है, किन्तु हर एक जीव को खाने के लिए भोजन मिलता है। अतएव अधिक जनसंख्या कोई प्रश्न नहीं। चूँकि हमारे पिता कृष्ण पूर्णत: ऐश्वर्यवान हैं इसलिए भोजन के अभाव का प्रश्न ही नहीं उठता और जब भोजन का अभाव नहीं है तो अधिक जनसंख्या का जो प्रचार हो रहा है वह मिथ्या है। वास्तव में किसी को भोजन की कमी तब होती है जब पिता के आदेश से प्रकृति भोजन देना बन्द कर देती है। जीव की स्थिति के अनुसार ही यह बात तय की जाती है कि भोजन मिलेगा या नहीं। जब किसी रोगी व्यक्ति को खाने से मना किया जाता है तो इसका अर्थ यह नहीं होता कि भोजन की कमी है अपितु रोगी को भोजन न देना ही रोग का उपचार होता है। *भगवद्गीता* (७.१०) में भी भगवान् कहते हैं—*बीजं मां सर्वभूतानाम्*—मैं सारे जीवों का बीज हूँ। जब कोई विशेष बीज पृथ्वी में बोया जाता है तो एक विशेष प्रकार का वृक्ष या पौधा निकलता है। माता पृथ्वी के तुल्य है और जब पिता द्वारा एक विशेष तरह का बीज बो दिया जाता है तो एक विशेष प्रकार का शरीर जन्म लेता है।

रेतोधा: पुत्रो नयति नरदेव यमक्षयात् ।
त्वं चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

रेत:-धा:—वीर्य स्थापित करने वाला पुरुष; पुत्र:—पुत्र; नयति—बचाता है; नर-देव—हे राजा; यम-क्षयात्—यमराज के दण्ड से; त्वम्—तुम; च—तथा; अस्य—इस बालक का; धाता—स्रष्टा; गर्भस्य—गर्भ का; सत्यम्—सत्य; आह—कहा; शकुन्तला—तुम्हारी पत्नी शकुन्तला ने।.

हे राजा दुष्मन्त, वीर्य स्थापित करने वाला ही असली पिता है और उसका पुत्र उसे यमराज के चंगुल से छुड़ाता है। आप इस बालक के असली स्रष्टा (जन्मदाता) हैं। शकुन्तला निस्सन्देह सत्य कह रही है।

तात्पर्य : आकाशवाणी सुनकर महाराज दुष्मन्त ने अपनी पत्नी तथा पुत्र को स्वीकार कर लिया। वैदिक स्मृति के अनुसार—

पुन्नाम्नो नरकाद् यस्मात् पितरं त्रायते सुत: ।

तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा॥

अपने पिता को *पुत्* नामक नरक के दण्ड से बचाने के कारण पुत्र पुत्र कहलाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार जब भी पिता तथा माता में कोई विरोध होता है तो पुत्र द्वारा, माता का नहीं, अपितु पिता का उद्धार होता है। किन्तु यदि पत्नी अपने पति की आज्ञाकारिणी हो तो पिता का उद्धार हो जाने पर माता का भी उद्धार हो जाता है। अतएव वैदिक साहित्य में विवाह-विच्छेद का नामोनिशान नहीं है। पत्नी को सदैव सती तथा पति की आज्ञाकारिणी बनने का प्रशिक्षण दिया जाता है क्योंकि इससे किसी भी अत्यन्त दुरावस्था में उसका उद्धार हो जाता है। यह श्लोक स्पष्ट कहता है—*पुत्रो नयति नरदेव यमक्षयात्*—पुत्र अपने पिता को यमराज के चंगुल से बचाता है। इसमें यह नहीं कहा गया—*पुत्रो नयति मातरम्*—पुत्र अपनी माता को बचाता है। बीजप्रदाता पिता का उद्धार होता है, संग्राहक माता का नहीं। अतएव पति-पत्नी को किसी भी परिस्थिति में विलग नहीं होना चाहिए क्योंकि यदि उनसे सन्तान हो जिसे वे वैष्णव बना सकें तो वह माता-पिता दोनों को यमराज के चंगुल से छुड़ा सकता है और नारकीय जीवन के दण्ड से उबार सकता है।

पितर्युपरते सोऽपि चक्रवर्ती महायशाः ।
महिमा गीयते तस्य हरेरंशभुवो भुवि ॥ २३॥

शब्दार्थ

पितरि—अपने पिता के; उपरते—दिवगंत हो जाने पर; सः—वह राजपुत्र; अपि—भी; चक्रवर्ती—सम्राट; महा-यशाः—अत्यन्त विख्यात; महिमा—यश; गीयते—गाया जाता है; तस्य—उसका; हरेः—भगवान् का; अंश-भुवः—अंश रूप; भुवि—पृथ्वी पर।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : जब महाराज दुष्मन्त इस पृथ्वी से चले गये तो उनका पुत्र सातों द्वीपों का स्वामी चक्रवर्ती राजा बना। वह इस संसार में भगवान् का अंशावतार बतलाया जाता है।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (१०.४१) में कहा गया है—

यद् यद् विभूतिमत् सत्त्वं श्रीमद् ऊर्जितमेव वा।

तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशंसम्भवम्॥

जो कोई अद्वितीय शक्तिशाली होता है उसे भगवान् के ऐश्वर्य का अंश रूप मानना चाहिए। अतएव जब महाराज दुष्मन्त का पुत्र सारे विश्व का सम्राट बन गया तो वह इसी तरह विख्यात हुआ।

चक्रं दक्षिणहस्तेऽस्य पद्मकोशोऽस्य पादयोः ।
ईजे महाभिषेकेण सोऽभिषिक्तोऽधिराड्विभुः ।
पञ्चपञ्चाशता मेध्यैर्गङ्गायामनु वाजिभिः ॥ २४॥
मामतेयं पुरोधाय यमुनामनु च प्रभुः ।
अष्टसप्ततिमेध्याश्वान्बबन्ध प्रददद्वसु ॥ २५॥
भरतस्य हि दौष्मन्तेरग्निः साचीगुणे चितः ।
सहस्त्रं बद्वशो यस्मिन्ब्राह्मणा गा विभेजिरे ॥ २६॥

शब्दार्थ

चक्रम्—कृष्ण-चक्र का चिह्न; दक्षिण-हस्ते—दाहिने हाथ में; अस्य—उसके (भरत) के; पद्म-कोशः—कमल गुच्छ का चिह्न; अस्य—उसके; पादयोः—पैरों के तलवों पर; ईजे—भगवान् की पूजा की; महा-अभिषेकेण—विशाल वैदिक अनुष्ठान द्वारा; सः—वह (भरत); अभिषिक्तः—पदोन्नत किया गया; अधिराट्—शासक के सर्वोच्च पद पर; विभुः—स्वामी; पञ्च-पञ्चाशता—पचपन; मेध्यैः—यज्ञों के लिए उपयुक्त; गङ्गायाम् अनु—स्रोत से लेकर गंगा के मुहाने तक; वाजिभिः—घोड़ों से; मामतेयम्—भृगु मुनि को; पुरोधाय—पुरोहित बनाकर; यमुनाम्—यमुना तट पर; अनु—क्रमबद्ध; च—भी; प्रभुः—स्वामी, महाराज भरत; अष्ट-सप्तति—अठहत्तर; मेध्य-अश्वान्—यज्ञ के योग्य घोड़ों को; बबन्ध—बाँधा; प्रददत्—दान में दिया; वसु—धन; भरतस्य—भरत का; हि—निस्सन्देह; दौष्मन्तेः—महाराज दुष्मन्त के पुत्र; अग्निः—यज्ञ की आग; साची-गुणे—सर्वोत्तम स्थान पर; चितः—स्थापित; सहस्त्रम्—एक हजार; बद्वशः—एक बद्व जो १३०८४ के तुल्य है; यस्मिन्—जिन यज्ञों में; ब्राह्मणाः—सारे उपस्थित ब्राह्मण; गाः—गाएँ; विभेजिरे—अपना अपना भाग प्राप्त किया।

दुष्मन्त-पुत्र महाराज भरत के दाहिने हाथ की हथेली पर भगवान् कृष्ण के चक्र का चिन्ह था और उसके पैरों के तलवों में कमल कोश का चिन्ह था। वह महान् अनुष्ठान के द्वारा भगवान् की पूजा करके सारे विश्व का अधिपति तथा सम्राट बन गया। तब उसने मामतेय अर्थात् भृगु मुनि के पौरोहित्य में गंगा नदी के तट पर गंगा के अंतिम स्थान से लेकर उद्गम तक पचपन अश्वमेध यज्ञ किये। इसी तरह यमुना नदी के तट पर प्रयागराज के संगम से लेकर उद्गम स्थान तक अठहत्तर अश्वमेध यज्ञ किये। उसने सर्वोत्तम स्थान पर यज्ञ की अग्नि स्थापित की और अपनी विपुल सम्पत्ति ब्राह्मणों में वितरित कर दी। उसने इतनी गाएँ दान में दीं कि हजारों ब्राह्मणों में से हर एक को एक बद्व (१३०८४) गाएँ अपने हिस्से में मिलीं।

तात्पर्य : जैसा कि *दौष्मन्तेरग्निः साचीगुणे चितः* शब्दों से सूचित होता है दुष्मन्त कुमार भरत ने सारे विश्व में, विशेष रूप से भारत भर में गंगा तथा यमुना नदी के किनारों पर, अन्त से लेकर उद्गम तक अनेक अनुष्ठान किये और ये सारे यज्ञ अत्यन्त प्रसिद्ध स्थानों में सम्पन्न किये गये। जैसा कि *भगवद्गीता* (३.९) में कहा गया है—*यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः*—विष्णु के यज्ञ रूप में किया गया कर्म करना चाहिए अन्यथा यह कर्म मनुष्य को इस भौतिक संसार से बाँध देता है। हर व्यक्ति को यज्ञ करना चाहिए

और यज्ञ-अग्नि सर्वत्र जलाई जानी चाहिए। इसका एकमात्र अभिप्राय लोगों को सुखी, समृद्ध तथा आध्यात्मिक जीवन में अग्रसर बनाना है। निस्सन्देह, ये सारी बातें कलियुग आने के पूर्व सम्भव थीं क्योंकि ऐसे यज्ञों को सम्पन्न करने वाले योग्य ब्राह्मण उपलब्ध थे। किन्तु वर्तमान समय के लिए *ब्रह्मवैवर्त पुराण* का आदेश है—

अश्वमेधं गवालम्भं संन्यासं पलपैतृकम्।

देवरेण सुतोप्तत्तिं कलौ पञ्च विवर्जयेत्॥

"इस कलियुग में पाँच कार्यों की मनाही है—यज्ञ में घोड़े की बलि, यज्ञ में गाय की बलि, संन्यास आश्रम ग्रहण करना, पितरों को मांस का तर्पण तथा भाई की पत्नी से पुत्र उत्पन्न करना।" इस युग में अश्वमेध यज्ञ तथा गोमेध यज्ञ कर पाना असम्भव है क्योंकि न तो पर्याप्त धन है न योग्य ब्राह्मण हैं। इस श्लोक में *मामतेयं पुरोधाय*—अर्थात् महाराज भरत ने ममतापुत्र भृगु मुनि को इस यज्ञ को सम्पन्न कराने का भार सौंपा था। किन्तु अब ऐसे ब्राह्मणों को खोज पाना असम्भव है। अतएव शास्त्रों का अनुमोदन है—*यज्ञै सङ्कीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः*—बुद्धिमान लोगों को चाहिए कि श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रवर्तित संकीर्तन यज्ञ सम्पन्न करें।

कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम्।

यज्ञै सङ्कीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः॥

"इस कलियुग में जो लोग काफी बुद्धिमान हैं वे भगवान् की पूजा उनके पार्षदों सहित संकीर्तन यज्ञ सम्पन्न करके करेंगे।" (*भागवत* ११.५.३२) यज्ञ तो सम्पन्न होने ही चाहिए अन्यथा लोग पापकर्मों में फँसकर काफी कष्ट भोगेंगे। इसीलिए कृष्णभावनामृत आन्दोलन ने विश्व भर में हरे कृष्ण कीर्तन का प्रचार करने का बीड़ा उठाया है। यह हरे कृष्ण आन्दोलन भी यज्ञ है, किन्तु इसमें साज-सामग्री तथा योग्य ब्राह्मण जुटाने का कष्ट नहीं उठाना पड़ता। यह सामूहिक कीर्तन कभी भी और कहीं भी किया जा सकता है। यदि किसी तरह लोग एकत्र हो जायें और उन्हें 'हरे कृष्ण हरे राम' कीर्तन करने के लिए प्रेरित किया जा सके तो यज्ञ का सारा प्रयोजन पूरा हो जाएगा। यज्ञ का पहला प्रयोजन है कि प्रचुर वर्षा हो अन्यथा पर्याप्त अन्न उत्पन्न नहीं होगा (*अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्याद् अन्नसम्भवः*)। हमारी सारी आवश्यक वस्तुएँ एकमात्र

वर्षा से उत्पन्न हो सकती हैं (*कामं ववर्ष पर्जन्य:*) और धरती सभी आवश्यकताओं का मूल स्रोत है (*सर्वकामदुघामही*)। अतएव निष्कर्ष यह है कि इस कलियुग में विश्व भर के लोगों को जीवन के चार पापों से बचना चाहिए—ये हैं अवैध यौन-सम्बन्ध, मांसाहार, नशा तथा द्यूत क्रीड़ा। उन्हें शुद्ध अवस्था में हरे कृष्ण महामंत्र के कीर्तन का सरल यज्ञ सम्पन्न करना चाहिए। तब पृथ्वी से जीवन की सारी आवश्यकताएँ उत्पन्न हो सकेंगी और सारे लोग आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से सुखी होंगे। तब सारी वस्तुएँ स्वयमेव व्यवस्थित हो जायेंगी।

त्रयस्त्रिंशच्छतं ह्यश्वान्बद्ध्वा विस्मापयन्नृपान् ।
दौष्मन्तिरत्यगान्मायां देवानां गुरुमाययौ ॥ २७॥

शब्दार्थ

त्रयः—तीन; त्रिंशत्—तीस; शतम्—सौ; हि—निस्सन्देह; अश्वान्—घोड़ों को; बद्ध्वा—यज्ञ में बन्दी करके; विस्मापयन्—आश्चर्यचकित करते हुए; नृपान्—सारे राजाओं को; दौष्मन्तिः—महाराज दुष्मन्त का पुत्र; अत्यगात्—बाजी मार ले गया; मायाम्—भौतिक ऐश्वर्य को; देवानाम्—देवताओं का; गुरुम्—गुरु; आययौ—प्राप्त किया।

महाराज दुष्मन्त के पुत्र भरत ने उन यज्ञों के लिए ३३०० घोड़े बाँधकर अन्य सारे राजाओं को विस्मय में डाल दिया। उसने देवताओं के ऐश्वर्य को भी मात कर दिया क्योंकि उसे परम गुरु हरि प्राप्त हो गये थे।

तात्पर्य : जिसे भगवान् के चरणारविन्द प्राप्त हो जाते हैं वह स्वर्गलोक के देवताओं के ऐश्वर्य से भी आगे बढ़ जाता है। *यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं तत:।* भगवान् के चरणकमलों की प्राप्ति जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

मृगाञ्छुक्लदतः कृष्णान्हिरण्येन परीवृतान् ।
अदात्कर्मणि मष्णारे नियुतानि चतुर्दश ॥ २८॥

शब्दार्थ

मृगान्—उत्तम कोटि के हाथियों; शुक्ल-दतः—सफेद दाँत वाले; कृष्णान्—काले शरीर वाले; हिरण्येन—सोने के आभूषणों से युक्त; परीवृतान्—पूरी तरह ढके; अदात्—दान में दिया; कर्मणि—यज्ञ में; मष्णारे—मष्णार नामक यज्ञ अथवा मष्णार नामक स्थान में; नियुतानि—लाख; चतुर्दश—चौदह।

जब महाराज भरत ने मष्णार नामक यज्ञ (या मष्णार नामक स्थान में यज्ञ) सम्पन्न किया तो उन्होंने दान में चौदह लाख श्रेष्ठ हाथी दिये जिनके दाँत सफेद थे और शरीर काले थे जो सुनहरे

आभूषणों से ढके थे।

भरतस्य महत्कर्म न पूर्वे नापरे नृपाः ।
नैवापुर्नैव प्राप्स्यन्ति बाहुभ्यां त्रिदिवं यथा ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

भरतस्य—महाराज भरत का; महत्—महान; कर्म—कार्य; न—न तो; पूर्वे—इसके पहले; न—न तो; अपरे—उसके बाद; नृपाः—राजागण; न—न तो; एव—निश्चय ही; आपुः—प्राप्त किया; न—न तो; एव—निश्चय ही; प्राप्स्यन्ति—पायेंगे; बाहुभ्याम्—अपने बाहुबल से; त्रि-दिवम्—स्वर्ग को; यथा—जिस तरह।

जिस तरह कोई व्यक्ति मात्र अपने बाहुबल से स्वर्ग नहीं पहुँच सकता (क्योंकि अपने बाहुओं से कोई स्वर्ग को कैसे छू सकता है?) उसी तरह कोई व्यक्ति महाराज भरत के अद्भुत कार्यों का अनुकरण नहीं कर सकता। कोई न तो भूतकाल में ऐसे कार्य कर सका है, न ही भविष्य में कोई ऐसा कर सकेगा।

किरातहूणान्यवनान्पौण्ड्रान्कङ्कान्खशाञ्छकान् ।
अब्रह्मण्यनृपांश्चाहन्म्लेच्छान्दिग्विजयेऽखिलान् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

किरात—काले काले लोग, जो किरात कहलाते थे (अधिकांशतः अफ्रीकी); हूणान्—दूर उत्तर की जातियों, हूणों; यवनान्—मांसाहारियों; पौण्ड्रान्—पौण्ड्र; कङ्कान्—कंकों; खशान्—मंगोलों; शकान्—शकों; अब्रह्मण्य—ब्राह्मण संस्कृति के विरोधी; नृपान्—राजाओं को; च—तथा; अहन्—उसने मार डाला; म्लेच्छान्—ऐसे नास्तिकों को जिन्हें वैदिक सभ्यता के प्रति कोई आदर नहीं था; दिक्-विजये—दिशाओं को जीतते समय; अखिलान्—समस्त।

जब भरत महाराज दौरे पर थे तो उन्होंने सारे किरातों, हूणों, यवनों, पौण्ड्रों, कंकों, खशों, शकों तथा ब्राह्मण संस्कृति के वैदिक नियमों के विरोधी राजाओं को परास्त किया या मार डाला।

जित्वा पुरासुरा देवान्ये रसौकांसि भेजिरे ।
देवस्त्रियो रसां नीताः प्राणिभिः पुनराहरत् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

जित्वा—जीतकर; पुरा—प्राचीन काल में; असुराः—असुरगण; देवान्—देवताओं को; ये—जो; रस-ओकांसि—रसातल लोक में; भेजिरे—शरण ग्रहण की; देव-स्त्रियः—देवताओं की स्त्रियाँ तथा कन्याएँ; रसाम्—अधोलोक में; नीताः—लाई गई; प्राणिभिः—अपने प्रिय संगियों समेत; पुनः—फिर; आहरत्—उनके पूर्व स्थानों में पहुँचा दिया।

प्राचीन काल में सारे असुरों ने देवताओं को जीतकर रसातल नामक अधोलोक में शरण ले रखी थी और वे सारे देवताओं की स्त्रियों एवं कन्याओं को भी वहीं ले आये थे। किन्तु भरत महाराज ने

इन सभी स्त्रियों को उनके संगियों समेत असुरों के चुंगल से छुड़ाया और उन्हें देवताओं को वापस कर दिया।

सर्वान्कामान्दुदुहतुः प्रजानां तस्य रोदसी ।
समास्त्रिणवसाहस्त्रीर्दिक्षु चक्रमवर्तयत् ॥ ३२॥

शब्दार्थ

सर्वान् कामान्—सारी आवश्यकताओं या इच्छित वस्तुओं को; दुदुहतुः—पूरा किया; प्रजानाम्—प्रजा की; तस्य—उसकी; रोदसी—यह पृथ्वी तथा स्वर्गलोक; समाः—वर्ष; त्रि-नव-साहस्त्रीः—नौ हजार के तीन गुने (२७ हजार); दिक्षु—सारी दिशाओं में; चक्रम्—सैनिक या आदेश; अवर्तयत्—बँटवा दिया।

महाराज भरत ने २७ हजार वर्षों तक इस पृथ्वी पर तथा स्वर्गलोकों में अपनी प्रजा की सारी आवश्यकताएँ पूरी कीं। उन्होंने सभी दिशाओं में अपने आदेश प्रसारित कर दिए और अपने सैनिक तैनात कर दिए।

स संराड्लोकपालाख्यमैश्वर्यमधिराट्श्रियम् ।
चक्रं चास्खलितं प्राणान्मृषेत्युपरराम ह ॥ ३३॥

शब्दार्थ

सः—वह (महाराज भरत); संराट्—सम्राट; लोक-पाल-आख्यम्—समस्त लोकों के शासक के रूप में; ऐश्वर्यम्—ऐश्वर्य; अधिराट्—पूरी तरह अधिकार में; श्रियम्—राज्य; चक्रम्—सैनिक या आदेश; च—तथा; अस्खलितम्—बिना चूके; प्राणान्—जीवन अथवा पुत्र तथा परिवार को; मृषा—मिथ्या; इति—इस प्रकार; उपरराम—भोग करना बन्द कर दिया; ह—भूतकाल में।

समस्त विश्व के शासक के रूप में सम्राट भरत के पास महान् राज्य एवं अजेय सैनिकों का ऐश्वर्य था। उनके पुत्र तथा उनका परिवार उन्हें उनका जीवन प्रतीत होता था। किन्तु अन्ततः उन्होंने इन सबों को आध्यात्मिक प्रगति में बाधक समझा अतएव उन्होंने इनका भोग बन्द कर दिया।

तात्पर्य : महाराज भरत के पास प्रभूत ऐश्वर्य, सैनिक, पुत्र, पुत्रियाँ तथा भौतिक भोग की सारी वस्तुएँ थीं, किन्तु जब उन्हें यह लगा कि ऐसा सारा ऐश्वर्य आध्यात्मिक प्रगति के लिए व्यर्थ है तो उन्होंने भौतिक भोग से विरक्ति ग्रहण कर ली। वैदिक सभ्यता में एक विशेष आयु के बाद मनुष्य को महाराज भरत की ही तरह भौतिक ऐश्वर्य का भोग त्याग कर वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करने का आदेश है।

तस्यासन्नृप वैदर्भ्यः पत्न्यस्तिस्त्रः सुसम्मताः ।
जघ्नुस्त्यागभयात्पुत्रान्नानुरूपा इतीरिते ॥ ३४॥

शब्दार्थ

तस्य—उसकी (भरत की); आसन्—थीं; नृप—हे राजा परीक्षित; वैदर्भ्यः—विदर्भ की कन्याएँ; पत्न्यः—पत्नियाँ; तिस्रः—तीन; सु-सम्मताः—अत्यन्त मनोहर तथा उपयुक्त; जघ्नुः—मार डाला; त्याग-भयात्—त्यागे जाने के भय से; पुत्रान्—अपने पुत्रों को; न अनुरूपाः—अपने पिता की तरह न होने से; इति—इस तरह; ईरिते—विचार करते हुए।

हे राजा परीक्षित, महाराज भरत की तीन मनोहर पत्नियाँ थीं जो विदर्भ के राजा की पुत्रियाँ थीं। जब तीनों के सन्तानें हुईं तो वे राजा के समान नहीं निकलीं, अतएव इन पत्नियों ने यह सोचकर कि राजा उन्हें कृतघ्न रानियाँ समझकर त्याग देंगे, उन्होंने अपने अपने पुत्रों को मार डाला।

तस्यैवं वितथे वंशे तदर्थं यजतः सुतम् ।
मरुत्स्तोमेन मरुतो भरद्वाजमुपाददुः ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसके; एवम्—इस प्रकार; वितथे—परेशान होकर; वंशे—सन्तान उत्पन्न करने में; तत्-अर्थम्—पुत्र प्राप्ति के लिए; यजतः—यज्ञ सम्पन्न करते हुए; सुतम्—एक पुत्र; मरुत्-स्तोमेन—मरुत्स्तोम यज्ञ करने से; मरुतः—मरुतगण देवता; भरद्वाजम्—भरद्वाज को; उपाददुः—भेंट कर दिया।

सन्तान के लिए जब राजा का प्रयास इस तरह विफल हो गया तो उसने पुत्रप्राप्ति के लिए मरुत्स्तोम नामक यज्ञ किया। सारे मरुत्गण उससे पूर्णतया सन्तुष्ट हो गये तो उन्होंने उसे भरद्वाज नामक पुत्र उपहार में दिया।

अन्तर्वत्न्यां भ्रातृपत्न्यां मैथुनाय बृहस्पतिः ।
प्रवृत्तो वारितो गर्भं शप्त्वा वीर्यमुपासृजत् ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

अन्तः-वत्न्याम्—गर्भवती; भ्रातृ-पत्न्याम्—भाई की पत्नी से; मैथुनाय—संभोग की इच्छा से; बृहस्पतिः—बृहस्पति नामक देवता; प्रवृत्तः—प्रवृत्त; वारितः—मना किया गया; गर्भम्—गर्भ के भीतर के पुत्र को; शप्त्वा—शाप देकर; वीर्यम्—वीर्य; उपासृजत्—स्खलित किया।

बृहस्पति देव ने अपने भाई की पत्नी ममता पर मोहित होने पर उसके गर्भवती होते हुए भी उसके साथ संभोग करना चाहा। उसके गर्भ के भीतर के पुत्र ने मना किया लेकिन बृहस्पति ने उसे शाप दे दिया और बलात् ममता के गर्भ में वीर्य स्थापित कर दिया।

तात्पर्य : इस संसार में संभोग की इच्छा इतनी प्रबल होती है कि देवताओं के गुरु तथा अत्यन्त पंडित बृहस्पति ने भी अपने भाई की गर्भवती पत्नी के साथ संभोग करना चाहा। जब उच्चतर देवताओं के समाज में ऐसा हो सकता है तो मानव समाज के विषय में क्या कहा जाये? संभोग की इच्छा इतनी प्रबल है कि

बृहस्पति जैसा विद्वान व्यक्ति भी विचलित हो सकता है।

तं त्यक्तुकामां ममतां भर्तुस्त्यागविशङ्किताम् ।
नामनिर्वाचनं तस्य श्लोकमेनं सुरा जगुः ॥ ३७॥

शब्दार्थ

तम्—नवजात शिशु को; त्यक्तु-कामाम्—त्यागने की इच्छा से; ममताम्—ममता को; भर्तुः त्याग-विशङ्किताम्—अवैध पुत्र उत्पन्न करने के कारण अपने पति द्वारा छोड़े जाने से अत्यन्त भयभीत; नाम-निर्वाचनम्—नामकरण संस्कार; तस्य—उस बालक का; श्लोकम्—श्लोक; एनम्—इस; सुराः—देवतागण ने; जगुः—घोषित किया।

ममता अत्यन्त भयभीत थी कि अवैध पुत्र उत्पन्न करने के कारण उसका पति उसे छोड़ सकता है अतएव उसने बालक को त्याग देने का विचार किया। लेकिन तब देवताओं ने उस बालक का नामकरण करके सारी समस्या हल कर दी।

तात्पर्य : वैदिक शास्त्र के अनुसार जब भी बालक उत्पन्न होता है तो जातकर्म तथा नामकरण संस्कार किये जाते हैं जिनमें विद्वान ब्राह्मण ज्योतिषगणना के अनुसार कुण्डली बनाते हैं। किन्तु ममता ने जिस पुत्र को जन्म दिया था वह बृहस्पति द्वारा उत्पन्न अवैध पुत्र था क्योंकि ममता तो उतथ्य की पत्नी थी, किन्तु बृहस्पति ने बलपूर्वक उसे गर्भवती बना दिया था। अतएव बृहस्पति को *भर्ता* बनना पड़ा। वैदिक संस्कृति के अनुसार पत्नी पति की सम्पत्ति होती है और अवैध मैथुन द्वारा उत्पन्न पुत्र *द्वाज* कहलाता है। हिन्दू समाज में ऐसे पुत्र को *दोगला* कहा जाता है। ऐसी स्थिति में बालक को उचित संस्कार द्वारा नाम दे पाना कठिन होता है। इसीलिए ममता चिन्तित थी, किन्तु देवताओं ने बालक को एक उपयुक्त नाम भरद्वाज प्रदान किया जिसका अर्थ था कि यह बालक अवैध रूप से उत्पन्न है और इसका पालन ममता तथा बृहस्पति दोनों को करना चाहिए।

मूढे भर द्वाजमिमं भर द्वाजं बृहस्पते ।
यातौ यदुक्त्वा पितरौ भरद्वाजस्ततस्त्वयम् ॥ ३८॥

शब्दार्थ

मूढे—हे मूर्ख स्त्री; भर—पालन करो; द्वाजम्—दोनों के बीच अवैध सम्बन्ध से उत्पन्न; इमम्—इस बालक को; भर—पालो; द्वाजम्—अवैध जन्म लेने के कारण; बृहस्पते—हे बृहस्पति; यातौ—छोड़कर चले गये; यत्—क्योंकि; उक्त्वा—कहकर; पितरौ—माता पिता दोनों; भरद्वाजः—भरद्वाज नामक; ततः—तत्पश्चात्; तु—निस्सन्देह; अयम्—यह बालक।

बृहस्पति ने ममता से कहा, "अरी मूर्ख! यद्यपि यह बालक अन्य पुरुष की पत्नी और किसी

दूसरे पुरुष के वीर्य से उत्पन्न हुआ है, किन्तु तुम इसका पालन करो।'' यह सुनकर ममता ने उत्तर दिया, ''अरे बृहस्पति, तुम इसको पालो।'' ऐसा कहकर बृहस्पति तथा ममता उसे छोड़कर चले गये। इस तरह बालक का नाम भरद्वाज पड़ा।

चोद्यमाना सुरैरेवं मत्वा वितथमात्मजम् ।
व्यसृजन्मरुतोऽबिभ्रन्दत्तोऽयं वितथेऽन्वये ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

चोद्यमाना—प्रोत्साहित किये जानेपर (कि बालक को पालो); सुरैः—देवताओं द्वारा; एवम्—इस प्रकार; मत्वा—मानकर; वितथम्—निष्प्रयोजन; आत्मजम्—अपने पुत्र को; व्यसृजत्—त्याग दिया; मरुतः—मरुत्गण ने; अबिभ्रन्—बच्चे का पालन किया; दत्तः—दिया गया; अयम्—यह; वितथे—निराश; अन्वये—महाराज भरत का वंश।

यद्यपि देवताओं ने बालक को पालने के लिए प्रोत्साहित किया था, किन्तु ममता ने अवैध जन्म के कारण उस बालक को व्यर्थ समझ कर उसे छोड़ दिया। फलस्वरूप, मरुत्गण देवताओं ने बालक का पालन किया और जब महाराज भरत सन्तान के अभाव से निराश हो गए तो उन्हें यही बालक पुत्र-रूप में भेंट किया गया।

तात्पर्य : इस श्लोक से यह समझ में आता है कि जिन्हें स्वर्गलोक में त्याग दिया जाता है उन्हें इस धरालोक में अत्यन्त उच्च परिवारों में जन्म लेने का अवसर दिया जाता है।

इस प्रकार *श्रीमद्भागवत* के नवम स्कन्ध के अन्तर्गत ''पूरु का वंश'' नामक बीसवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter इक्कीस

भरत का वंश

इस इक्कीसवें अध्याय में महाराज दुष्मन्त के पुत्र महाराज भरत के वंश का वर्णन हुआ है। इसमें रन्तिदेव, अजमीढ तथा अन्यों की महिमाओं का भी वर्णन आया है।

भरद्वाज का पुत्र मन्यु था। मन्यु के पाँच पुत्र थे—बृहत्क्षत्र, जय, महावीर्य, नर तथा गर्ग। इनमें से नर के पुत्र का नाम संस्कृति था जिसके दो पुत्र हुए—गुरु तथा रन्तिदेव। महान् भक्त होने के नाते रन्तिदेव हर जीव को भगवान् से सम्बन्धित देखते थे और वे मनसा-वाचा-कर्मणा भगवान् तथा उनके भक्तों की सेवा में पूरी तरह लगे रहते थे। वे इतने महान् थे कि कभी-कभी अपना भोजन भी दान दे देते थे और वे अपने परिवारसहित भूखे रह जाते थे। एक बार जब रन्तिदेव अड़तालीस दिनों तक निर्जल उपवास कर चुके तो उनके समीप घी से बना उत्तम भोजन लाया गया, किन्तु जैसे ही वे कौर तोड़ने वाले थे कि एक ब्राह्मण अतिथि आ धमका। अतएव रन्तिदेव ने भोजन नहीं किया अपितु इसका एक भाग तुरन्त उस ब्राह्मण को दे दिया। जब ब्राह्मण चला गया और रन्तिदेव बचा हुआ भोजन करने जा रहे थे तो एक शूद्र आया। अतएव रन्तिदेव ने इस बचे हुए भोजन को अपने तथा शूद्र के बीच में बाँट दिया। पुन: जब वे यह बचा भोजन करने जा रहे थे तो एक दूसरा अतिथि आ गया। अतएव रन्तिदेव ने यह भोजन इस नए अतिथि को दे दिया और स्वयं प्यास बुझाने के लिए पानी पीकर संतुष्ट होने की ठानी। किन्तु इस में भी व्यवधान पड़ गया। तभी एक प्यासा अतिथि आ गया और रन्तिदेव ने उसे वह जल भी दे दिया। यह सब भगवान् द्वारा अपने भक्त की महिमा बढ़ाने और यह दिखलाने के लिए पहले से नियोजित था कि भगवान् की सेवा करते समय भक्त कितना सहिष्णु होता है। रन्तिदेव पर भगवान् अत्यधिक प्रसन्न हुए और उन्हें अत्यन्त गोपनीय सेवा का भार सौंप दिया। ऐसा सेवा-भार शुद्ध भक्त को ही दिया जाता है, सामान्य भक्तों को नहीं।

भरद्वाज के पुत्र गर्ग के एक पुत्र हुआ जिसका नाम शिनि था जिसका पुत्र गार्ग्य हुआ। यद्यपि गार्ग्य जन्म से क्षत्रिय था, किन्तु उसके पुत्र ब्राह्मण हो गए। महावीर्य का पुत्र दुरितक्षय था जिसके पुत्र थे त्रय्यारुणि, कवि तथा पुष्करारुणि। यद्यपि ये तीनों पुत्र क्षत्रिय राजा से उत्पन्न हुए थे, किन्तु इन्हें ब्राह्मण पद प्राप्त हुए। बृहत्क्षत्र के पुत्र ने हस्तिनापुर नामक नगरी बनवाई और हस्ती नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसके पुत्रों

के नाम थे अजमीढ, द्विमीढ तथा पुरुमीढ।

अजमीढ से प्रियमेध तथा अन्य ब्राह्मणों के अतिरिक्त बृहदिषु नामक पुत्र भी हुआ। बृहदिषु के पुत्र, पौत्र आदि वंशजों में बृहद्धनु, बृहत्काय, जयद्रथ, विशद तथा श्येनजित हुए। श्येनजित के चार पुत्र हुए—रुचिराश्व, दृढधनु, काश्य तथा वत्स। रुचिराश्व से पार नामक पुत्र हुआ जिसके दो पुत्र हुए पृथुसेन तथा नीप। नीप के एक सौ पुत्र हुए। नीप का एक और पुत्र ब्रह्मदत्त था जिससे विष्वक्सेन तथा विष्वक्सेन से उदक्सेन और उदक्सेन से भल्लाट हुए।

द्विमीढ का पुत्र यवीनर था जिसके कई पुत्र तथा पौत्र हुए—यथा कृतिमान, सत्यधृति, दृढनेमि, सुपार्श्व, सुमति, सन्नतिमान, कृती, नीप, उद्ग्रायुध, क्षेम्य, सुवीर, रिपुञ्जय तथा बहुरथ। पुरुमीढ के कोई पुत्र नहीं था, किन्तु अजमीढ़ के अन्य पुत्रों के अतिरिक्त नील नाम का पुत्र हुआ जिसके पुत्र का नाम शान्ति था। शान्ति के वंशज थे सुशान्ति, पुरुज, अर्क तथा भर्म्याश्व। भर्म्याश्व के पाँच पुत्र थे जिनमें से मुद्गल ने ब्राह्मण वंश को जन्म दिया। मुद्गल की जुड़वा सन्तान में दिवोदास पुत्र तथा अहल्या पुत्री थी। अहल्या का पति गौतम था जिनसे शतानन्द का जन्म हुआ। शतानन्द का पुत्र सत्यधृति हुआ और उसका पुत्र शरद्वान था। शरद्वान का पुत्र कृप था और पुत्री का नाम कृपी था जो बाद में द्रोणाचार्य की पत्नी बनी।

श्रीशुक उवाच
वितथस्य सुतान्मन्योर्बृहत्क्षत्रो जयस्ततः ।
महावीर्यो नरो गर्गः सङ्कृतिस्तु नरात्मजः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; वितथस्य—वितथ (भरद्वाज) का, जिसे भरत ने निराशा की विशेष परिस्थिति में गोद लिया था; सुतात्—पुत्र से; मन्योः—मन्यु; बृहत्क्षत्रः—बृहत्क्षत्र; जयः—जय; ततः—उससे; महावीर्यः—महावीर्य; नरः—नर; गर्गः—गर्ग; सङ्कृतिः—संकृति; तु—निश्चय ही; नर-आत्मजः—नर का पुत्र।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा: चूँकि मरुत्गणों ने भरद्वाज को लाकर दिया था इसलिए वह वितथ कहलाया। वितथ के पुत्र का नाम मन्यु था जिसके पाँच पुत्र हुए—बृहत्क्षत्र, जय, महावीर्य, नर तथा गर्ग। इन पाँचों में से नर के पुत्र का नाम संकृति था।

गुरुश्च रन्तिदेवश्च सङ्कृतेः पाण्डुनन्दन ।
रन्तिदेवस्य महिमा इहामुत्र च गीयते ॥ २ ॥

शब्दार्थ

गुरुः—गुरु नामक पुत्र; च—तथा; रन्तिदेवः च—तथा रन्तिदेव; सङ्कृतेः—संकृति से; पाण्डु-नन्दन—हे पाण्डु के वंशज, महाराज परीक्षित; रन्तिदेवस्य—रन्तिदेव की; महिमा—ख्याति; इह—इस संसार में; अमुत्र—तथा परलोक में; च—भी; गीयते—गाई जाती है।.

हे महाराज परीक्षित, हे पाण्डु वंशज, संकृति के दो पुत्र थे—गुरु तथा रन्तिदेव। रन्तिदेव इस लोक में तथा परलोक दोनों में ही विख्यात हैं क्योंकि उनकी महिमा का गान न केवल मानव समाज में अपितु देव समाज में भी होता है।

वियद्वित्तस्य ददतो लब्धं लब्धं बुभुक्षतः ।
निष्किञ्चनस्य धीरस्य सकुटुम्बस्य सीदतः ॥ ३ ॥
व्यतीयुरष्टचत्वारिंशदहान्यपिबतः किल ।
घृतपायससंयावं तोयं प्रातरुपस्थितम् ॥ ४ ॥
कृच्छ्रप्राप्तकुटुम्बस्य क्षुत्तृड्भ्यां जातवेपथोः ।
अतिथिर्ब्राह्मणः काले भोक्तुकामस्य चागमत् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

वियत्-वित्तस्य—रन्तिदेव का, जिसे विधाता से वस्तुएँ प्राप्त होती थीं जिस तरह चातक पक्षी आकाश से जल प्राप्त करता है; ददतः—अन्यों को बाँट दिया; लब्धम्—जो कुछ प्राप्त हुआ; लब्धम्—ऐसे प्राप्त पदार्थ; बुभुक्षतः—भोग किया; निष्किञ्चनस्य—सदैव धनहीन; धीरस्य—फिर भी अत्यन्त धीर; स-कुटुम्बस्य—अपने परिवार के साथ भी; सीदतः—अत्यधिक कष्ट भोगता; व्यतीयुः—बीत गये; अष्ट-चत्वारिंशत्—अड़तालीस; अहानि—दिन; अपिबतः—जल पिये बिना; किल—निस्सन्देह; घृत-पायस—घी तथा दूध से बना भोजन; संयावम्—व्यंजन; तोयम्—जल; प्रातः—प्रातःकाल; उपस्थितम्—संयोगवश आ गया; कृच्छ्र-प्राप्त—कष्ट पाते हुए; कुटुम्बस्य—कुटुम्बियों का; क्षुत्-तृड्भ्याम्—भूख तथा प्यास से; जात—हो गया; वेपथोः—कम्पित; अतिथिः—अतिथि; ब्राह्मणः—ब्राह्मण; काले—उस समय; भोक्तु-कामस्य—कुछ खाने के लिए इच्छुक रन्तिदेव का; च—भी; आगमत्—वहाँ आ गया।.

रन्तिदेव ने कभी कुछ भी कमाने का यत्न नहीं किया। उसे भाग्य से जो मिल जाता उसे ही भोगता, किन्तु जब अतिथि आ जाते तो वह हर वस्तु उन्हें दे देता था। इस तरह उसे तथा उसके साथ उसके परिवार के सदस्यों को काफी कष्ट सहना पड़ा। वह तथा उसके परिवार के लोग अन्न तथा जल के अभाव से गंभीर रहते थे फिर भी रन्तिदेव धीर बना रहता। एक बार अड़तालीस दिनों तक उपवास करने के बाद रन्तिदेव को प्रातःकाल थोड़ा जल तथा घी और दूध से बने कुछ व्यंजन प्राप्त हुए, किन्तु जब वह तथा उसके परिवार वाले भोजन करने ही वाले थे तो एक ब्राह्मण अतिथि आ धमका।

तस्मै संव्यभजत्सोऽन्नमादृत्य श्रद्धयान्वितः ।
हरिं सर्वत्र सम्पश्यन्स भुक्त्वा प्रययौ द्विजः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

तस्मै—उस (ब्राह्मण) को; **संव्यभजत्**—बाँट कर अपना हिस्सा दे दिया; **सः**—उसने; **अन्नम्**—भोजन; **आदृत्य**—आदरपूर्वक; **श्रद्धया अन्वितः**—अत्यन्त श्रद्धापूर्वक; **हरिम्**—भगवान् को; **सर्वत्र**—सभी जगह, हर जीव के हृदय में; **सम्पश्यन्**—देखते हुए; **सः**—वह; **भुक्त्वा**—भोजन करके; **प्रययौ**—उस स्थान से चला गया; **द्विजः**—ब्राह्मण।

चूँकि रन्तिदेव को सर्वत्र एवं हर जीव में भगवान् की उपस्थिति का बोध होता था अतएव वह बड़े ही श्रद्धा-सम्मान से अतिथि का स्वागत करता और उसे भोजन का अंश देता था। उस ब्राह्मण अतिथि ने अपना भाग खाया और फिर चला गया।

तात्पर्य : रन्तिदेव को हर जीव में भगवान् के दर्शन होते थे, किन्तु वह कभी यह नहीं सोचता था कि चूँकि भगवान् हर जीव में हैं अतएव हर जीव भगवान् है। इसी तरह वह जीव जीव में भेद नहीं मानता था। उसे ब्राह्मण तथा चण्डाल दोनों में भगवान् की उपस्थिति प्रतीत होती थी। यह असली समदृष्टि है जैसा कि स्वयं भगवान् ने *भगवद्गीता* (५.१८) में पुष्टि की है—

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।

शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥

"असली ज्ञान होने से विनीत साधु, विद्वान तथा नम्र ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ते तथा चण्डाल को समान दृष्टि से देखता है।" पण्डित अर्थात् विद्वान व्यक्ति हर जीव में भगवान् की उपस्थिति देखता है। यद्यपि आजकल तथाकथित दरिद्रनारायण को वरीयता देने की प्रथा बन चुकी है, किन्तु रन्तिदेव के पास किसी एक को वरीयता देने का कोई कारण नहीं था। यह विचार कि चूँकि नारायण दरिद्र अर्थात् गरीब के हृदय में उपस्थित है अतएव गरीब को दरिद्रनारायण कहा जाय, भ्रान्त धारणा है। ऐसे तर्क से तो कूकर-सूकर भी नारायण बन जाएँगे क्योंकि भगवान् उन सबों के हृदयों में भी रहते हैं। हमें ऐसा नहीं सोचना चाहिए कि रन्तिदेव की विचारधारा ऐसी थी। वे तो हर एक को भगवान् का अंश मानते थे (*हरि सम्बन्धिवस्तुनः*)। ऐसा नहीं है कि हर कोई भगवान् है। ऐसा सिद्धान्त मायावादियों का है जो सदा भ्रामक है और रन्तिदेव ने इसे कभी भी स्वीकार नहीं किया।

अथान्यो भोक्ष्यमाणस्य विभक्तस्य महीपतेः ।
विभक्तं व्यभजत्तस्मै वृषलाय हरिं स्मरन् ॥ ७॥

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात्; अन्यः—दूसरा अतिथि; भोक्ष्यमाणस्य—बस खाने ही जा रहे थे; विभक्तस्य—परिवार के लिए हिस्सा अलग करते हुए; महीपतेः—राजा का; विभक्तम्—परिवार के लिए नियत भोजन; व्यभजत्—हिस्से लगाकर बाँट दिया; तस्मै—उस; वृषलाय—शूद्र को; हरिम्—भगवान् का; स्मरन्—स्मरण करते हुए।

तत्पश्चात् शेष भोजन को अपने परिवार वालों मे बाँट देने के बाद रन्तिदेव अपना हिस्सा खाने जा ही रहे थे कि एक शूद्र अतिथि वहाँ आ गया। इस शूद्र को भगवान् से सम्बन्धित देखकर राजा रन्तिदेव ने उसे भी भोजन में से एक अंश दिया।

तात्पर्य : चूँकि राजा रन्तिदेव हर एक को भगवान् के अंश रूप में देखते थे अतएव वे कभी ब्राह्मण और शूद्र तथा दरिद्र और धनी में अन्तर नहीं रखते थे। ऐसी समदृष्टि *समदर्शिन:* कहलाती है (*पण्डिता: समदर्शिन:*)। जिसे यह अनुभूति हो चुकी है कि भगवान् सबों के हृदय में स्थित है और सारे जीव भगवान् के अंश हैं वह ब्राह्मण तथा शूद्र, दरिद्र तथा धनी में कोई अन्तर नहीं करता। ऐसा व्यक्ति सभी जीवों को समान रूप से देखता है और बिना भेदभाव के उनके साथ समान आचरण करता है।

याते शूद्रे तमन्योऽगादतिथिः श्वभिरावृतः ।
राजन्मे दीयतामन्नं सगणाय बुभुक्षते ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

याते—चले जाने पर; शूद्रे—शूद्र अतिथि के; तम्—राजा के पास; अन्यः—दूसरा; अगात्—वहाँ आया; अतिथिः—मेहमान; श्वभिः आवृतः—कुत्तों से घिरा हुआ; राजन्—हे राजा; मे—मुझको; दीयताम्—दीजिये; अन्नम्—खाद्य पदार्थ; स-गणाय—कुत्तों समेत; बुभुक्षते—भूखा होने के कारण।

जब शूद्र चला गया तो एक दूसरा मेहमान आया जिसके साथ कुत्ते थे। उसने कहा, ''हे राजा, मैं तथा मेरे साथ के ये कुत्ते अत्यन्त भूखे हैं। कृपया हमें कुछ खाने को दें।''

स आदृत्यावशिष्टं यद्बहुमानपुरस्कृतम् ।
तच्च दत्त्वा नमश्चक्रे श्वभ्यः श्वपतये विभुः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

सः—वह (राजा रन्तिदेव); आदृत्य—आदरपूर्वक; अवशिष्टम्—ब्राह्मण तथा शूद्र को खिलाने के बाद बचा हुआ भोजन; यत्—जितना भी; बहु-मान-पुरस्कृतम्—अत्यन्त आदर करते हुए; तत्—वह; च—भी; दत्त्वा—देकर; नमः-चक्रे—नमस्कार किया; श्वभ्यः—कुत्तों के साथ; श्व-पतये—कुत्तों के मालिक को; विभुः—शक्तिशाली राजा।

राजा रन्तिदेव ने अतिथि रूप में आये कुत्तों और कुत्तों के मालिक को अत्यन्त आदरपूर्वक बचा हुआ भोजन दे दिया। राजा ने उनका सभी प्रकार से आदर किया और नमस्कार किया।

पानीयमात्रमुच्छेषं तच्चैकपरितर्पणम् ।
पास्यतः पुल्कसोऽभ्यागादपो देह्यशुभाय मे ॥ १० ॥

शब्दार्थ

पानीय-मात्रम्—केवल पीने का जल; उच्छेषम्—उच्छिष्ट भोजन; तत् च—वह भी; एक—एक के लिए; परितर्पणम्—तुष्ट करते हुए; पास्यतः—ज्योंही राजा पीने को हुआ; पुल्कसः—चण्डाल; अभ्यागात्—वहाँ आया; अपः—जल; देहि—कृपया दें; अशुभाय—अधम चण्डाल होने पर भी; मे—मुझको।

तत्पश्चात् केवल पीने का जल ही बच रहा जो केवल एक व्यक्ति को संतुष्ट करने के लिए ही पर्याप्त था। किन्तु ज्योंही राजा जल पीने को हुआ कि एक चण्डाल वहाँ आया और कहने लगा, ''हे राजा, मैं निम्नकुल में उत्पन्न (नीच) हूँ। कृपा करके मुझे पीने के लिए थोड़ा जल दें।''

तस्य तां करुणां वाचं निशम्य विपुलश्रमाम् ।
कृपया भृशसन्तप्त इदमाहामृतं वचः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसका (चण्डाल) का; ताम्—उन; करुणाम्—दयनीय; वाचम्—शब्दों को; निशम्य—सुनकर; विपुल—अत्यधिक; श्रमाम्—थका हुआ; कृपया—दया करके; भृश-सन्तप्तः—अत्यन्त दुखी; इदम्—ये सब; आह—बोला; अमृतम्—मधुर; वचः—शब्द।

बेचारे थके चण्डाल के दयनीय वचनों को सुनकर दुखित महाराज रन्तिदेव ने इस प्रकार के अमृततुल्य वचन कहे।

तात्पर्य : महाराज रन्तिदेव के शब्द अमृततुल्य थे; अतएव दुखी व्यक्ति की शारीरिक सेवा करने के अतिरिक्त वे अपनी वाणी से ही सुनने वाले के जीवन को बचा सकते थे।

न कामयेऽहं गतिमीश्वरात्पराम्
अष्टर्द्धियुक्तामपुनर्भवं वा ।
आर्तिं प्रपद्येऽखिलदेहभाजाम्
अन्तःस्थितो येन भवन्त्यदुःखाः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

न कामये—नहीं चाहता; अहम्—मैं; गतिम्—गन्तव्य; ईश्वरात्—भगवान् से; पराम्—महान; अष्ट-ऋद्धि-युक्ताम्—आठ प्रकार की सिद्धियों से रचित; अपुनः-भवम्—बारम्बार जन्म का अन्त (मोक्ष); वा—अथवा; आर्तिम्—कष्ट; प्रपद्ये—स्वीकार करता हूँ; अखिल-देह-भाजाम्—सारे जीवों के; अन्तः-स्थितः—भीतर स्थित; येन—जिससे; भवन्ति—होते हैं; अदुःखाः—दुखरहित।

मैं ईश्वर से न तो योग की अष्ट सिद्धियों के लिए प्रार्थना करता हूँ न जन्म-मृत्यु के चक्र से मोक्ष की कामना करता हूँ। मैं सारे जीवों के बीच निवास करके उनके लिए सारे कष्टों को भोगना चाहता हूँ जिससे वे कष्ट से मुक्त हो सकें।

तात्पर्य : वासुदेव दत्त ने भी श्रीचैतन्य महाप्रभु से इसी प्रकार प्रार्थना की थी कि वे अपनी उपस्थिति में सारे जीवों को मुक्त कर दें। उसने कहा कि यदि ये जीव मुक्त होने लायक न हों तो वह उन सबों के पापफलों को अपने ऊपर ले सकता है और स्वयं कष्ट भोग सकता है जिससे भगवान् उन सबका उद्धार कर सकें। इसीलिए वैष्णव को *परदुखदुखी* कहा गया है। इस तरह वैष्णव व्यक्ति मानव समाज के वास्तविक कल्याण-कार्यों में अपने आपको लगाता है।

क्षुत्तृट्श्रमो गात्रपरिभ्रमश्च
दैन्यं क्लमः शोकविषादमोहाः ।
सर्वे निवृत्ताः कृपणस्य जन्तोर्
जिजीविषोर्जीवजलार्पणान्मे ॥ १३॥

शब्दार्थ

क्षुत्—भूख; तृट्—तथा प्यास से; श्रमः—थकावट; गात्र-परिभ्रमः—शरीर का काँपना; च—भी; दैन्यम्—गरीबी; क्लमः—कष्ट; शोक—संताप; विषाद—खिन्नता; मोहाः—तथा मोह; सर्वे—सभी; निवृत्ताः—समाप्त; कृपणस्य—गरीब; जन्तोः—जीव (चण्डाल) की; जिजीविषोः—जीने की इच्छा; जीव—प्राण बचाने के लिए हुए; जल—जल; अर्पणात्—प्रदान करने से; मे—मेरा।

जीवन के लिए संघर्ष करते हुए बेचारे चण्डाल की जान बचाने के लिए अपना जल देकर मैं सारी भूख, प्यास, थकान, शरीर-कम्पन, खिन्नता, क्लेश, संताप तथा मोह से मुक्त हो गया हूँ।

इति प्रभाष्य पानीयं म्रियमाणः पिपासया ।
पुल्कसायाददाद्धीरो निसर्गकरुणो नृपः ॥ १४॥

शब्दार्थ

इति—इस तरह; प्रभाष्य—यह कह कर; पानीयम्—पीने का जल; म्रियमाणः—मरणासन्न; पिपासया—प्यास के कारण; पुल्कसाय—चण्डाल को; अददात्—दे दिया; धीरः—धीर; निसर्ग-करुणः—स्वभाव से दयालु; नृपः—राजा ने।

इस तरह कहकर प्यास के मारे मरते हुए राजा रन्तिदेव ने बिना किसी हिचक के अपने हिस्से का जल चण्डाल को दे दिया क्योंकि राजा स्वभाव से अत्यन्त दयालु तथा शान्त था।

तस्य त्रिभुवनाधीशाः फलदाः फलमिच्छताम् ।
आत्मानं दर्शयां चक्रुर्माया विष्णुविनिर्मिताः ॥ १५॥

शब्दार्थ

तस्य—उसके समक्ष; त्रि-भुवन-अधीशाः—तीनों लोकों के नियन्ता (यथा ब्रह्मा, शिव जैसे देवतागण); फलदाः—फल देने वाले; फलम् इच्छताम्—भौतिक लाभ की इच्छा रखने वाले; आत्मानम्—अपना स्वरूप; दर्शयाम् चक्रुः—प्रकट किया; मायाः—मोहक शक्ति; विष्णु—विष्णु द्वारा; विनिर्मिताः—उत्पन्न।

तत्पश्चात् लोगों को इच्छित फल देकर उनकी सारी भौतिक इच्छाओं को पूरा करने वाले ब्रह्माजी तथा शिवजी जैसे देवताओं ने राजा रन्तिदेव के समक्ष अपना स्वरूप प्रकट किया क्योंकि वे ही ब्राह्मण, शूद्र, चण्डाल इत्यादि के रूप में उनके पास आये थे।

**स वै तेभ्यो नमस्कृत्य निःसङ्गो विगतस्पृहः ।
वासुदेवे भगवति भक्त्या चक्रे मनः परम् ॥ १६ ॥**

शब्दार्थ

सः—वह (राजा रन्तिदेव); वै—निस्सन्देह; तेभ्यः—ब्रह्माजी, शिवजी इत्यादि अन्य देवताओं को; नमः-कृत्य—नमस्कार करके; निःसङ्गः—निष्काम; विगत-स्पृहः—किसी प्रकार की भौतिक सम्पत्ति की इच्छा न करते हुए; वासुदेवे—वासुदेव में; भगवति—भगवान्; भक्त्या—भक्ति के द्वारा; चक्रे—स्थिर किया; मनः—मन को; परम्—चरम लक्ष्य के रूप में।

राजा रन्तिदेव को देवताओं से किसी प्रकार का भौतिक लाभ प्राप्त करने की कोई आकांक्षा न थी। उसने उन्हें प्रणाम किया, किन्तु भगवान् विष्णु या वासुदेव में अनुरक्त होने के कारण उसने अपने मन को भगवान् विष्णु के चरणकमलों में स्थिर कर लिया।

तात्पर्य : श्रील नरोत्तम दास ठाकुर का गीत है—

अन्य देवाश्रय नाइ, तोमारे कहिनु भाइ

एइ भक्ति परम करण

यदि कोई भगवान् का शुद्ध भक्त बनना चाहता है तो उसे देवताओं से किसी वर की लालसा नहीं रखनी चाहिए। जैसा कि *भगवद्गीता* (७.२०) में कहा गया है—*कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञाना: प्रपद्यन्तेऽन्यदेवता:*—माया के मोह से मूर्ख बने लोग भगवान् को छोड़कर अन्य देवताओं की पूजा करते हैं। इसीलिए यद्यपि रन्तिदेव ब्रह्माजी तथा शिवजी का साक्षात् दर्शन कर रहे थे, किन्तु उन्हें उनसे किसी भौतिक लाभ की कोई लालसा नहीं थी। उल्टे, उन्होंने अपने मन को भगवान् वासुदेव में स्थिर कर दिया और उनकी भक्ति की। यह उस शुद्ध भक्त का लक्षण है जिसका हृदय भौतिक इच्छाओं से कलुषित नहीं होता।

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।

आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥

''मनुष्य को सकाम कर्म या दार्शनिक चिन्तन के द्वारा भौतिक लाभ की इच्छा किये बिना भगवान् कृष्ण की अनुकूल दिव्य सेवा करनी चाहिए। यही शुद्ध भक्ति कहलाती है।''

ईश्वरालम्बनं चित्तं कुर्वतोऽनन्यराधसः ।
माया गुणमयी राजन्स्वप्नवत्प्रत्यलीयत ॥ १७॥

शब्दार्थ

ईश्वर-आलम्बनम्—भगवान् के चरणकमलों में पूरी तरह शरण लेना; चित्तम्—चेतना; कुर्वतः—स्थिर करके; अनन्य-राधसः—रन्तिदेव के लिए जो अविचल था और भगवान् की सेवा के अतिरिक्त कुछ नहीं चाहता था; माया—भ्रामक शक्ति; गुण-मयी—प्रकृति के तीन गुणों से युक्त; राजन्—हे महाराज परीक्षित; स्वप्न-वत्—सपने के समान; प्रत्यलीयत—नष्ट हो गई।.

हे महाराज परीक्षित, चूँकि राजा रन्तिदेव शुद्ध भक्त, सदैव कृष्णभावनाभावित तथा पूर्णरूपेण निष्काम था अतएव भगवान् की माया उसके समक्ष प्रकट नहीं हो सकी। उल्टे, माया स्वप्न के समान पूरी तरह नष्ट हो गई।

तात्पर्य : जैसे कहा गया है कि—

कृष्ण—सूर्य-सम, माया हय अंधकार।

याहाँ कृष्ण, ताहाँ नाहि मायार अधिकार॥

जिस तरह सूर्य के प्रकाश में अंधकार के होने की कोई सम्भावना नहीं रहती, उसी तरह शुद्ध कृष्ण भक्त में माया का अस्तित्व नहीं रह पाता। भगवान् स्वयं *भगवद्गीता* (७.१४) में कहते हैं—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

"भौतिक प्रकृति के तीन गुणों वाली मेरी इस दैवी शक्ति को जीत पाना कठिन है। किन्तु जिन्होंने मेरी शरण ग्रहण कर ली है वे इसे आसानी से पार कर सकते हैं।" जो कोई भ्रामक शक्ति अर्थात् माया के प्रभाव से मुक्त होना चाहता है उसे कृष्णभक्त बनकर कृष्ण को सदैव अपने हृदय में धारण करना चाहिए। *भगवद्गीता* (९.३४) में भगवान् उपदेश देते हैं कि मनुष्य सदैव उनका चिन्तन करे (*मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु*)। इस तरह सदा कृष्णभावनाभावित रहते हुए मनुष्य माया के प्रभाव को पार कर सकता है (*मायामेतां तरन्ति ते*)। चूँकि रन्तिदेव कृष्णभक्त थे अतएव वे माया के वशीभूत नहीं थे। इस प्रसंग में *स्वप्नवत्* शब्द महत्त्वपूर्ण है। चूँकि भौतिक जगत में मन भौतिक कार्यों में मग्न रहता है अतएव सो जाने पर स्वप्न में बहुत से विरोधी कार्य दिखते हैं। किन्तु जब मनुष्य जगता है तो ये सारे कार्य मन में समा जाते हैं। इसी प्रकार जब तक मनुष्य माया के वश में रहता है तब तक वह नाना प्रकार की योजनाएँ एवं

कार्यक्रम बनाता है, किन्तु कृष्णभक्त होने पर स्वप्न जैसी ये योजनाएँ स्वत: दूर हो जाती हैं।

तत्प्रसङ्गानुभावेन रन्तिदेवानुवर्तिनः ।
अभवन्योगिनः सर्वे नारायणपरायणाः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

तत्-प्रसङ्ग-अनुभावेन—राजा रन्तिदेव की संगति के कारण (उनसे भक्तियोग के विषय में बातें करते हुए); रन्तिदेव-अनुवर्तिनः—राजा रन्तिदेव के अनुयायी (उनके नौकर, परिवार वाले, मित्र, इत्यादि); अभवन्—हो गये; योगिनः—श्रेष्ठ भक्तियोगी; सर्वे—सभी; नारायण-परायणाः—भगवान् नारायण के भक्त।

जिन लोगों ने राजा रन्तिदेव के सिद्धान्तों का पालन किया उन सबों को उनकी कृपा प्राप्त हुई और वे भगवान् नारायण के शुद्ध भक्त बन गये। इस तरह वे सभी श्रेष्ठ योगी बन गये।

तात्पर्य : श्रेष्ठ योगीजन भक्त होते हैं जिसकी पुष्टि भगवान् स्वयं *भगवद्गीता* (६.४७) में करते हैं—

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।

श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्तमो मत: ।

''समस्त योगियों में से जो योगी श्रद्धापूर्वक मेरी दिव्य भक्ति में रहते हुए मेरी पूजा करता है वह योग में मुझसे भलीभाँति युक्त हो जाता है और सबों में उच्च होता है।'' सर्वश्रेष्ठ योगी वह है जो निरन्तर अपने हृदय में भगवान् का चिन्तन करता है। चूँकि रन्तिदेव राज्य के प्रमुख कार्यकारी और राजा थे अतएव राज्य के सारे निवासी राजा के दिव्य संसर्ग से भगवान् के भक्त बन गये। शुद्ध भक्त का यह प्रभाव है। यदि एक भी शुद्ध भक्त हो तो उसकी संगति से सैकड़ों-हजारों शुद्ध भक्त बन सकते हैं। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर ने कहा है कि वैष्णव जितने भक्त बनाता है उसी के अनुपात में वह महान् होता है। वैष्णव वाग्जाल से नहीं अपितु अपने द्वारा बनाये गये भगवद्भक्तों की संख्या से श्रेष्ठ बनता है। यहाँ पर *रन्तिदेवानुवर्तिन:* शब्द इस बात का सूचक है कि रन्तिदेव के अफसर, मित्र, परिजन तथा प्रजा उनके संसर्ग से उच्चकोटि के वैष्णव बन गये। दूसरे शब्दों में, यहाँ पर रन्तिदेव के महाभागवत अर्थात् प्रथम श्रेणी के भक्त होने की पुष्टि की गई है। *महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्ते:*—मनुष्य को ऐसे महात्माओं की सेवा करनी चाहिए क्योंकि तब इसे स्वत: भवबन्धन से मुक्त होने का लक्ष्य प्राप्त हो जायेगा। श्रील नरोत्तमदास ठाकुर ने यह भी कहा है—*छाडिया वैष्णव-सेवा निस्तार पायेछे केबा*—मनुष्य को अपने प्रयत्न से मुक्ति-लाभ नहीं होता, किन्तु यदि वह शुद्ध वैष्णव की अधीनता स्वीकार कर ले तो मुक्ति का द्वार खुल जाता है।

गर्गाच्छिनिस्ततो गार्ग्यः क्षत्राद्ब्रह्म ह्यवर्तत ।
दुरितक्षयो महावीर्यात्तस्य त्रय्यारुणिः कविः ॥ १९ ॥
पुष्करारुणिरित्यत्र ये ब्राह्मणगतिं गताः ।
बृहत्क्षत्रस्य पुत्रोऽभूद्धस्ती यद्धस्तिनापुरम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

गर्गात्—गर्ग से (भरद्वाज के अन्य पौत्र से); शिनिः—शिनि नामक पुत्र; ततः—उससे (शिनि से); गार्ग्यः—गार्ग्य नामक पुत्र; क्षत्रात्—क्षत्रिय होते हुए भी; ब्रह्म—ब्राह्मण; हि—निस्सन्देह; अवर्तत—हो सका; दुरितक्षयः—दुरितक्षय नामक पुत्र; महावीर्यात्—महावीर्य से (भरद्वाज के अन्य पौत्र से); तस्य—उसका; त्रय्यारुणिः—त्रय्यारुणि नामक पुत्र; कविः—कवि नामक पुत्र; पुष्करारुणिः—पुष्करारुणि नामक पुत्र; इति—इस प्रकार; अत्र—यहाँ; ये—वे सभी; ब्राह्मण-गतिम्—ब्राह्मणों का पद; गताः—प्राप्त हुआ; बृहत्क्षत्रस्य—बृहत्क्षत्र का, जो भरद्वाज का पौत्र था; पुत्रः—पुत्र; अभूत्—हुआ; हस्ती—हस्ती; यत्—जिससे; हस्तिनापुरम्—हस्तिनापुर (नई दिल्ली) की स्थापना हुई।

गर्ग से शिनि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका पुत्र गार्ग्य हुआ। यद्यपि गार्ग्य क्षत्रिय था, किन्तु उससे ब्राह्मण कुल की उत्पत्ति हुई। महावीर्य का पुत्र दुरितक्षय हुआ, जिसके तीन पुत्र थे—त्रय्यारुणि, कवि तथा पुष्करारुणि। यद्यपि दुरितक्षय के ये पुत्रक्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुए थे, किन्तु उन्हें भी ब्राह्मण पद प्राप्त हुआ। बृहत्क्षत्र का एक पुत्र हस्ती था जिसने हस्तिनापुर नामक नगर (आज की नई दिल्ली) की स्थापना की।

अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढश्च हस्तिनः ।
अजमीढस्य वंश्याः स्युः प्रियमेधादयो द्विजाः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

अजमीढः—अजमीढ; द्विमीढः—द्विमीढ; च—भी; पुरुमीढः—पुरुमीढ; च—भी; हस्तिनः—हस्ती के पुत्र बने; अजमीढस्य—अजमीढ के; वंश्याः—वंशज; स्युः—हैं; प्रियमेध-आदयः—प्रियमेध इत्यादि; द्विजाः—ब्राह्मण।

राजा हस्ती के तीन पुत्र हुए—अजमीढ, द्विमीढ, तथा पुरुमीढ। अजमीढ के वंशजों में प्रियमेध प्रमुख था और उन सबों ने ब्राह्मण पद प्राप्त किया।

तात्पर्य : इस श्लोक में ऐसा प्रमाण मिलता है जो *भगवद्गीता* के इस कथन की पुष्टि करता है कि समाज के वर्ण—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—गुणों तथा कर्मों के आधार पर परिगणित होते हैं (*गुणकर्मविभागशः*)। क्षत्रिय वर्ण के अजमीढ के सभी वंशज ब्राह्मण बन गये। ऐसा उनके गुणों तथा कर्मों के आधार पर हुआ। इसी प्रकार कभी-कभी ब्राह्मण या क्षत्रिय के पुत्र वैश्य बन जाते हैं (*ब्राह्मणा वैश्यतां गताः*)। जब क्षत्रिय या ब्राह्मण वैश्य के व्यवसाय या कर्म को ग्रहण करता है (*कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यम्*) तो

वह निश्चित रूप से वैश्य गिना जाता है। दूसरी ओर वैश्य कुल में उत्पन्न व्यक्ति अपने व्यवसाय से ब्राह्मण बन सकता है। इसकी पुष्टि नारद मुनि ने की है। *यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तम्*। विविध वर्णों के सदस्यों की पुष्टि उनके लक्षणों से की जानी चाहिए, जन्म से नहीं। जन्म महत्त्वपूर्ण नहीं, गुण आवश्यक है।

अजमीढाद्बृहदिषुस्तस्य पुत्रो बृहद्धनुः ।
बृहत्कायस्ततस्तस्य पुत्र आसीज्जयद्रथः ॥ २२॥

शब्दार्थ

अजमीढात्—अजमीढ से; बृहदिषुः—बृहदिषु नामक पुत्र; तस्य—उसका; पुत्रः—पुत्र; बृहद्धनुः—बृहद्धनु; बृहत्कायः—बृहत्काय; ततः—तत्पश्चात्; तस्य—उसका; पुत्रः—पुत्र; आसीत्—था; जयद्रथः—जयद्रथ।

अजमीढ का पुत्र बृहदिषु था, बृहदिषु का पुत्र बृहद्धनु था, बृहद्धनु का पुत्र बृहत्काय था और बृहत्काय से जयद्रथ नामक पुत्र हुआ।

तत्सुतो विशदस्तस्य स्येनजित्समजायत ।
रुचिराश्वो दृढहनुः काश्यो वत्सश्च तत्सुताः ॥ २३॥

शब्दार्थ

तत्-सुतः—जयद्रथ का पुत्र; विशदः—विशद; तस्य—उसका; स्येनजित्—स्येनजित; समजायत—उत्पन्न हुआ; रुचिराश्वः—रुचिराश्व; दृढहनुः—दृढहनु; काश्यः—काश्य; वत्सः—वत्स; च—भी; तत्-सुताः—स्येनजित के पुत्र।

जयद्रथ का पुत्र विशद था और उसका पुत्र स्येनजित था। स्येनजित के पुत्रों के नाम थे रुचिराश्व, दृढहनु, काश्य तथा वत्स।

रुचिराश्वसुतः पारः पृथुसेनस्तदात्मजः ।
पारस्य तनयो नीपस्तस्य पुत्रशतं त्वभूत् ॥ २४॥

शब्दार्थ

रुचिराश्व-सुतः—रुचिराश्व का पुत्र; पारः—पार; पृथुसेनः—पृथुसेन; तत्—उसका; आत्मजः—पुत्र; पारस्य—पार का; तनयः—पुत्र; नीपः—नीप; तस्य—उसके; पुत्र-शतम्—एक सौ पुत्र; तु—निस्सन्देह; अभूत्—उत्पन्न हुए।

रुचिराश्व का पुत्र पार था और पार के पुत्र पृथुसेन तथा नीप थे। नीप के एक सौ पुत्र थे।

स कृत्व्यां शुककन्यायां ब्रह्मदत्तमजीजनत् ।
योगी स गवि भार्यायां विष्वक्सेनमधात्सुतम् ॥ २५॥

शब्दार्थ

सः—उसने (नीप); कृत्व्याम्—कृत्वी नामक पत्नी से; शुक-कन्यायाम्—शुक की कन्या से; ब्रह्मदत्तम्—ब्रह्मदत्त नामक पुत्र; अजीजनत्—उत्पन्न किया; योगी—योगी; सः—वह ब्रह्मदत्त; गवि—गौ या सरस्वती नाम की; भार्यायाम्—पत्नी के गर्भ से; विष्वक्सेनम्—विष्वक्सेन को; अधात्—उत्पन्न किया; सुतम्—पुत्र।

शुक की पुत्री अर्थात् नीप की पत्नी कृत्वी के गर्भ से राजा नीप के ब्रह्मदत्त नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। ब्रह्मदत्त महान् योगी था। उसकी पत्नी सरस्वती के गर्भ से विष्वक्सेन नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ।

तात्पर्य : यहाँ पर जिस शुक का वर्णन है वह *भागवत* के वक्ता शुकदेव गोस्वामी से भिन्न है। व्यासदेव के पुत्र शुकदेव गोस्वामी का वर्णन *ब्रह्मवैवर्त पुराण* में विस्तार से पाया जाता है। उसमें बतलाया गया है कि व्यासदेव ने जाबालि की पुत्री को अपनी पत्नी बनाया और दोनों ने अनेक वर्षों तक इकट्ठे तपस्या की। तब व्यासदेव के वीर्य से उसे गर्भ रह गया। यह बालक अपनी माता के गर्भ में बारह वर्षों तक रहा और जब पिता ने बालक से गर्भ से बाहर आने के लिए कहा तो उसने उत्तर दिया कि वह तब तक बाहर नहीं आयेगा जब तक उसे माया के प्रभाव से पूरी तरह मुक्त न कर दिया जाय। तब व्यासदेव ने बालक को आश्वस्त किया कि वह माया से पूरी तरह मुक्त हो जायेगा, किन्तु बालक को विश्वास नहीं हुआ क्योंकि पिता अब भी अपनी पत्नी तथा बच्चों में लिप्त था। तब व्यासदेव द्वारका गये और भगवान् को अपनी समस्या बतलाई। व्यासदेव की प्रार्थना पर भगवान् उनकी कुटिया में आये और गर्भस्थ बालक को आश्वस्त किया कि वह माया से मुक्त रहेगा। इस पर बालक गर्भ से बाहर आया और तुरन्त ही *परिव्राजकाचार्य* के रूप में घर से बाहर चला गया। जब पिता व्याकुल होकर अपने साधुपुत्र शुकदेव गोस्वामी का पीछा करने लगा तो उसके साधु पुत्र ने एक दूसरा नकली शुकदेव उत्पन्न कर दिया जो बाद में गृहस्थ बना। इसीलिए इस श्लोक में वर्णित शुक कन्या इसी नकली शुकदेव की कन्या थी। मूल शुकदेव तो आजीवन ब्रह्मचारी बने रहे।

जैगीषव्योपदेशेन योगतन्त्रं चकार ह ।
उदक्सेनस्ततस्तस्माद्भल्लाटो बार्हदीषवाः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

जैगीषव्य—जैगीषव्य नामक महान् ऋषि के; उपदेशेन—उपदेश से; योग-तन्त्रम्—योगविधि का विस्तृत वर्णन; चकार—संकलित किया; ह—भूतकाल में; उदक्सेनः—उदक्सेन; ततः—उससे (विष्वक्सेन से); तस्मात्—उससे (उदक्सेन से); भल्लाटः—भल्लाट नामक पुत्र; बार्हदीषवाः—बृहदिषु के वंशज।

जैगीषव्य ऋषि के उपदेशानुसार विष्वक्सेन ने योगपद्धति का विस्तृत वर्णन संकलित किया। विष्वक्सेन से उदक्सेन उत्पन्न हुआ और उदक्सेन से भल्लाट। ये सभी पुत्र बृहदिषु के वंशज थे।

यवीनरो द्विमीढस्य कृतिमांस्तत्सुतः स्मृतः ।
नाम्ना सत्यधृतिस्तस्य दृढनेमिः सुपार्श्वकृत् ॥ २७॥

शब्दार्थ

यवीनरः—यवीनर; द्विमीढस्य—द्विमीढ का पुत्र; कृतिमान्—कृतिमान; तत्-सुतः—यवीनर का पुत्र; स्मृतः—विख्यात है; नाम्ना—नाम से; सत्यधृतिः—सत्यधृति; तस्य—उसका; दृढनेमिः—दृढनेमि; सुपार्श्व-कृत्—सुपार्श्व का पिता।

द्विमीढ का पुत्र यवीनर था और उसका पुत्र कृतिमान था। कृतिमान का पुत्र सत्यधृति के नाम से विख्यात था। सत्यधृति से दृढनेमि नाम का पुत्र हुआ जो सुपार्श्व का पिता बना।

सुपार्श्वात्सुमतिस्तस्य पुत्रः सन्नतिमांस्ततः ।
कृती हिरण्यनाभाद्यो योगं प्राप्य जगौ स्म षट् ॥ २८॥
संहिताः प्राच्यसाम्नां वै नीपो ह्युद्ग्रायुधस्ततः ।
तस्य क्षेम्यः सुवीरोऽथ सुवीरस्य रिपुञ्जयः ॥ २९॥

शब्दार्थ

सुपार्श्वात्—सुपार्श्व से; सुमतिः—सुमति नामक पुत्र; तस्य पुत्रः—उसका बेटा (सुमति का बेटा); सन्नतिमान्—सन्नतिमान; ततः—उससे; कृती—कृती नामक पुत्र; हिरण्यनाभात्—ब्रह्मा से; यः—जो; योगम्—योगशक्ति; प्राप्य—प्राप्त करके; जगौ—पढ़ाया; स्म—भूतकाल में; षट्—छः; संहिताः—संहिताएँ; प्राच्यसाम्नाम्—सामवेद के प्राच्यसाम नामक श्लोकों का; वै—निस्सन्देह; नीपः—नीप; हि—निस्सन्देह; उद्ग्रायुधः—उद्ग्रायुध; ततः—उससे; तस्य—उसका; क्षेम्यः—क्षेम्य; सुवीरः—सुवीर; अथ—तत्पश्चात्; सुवीरस्य—सुवीर का; रिपुञ्जयः—रिपुञ्जय नामक पुत्र।

सुपार्श्व से सुमति नाम का पुत्र, सुमति से सन्नतिमान तथा सन्नतिमान से कृती उत्पन्न हुआ जिसने ब्रह्मा से योगशक्ति प्राप्त की और सामवेद के प्राच्यसाम नामक श्लोकों की छह संहिताएँ पढ़ाईं। कृती का पुत्र नीप था, नीप का पुत्र उद्ग्रायुध हुआ, उद्ग्रायुध का पुत्र क्षेम्य हुआ, क्षेम्य से सुवीर नामक पुत्र हुआ तथा सुवीर का पुत्र रिपुञ्जय था।

ततो बहुरथो नाम पुरुमीढोऽप्रजोऽभवत् ।
नलिन्यामजमीढस्य नीलः शान्तिस्तु तत्सुतः ॥ ३०॥

शब्दार्थ

ततः—उससे (रिपुञ्जय से); बहुरथः—बहुरथ; नाम—नामक; पुरुमीढः—पुरुमीढ, द्विमीढ का छोटा भाई; अप्रजः—निःसन्तान; अभवत्—हुआ; नलिन्याम्—नलिनी से; अजमीढस्य—अजमीढ की; नीलः—नील; शान्तिः—शान्ति; तु—तब; तत्-सुतः—नील का पुत्र।

रिपुञ्जय का पुत्र बहुरथ हुआ। पुरुमीढ निःसन्तान था। अजमीढ को अपनी पत्नी नलिनी से नील नामक पुत्र की प्राप्ति हुई। नील का पुत्र शान्ति था।

शान्तेः सुशान्तिस्तत्पुत्रः पुरुजोऽर्कस्ततोऽभवत् ।
भर्म्याश्वस्तनयस्तस्य पञ्चासन्मुद्गलादयः ॥ ३१ ॥
यवीनरो बृहद्विश्वः काम्पिल्लः सञ्जयः सुताः ।
भर्म्याश्वः प्राह पुत्रा मे पञ्चानां रक्षणाय हि ॥ ३२ ॥
विषयाणामलमिमे इति पञ्चालसंज्ञिताः ।
मुद्गलाद्ब्रह्मनिर्वृत्तं गोत्रं मौद्गल्यसंज्ञितम् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

शान्तेः—शान्ति का; सुशान्तिः—सुशान्ति; तत्-पुत्रः—उसका पुत्र; पुरुजः—पुरुज; अर्कः—अर्क; ततः—उससे; अभवत्—उत्पन्न हुए; भर्म्याश्वः—भर्म्याश्व; तनयः—पुत्र; तस्य—उसके; पञ्च—पाँच पुत्र; आसन्—थे; मुद्गल-आदयः—मुद्गल इत्यादि; यवीनरः—यवीनर; बृहद्विश्वः—बृहद्विश्व; काम्पिल्लः—काम्पिल्ल; सञ्जयः—सञ्जय; सुताः—पुत्र; भर्म्याश्वः—भर्म्याश्व ने; प्राह—कहा; पुत्राः—पुत्र; मे—मेरे; पञ्चानाम्—पाँचों की; रक्षणाय—सुरक्षा के लिए; हि—निस्सन्देह; विषयाणाम्—विभिन्न राज्यों का; अलम्—दक्ष; इमे—ये सभी; इति—इस प्रकार; पञ्चाल—पञ्चाल; संज्ञिताः—नामधारी; मुद्गलात्—मुद्गल से; ब्रह्म-निर्वृत्तम्—ब्राह्मणों से युक्त; गोत्रम्—गोत्र; मौद्गल्य—मोद्गल; संज्ञितम्—नामधारी।

शान्ति का पुत्र सुशान्ति था, सुशान्ति का पुत्र पुरुज हुआ, पुरुज का अर्क और अर्क का पुत्र भर्म्याश्व था। भर्म्याश्व के पाँच पुत्र हुए—मुद्गल, यवीनर, बृहद्विश्व, काम्पिल्ल तथा संजय। भर्म्याश्व ने अपने बेटों से कहा : मेरे बेटो, तुम लोग मेरे पाँचों राज्यों का भार सँभालो क्योंकि तुम ऐसा करने के लिए पर्याप्त सक्षम हो। इस तरह उसके पाँचों पुत्र पञ्चाल कहलाये। मुद्गल से ब्राह्मणों का गोत्र चला जो मौद्गल्य कहलाया।

मिथुनं मुद्गलाद्भार्म्याद्दिवोदासः पुमानभूत् ।
अहल्या कन्यका यस्यां शतानन्दस्तु गौतमात् ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

मिथुनम्—जोड़ा, एक पुत्र और एक पुत्री; मुद्गलात्—मुद्गल से; भार्म्यात्—भार्म्याश्व का पुत्र; दिवोदासः—दिवोदास; पुमान्—पुरुष; अभूत्—उत्पन्न हुआ; अहल्या—अहल्या; कन्यका—कन्या; यस्याम्—जिससे; शतानन्दः—शतानन्द; तु—निस्सन्देह; गौतमात्—गौतम से, जो उसका पति था।

भर्म्याश्व के पुत्र मुद्गल के जुड़वाँ सन्तान हुई जिसमें एक पुत्र था और एक कन्या। पुत्र का नाम दिवोदास रखा गया और कन्या का नाम अहल्या। अहल्या के गर्भ और उसके पति गौतम मुनि के वीर्य से शतानन्द नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

तस्य सत्यधृतिः पुत्रो धनुर्वेदविशारदः ।
शरद्वांस्तत्सुतो यस्मादुर्वशीदर्शनात्किल ।

शरस्तम्बेऽपतद्रेतो मिथुनं तदभूच्छुभम् ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसका (शतानंद का); सत्यधृतिः—सत्यधृति; पुत्रः—पुत्र; धनुः-वेद-विशारदः—धनुर्विद्या में पटु; शरद्वान्—शरद्वान; तत्-सुतः—उसका (सत्यधृति का) पुत्र; यस्मात्—जिससे; उर्वशी-दर्शनात्—उर्वशी अप्सरा के दर्शन मात्र से; किल—निस्सन्देह; शर-स्तम्बे—शर नामक घास (सरपत) के गुच्छे में; अपतत्—गिर पड़ा; रेतः—वीर्य; मिथुनम्—नर नारी का जोड़ा; तत् अभूत्—वहाँ उत्पन्न हुआ; शुभम्—शुभ।

शतानन्द का पुत्र सत्यधृति था जो धनुर्विद्या में अत्यन्त पटु था। सत्यधृति का पुत्र शरद्वान हुआ। जब शरद्वान की भेंट उर्वशी से हुई तो शर नामक घास के गुच्छे पर उसका वीर्यपात हो गया। इस वीर्य से दो शुभ शिशु उत्पन्न हुए जिनमें से एक लड़का था और दूसरा लड़की।

तद्दृष्ट्वा कृपयागृह्णाच्छान्तनुर्मृगयां चरन् ।
कृपः कुमारः कन्या च द्रोणपत्न्यभवत्कृपी ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

तत्—उस जुड़वे को; दृष्ट्वा—देखकर; कृपया—दयावश; अगृह्णात्—ले लिया; शान्तनुः—राजा शान्तनु ने; मृगयाम्—जंगल में शिकार करते समय; चरन्—घूमते हुए; कृपः—कृप; कुमारः—बालक; कन्या—बालिका; च—भी; द्रोण-पत्नी—द्रोणाचार्य की पत्नी; अभवत्—बनी; कृपी—कृपी।

जब महाराज शान्तनु शिकार करने गये तो उन्होंने जंगल में जुड़वाँ शिशुओं को पड़ा देखा। वे दयावश उन्हें अपने घर ले आये। फलस्वरूप, बालक कृप नाम से विख्यात हुआ और बालिका का नाम कृपी पड़ा। बाद में कृपी द्रोणाचार्य की पत्नी बनी।

इस प्रकार *श्रीमद्भागवत* के नवम स्कन्ध के अन्तर्गत ''भरत का वंश'' नामक इक्कीसवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter बाईस

अजमीढ के वंशज

इस अध्याय में दिवोदास के वंशजों का वर्णन है। साथ ही ऋक्षवंशी जरासन्ध तथा दुर्योधन, अर्जुन इत्यादि का वर्णन हुआ है।

दिवोदास का पुत्र मित्रायु था जिसके चार पुत्र हुए—च्यवन, सुदास, सहदेव तथा सोमक। सोमक के एक सौ पुत्र हुए जिनमें सबसे छोटा पृषत था जिससे द्रुपद उत्पन्न हुआ। द्रुपद की पुत्री द्रौपदी थी और पुत्रों में धृष्टद्युम्न सबसे बड़े थे। धृष्टद्युम्न का पुत्र धृष्टकेतु था।

अजमीढ का एक अन्य पुत्र ऋक्ष था। ऋक्ष का पुत्र संवरण हुआ। संवरण से कुरु हुआ जो कुरुक्षेत्र का राजा बना। कुरु के चार पुत्र थे—परीक्षी, सुधनु, जह्नु तथा निषध। सुधनु के वंश में सुहोत्र, च्यवन, कृती तथा उपरिचर वसु हुए। उपरिचर वसु के पुत्रों में बृहद्रथ, कुशाम्ब, मत्स्य, प्रत्यग्र तथा चेदिप चेदि राज्य के राजा बने। बृहद्रथ के वंश में कुशाग्र, ऋषभ, सत्यहित, पुष्पवान तथा जह्नु हुए। बृहद्रथ की दूसरी पत्नी की कुक्षि से जरासन्ध हुआ। उसके बाद सहदेव, सोमापि तथा श्रुतश्रवा हुए। कुरु-पुत्र परीक्षि नि:सन्तान रहा। जह्नु के वंशजों में सुरथ, विदूरथ, सार्वभौम, जयसेन, राधिक, अयुतायु, अक्रोधन, देवातिथि, ऋक्ष, दिलीप तथा प्रतीप हुए।

प्रतीप के पुत्र थे देवापि, शान्तनु तथा बाह्लीक। देवापि के जंगल चले जाने पर उसका छोटा भाई शान्तनु राजा हुआ। छोटा होने के कारण शान्तनु राजसिंहासन का अधिकारी नहीं था, किन्तु उसने बड़े भाई की कोई परवाह न की। फलस्वरूप, बारह वर्षों तक वर्षा नहीं हुई। अतएव ब्राह्मणों के कहने पर शान्तनु देवापि को राज्य लौटाने को तैयार हो गया लेकिन शान्तनु के मंत्री की चाल से देवापि राजा होने के अयोग्य हो गया। इसलिए शान्तनु ने पुन: राज्यभार ग्रहण किया और तब उसके राज्यकाल में ठीक से वर्षा हुई। देवापि अपनी योगशाक्ति से आज भी कलाप-ग्राम नामक गाँव में रहता है। इस कलियुग में जब सोम के वंशज, जो चन्द्रवंशी कहलाते हैं, मर जायेंगे तो सत्ययुग के प्रारम्भ में देवापि पुन: सोमवंश की स्थापना करेगा। शान्तनु की पत्नी गंगा ने भीष्म को जन्म दिया जो बारह महाजनों में से हैं। शान्तनु के दो पुत्र और भी हुए—चित्रांगद तथा विचित्रवीर्य। ये सत्यवती के गर्भ से शान्तनु के वीर्य से उत्पन्न हुए थे। पराशर के वीर्य से

सत्यवती के गर्भ से व्यासदेव ने जन्म लिया। व्यासदेव ने *भागवत* की कथा अपने पुत्र शुकदेव से कही। विचित्रवीर्य की दो पत्नियों तथा उसकी दासी से व्यासदेव ने धृतराष्ट्र, पाण्डु तथा विदुर को जन्म दिया।

धृतराष्ट्र के दुर्योधनादि एक सौ पुत्र तथा दु:शला नाम की एक कन्या हुई। पाण्डु के पाँच पुत्र थे जिनमें युधिष्ठिर प्रमुख थे और इन पाँचों से द्रौपदी ने एक-एक पुत्र उत्पन्न किया। द्रौपदी के पाँचों पुत्रों के नाम थे प्रतिविन्ध्य, श्रुतसेन, श्रुतकीर्ति, शतानीक तथा श्रुतकर्मा। इन पाँच पुत्रों के अतिरिक्त पाण्डवों की अन्य पत्नियों से भी कई पुत्र हुए—यथा देवक, घटोत्कच, सर्वगत, सुहोत्र, नरमित्र, इरावान, बभ्रुवाहन तथा अभिमन्यु। अभिमन्यु से महाराज परीक्षित उत्पन्न हुए और परीक्षित से चार पुत्र उत्पन्न हुए—जनमेजय, श्रुतसेन, भीमसेन तथा उग्रसेन।

इसके बाद शुकदेव गोस्वामी ने पाण्डुवंश के भावी पुत्रों का वर्णन किया। उन्होंने बतलाया कि जनमेजय का पुत्र शतानीक होगा जिसके वंश में सहस्रानीक, अश्वमेधज, असीमकृष्ण, नेमिचक्र, चित्ररथ, शुचिरथ, वृष्टिमान, सुषेण, सुनीथ, नृचक्षु, सुखीनल, परिप्लव, सुनय, मेधावी, नृपञ्जय, दूर्व, तिमि, बृहद्रथ, सुदास, शतानीक, दुर्दमन, महीनर, दण्डपाणि, निमि तथा क्षेमक होंगे।

तत्पश्चात् शुकदेव गोस्वामी ने मागधवंश के राजाओं की भविष्यवाणी की। जरासन्ध के पुत्र सहदेव से मार्जारि, फिर उससे श्रुतश्रवा होगा। इसके बाद इस वंश में युतायु, निरमित्र, सुनक्षत्र, बृहत्सेन, कर्मजित, सुतञ्जय, विप्र, शुचि, क्षेम, सुव्रत, धर्मसूत्र, सम, द्युमत्सेन, सुमति, सुबल, सुनीथ, सत्यजित, विश्वजित तथा रिपुञ्जय होंगे।

श्रीशुक उवाच
मित्रायुश्च दिवोदासाच्च्यवनस्तत्सुतो नृप ।
सुदासः सहदेवोऽथ सोमको जन्तुजन्मकृत् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; मित्रायुः—मित्रायु; च—तथा; दिवोदासात्—दिवोदास से उत्पन्न; च्यवनः—च्यवन; तत्-सुतः—मित्रायु का पुत्र; नृप—हे राजा; सुदासः—सुदास; सहदेवः—सहदेव; अथ—तत्पश्चात्; सोमकः—सोमक; जन्तु-जन्म-कृत्—जन्तु का पिता।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजा, दिवोदास का पुत्र मित्रायु था और मित्रायु के चार पुत्र हुए जिनके नाम थे च्यवन, सुदास, सहदेव तथा सोमक। सोमक जन्तु का पिता था।

तस्य पुत्रशतं तेषां यवीयान्पृषतः सुतः ।
स तस्माद्द्रुपदो जज्ञे सर्वसम्पत्समन्वितः ॥ २॥

शब्दार्थ

तस्य—उसके (सोमक के); पुत्र-शतम्—एक सौ पुत्र; तेषाम्—उन सबों के; यवीयान्—सबसे छोटा; पृषतः—पृषत; सुतः—पुत्र; सः—वह; तस्मात्—उससे (पृषत से); द्रुपदः—द्रुपद; जज्ञे—उत्पन्न हुआ; सर्व-सम्पत्—सारे ऐश्वर्य से; समन्वितः—अलंकृत।

सोमक के एक सौ पुत्र थे जिनमें सबसे छोटा पृषत था। पृषत से राजा द्रुपद उत्पन्न हुआ जो सभी प्रकार से ऐश्वर्यवान था।

द्रुपदाद्द्रौपदी तस्य धृष्टद्युम्नादयः सुताः ।
धृष्टद्युम्नाद्धृष्टकेतुर्भार्म्याः पाञ्चालका इमे ॥ ३॥

शब्दार्थ

द्रुपदात्—द्रुपद से; द्रौपदी—पाण्डवों की विख्यात पत्नी द्रौपदी; तस्य—उसके (द्रुपद के); धृष्टद्युम्न-आदयः—धृष्टद्युम्न इत्यादि; सुताः—पुत्र; धृष्टद्युम्नात्—धृष्टद्युम्न से; धृष्टकेतुः—धृष्टकेतु नामक पुत्र; भार्म्याः—भर्म्याश्व के सारे वंशज; पाञ्चालकाः—पाञ्चालक कहलाते हैं; इमे—ये सभी।

महाराज द्रुपद से द्रौपदी उत्पन्न हुई। महाराज द्रुपद के कई पुत्र भी थे जिनमें धृष्टद्युम्न प्रमुख था। उसके पुत्र का नाम धृष्टकेतु था। ये सारे पुरुष भर्म्याश्व के वंशज या पाञ्चालवंशी कहलाते हैं।

योऽजमीढसुतो ह्यन्य ऋक्षः संवरणस्ततः ।
तपत्यां सूर्यकन्यायां कुरुक्षेत्रपतिः कुरुः ॥ ४॥
परीक्षिः सुधनुर्जह्नुर्निषधश्च कुरोः सुताः ।
सुहोत्रोऽभूत्सुधनुषश्च्यवनोऽथ ततः कृती ॥ ५॥

शब्दार्थ

यः—जो; अजमीढ-सुतः—अजमीढ का पुत्र; हि—निस्सन्देह; अन्यः—दूसरा; ऋक्षः—ऋक्ष; संवरणः—संवरण; ततः—उससे (ऋक्ष से); तपत्याम्—तपती; सूर्य-कन्यायाम्—सूर्यदेव की पुत्री के गर्भ से; कुरुक्षेत्र-पतिः—कुरुक्षेत्र का राजा; कुरुः—कुरु का जन्म हुआ; परीक्षिः सुधनुः जह्नुः निषधः च—परीक्षि, सुधनु, जह्नु तथा निषध; कुरोः—कुरु के; सुताः—पुत्र; सुहोत्रः—सुहोत्र; अभूत्—उत्पन्न हुआ; सुधनुषः—सुधनु से; च्यवनः—च्यवन; अथ—सुहोत्र से; ततः—च्यवन से; कृती—कृती नामक पुत्र।

अजमीढ का दूसरा पुत्र ऋक्ष नाम से विख्यात था। ऋक्ष से संवरण, संवरण के उसकी पत्नी सूर्यपुत्री तपती के गर्भ से कुरु हुआ जो कुरुक्षेत्र का राजा बना। कुरु के चार पुत्र थे—परीक्षि, सुधनु, जह्नु तथा निषध। सुधनु से सुहोत्र, सुहोत्र से च्यवन और च्यवन से कृती उत्पन्न हुआ।

वसुस्तस्योपरिचरो बृहद्रथमुखास्ततः ।

कुशाम्बमत्स्यप्रत्यग्रचेदिपाद्याश्च चेदिपाः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

वसुः—वसु नामक पुत्र; तस्य—उसका (कृती का); उपरिचरः—वसु का उपनाम; बृहद्रथ-मुखाः—बृहद्रथ इत्यादि; ततः—उससे (वसु से); कुशाम्ब—कुशाम्ब; मत्स्य—मत्स्य; प्रत्यग्र—प्रत्यग्र; चेदिप-आद्याः—चेदिप आदि; च—भी; चेदि-पाः—चेदि राज्य के सभी शासक।

कृती का पुत्र उपरिचर वसु था और उसके पुत्रों में, जिनमें बृहद्रथ प्रमुख था, कुशाम्ब, मत्स्य, प्रत्यग्र तथा चेदिप थे। उपरिचर वसु के सारे पुत्र चेदि राज्य के शासक बने।

बृहद्रथात्कुशाग्रोऽभूदृषभस्तस्य तत्सुतः ।
जज्ञे सत्यहितोऽपत्यं पुष्पवांस्तत्सुतो जहुः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

बृहद्रथात्—बृहद्रथ से; कुशाग्रः—कुशाग्र; अभूत्—उत्पन्न हुआ; ऋषभः—ऋषभ; तस्य—उसका (कुशाग्र का); तत्-सुतः—उसका (ऋषभ का) पुत्र; जज्ञे—उत्पन्न हुआ; सत्यहितः—सत्यहित; अपत्यम्—सन्तान; पुष्पवान्—पुष्पवान; तत्-सुतः—उसका (पुष्पवान का) पुत्र; जहुः—जहु।

बृहद्रथ से कुशाग्र उत्पन्न हुआ, कुशाग्र से ऋषभ, ऋषभ से सत्यहित, सत्यहित से पुष्पवान तथा पुष्पवान से जहु उत्पन्न हुआ।

अन्यस्यामपि भार्यायां शकले द्वे बृहद्रथात् ।
ये मात्रा बहिरुत्सृष्टे जरया चाभिसन्धिते ।
जीव जीवेति क्रीडन्त्या जरासन्धोऽभवत्सुतः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

अन्यस्याम्—दूसरी; अपि—भी; भार्यायाम्—पत्नी के; शकले—भाग; द्वे—दो; बृहद्रथात्—बृहद्रथ से; ये—जो; मात्रा—माता द्वारा; बहिः उत्सृष्टे—छोड़ दिये जाने पर; जरया—जरा नामक राक्षसी; च—तथा; अभिसन्धिते—जोड़ दिये गये; जीव जीव इति—हे जीव, तुम जी उठो; क्रीडन्त्या—खेलते हुए; जरासन्धः—जरासन्ध; अभवत्—उत्पन्न हुआ; सुतः—पुत्र।

बृहद्रथ की दूसरी पत्नी के गर्भ से दो आधे आधे खण्डों में एक पुत्र उत्पन्न हुआ। जब माता ने इन दो आधे आधे खण्डों को देखा तो उसने इन्हें फेंक दिया, किन्तु बाद में जरा नाम की एक राक्षसी ने खेल-खेल में उन्हें जोड़ते हुए कहा, "जीवित हो उठो, जीवित हो उठो।" इस तरह जरासन्ध नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

ततश्च सहदेवोऽभूत्सोमापिर्यच्छ्रुतश्रवाः ।
परीक्षिरनपत्योऽभूत्सुरथो नाम जाह्नवः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

ततः च—तथा उससे (जरासंध से); सहदेवः—सहदेव; अभूत्—उत्पन्न हुआ; सोमापिः—सोमापि; यत्—उसके (सोमापि); श्रुतश्रवाः—श्रुतश्रवा नामक पुत्र; परीक्षिः—कुरु को परीक्षि नामक पुत्र; अनपत्यः—निःसन्तान; अभूत्—रह गया; सुरथः—सुरथ; नाम—नामक; जाह्नवः—जह्नु का पुत्र।

जरासन्ध से सहदेव नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। फिर सहदेव से सोमापि और सोमापि से श्रुतश्रवा हुआ। कुरु के पुत्र परीक्षि के कोई पुत्र नहीं था, किन्तु कुरुपुत्र जह्नु के एक पुत्र था जिसका नाम सुरथ था।

ततो विदूरथस्तस्मात्सार्वभौमस्ततोऽभवत् ।
जयसेनस्तत्तनयो राधिकोऽतोऽयुताय्वभूत् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

ततः—उससे (सुरथ से); विदूरथः—विदूरथ नामक पुत्र; तस्मात्—उससे (विदूरथ से); सार्वभौमः—सार्वभौम नाम का पुत्र; ततः—उससे (सार्वभौम से); अभवत्—उत्पन्न हुआ; जयसेनः—जयसेन; तत्-तनयः—जयसेन का पुत्र; राधिकः—राधिक; अतः—और उससे (राधिक से); अयुतायुः—अयुतायु; अभूत्—उत्पन्न हुआ।

सुरथ के विदूरथ नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ और विदूरथ से सार्वभौम हुआ। सार्वभौम से जयसेन, जयसेन से राधिक तथा राधिक से अयुतायु उत्पन्न हुआ।

ततश्चाक्रोधनस्तस्माद्देवातिथिरमुष्य च ।
ऋक्षस्तस्य दिलीपोऽभूत्प्रतीपस्तस्य चात्मजः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

ततः—उससे; च—भी; अक्रोधनः—अक्रोधन नामक पुत्र; तस्मात्—उससे; देवातिथिः—देवातिथि; अमुष्य—उसका; च—भी; ऋक्षः—ऋक्ष; तस्य—उसके; दिलीपः—दिलीप; अभूत्—उत्पन्न हुआ; प्रतीपः—प्रतीप; तस्य—उसका; च—तथा; आत्म-जः—पुत्र।

अयुतायु का पुत्र अक्रोधन, अक्रोधन का देवातिथि, देवातिथि का ऋक्ष, ऋक्ष का दिलीप और दिलीप का पुत्र प्रतीप हुआ।

देवापिः शान्तनुस्तस्य बाह्लीक इति चात्मजाः ।
पितृराज्यं परित्यज्य देवापिस्तु वनं गतः ॥ १२ ॥
अभवच्छान्तनू राजा प्राड्महाभिषसंज्ञितः ।
यं यं कराभ्यां स्पृशति जीर्णं यौवनमेति सः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

देवापिः—देवापि; शान्तनुः—शान्तनु; तस्य—उसके (प्रतीप के); बाह्लीकः—बाह्लीक; इति—इस प्रकार; च—भी; आत्म-जाः—पुत्र; पितृ-राज्यम्—पिता की सम्पत्ति या राज्य को; परित्यज्य—छोड़कर; देवापिः—देवापि, जो सबसे बड़ा पुत्र था; तु—निस्सन्देह; वनम्—वन में; गतः—चला गया; अभवत्—था; शान्तनुः—शान्तनु; राजा—राजा; प्राक्—पहले; महाभिष—महाभिष; संज्ञितः—

सुप्रसिद्ध; यम् यम्—जिस जिसको; कराभ्याम्—अपने हाथों से; स्पृशति—छूता था; जीर्णम्—यद्यपि अत्यन्त वृद्ध; यौवनम्—युवावस्था को; एति—प्राप्त हुआ; सः—वह।

प्रतीप के तीन पुत्र थे—देवापि, शान्तनु तथा बाह्लीक। देवापि अपने पिता का राज्य त्याग कर जंगल चला गया अतएव शान्तनु राजा हुआ। शान्तनु अपने पूर्वजन्म में महाभिष नाम से विख्यात था। उसमें किसी को भी अपने हाथों के स्पर्श द्वारा बूढ़े से जवान में बदलने की शक्ति थी।

शान्तिमाप्नोति चैवाछ्यां कर्मणा तेन शान्तनुः ।
समा द्वादश तद्राज्ये न ववर्ष यदा विभुः ॥ १४॥
शान्तनुर्ब्राह्मणैरुक्तः परिवेत्तायमग्रभुक् ।
राज्यं देह्यग्रजायाशु पुरराष्ट्रविवृद्धये ॥ १५॥

शब्दार्थ

शान्तिम्—इन्द्रियतृप्ति के लिए जवानी; आप्नोति—प्राप्त करता है; च—भी; एव—निस्सन्देह; अछ्याम्—मुख्यतः; कर्मणा—अपने हाथ के स्पर्श से; तेन—उसके कारण; शान्तनुः—शान्तनु; समाः—वर्षों; द्वादश—बारह; तत्-राज्ये—उसके राज्य में; न—नहीं; ववर्ष—पानी बरसा; यदा—जब; विभुः—वर्षा का स्वामी इन्द्र; शान्तनुः—शान्तनु ने; ब्राह्मणैः—ब्राह्मणों के द्वारा; उक्तः—सलाह दिये जाने पर; परिवेत्ता—शोषक होने के कारण दोषमय; अयम्—यह; अग्र-भुक्—बड़े भाई के होते हुए भी भोग करते हुए; राज्यम्—राज्य; देहि—दे दो; अग्रजाय—अपने बड़े भाई को; आशु—तुरन्त; पुर-राष्ट्र—अपने घर तथा राज्य की; विवृद्धये—उन्नति के लिए।

चूँकि यह राजा अपने हाथ के स्पर्श मात्र से ही सबों की इन्द्रियतृप्ति करके सुखी बनाने में समर्थ था इसीलिए इसका नाम शान्तनु था। एक बार जब राज्य में बारह वर्षों तक वर्षा नहीं हुई तो राजा ने विद्वान ब्राह्मणों से परामर्श किया। उन्होंने कहा, ''तुम अपने बड़े भाई की सम्पत्ति भोगने के दोषी हो। तुम अपने राज्य तथा अपने घर की उन्नति के लिए यह राज्य उसे लौटा दो।''

तात्पर्य : अपने बड़े भाई के होते हुए कोई न तो राजा बन सकता है न अग्निहोत्र यज्ञ सम्पन्न कर सकता है अन्यथा वह परिवेत्ता कहलाता है।

एवमुक्तो द्विजैर्ज्येष्ठं छन्दयामास सोऽब्रवीत् ।
तन्मन्त्रिप्रहितैर्विप्रैर्वेदाद्विभ्रंशितो गिरा ॥ १६॥
वेदवादातिवादान्वै तदा देवो ववर्ष ह ।
देवापिर्योगमास्थाय कलापग्राममाश्रितः ॥ १७॥

शब्दार्थ

एवम्—इस तरह; उक्तः—सलाह दिये जाने पर; द्विजैः—ब्राह्मणों द्वारा; ज्येष्ठम्—बड़े भाई देवापि को; छन्दयाम् आस—राज्य ग्रहण करने के लिए प्रार्थना की; सः—उसने; अब्रवीत्—कहा; तत्-मन्त्रि—शान्तनु के मंत्री द्वारा; प्रहितैः—बहकाये जाने पर; विप्रैः—ब्राह्मणों द्वारा; वेदात्—वेदों के नियमों से; विभ्रंशितः—गिरा हुआ; गिरा—ऐसी वाणी से; वेद-वाद-अतिवादान्—वैदिक आदेशों की

निन्दा करने वाले शब्द; वै—निस्सन्देह; तदा—उस समय; देवः—देवता ने; ववर्ष—वर्षा की; ह—भूतकाल में; देवापिः—देवापि ने; योगम् आस्थाय—योगविधि स्वीकार करके; कलाप-ग्रामम्—कलाप नामक गाँव में; आश्रितः—शरण ले ली (और आज भी जीवित है)।

जब ब्राह्मणों ने यह कहा तो महाराज शान्तनु जंगल चला गया और उसने अपने बड़े भाई देवापि से प्रार्थना की कि वह राज्य का भार ग्रहण करे क्योंकि प्रजा का पालन करना राजा का धर्म है। किन्तु इसके पूर्व शान्तनु के मंत्री अश्ववार ने कुछ ब्राह्मणों को फुसलाकर देवापि से वेदों के आदेशों का उल्लंघन करने के लिए प्रेरित किया था जिससे वह शासक पद के अयोग्य हो गया था। ब्राह्मणों ने देवापि को वैदिक सिद्धान्तों के मार्ग से विचलित कर दिया था अतएव जब शान्तनु ने शासक पद ग्रहण करने के लिए कहा तो उसने मना कर दिया। उल्टे, वह वैदिक सिद्धान्तों की निन्दा करने लगा अतएव पतित हो गया। ऐसी परिस्थिति में शान्तनु पुनः राजा बन गया और इन्द्र ने प्रसन्न होकर वर्षा की। बाद में देवापि ने अपने मन तथा इन्द्रियों का दमन करने के लिए योगमार्ग का अनुसरण किया और वह कलापग्राम नामक गाँव में चला गया जहाँ वह अब भी जीवित है।

सोमवंशे कलौ नष्टे कृतादौ स्थापयिष्यति ।
बाह्लीकात्सोमदत्तोऽभूद्भूरिर्भूरिश्रवास्ततः ॥ १८ ॥
शलश्च शान्तनोरासीद्गङ्गायां भीष्म आत्मवान् ।
सर्वधर्मविदां श्रेष्ठो महाभागवतः कविः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

सोम-वंशे—सोमवंश के; कलौ—कलियुग में; नष्टे—नष्ट होने पर; कृत-आदौ—अगले सत्ययुग के प्रारम्भ में; स्थापयिष्यति—स्थापना करेगा; बाह्लीकात्—बाह्लीक से; सोमदत्तः—सोमदत्त; अभूत्—उत्पन्न हुआ; भूरिः—भूरि; भूरि-श्रवाः—भूरिश्रवा; ततः—तत्पश्चात्; शलः च—शल; शान्तनोः—शान्तनु से; आसीत्—उत्पन्न हुआ; गङ्गायाम्—शान्तनु की पत्नी गंगा के गर्भ से; भीष्मः—भीष्म; आत्मवान्—स्वरूपसिद्ध; सर्व-धर्म-विदाम्—सारे धार्मिक व्यक्तियों का; श्रेष्ठः—श्रेष्ठ; महा-भागवतः—महान् भक्त; कविः—तथा विद्वान।

इस कलियुग में सोमवंश के समाप्त होने पर और अगले सतयुग के प्रारम्भ में देवापि पुनः इस संसार में सोमवंश की स्थापना करेगा। (शान्तनु के भाई) बाह्लीक से सोमदत्त नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसके तीन पुत्र हुए—भूरि, भूरिश्रवा तथा शल। शान्तनु की दूसरी पत्नी गंगा के गर्भ से भीष्म उत्पन्न हुआ जो स्वरूपसिद्ध, सभी धार्मिक व्यक्तियों में श्रेष्ठ, महान् भक्त एवं विद्वान था।

वीरयूथाग्रणीर्येन रामोऽपि युधि तोषितः ।

शान्तनोर्दासकन्यायां जज्ञे चित्राङ्गदः सुतः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

वीर-यूथ-अग्रणीः—सारे योद्धाओं में अग्रणी, भीष्मदेव; येन—जिससे; रामः अपि—भगवान् के अवतार परशुराम भी; युधि—युद्ध में; तोषितः—सन्तुष्ट हुआ (भीष्मदेव के हराने पर); शान्तनोः—शान्तनु से; दास-कन्यायाम्—एक शूद्र की कन्या सत्यवती के गर्भ से; जज्ञे—उत्पन्न हुआ; चित्राङ्गदः—चित्रांगद; सुतः—पुत्र।

भीष्मदेव सारे योद्धाओं में सर्वश्रेष्ठ था। जब उसने भगवान् परशुराम को युद्ध में हरा दिया तो परशुराम उससे अत्यन्त संतुष्ट हुए। शान्तनु के वीर्य से धीवर की कन्या सत्यवती के गर्भ से चित्रांगद ने जन्म लिया।

तात्पर्य : सत्यवती वास्तव में उपरिचर वसु की पुत्री थी जो मत्स्यगर्भा नामक मछुवारिन के गर्भ से उत्पन्न हुई थी। बाद में सत्यवती का पालन एक मछुवारे ने किया था।

परशुराम तथा भीष्मदेव में जो युद्ध हुआ वह काशिराज की तीन कन्याओं—अम्बिका, अम्बालिका और अम्बा को लेकर हुआ क्योंकि भीष्मदेव ने अपने भाई विचित्रवीर्य के लिए इन तीन कन्याओं का अपहरण किया था। अम्बा ने सोचा था कि भीष्मदेव उससे विवाह कर लेगा अतएव वह उस पर अनुरक्त हो गई लेकिन भीष्मदेव ने ब्रह्मचर्य का व्रत ले रखा था अतएव उसने विवाह करने से मना कर दिया। फलतः अम्बा भीष्मपितामह के सैन्य गुरु परशुराम के पास गई जिन्होंने भीष्मदेव से कहा कि वह उसके साथ विवाह कर ले। किन्तु भीष्मदेव ने मना कर दिया अतएव परशुराम ने उससे युद्ध किया ताकि वह विवाह करना स्वीकार कर ले। लेकिन परशुराम हार गये अतः वे भीष्म से प्रसन्न हो गए।

विचित्रवीर्यश्चावरजो नाम्ना चित्राङ्गदो हतः ।
यस्यां पराशरात्साक्षादवतीर्णो हरेः कला ॥ २१ ॥
वेदगुप्तो मुनिः कृष्णो यतोऽहमिदमध्यगाम् ।
हित्वा स्वशिष्यान्पैलादीन्भगवान्बादरायणः ॥ २२ ॥
मह्यं पुत्राय शान्ताय परं गुह्यमिदं जगौ ।
विचित्रवीर्योऽथोवाह काशीराजसुते बलात् ॥ २३ ॥
स्वयंवरादुपानीते अम्बिकाम्बालिके उभे ।
तयोरासक्तहृदयो गृहीतो यक्ष्मणा मृतः ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

विचित्रवीर्यः—शान्तनु पुत्र विचित्रवीर्य; च—तथा; अवरजः—छोटा भाई; नाम्ना—नामक; चित्राङ्गदः—चित्रांगद नामक गंधर्व द्वारा; हतः—मारा गया; यस्याम्—शान्तनु से विवाह होने के पूर्व सत्यवती के गर्भ में; पराशरात्—पराशर मुनि के वीर्य से; साक्षात्—प्रत्यक्ष; अवतीर्णः—अवतार लेकर; हरेः—भगवान् का; कला—अंश; वेद-गुप्तः—वेदों का रक्षक; मुनिः—मुनि; कृष्णः—कृष्ण द्वैपायन;

यतः—जिससे; अहम्—मैंने (शुकदेव गोस्वामी); इदम्—इस श्रीमद्भागवत को; अध्यगाम्—गहन अध्ययन किया; हित्वा—त्याग कर; स्व-शिष्यान्—अपने शिष्यों को; पैल-आदीन्—पैल इत्यादि को; भगवान्—भगवान् का अवतार; बादरायणः—व्यासदेव ने; मह्यम्—मुझ; पुत्राय—पुत्र को; शान्ताय—इन्द्रियतृप्ति को दमित करने वाले; परम्—परम; गुह्यम्—अत्यन्त गोपनीय; इदम्—इस वैदिक ग्रंथ (श्रीमद्भागवत) को; जगौ—उपदेश दिया; विचित्रवीर्यः—विचित्रवीर्यने; अथ—तत्पश्चात्; उवाह—विवाह ली; काशीराज-सुते—काशिराज की दो कन्याएँ; बलात्—बलपूर्वक; स्वयंवरात्—स्वयंवर स्थल से; उपानीते—लाई जाकर; अम्बिका-अम्बालिके—अम्बिका तथा अम्बालिका; उभे—दोनों; तयोः—उनके प्रति; आसक्त—अनुरक्त; हृदयः—हृदय; गृहीतः—कलुषित; यक्ष्मणा—यक्ष्मा (तपेदिक) से; मृतः—मर गया।

चित्रांगद, जिसका छोटा भाई विचित्रवीर्य था, चित्रागंद नाम के ही गन्धर्व द्वारा मारा गया। सत्यवती ने शान्तनु से विवाह होने के पूर्व वेदों के ज्ञाता व्यासदेव को जन्म दिया था। ये कृष्ण द्वैपायन कहलाये और पराशर मुनि के वीर्य से उत्पन्न हुए थे। व्यासदेवसे मैं (शुकदेव गोस्वामी) उत्पन्न हुआ और मैंने उनसे इस महान् ग्रंथ श्रीमद्भागवत का अध्ययन किया। भगवान् के अवतार वेदव्यास ने पैल इत्यादि अपने शिष्यों को छोड़कर मुझे श्रीमद्भागवत पढ़ाया क्योंकि मैं सभी भौतिक कामनाओं से मुक्त था। जब काशीराज की दो कन्याओं, अम्बिका और अम्बालिका का बलपूर्वक अपहरण हो गया तो विचित्रवीर्य ने उनसे विवाह कर लिया, किन्तु इन दोनों पत्नियों से अत्यधिक आसक्त रहने के कारण उसे तपेदिक हो गया जिससे वह मर गया।

क्षेत्रेऽप्रजस्य वै भ्रातुर्मात्रोक्तो बादरायणः ।
धृतराष्ट्रं च पाण्डुं च विदुरं चाप्यजीजनत् ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

क्षेत्रे—पत्नियों तथा दासियों में; अप्रजस्य—निःसन्तान विचित्रवीर्य की; वै—निस्सन्देह; भ्रातुः—भाई की; मात्रा उक्तः—माता के आदेश से; बादरायणः—वेदव्यास ने; धृतराष्ट्रम्—धृतराष्ट्र को; च—तथा; पाण्डुम्—पाण्डु को; च—भी; विदुरम्—विदुर को; च—भी; अपि—निस्सन्देह; अजीजनत्—उत्पन्न किया।

बादरायण, श्री व्यासदेव, ने अपनी माता सत्यवती के आदेशानुसार तीन पुत्र उत्पन्न किये—दो पुत्र अपने भाई विचित्रवीर्य की पत्नियों अम्बिका तथा अम्बालिका के गर्भ से और तीसरा विचित्रवीर्य की दासी से। तीनों पुत्रों के नाम थे धृतराष्ट्र, पाण्डु तथा विदुर।

तात्पर्य : विचित्रवीर्य की मृत्यु तपेदिक से हो गई और उसकी पत्नियों—अम्बिका तथा अम्बालिका से कोई सन्तान न थी। अत: विचित्रवीर्य की मृत्यु के बाद उसकी माता सत्यवती ने, जो कि व्यासदेव की भी माता थीं, व्यासदेव से कहा कि वह विचित्रवीर्य की पत्नियों से सन्तान उत्पन्न करे। उन दिनों पति का भाई (देवर) अपनी भाभी से सन्तान उत्पन्न कर सकता था। यह *देवरेण सुतोत्पत्ति* कहलाती थी। यदि किसी

कारणवश पति सन्तान उत्पन्न करने में अक्षम होता था तो उसका भाई अपनी भाभी से सन्तान उत्पन्न कर सकता था। कलियुग में यह *देवरेण सुतोत्पत्ति* तथा अश्वमेध और गोमेध यज्ञ वर्जित हैं।

अश्वमेधं गवालम्भं संन्यासं पलपैतृकम्।

देवरेण सुतोत्पत्तिं कलौ पञ्च विवर्जयेत्॥

"इस कलियुग में पाँच कार्य करने की मनाही है—अश्वमेध यज्ञ, गोमेध यज्ञ, संन्यास आश्रम ग्रहण करना, पूर्वजों को मांस की भेंट तथा देवर द्वारा भाभी से सन्तानोत्पत्ति।" (*ब्रह्मवैवर्त पुराण*)।

गान्धार्यां धृतराष्ट्रस्य जज्ञे पुत्रशतं नृप ।
तत्र दुर्योधनो ज्येष्ठो दु:शला चापि कन्यका ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

गान्धार्याम्—गान्धारी के गर्भ में; धृतराष्ट्रस्य—धृतराष्ट्र का; जज्ञे—उत्पन्न हुए; पुत्र-शतम्—एक सौ पुत्र; नृप—हे राजा परीक्षित; तत्र—उन पुत्रों में; दुर्योधनः—दुर्योधन नामक पुत्र; ज्येष्ठः—सबसे बड़ा; दु:शला—दु:शला; च अपि—भी; कन्यका—एक पुत्री।

हे राजा, धृतराष्ट्र की पत्नी गांधारी ने एक सौ पुत्र तथा एक कन्या को जन्म दिया। सबसे बड़ा पुत्र दुर्योधन था और कन्या का नाम दु:शला था।

शापान्मैथुनरुद्धस्य पाण्डोः कुन्त्यां महारथाः ।
जाता धर्मानिलेन्द्रेभ्यो युधिष्ठिरमुखास्त्रयः ॥ २७॥
नकुलः सहदेवश्च माद्र्‌यां नासत्यदस्रयोः ।
द्रौपद्यां पञ्च पञ्चभ्यः पुत्रास्ते पितरोऽभवन् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

शापात्—शाप से; मैथुन-रुद्धस्य—विषयी जीवन रोक देने से; पाण्डोः—पाण्डु का; कुन्त्याम्—कुन्ती के गर्भ में; महा-रथाः—बड़े-बड़े वीर; जाताः—उत्पन्न हुए; धर्म—महाराज धर्म या धर्मराज; अनिल—वायुदेव; इन्द्रेभ्यः—तथा वर्षा के देवता इन्द्र के द्वारा; युधिष्ठिर—युधिष्ठिर; मुखाः—इत्यादि; त्रयः—तीन पुत्र (युधिष्ठिर, भीम तथा अर्जुन); नकुलः—नकुल; सहदेवः—सहदेव; च—भी; माद्र्‌याम्—माद्री के गर्भ से; नासत्य-दस्रयोः—नासत्य और दस्र अश्विनीकुमारों द्वारा; द्रौपद्याम्—द्रौपदी के गर्भ से; पञ्च—पाँच; पञ्चभ्यः—पाँचों भाइयों युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव द्वारा; पुत्राः—पुत्र; ते—वे; पितरः—चाचा; अभवन्—बने।

एक मुनि के द्वारा शापित होने से पाण्डु का विषयी जीवन अवरुद्ध हो गया अतएव उसकी पत्नी कुन्ती के गर्भ से तीन पुत्र युधिष्ठिर, भीम तथा अर्जुन उत्पन्न हुए जो क्रमशः धर्मराज, वायुदेव तथा इन्द्रदेव के पुत्र थे। पाण्डु की दूसरी पत्नी माद्री ने नकुल तथा सहदेव को जन्म दिया जो दोनों अश्विनीकुमारों द्वारा उत्पन्न थे। युधिष्ठिर इत्यादि पाँचों भाइयों ने द्रौपदी के गर्भ से पाँच पुत्र उत्पन्न किये। ये पाँचों पुत्र तुम्हारे चाचा थे।

युधिष्ठिरात्प्रतिविन्ध्यः श्रुतसेनो वृकोदरात् ।
अर्जुनाच्छ्रुतकीर्तिस्तु शतानीकस्तु नाकुलिः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

युधिष्ठिरात्—महाराज युधिष्ठिर से; प्रतिविन्ध्यः—प्रतिविन्ध्य; श्रुतसेनः—श्रुतसेन; वृकोदरात्—भीम से; अर्जुनात्—अर्जुन से; श्रुतकीर्तिः—श्रुतकीर्ति; तु—निस्सन्देह; शतानीकः—शतानीक; तु—निस्सन्देह; नाकुलिः—नकुल के।

युधिष्ठिर से प्रतिविन्ध्य, भीम से श्रुतसेन, अर्जुन से श्रुतकीर्ति तथा नकुल से शतानीक नामक पुत्र हुए।

सहदेवसुतो राजञ्छ्रुतकर्मा तथापरे ।
युधिष्ठिरात्तु पौरव्यां देवकोऽथ घटोत्कचः ॥ ३० ॥
भीमसेनाद्धिडिम्बायां काल्यां सर्वगतस्ततः ।
सहदेवात्सुहोत्रं तु विजयासूत पार्वती ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

सहदेव-सुतः—सहदेव का पुत्र; राजन्—हे राजा; श्रुतकर्मा—श्रुतकर्मा; तथा—और; अपरे—अन्य; युधिष्ठिरात्—युधिष्ठिर से; तु—निस्सन्देह; पौरव्याम्—पौरवी के गर्भ से; देवकः—देवक; अथ—तथा; घटोत्कचः—घटोत्कच; भीमसेनात्—भीमसेन से; हिडिम्बायाम्—हिडिम्बा के गर्भ से; काल्याम्—काली के गर्भ से; सर्वगतः—सर्वगत; ततः—तत्पश्चात्; सहदेवात्—सहदेव से; सुहोत्रम्—सुहोत्र; तु—निस्सन्देह; विजया—विजया ने; असूत—जन्म दिया; पार्वती—हिमालय राज की पुत्री।

हे राजा, सहदेव का पुत्र श्रुतकर्मा था। यही नहीं, युधिष्ठिर तथा उनके भाइयों की अन्य पत्नियों से और भी पुत्र उत्पन्न हुए। युधिष्ठिर ने पौरवी के गर्भ से देवक को और भीमसेन ने अपनी पत्नी हिडिम्बा के गर्भ से घटोत्कच तथा अपनी अन्य पत्नी काली के गर्भ से सर्वगत नामक पुत्रों को जन्म दिया। इसी प्रकार सहदेव को उसकी पत्नी विजया से सुहोत्र नाम का पुत्र प्राप्त हुआ। विजया पर्वतों के राजा की पुत्री थी।

करेणुमत्यां नकुलो नरमित्रं तथार्जुनः ।
इरावन्तमुलुप्यां वै सुतायां बभ्रुवाहनम् ।
मणिपुरपतेः सोऽपि तत्पुत्रः पुत्रिकासुतः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

करेणुमत्याम्—करेणुमती नामक पत्नी से; नकुलः—नकुल ने; नरमित्रम्—नरमित्र को; तथा—भी; अर्जुनः—अर्जुन ने; इरावन्तम्—इरावान को; उलुप्याम्—नागकन्या उलुपी के गर्भ से; वै—निस्सन्देह; सुतायाम्—पुत्री से; बभ्रुवाहनम्—बभ्रुवाहन; मणिपुर-पतेः—मणिपुर के राजा की; सः—वह; अपि—यद्यपि; तत्-पुत्रः—अर्जुन का पुत्र; पुत्रिका-सुतः—अपने नाना का पुत्र।

नकुल की पत्नी करेणुमती से नरमित्र नामक पुत्र हुआ। इसी प्रकार अर्जुन को नागकन्या उलुपी

नामक अपनी पत्नी से इरावान नामक पुत्र तथा मणिपुर की राजकुमारी के गर्भ से बभ्रुवाहन नामक पुत्र की प्राप्ति हुई। बभ्रुवाहन मणिपुर के राजा का दत्तक पुत्र बन गया।

तात्पर्य : यह समझ लेना चाहिए कि पार्वती मणिपुर नामक अत्यन्त प्राचीन पहाड़ी देश के राजा की कन्या थी। अतएव पाँच हजार वर्ष पूर्व जब पाण्डव शासन कर रहे थे तो मणिपुर का अस्तित्व था और इसका राजा भी होता था। अतएव मणिपुर राज्य अत्यन्त प्राचीन राजतंत्र वैष्णव राज्य था। यदि इसे वैष्णव राज्य के रूप में फिर से संगठित किया जाय तो महान् सफलता प्राप्त हो सकती है क्योंकि यह राज्य पाँच हजार वर्षों से अपनी पहचान बनाये हुए है। यदि यहाँ वैष्णव वृत्ति का पुनर्जागरण हो तो यह सारे विश्व में अद्भुत स्थान सिद्ध हो सकता है। वैष्णव समाज में मणिपुरी वैष्णव अत्यन्त विख्यात हैं। वृन्दावन एवं नवद्वीप में मणिपुर के राजा के बनवाये अनेक मन्दिर हैं। हमारे कुछ भक्त मणिपुर के हैं। अतएव कृष्णभक्तों के सहयोग से मणिपुर राज्य में कृष्णभावनामृत आन्दोलन का भलीभाँति प्रसार हो सकता है।

तव तातः सुभद्रायामभिमन्युरजायत ।
सर्वातिरथजिद्वीर उत्तरायां ततो भवान् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

तव—तुम्हारा; तातः—पिता; सुभद्रायाम्—सुभद्रा के गर्भ से; अभिमन्युः—अभिमन्यु; अजायत—उत्पन्न हुआ था; सर्व-अतिरथ-जित्—अतिरथों को पराजित करने वाला महान् योद्धा; वीरः—वीर; उत्तरायाम्—उत्तरा के गर्भ में; ततः—अभिमन्यु से; भवान्—आप।

हे राजा परीक्षित, तुम्हारे पिता अभिमन्यु अर्जुन के पुत्र रूप में सुभद्रा के गर्भ से उत्पन्न हुए। वे सभी अतिरथों (जो एक हजार रथवानों से युद्ध कर सके) के विजेता थे। उनके द्वारा विराड्राज की पुत्री उत्तरा के गर्भ से तुम उत्पन्न हुए।

परिक्षीणेषु कुरुषु द्रौणेर्ब्रह्मास्त्रतेजसा ।
त्वं च कृष्णानुभावेन सजीवो मोचितोऽन्तकात् ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

परिक्षीणेषु—कुरुक्षेत्र युद्ध में विनष्ट हो जाने पर; कुरुषु—कुरुवंशियों, यथा दुर्योधन के; द्रौणेः—द्रोणाचार्य का पुत्र अश्वत्थामा द्वारा; ब्रह्मास्त्र-तेजसा—ब्रह्मास्त्र की गर्मी से; त्वम् च—तुम भी; कृष्ण-अनुभावेन—कृष्ण के अनुग्रह से; सजीवः—जीवित; मोचितः—छुड़ा लिये गये; अन्तकात्—मृत्यु से।

जब कुरुक्षेत्र के युद्ध में कुरुवंश का विनाश हो गया तो तुम भी द्रोणाचार्य के पुत्र द्वारा छोड़े

गये ब्रह्मास्त्र के द्वारा विनष्ट होने वाले थे, किन्तु भगवान् कृष्ण की कृपा से तुम्हें मृत्यु से बचा लिया गया।

तवेमे तनयास्तात जनमेजयपूर्वकाः ।
श्रुतसेनो भीमसेन उग्रसेनश्च वीर्यवान् ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

तव—तुम्हारे; इमे—ये सभी; तनयाः—पुत्र; तात—हे राजा परीक्षित; जनमेजय—जनमेजय; पूर्वकाः—प्रमुख, इत्यादि; श्रुतसेनः—श्रुतसेन; भीमसेनः—भीमसेन; उग्रसेनः—उग्रसेन; च—भी; वीर्यवान्—शक्तिमान।

हे राजा, तुम्हारे चारों पुत्र—जनमेजय, श्रुतसेन, भीमसेन तथा उग्रसेन अत्यन्त शक्तिशाली हैं। जनमेजय उनमें सबसे बड़ा है।

जनमेजयस्त्वां विदित्वा तक्षकान्निधनं गतम् ।
सर्पान्वै सर्पयागाग्नौ स होष्यति रुषान्वितः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

जनमेजयः—जनमेजय; त्वाम्—तुमको; विदित्वा—जानकर; तक्षकात्—तक्षक नाग द्वारा; निधनम्—मृत्यु को; गतम्—प्राप्त हुआ; सर्पान्—साँपों को; वै—निस्सन्देह; सर्प-याग-अग्नौ—सर्पों को मारने के लिए यज्ञ अग्नि में; सः—वह (जनमेजय); होष्यति—आहुति डालेगा; रुषा-अन्वितः—अत्यन्त क्रोधित होने के कारण।

तक्षक सर्प द्वारा तुम्हारी मृत्यु हो जाने के कारण तुम्हारा पुत्र जनमेजय अत्यन्त क्रुद्ध होगा और संसार के सारे सर्पों को मारने के लिए यज्ञ करेगा।

कालषेयं पुरोधाय तुरं तुरगमेधषाट् ।
समन्तात्पृथिवीं सर्वां जित्वा यक्ष्यति चाध्वरैः ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

कालषेयम्—कलष के पुत्र को; पुरोधाय—पुरोहित के रूप में मानकर; तुरम्—तुर को; तुरग-मेधषाट्—तुरग-मेधषाट् के नाम से (अनेक तुरग यज्ञ करने वाला) जाना जायेगा; समन्तात्—सारे भागों सहित; पृथिवीम्—संसार को; सर्वाम्—सर्वत्र; जित्वा—जीतकर; यक्ष्यति—यज्ञ करेगा; च—तथा; अध्वरैः—अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न करके।

सारे संसार को जीतने के बाद और कलष के पुत्र तुर को अपना पुरोहित बनाकर, जनमेजय अश्वमेध यज्ञ करेगा जिसके कारण वह तुरग-मेधषाट् कहलायेगा।

तस्य पुत्रः शतानीको याज्ञवल्क्यात्त्रयीं पठन् ।
अस्त्रज्ञानं क्रियाज्ञानं शौनकात्परमेष्यति ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसका; पुत्रः—पुत्र; शतानीकः—शतानीक; याज्ञवल्क्यात्—ऋषि याज्ञवल्क्य से; त्रयीम्—तीनों वेद (साम, यजुर तथा ऋग्); पठन्—भलीभाँति अध्ययन करते हुए; अस्त्र-ज्ञानम्—सैनिक शासन कला; क्रिया-ज्ञानम्—कर्मकाण्ड सम्पन्न करने की कला; शौनकात्—शौनक ऋषि से; परम्—दिव्य ज्ञान; एष्यति—प्राप्त करेगा।

जनमेजय का पुत्र शतानीक ऋषि याज्ञवल्क्य से तीनों वेद और कर्मकाण्ड सम्पन्न करने की कला को सीखेगा। वह कृपाचार्य से सैन्य कला भी सीखेगा तथा शौनक मुनि से दिव्य ज्ञान प्राप्त करेगा।

सहस्त्रानीकस्तत्पुत्रस्ततश्चैवाश्वमेधजः ।
असीमकृष्णस्तस्यापि नेमिचक्रस्तु तत्सुतः ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

सहस्त्रानीकः—सहस्त्रानीक; तत्-पुत्रः—शतानीक का पुत्र; ततः—सहस्त्रानीक से; च—भी; एव—निस्सन्देह; अश्वमेधजः—अश्वमेधज; असीमकृष्णः—असीमकृष्ण; तस्य—उसका (अश्वमेधज); अपि—भी; नेमिचक्रः—नेमिचक्र; तु—निस्सन्देह; तत्-सुतः—उसका पुत्र।

शतानीक का पुत्र सहस्त्रानीक होगा और उसके पुत्र का नाम अश्वमेधज होगा। अश्वेमधज से असीमकृष्ण उत्पन्न होगा और उसका पुत्र नेमिचक्र होगा।

गजाह्वये ह्रते नद्या कौशाम्ब्यां साधु वत्स्यति ।
उक्तस्ततश्चित्ररथस्तस्माच्छुचिरथः सुतः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

गजाह्वये—हस्तिनापुर नगरी (नई दिल्ली) में; ह्रते—जलमग्न होने पर; नद्या—नदी के द्वारा; कौशाम्ब्याम्—कौशाम्बी नामक स्थान में; साधु—भलीभाँति; वत्स्यति—वहाँ निवास करेगा; उक्तः—विख्यात; ततः—तत्पश्चात्; चित्ररथः—चित्ररथ; तस्मात्—उससे; शुचिरथः—शुचिरथ; सुतः—पुत्र।

जब हस्तिनापुर नगरी (नई दिल्ली) नदी की बाढ़ से जलमग्न हो जायेगी तो नेमिचक्र कौशाम्बी नामक स्थान में निवास करेगा। उसका पुत्र चित्ररथ नाम से विख्यात होगा और चित्ररथ का पुत्र शुचिरथ होगा।

तस्माच्च वृष्टिमांस्तस्य सुषेणोऽथ महीपतिः ।
सुनीथस्तस्य भविता नृचक्षुर्यत्सुखीनलः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

तस्मात्—उससे (शुचिरथ); च—भी; वृष्टिमान्—वृष्टिमान; तस्य—उसका पुत्र; सुषेणः—सुषेण; अथ—तत्पश्चात्; मही-पतिः—सारे संसार का सम्राट; सुनीथः—सुनीथ; तस्य—उसका; भविता—होगा; नृचक्षुः—पुत्र नृचक्षु; यत्—उससे; सुखीनलः—सुखीनल।

शुचिरथ का पुत्र वृष्टिमान होगा और उसका पुत्र सुषेण नाम का चक्रवर्ती राजा होगा। सुषेण का पुत्र सुनीथ होगा, उसका पुत्र नृचक्षु होगा और नृचक्षु का पुत्र सुखीनल होगा।

परिप्लवः सुतस्तस्मान्मेधावी सुनयात्मजः ।
नृपञ्जयस्ततो दूर्वस्तिमिस्तस्माज्जनिष्यति ॥ ४२॥

शब्दार्थ

परिप्लवः—परिप्लव; सुतः—पुत्र; तस्मात्—उससे (परिप्लव); मेधावी—मेधावी; सुनय-आत्मजः—सुनय का पुत्र; नृपञ्जयः—नृपञ्जय; ततः—उससे; दूर्वः—दूर्व; तिमिः—तिमि; तस्मात्—उससे; जनिष्यति—जन्म लेगा।

सुखीनल का पुत्र परिप्लव, परिप्लव का सुनय और सुनय का पुत्र मेधावी होगा। मेधावी से नृपञ्जय, नृपञ्जय से दूर्व तथा दूर्व से तिमि का जन्म होगा।

तिमेर्बृहद्रथस्तस्माच्छतानीकः सुदासजः ।
शतानीकाद्दुर्दमनस्तस्यापत्यं महीनरः ॥ ४३॥

शब्दार्थ

तिमेः—तिमि का; बृहद्रथः—बृहद्रथ; तस्मात्—उससे; शतानीकः—शतानीक; सुदास-जः—सुदास का पुत्र; शतानीकात्—शतानीक से; दुर्दमनः—दुर्दमन; तस्य अपत्यम्—उसका पुत्र; महीनरः—महीनर।

तिमि का पुत्र बृहद्रथ, बृहद्रथ का सुदास, सुदास का शतानीक, शतानीक का दुर्दमन और दुर्दमन का पुत्र महीनर होगा।

दण्डपाणिर्निमिस्तस्य क्षेमको भविता यतः ।
ब्रह्मक्षत्रस्य वै योनिर्वंशो देवर्षिसत्कृतः ॥ ४४॥
क्षेमकं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ ।
अथ मागधराजानो भाविनो ये वदामि ते ॥ ४५॥

शब्दार्थ

दण्डपाणिः—दण्डपाणि; निमिः—निमि; तस्य—उसका (महीनर के); क्षेमकः—क्षेमक; भविता—जन्म लेगा; यतः—जिससे; ब्रह्म-क्षत्रस्य—ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों का; वै—निस्सन्देह; योनिः—स्रोत; वंशः—वंश; देव-ऋषि-सत्कृतः—ऋषियों तथा देवताओं द्वारा सम्मानित; क्षेमकम्—राजा क्षेमक को; प्राप्य—यहाँ तक; राजानम्—राजा को; संस्थाम्—उन तक; प्राप्स्यति—हो जायेगा; वै—निस्सन्देह; कलौ—इस कलियुग में; अथ—तत्पश्चात्; मागध-राजानः—मागध वंशी राजा; भाविनः—भावी; ये—जो; वदामि—कहूँगा; ते—तुमसे।

महीनर का पुत्र दण्डपाणि होगा और उसका पुत्र निमि होगा जिससे राजा क्षेमक की उत्पत्ति होगी। मैंने अभी तुमसे सोमवंश का वर्णन किया है जो ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों का उद्गम है और देवताओं तथा ऋषियों-मुनियों द्वारा पूजित है। इस कलियुग में क्षेमक अन्तिम राजा होगा। अब मैं

तुमसे मागध वंश का भविष्य बतलाऊँगा। उसे सुनो।

**भविता सहदेवस्य मार्जारिर्यच्छ्रुतश्रवाः ।
ततो युतायुस्तस्यापि निरमित्रोऽथ तत्सुतः ॥ ४६ ॥
सुनक्षत्रः सुनक्षत्राद्बृहत्सेनोऽथ कर्मजित् ।
ततः सुतञ्जयाद्विप्रः शुचिस्तस्य भविष्यति ॥ ४७॥
क्षेमोऽथ सुव्रतस्तस्माद्धर्मसूत्रः समस्ततः ।
द्युमत्सेनोऽथ सुमतिः सुबलो जनिता ततः ॥ ४८ ॥**

शब्दार्थ

भविता—जन्म लेगा; सहदेवस्य—सहदेव का पुत्र; मार्जारिः—मार्जारि; यत्—उसका पुत्र; श्रुतश्रवाः—श्रुतश्रवा; ततः—उससे; युतायुः—युतायु; तस्य—उसका पुत्र; अपि—भी; निरमित्रः—निरमित्र; अथ—तत्पश्चात्; तत्-सुतः—उसका पुत्र; सुनक्षत्रः—सुनक्षत्र; सुनक्षत्रात्—सुनक्षत्र से; बृहत्सेनः—बृहत्सेन; अथ—उससे; कर्मजित्—कर्मजित; ततः—उससे; सुतञ्जयात्—सुतञ्जय से; विप्रः—विप्र; शुचिः—शुचि; तस्य—उसका; भविष्यति—होगा; क्षेमः—क्षेम; अथ—तत्पश्चात्; सुव्रतः—सुव्रत; तस्मात्—उससे; धर्मसूत्रः—धर्मसूत्र; समः—सम; ततः—उससे; द्युमत्सेनः—द्युमत्सेन; अथ—तत्पश्चात्; सुमतिः—सुमति; सुबलः—सुबल; जनिता—जन्म लेगा; ततः—तत्पश्चात्।

जरासन्धपुत्र सहदेव के पुत्र का नाम मार्जारि होगा। मार्जारि से श्रुतश्रवा, श्रुतश्रवा से युतायु, युतायु से निरमित्र, निरमित्र से सुनक्षत्र, सुनक्षत्र से बृहत्सेन, बृहत्सेन से कर्मजित, कर्मजित से सुतञ्जय, सुतञ्जय से विप्र, विप्र से शुचि, शुचि से क्षेम, क्षेम से सुव्रत, सुव्रत से धर्मसूत्र, धर्मसूत्र से सम, सम से द्युमत्सेन, द्युमत्सेन से सुमति और सुमति से सुबल नाम का पुत्र उत्पन्न होगा।

**सुनीथः सत्यजिदथ विश्वजिद्यद्रिपुञ्जयः ।
बार्हद्रथाश्च भूपाला भाव्याः साहस्रवत्सरम् ॥ ४९ ॥**

शब्दार्थ

सुनीथः—सुबल से सुनीथ उत्पन्न होगा; सत्यजित्—सत्यजित; अथ—उससे; विश्वजित्—विश्वजित; यत्—उससे; रिपुञ्जयः—रिपुञ्जय; बार्हद्रथाः—बृहद्रथ की वंशावली में; च—भी; भूपालाः—सारे राजा; भाव्याः—होंगे; साहस्र-वत्सरम्—एक हजार वर्षों तक लगातार।

सुबल से सुनीथ, सुनीथ से सत्यजित, सत्यजित से विश्वजित एवं विश्वजित से रिपुञ्जय उत्पन्न होगा। ये सभी पुरुष बृहद्रथवंशी होंगे और ये संसार पर एक हजार वर्षों तक राज्य करेंगे।

तात्पर्य : यह जरासन्ध से प्रारम्भ होकर एक हजार वर्षों तक पृथ्वी पर राज्य करने वाले उपर्युक्त राजाओं का इतिहास है।

इस प्रकार *श्रीमद्भागवत* के नवम स्कन्ध के अन्तर्गत "अजमीढ के वंशज" नामक बाईसवें अध्याय के

भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter तेईस

ययाति के पुत्रों की वंशावली

इस तेईसवें अध्याय में अनु, द्रुह्यु, तुर्वसु तथा यदु के वंशों के साथ साथ ज्यामघ की कथा का भी वर्णन हुआ है।

ययाति के चतुर्थ पुत्र अनु के तीन पुत्र थे—सभानर, चक्षु तथा परेष्णु। इन तीनों में से सभानर के पुत्र तथा पौत्र क्रमशः कालनर, सृञ्जय, जनमेजय, महाशाल तथा महामना थे। महामना के दो पुत्र थे उशीनर तथा तितिक्षु। उशीनर के चार पुत्र थे—शिबि, वर, कृमि तथादक्ष। शिबि के भी चार पुत्र हुए—वृषादर्भ, सुधीर, मद्र तथा केकय। तितिक्षु का पुत्र रुषद्रथ था जिससे होम नामक पुत्र हुआ। होम का पुत्र सुतपा था और सुतपा का पुत्र बलि था। इस तरह यह वंश चलता रहा। बलि की पत्नी के गर्भ से दीर्घतमा के वीर्य से अंग, वंग, कलिंग, सुह्म, पुण्ड्र तथा ओड्र नामक पुत्र उत्पन्न हुए। ये सभी राजा बने।

अंग से खलपान नाम का पुत्र हुआ जिसके वंश में क्रमशः दिविरथ, धर्मरथ तथा चित्ररथ जिसे रोमपाद भी कहा जाता था, हुए। महाराज दशरथ ने शान्ता नामक अपनी पुत्री को अपने मित्र रोमपाद को दान में दे दिया था क्योंकि रोमपाद निःसन्तान था। रोमपाद ने शान्ता को पुत्री रूप में स्वीकार किया और ऋष्यशृंग मुनि ने उसके साथ विवाह किया। ऋष्यशृंग के अनुग्रह से रोमपाद के चतुरंग नाम का पुत्र हुआ। चतुरंग का पुत्र पृथुलाक्ष था जिसके तीन पुत्र हुए—बृहद्रथ, बृहत्कर्मा तथा बृहद्‌भानु। बृहद्रथ से बृहद्मना नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसके पुत्रों तथा पौत्रों के नाम क्रमशः जयद्रथ, विजय, धृति, धृतव्रत, सत्कर्मा तथा अधिरथ थे। अधिरथ ने कुन्ती द्वारा त्यक्त पुत्र कर्ण को पाला-पोसा। कर्ण का पुत्र वृषसेन था।

ययाति के तीसरे पुत्र द्रुह्यु से बभ्रु नामक पुत्र हुआ और बभ्रु के पुत्र तथा पौत्र थे सेतु, आरब्ध, गान्धार, धर्म, धृत, दुर्मद तथा प्रचेता।

ययाति का दूसरा पुत्र तुर्वसु था जिसके पुत्र का नाम वह्नि पड़ा और उसके वंश में भर्ग, भानुमान, त्रिभानु, करन्धम तथा मरुत हुए। मरुत निःसन्तान था अतएव उसने पूरुवंशी दुष्मन्त को गोद ले लिया। महाराज दुष्मन्त अपना राज्य वापस चाहते थे अतएव वे पूरुवंश में लौट गये।

यदु के चारों पुत्रों में से सहस्रजित सबसे बड़ा था। उसके पुत्र का नाम शतजित था। उसके तीन पुत्र थे

जिनमें एक का नाम हैहय था। हैहय वंश के पुत्रों तथा पौत्रों के नाम थे धर्म, नेत्र, कुन्ति, सोहञ्जि, महिष्मान, भद्रसेनक, धनक, कृतवीर्य, अर्जुन, जयध्वज, तालजंघ तथा वीतिहोत्र।

वीतिहोत्र का पुत्र मधु था जिसका ज्येष्ठ पुत्र वृष्णि था। यदु, मधु तथा वृष्णि के कारण उनके वंश क्रमशः यादव, माधव तथा वृष्णि कहलाये। यदु का अन्य पुत्र क्रोष्टा था जिससे वृजिनवान, स्वाहित, विषद्गु, चित्ररथ, शशविन्दु, पृथुश्रवा, धर्म, उशना तथा रुचक हुए। रुचक के पाँच पुत्र हुए जिनमें से एक ज्यामघ कहलाया। वह निःसन्तान था, किन्तु देव-अनुग्रह से उसकी सन्तानहीन पत्नी के विदर्भ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

श्रीशुक उवाच
अनोः सभानरश्चक्षुः परेष्णुश्च त्रयः सुताः ।
सभानरात्कालनरः सृञ्जयस्तत्सुतस्ततः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; अनोः—अनु का, जो ययाति के चार पुत्रों में से चौथा बेटा था; सभानरः—सभानर; चक्षुः—चक्षु; परेष्णुः—परेष्णु; च—भी; त्रयः—तीन; सुताः—बेटे; सभानरात्—सभानर से; कालनरः—कालनर; सृञ्जयः—सृञ्जय; तत्-सुतः—कालनर का पुत्र; ततः—तत्पश्चात्।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : ययाति के चतुर्थ पुत्र अनु के तीन पुत्र हुए जिनके नाम थे—सभानर, चक्षु तथा परेष्णु। हे राजा, सभानर के कालनर नाम का एक पुत्र हुआ और कालनर से सृञ्जय नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

जनमेजयस्तस्य पुत्रो महाशालो महामनाः ।
उशीनरस्तितिक्षुश्च महामनस आत्मजौ ॥ २ ॥

शब्दार्थ

जनमेजयः—जनमेजय; तस्य—उसका; पुत्रः—पुत्र; महाशालः—महाशाल; महामनाः—महामना; उशीनरः—उशीनर; तितिक्षुः—तितिक्षु; च—तथा; महामनसः—महामना से; आत्मजौ—दो पुत्र।

सृञ्जय का पुत्र जनमेजय हुआ, जनमेजय का पुत्र महाशाल, महाशाल का पुत्र महामना और महामना के दो पुत्र उशीनर तथा तितिक्षु हुए।

शिबिर्वरः कृमिर्दक्षश्चत्वारोशीनरात्मजाः ।
वृषादर्भः सुधीरश्च मद्रः केकय आत्मवान् ॥ ३ ॥

शिबेश्चत्वार एवासंस्तितिक्षोश्च रुषद्रथः ।
ततो होमोऽथ सुतपा बलिः सुतपसोऽभवत् ॥ ४॥

शब्दार्थ

शिबिः—शिबि; वरः—वर; कृमिः—कृमि; दक्षः—दक्ष; चत्वारः—चार; उशीनर-आत्मजाः—उशीनर के पुत्र; वृषादर्भः—वृषादर्भ; सुधीरः च—तथा सुधीर; मद्रः—मद्र; केकयः—केकय; आत्मवान्—स्वरूपसिद्ध; शिबेः—शिबि के; चत्वारः—चार; एव—निस्सन्देह; आसन्—थे; तितिक्षोः—तितिक्षु का; च—भी; रुषद्रथः—रुषद्रथ; ततः—उससे (रुषद्रथ); होमः—होम; अथ—उससे (होम); सुतपाः—सुतपा; बलिः—बलि; सुतपसः—सुतपा के; अभवत्—हुआ।

उशीनर के चार पुत्र थे—शिबि, वर, कृमि तथा दक्ष। शिबि के भी चार पुत्र हुए—वृषादर्भ, सुधीर, मद्र तथा आत्मतत्त्ववित् केकय। तितिक्षु का पुत्र रुषद्रथ था; रुषद्रथ का पुत्र होम था; होम का सुतपा और सुतपा का पुत्र बलि था।

अङ्गवङ्गकलिङ्गाद्याः सुह्मपुण्ड्रौड्रसंज्ञिताः ।
जज्ञिरे दीर्घतमसो बलेः क्षेत्रे महीक्षितः ॥ ५॥

शब्दार्थ

अङ्ग—अंग; वङ्ग—वंग; कलिङ्ग—कलिंग; आद्याः—इत्यादि; सुह्म—सुह्म; पुण्ड्र—पुण्ड्र; ओड्र—ओड्र; संज्ञिताः—नाम से विख्यात; जज्ञिरे—उत्पन्न हुए; दीर्घतमसः—दीर्घतमा के वीर्य से; बलेः—बलि की; क्षेत्रे—पत्नी से; मही-क्षितः—जगत के राजा।

चक्रवर्ती राजा बलि की पत्नी से दीर्घतमा के वीर्य से छह पुत्रों ने जन्म लिया जिनके नाम थे अंग, वंग, कलिंग, सुह्म, पुण्ड्र तथा ओड्र।

चक्रुः स्वनाम्ना विषयान्षडिमान्प्राच्यकांश्च ते ।
खलपानोऽङ्गतो जज्ञे तस्माद्दिविरथस्ततः ॥ ६॥

शब्दार्थ

चक्रुः—उत्पन्न किया; स्व-नाम्ना—अपने-अपने नामों से; विषयान्—विभिन्न राज्य; षट्—छः; इमान्—ये सभी; प्राच्यकान् च—भारत की पूर्व दिशा में; ते—वे (छह राजा); खलपानः—खलपान; अङ्गतः—राजा अंग से; जज्ञे—जन्म लिया; तस्मात्—उससे; दिविरथः—दिविरथ; ततः—तत्पश्चात्।

बाद में अंगादि ये छहों पुत्र भारत की पूर्व दिशा में छः राज्यों के राजा बने। ये राज्य अपने-अपने राजा के नाम के अनुसार विख्यात हुए। अंग से खलपान नामक पुत्र हुआ जिससे दिविरथ उत्पन्न हुआ।

सुतो धर्मरथो यस्य जज्ञे चित्ररथोऽप्रजाः ।
रोमपाद इति ख्यातस्तस्मै दशरथः सखा ॥ ७॥
शान्तां स्वकन्यां प्रायच्छदृष्यशृङ्ग उवाह याम् ।

देवेऽवर्षति यं रामा आनिन्युर्हरिणीसुतम् ॥ ८ ॥
नाट्यसङ्गीतवादित्रैर्विभ्रमालिङ्गनार्हणैः ।
स तु राज्ञोऽनपत्यस्य निरूप्येष्टिं मरुत्वते ॥ ९ ॥
प्रजामदाद्दशरथो येन लेभेऽप्रजाः प्रजाः ।
चतुरङ्गो रोमपादात्पृथुलाक्षस्तु तत्सुतः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

सुतः—पुत्र; धर्मरथः—धर्मरथ; यस्य—जिसके; जज्ञे—उत्पन्न हुआ; चित्ररथः—चित्ररथ; अप्रजाः—निःसन्तान; रोमपादः—रोमपाद; इति—इस प्रकार; ख्यातः—विख्यात; तस्मै—उसको; दशरथः—दशरथ; सखा—मित्र; शान्ताम्—शान्ता को; स्व-कन्याम्—अपनी पुत्री; प्रायच्छत्—दे दिया; ऋष्यशृङ्गः—ऋष्यशृंग ने; उवाह—विवाह कर लिया; याम्—जिससे; देवे—वर्षा के देवता ने; अवर्षति—वर्षा नहीं की; यम्—जिसको (ऋष्यशृंग को); रामाः—वेश्याएँ; आनिन्युः—ले आईं; हरिणी-सुतम्—हरिणी पुत्र ऋष्यशृंग को; नाट्य-सङ्गीत-वादित्रैः—नाच, गाना तथा वाद्ययंत्रों के द्वारा; विभ्रम—मोहित करके; आलिङ्गन—आलिगंन करके; अर्हणैः—पूजा द्वारा; सः—वह (ऋष्यशृंग); तु—निस्सन्देह; राज्ञः—महाराज दशरथ से; अनपत्यस्य—सन्तानहीन; निरूप्य—स्थापित करके; इष्टिम्—यज्ञ; मरुत्वते—मरुत्वान नामक देवता की; प्रजाम्—सन्तान; अदात्—प्रदान किया; दशरथः—दशरथ ने; येन—जिससे (यज्ञ के फलस्वरूप); लेभे—प्राप्त किया; अप्रजाः—निस्संतान होते हुए; प्रजाः—पुत्र; चतुरङ्गः—चतुरंग; रोमपादात्—चित्ररथ से; पृथुलाक्षः—पृथुलाक्ष; तु—निस्सन्देह; तत्-सुतः—चतुरंग का पुत्र।

दिविरथ का पुत्र धर्मरथ हुआ और उसका पुत्र चित्ररथ था जो रोमपाद के नाम से विख्यात था। किन्तु रोमपाद के कोई सन्तान न थी अतएव उसके मित्र महाराज दशरथ ने उसे अपनी पुत्री शान्ता दे दी। रोमपाद ने उसे पुत्री रूप में स्वीकार किया। तत्पश्चात् उस पुत्री ने ऋष्यशृंग से विवाह कर लिया। जब स्वर्गलोक के देवताओं ने वर्षा नहीं की तो ऋष्यशृंग को वेश्याओं के द्वारा आकर्षित करके जंगल से लाया गया और उसे एक यज्ञ सम्पन्न करने के लिए पुरोहित नियुक्त किया गया। ये वेश्याएँ नाचकर तथा संगीत के साथ नाटक करके और उनका आलिंगन तथा पूजन करके उन्हें ले आईं थीं। ऋष्यशृंग के आने के बाद वर्षा हुई। तत्पश्चात् ऋष्यशृंग ने महाराज दशरथ के लिए पुत्र-यज्ञ किया क्योंकि उनका कोई पुत्र न था। इससे महाराज दशरथ को पुत्र-प्राप्ति हुई। ऋष्यशृंग की कृपा से रोमपाद के एक पुत्र चतुरंग हुआ और चतुरंग से पृथुलाक्ष का जन्म हुआ।

बृहद्रथो बृहत्कर्मा बृहद्भानुश्च तत्सुताः ।
आद्याद्बृहन्मनास्तस्माज्जयद्रथ उदाहृतः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

बृहद्रथः—बृहद्रथ; बृहत्कर्मा—बृहत्कर्मा; बृहद्भानुः—बृहद्भानु; च—भी; तत्-सुताः—पृथुलाक्ष के पुत्र; आद्यात्—सबसे बड़े (बृहद्रथ) से; बृहन्मनाः—बृहद्मना उत्पन्न हुआ; तस्मात्—उससे; जयद्रथः—जयद्रथ; उदाहृतः—उसके पुत्र के रूप में विख्यात हुआ।

पृथुलाक्ष के पुत्र थे बृहद्रथ, बृहत्कर्मा तथा बृहद्भानु। ज्येष्ठ पुत्र बृहद्रथ से बृहद्मना नाम का पुत्र हुआ और बृहद्मना से जयद्रथ हुआ।

विजयस्तस्य सम्भूत्यां ततो धृतिरजायत ।
ततो धृतव्रतस्तस्य सत्कर्माधिरथस्ततः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

विजयः—विजय; तस्य—उसका; सम्भूत्याम्—पत्नी के गर्भ से; ततः—तत्पश्चात्; धृतिः—धृति; अजायत—उत्पन्न हुआ; ततः—उससे (धृति से); धृतव्रतः—धृतव्रत; तस्य—उसका; सत्कर्मा—सत्कर्मा; अधिरथः—अधिरथ; ततः—उससे (सत्कर्मा से)।

जयद्रथ की पत्नी सम्भूति के गर्भ से विजय उत्पन्न हुआ, विजय से धृति, धृति से धृतिव्रत, धृतिव्रत से सत्कर्मा तथा सत्कर्मा से अधिरथ हुआ।

योऽसौ गङ्गातटे क्रीडन्मञ्जूषान्तर्गतं शिशुम् ।
कुन्त्यापविद्धं कानीनमनपत्योऽकरोत्सुतम् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

यः असौ—वह जो (अधिरथ); गङ्गा-तटे—गंगा नदी के किनारे; क्रीडन्—खेलते समय; मञ्जूष-अन्तःगतम्—टोकरी के भीतर बन्द; शिशुम्—बालक को; कुन्त्या अपविद्धम्—कुन्ती द्वारा परित्यक्त; कानीनम्—कुमारी होने पर उत्पन्न; अनपत्यः—अधिरथ के निःसन्तान होने से; अकरोत्—शिशु को स्वीकार कर लिया; सुतम्—अपने पुत्र रूप में।

गंगा नदी के तट पर खेलते समय अधिरथ को एक टोकरी में बंद एक शिशु प्राप्त हुआ। इस शिशु को कुन्ती ने छोड़ दिया था क्योंकि यह उसके विवाह होने के पूर्व ही उत्पन्न हुआ था। चूँकि अधिरथ के कोई पुत्र न था अतएव उसने इस शिशु को अपने ही पुत्र की तरह पाला पोसा। (बाद में यही पुत्र कर्ण कहलाया)

वृषसेनः सुतस्तस्य कर्णस्य जगतीपते ।
द्रुह्योश्च तनयो बभ्रुः सेतुस्तस्यात्मजस्ततः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

वृषसेनः—वृषसेन; सुतः—पुत्र; तस्य कर्णस्य—उसी कर्ण का; जगती पते—हे महाराज परीक्षित; द्रुह्योः च—ययाति के तृतीय पुत्र द्रुह्य का; तनयः—पुत्र; बभ्रुः—बभ्रु; सेतुः—सेतु; तस्य—उसका; आत्मजः ततः—तत्पश्चात् उसका पुत्र।

हे राजा, कर्ण का एकमात्र पुत्र वृषसेन था। ययाति के तृतीय पुत्र द्रुह्यु का पुत्र बभ्रु था और बभ्रु का पुत्र सेतु था।

आरब्धस्तस्य गान्धारस्तस्य धर्मस्ततो धृतः ।
धृतस्य दुर्मदस्तस्मात्प्रचेताः प्राचेतसः शतम् ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

आरब्धः—आरब्ध (सेतु का पुत्र); तस्य—उसका (आरब्ध का); गान्धारः—गान्धार; तस्य—उसका पुत्र; धर्मः—धर्म; ततः—उससे; धृतः—धृत; धृतस्य—धृत का; दुर्मदः—दुर्मद; तस्मात्—उससे; प्रचेताः—प्रचेता; प्राचेतसः—प्रचेता के; शतम्—एक सौ पुत्र थे।

सेतु का पुत्र आरब्ध था, आरब्ध का पुत्र गान्धार हुआ और गान्धार का पुत्र धर्म था। धर्म का पुत्र धृत, धृत का दुर्मद और दुर्मद का पुत्र प्रचेता था जिसके एक सौ पुत्र हुए।

म्लेच्छाधिपतयोऽभूवन्नुदीचीं दिशमाश्रिताः ।
तुर्वसोश्च सुतो वह्निर्वह्नेर्भर्गोऽथ भानुमान् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

म्लेच्छ—म्लेच्छ देश के (जहाँ वैदिक सभ्यता नहीं पाई जाती); अधिपतयः—राजा; अभूवन्—बने; उदीचीम्—भारत की उत्तरी; दिशम्—दिशा को; आश्रिताः—सीमा मानकर; तुर्वसोः च—महाराज ययाति के द्वितीय पुत्र तुर्वसु का; सुतः—पुत्र; वह्निः—वह्नि; वह्नेः—वह्नि का; भर्गः—भर्ग नाम का पुत्र; अथ—तत्पश्चात् उसका पुत्र; भानुमान्—भानुमान।

प्रचेताओं (प्रचेता के पुत्रों) ने भारत की उत्तरी दिशा में कब्जा कर लिया जो वैदिक सभ्यता से विहीन थी और वे वहाँ के राजा बन गये। ययाति का दूसरा पुत्र तुर्वसु था। तुर्वसु का पुत्र वह्नि था, वह्नि का पुत्र भर्ग था और भर्ग का पुत्र भानुमान था।

त्रिभानुस्तत्सुतोऽस्यापि करन्धम उदारधीः ।
मरुतस्तत्सुतोऽपुत्रः पुत्रं पौरवमन्वभूत् ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

त्रिभानुः—त्रिभानु; तत्-सुतः—भानुमान का पुत्र; अस्य—उसका (त्रिभानु का); अपि—भी; करन्धमः—करन्धम; उदार-धीः—अत्यन्त उदार बुद्धिवाला; मरुतः—मरुत; तत्-सुतः—करन्धम का पुत्र; अपुत्रः—निःसन्तान; पुत्रम्—पुत्र के रूप में; पौरवम्—पूरुवंश का पुत्र महाराज दुष्मन्त; अन्वभूत्—गोद ले लिया।

भानुमान का पुत्र त्रिभानु था और उसका पुत्र उदारचेता करन्धम था। करन्धम का पुत्र मरुत था जिसके कोई पुत्र न था अतएव उसने पूरुवंशी पुत्र (महाराज दुष्मन्त) को पुत्र रूप में गोद ले लिया।

दुष्मन्तः स पुनर्भेजे स्ववंशं राज्यकामुकः ।
ययातेर्ज्येष्ठपुत्रस्य यदोर्वंशं नरर्षभ ॥ १८ ॥
वर्णयामि महापुण्यं सर्वपापहरं नृणाम् ।
यदोर्वंशं नरः श्रुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

दुष्मन्तः—महाराज दुष्मन्त ने; सः—उस; पुनः भेजे—फिर से स्वीकार किया; स्व-वंशम्—अपने मूलवंश (पूरुवंश) को; राज्य-कामुकः—राजसिंहासन का इच्छुक होने के कारण; ययातेः—महाराज ययाति के; ज्येष्ठ-पुत्रस्य—पहले पुत्रयदु का; यदोः वंशम्—यदुवंश; नर-ऋषभ—हे मनुष्यों में श्रेष्ठ महाराज परीक्षित; वर्णयामि—वर्णन करूँगा; महा-पुण्यम्—अत्यन्त पवित्र; सर्व-पाप-हरम्—

सारे पापकर्मों के फलों को दूर करने वाला; नृणाम्—मनुष्यों का; यदोः वंशम्—यदुवंश का वर्णन; नरः—कोई व्यक्ति; श्रुत्वा—केवल सुनने से; सर्व-पापैः—सारे पापपूर्ण कर्मों के फलों से; प्रमुच्यते—मुक्त हो जाता है।

महाराज दुष्मन्त सिंहासन में बैठने की इच्छा से अपने मूलवंश (पूरुवंश) में लौट गये यद्यपि वे मरुत को अपना पिता स्वीकार कर चुके थे। हे महाराज परीक्षित, अब मैं महाराज ययाति के ज्येष्ठ पुत्र यदु के वंश का वर्णन करता हूँ। यह वर्णन अत्यन्त पवित्र है और मानवसमाज के सारे पापों के फलों को दूर करने वाला है। इस वर्णन को सुनने मात्र से मनुष्य सारे पापों के फलों से मुक्त हो जाता है।

यत्रावतीर्णो भगवान्परमात्मा नराकृतिः ।
यदोः सहस्रजित्क्रोष्टा नलो रिपुरिति श्रुताः ॥ २० ॥
चत्वारः सूनवस्तत्र शतजित्प्रथमात्मजः ।
महाहयो रेणुहयो हैहयश्चेति तत्सुताः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

यत्र—जिस वंश में; अवतीर्णः—अवतार लिया; भगवान्—भगवान् कृष्ण; परमात्मा—सारे जीवों के परमात्मा; नर-आकृतिः—मनुष्य के रूप में; यदोः—यदु का; सहस्रजित्—सहस्रजित; क्रोष्टा—क्रोष्टा; नलः—नल; रिपुः—रिपु; इति श्रुताः—इस प्रकार से विख्यात; चत्वारः—चारों; सूनवः—पुत्र; तत्र—वहाँ; शतजित्—शतजित; प्रथम-आत्मजः—पहला पुत्र; महाहयः—महाहय; रेणुहयः—रेणुहय; हैहयः—हैहय; च—तथा; इति—इस प्रकार; तत्-सुताः—उसके पुत्र।

भगवान् कृष्ण, जो सारे जीवों के हृदयों में परमात्मा स्वरूप हैं, मनुष्य के अपने आदि रूप में यदु कुल में अवतरित हुए। यदु के चार पुत्र थे—सहस्रजित्, क्रोष्टा, नल तथा रिपु। इन चारों में से सबसे बड़े सहस्रजित के एक पुत्र था जिसका नाम शतजित था। उसके तीन पुत्र हुए—महाहय, रेणुहय तथा हैहय।

तात्पर्य : जैसा कि *श्रीमद्भागवत* (१.२.११) में पुष्टि हुई है—

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।

ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥

"विद्वान आध्यात्मवादी जो परम सत्य को जानते हैं, इस अद्वय ज्ञान को ब्रह्म, परमात्मा या भगवान् कहते हैं।" अधिकांश आध्यात्मवादी केवल निराकार ब्रह्म या अन्तर्यामी परमात्मा को समझते हैं क्योंकि भगवान् को समझ पाना अत्यन्त कठिन है। भगवान् ने *भगवद्गीता* (७.३) में कहा है—

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।

यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥

''हजारों व्यक्तियों में से कोई एक व्यक्ति सिद्धि के लिए प्रयास करता है और जिन्होंने सिद्धि पा ली है उनमें से मुश्किल से एक मुझे जानता है।'' योगी तथा ज्ञानी अर्थात् मायावादी और निर्विशेषवादी परम सत्य को निराकार या अन्तर्यामी रूप में समझ सकते हैं और ऐसे स्वरूपसिद्ध व्यक्ति यद्यपि सामान्य पुरुषों से बढ़कर होते हैं फिर भी वे यह नहीं समझ सकते कि परमेश्वर किस तरह एक व्यक्ति हो सकता है। इसीलिए कहा गया है कि अनेक सिद्धों में से जिन्होंने परम सत्य का साक्षात्कार किया है कोई एक सिद्ध नर-रूप (*नराकृति*) कृष्ण को समझ सकता है। स्वयं कृष्ण ने इस मनुष्य रूप की व्याख्या विराट रूप प्रदर्शित करने के बाद की है। विराट रूप भगवान् का आदि रूप नहीं है। उनका आदि रूप तो द्विभुज श्यामसुन्दर मुरलीधर का है जो दो हाथों वाले हैं और मुरली बजा रहे हैं (*यं श्यामसुन्दरम् अचिन्त्यगुणस्वरूपम्*)। भगवान् के स्वरूप उनके अकल्पनीय गुणों के प्रमाण हैं। यद्यपि भगवान् अपने एक श्वास काल में असंख्य ब्रह्माण्डों का पालन करते हैं, किन्तु वे मनुष्य की भाँति वेश धारण किये रहते हैं। किन्तु इसका अर्थ यह भी नहीं है कि वे हू-बहू मनुष्य हैं। यह उनका आदि रूप है लेकिन चूँकि वे मनुष्य की तरह दिखते हैं अतएव अल्पज्ञानी उन्हें सामान्य मनुष्य मानते हैं। भगवान् कहते हैं (*भगवद्गीता* ९.११)

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।

परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्॥

''जब मैं मनुष्य रूप में अवतरित होता हूँ तो मूर्ख मेरा उपहास करते हैं। वे मेरी दिव्य प्रकृति एवं मेरे परम ईश्वरत्व को नहीं जानते।'' भगवान् अपने परं भावम् अर्थात् दिव्य स्वभाव से सारे जीवों के हृदयों में स्थित सर्वव्यापी परमात्मा हैं; फिर भी वे मनुष्य की तरह लगते हैं। मायावादी दर्शन कहता है कि भगवान् मूलतः निराकार हैं, किन्तु जब वे अवतरित होते हैं तो मनुष्य तथा अनेक अन्य रूप धारण करते हैं। किन्तु वस्तुतः वे मूलतः मनुष्य जैसे हैं और निराकार ब्रह्म उनके शरीर की किरणों से युक्त होता है (*यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्डकोटि*)।

धर्मस्तु हैहयसुतो नेत्रः कुन्तेः पिता ततः ।
सोहञ्जिरभवत्कुन्तेर्महिष्मान्भद्रसेनकः ॥ २२॥

शब्दार्थ

धर्मः तु—किन्तु धर्म; हैहय-सुतः—हैहय का पुत्र बना; नेत्रः—नेत्र; कुन्तेः—कुन्ति का; पिता—पिता; ततः—उससे; सोहञ्जिः—सोहञ्जि; अभवत्—हुआ; कुन्तेः—कुन्ति पुत्र; महिष्मान्—महिष्मान; भद्रसेनकः—भद्रसेनक।

हैहय का पुत्र धर्म था और धर्म का पुत्र नेत्र था जो कुन्ति का पिता था। कुन्ति से सोहञ्जि, सोहञ्जि से महिष्मान तथा महिष्मान से भद्रसेनक उत्पन्न हुए।

दुर्मदो भद्रसेनस्य धनकः कृतवीर्यसूः ।
कृताग्निः कृतवर्मा च कृतौजा धनकात्मजाः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

दुर्मदः—दुर्मद; भद्रसेनस्य—भद्रसेन का; धनकः—धनक; कृतवीर्य-सूः—कृतवीर्य को जन्म देने वाला; कृताग्निः—कृताग्नि नामक; कृतवर्मा—कृतवर्मा; च—भी; कृतौजाः—कृतौजा; धनक-आत्मजाः—धनक के पुत्र।

भद्रसेन के पुत्र दुर्मद तथा धनक कहलाये। धनक कृतवीर्य के अतिरिक्त कृताग्नि, कृतवर्मा तथा कृतौजा का भी पिता था।

अर्जुनः कृतवीर्यस्य सप्तद्वीपेश्वरोऽभवत् ।
दत्तात्रेयाद्धरेरंशात्प्राप्तयोगमहागुणः ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

अर्जुनः—अर्जुन; कृतवीर्यस्य—कृतवीर्य का; सप्त-द्वीप—सातों द्वीपों (पूरे संसार) का; ईश्वरः अभवत्—सम्राट बन गया; दत्तात्रेयात्—दत्तात्रेय से; हरेः अंशात्—भगवान् के अंशावतार से; प्राप्त—प्राप्त; योग-महागुणः—योगशक्ति का गुण।

कृतवीर्य का पुत्र अर्जुन था। वह (कार्तवीर्यार्जुन) सातों द्वीप वाले सारे संसार का सम्राट बन गया। उसे भगवान् के अवतार दत्तात्रेय से योगशक्ति प्राप्त हई थी। इस तरह उसने अष्ट सिद्धियाँ प्राप्त कर लीं।

न नूनं कार्तवीर्यस्य गतिं यास्यन्ति पार्थिवाः ।
यज्ञदानतपोयोगैः श्रुतवीर्यदयादिभिः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; नूनम्—निस्सन्देह; कार्तवीर्यस्य—कार्तवीर्य के; गतिम्—कार्यकलाप; यास्यन्ति—समझ या प्राप्त कर सकते थे; पार्थिवाः—पृथ्वी के रहने वाले; यज्ञ—यज्ञ; दान—दान; तपः—तपस्या; योगैः—योगशक्ति से; श्रुत—शिक्षा; वीर्य—बल; दया—दया; आदिभिः—इन गुणों से।

इस संसार का कोई भी राजा यज्ञ, दान, तपस्या, योगशक्ति, शिक्षा, बल या दया में कार्तवीर्यार्जुन की बराबरी नहीं कर सकता था।

पञ्चाशीति सहस्राणि ह्यव्याहतबलः समाः ।
अनष्टवित्तस्मरणो बुभुजेऽक्षय्यषड्वसु ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

पञ्चाशीति—पचासी; सहस्राणि—हजार; हि—निस्सन्देह; अव्याहत—न चुकने वाला; बलः—जिसका बल; समाः—वर्ष; अनष्ट—नष्ट हुए बिना; वित्त—भौतिक ऐश्वर्य; स्मरणः—तथा स्मरण शक्ति; बुभुजे—भोग किया; अक्षय्य—अक्षय; षट्-वसु—छः प्रकार का भोग्य भौतिक ऐश्वर्य।

कार्तवीर्यार्जुन ने लगातार पचासी हजार वर्षों तक पूर्ण शारीरिक बल तथा त्रुटिरहित स्मरण शक्ति से भौतिक ऐश्वर्यों का भोग किया। दूसरे शब्दों में, उसने अपनी छहों इन्द्रियों से अक्षय भौतिक ऐश्वर्यों का भोग किया।

तस्य पुत्रसहस्रेषु पञ्चैवोर्वरिता मृधे ।
जयध्वजः शूरसेनो वृषभो मधुरूर्जितः ॥ २७॥

शब्दार्थ

तस्य—उसके (कार्तवीर्यार्जुन के); पुत्र-सहस्रेषु—एक हजार पुत्रों में; पञ्च—पाँच; एव—केवल; उर्वरिताः—जीवित रहे; मृधे—(परशुराम के साथ हुए) युद्ध में; जयध्वजः—जयध्वज; शूरसेनः—शूरसेन; वृषभः—वृषभ; मधुः—मधु; ऊर्जितः—तथा ऊर्जित।

कार्तवीर्यार्जुन के एक हजार पुत्रों में से परशुराम से युद्ध करने के बाद केवल पाँच पुत्र जीवित बचे। उनके नाम थे जयध्वज, शूरसेन, वृषभ, मधु तथा ऊर्जित।

जयध्वजात्तालजङ्घस्तस्य पुत्रशतं त्वभूत् ।
क्षत्रं यत्तालजङ्घाख्यमौर्वतेजोपसंहतम् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

जयध्वजात्—जयध्वज से; तालजङ्घः—तालजंघ नाम का पुत्र; तस्य—उसके; पुत्र-शतम्—एक सौ पुत्र; तु—निस्सन्देह; अभूत्—उत्पन्न हुए; क्षत्रम्—क्षत्रिय वंश; यत्—जो; तालजङ्घ-आख्यम्—तालजंघ नाम से विख्यात; और्व-तेजः—अत्यन्त शक्तिशाली होने से; उपसंहतम्—महाराज सगर द्वारा मार डाले गये।

जयध्वज के तालजंघ नाम का एक पुत्र था जिसके एक सौ पुत्र उत्पन्न हुए। उस तालजंघ नामक वंश के सारे क्षत्रियों का विनाश महाराज सगर द्वारा किया गया जिन्हें और्व ऋषि से महान् शक्ति प्राप्त हुई थी।

तेषां ज्येष्ठो वीतिहोत्रो वृष्णिः पुत्रो मधोः स्मृतः ।
तस्य पुत्रशतं त्वासीद्वृष्णिज्येष्ठं यतः कुलम् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

तेषाम्—उन सबों में; ज्येष्ठ:—सबसे बड़ा पुत्र; वीतिहोत्र:—वीतिहोत्र; वृष्णि:—वृष्णि; पुत्र:—पुत्र; मधो:—मधु का; स्मृत:—विख्यात था; तस्य—वृष्णि के; पुत्र-शतम्—एक सौ पुत्र; तु—लेकिन; आसीत्—हुए; वृष्णि—वृष्णि; ज्येष्ठम्—ज्येष्ठ; यत:—जिससे; कुलम्—वंश।

तालजंघ के पुत्रों में से वीतिहोत्र सबसे बड़ा था। वीतिहोत्र का पुत्र मधु था जिसका पुत्र वृष्णि विख्यात था। मधु के एक सौ पुत्र हुए जिनमें वृष्णि सबसे बड़ा था। यादव, माधव तथा वृष्णि नामक वंशों का उद्गम यदु, मधु तथा वृष्णि से हुआ।

माधवा वृष्णयो राजन्यादवाश्चेति संज्ञिता: ।
यदुपुत्रस्य च क्रोष्टो: पुत्रो वृजिनवांस्तत: ।
स्वाहितोऽतो विषद्गुर्वै तस्य चित्ररथस्तत: ॥ ३० ॥
शशबिन्दुर्महायोगी महाभागो महानभूत् ।
चतुर्दशमहारत्नश्चक्रवर्त्यपराजित: ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

माधवा:—मधु से चलने वाला वंश; वृष्णय:—वृष्णि से चलने वाला वंश; राजन्—हे राजा (महाराज परीक्षित); यादवा:—यदुवंशी; च—और; इति—इस प्रकार; संज्ञिता:—इन विभिन्न पुरुषों के कारण ऐसा कहलाते हैं; यदु-पुत्रस्य—यदु के पुत्र का; च—भी; क्रोष्टो:—क्रोष्टा का; पुत्र:—पुत्र; वृजिनवान्—जिसका नाम वृजिनवान था; तत:—उससे; स्वाहित:—स्वाहित; अत:—तत्पश्चात्; विषद्गु:—विषद्गु; वै—निस्सन्देह; तस्य—उसका; चित्ररथ:—चित्ररथ; तत:—उससे; शशबिन्दु:—शशबिन्दु; महा-योगी—महान् योगी; महा-भाग:—अत्यधिक भाग्यशाली; महान्—महापुरुष; अभूत्—हुआ; चतुर्दश-महारत्न:—चौदह प्रकार के महान् ऐश्वर्य; चक्रवर्ती—सम्राट के रूप में; अपराजित:—न हराया जा सकने वाला।

हे महाराज परीक्षित, चूँकि यदु, मधु तथा वृष्णि में से हर एक ने वंश चलाये अतएव उनके वंश यादव, माधव तथा वृष्णि कहलाते हैं। यदु के पुत्र क्रोष्टा के वृजिनवान नाम का एक पुत्र हुआ। वृजिनवान का पुत्र स्वाहित था, स्वाहित का विषद्गु, विषद्गु का चित्ररथ और चित्ररथ का पुत्र शशबिन्दु हुआ जो महान् योगी था और चौदहों ऐश्वर्यों से युक्त था तथा वह चौदह महान् रत्नों का स्वामी था। इस तरह वह संसार का सम्राट बना।

तात्पर्य : *मार्कण्डेय पुराण* में चौदह प्रकार के महारत्नों का वर्णन इस प्रकार हुआ है (१) हाथी (२) घोड़ा (३) रथ (४) पत्नी (५) बाण (६) सम्पत्तिकोश (७) माला (८) बहुमूल्य वस्त्र (९) वृक्ष (१०) भाला (११) पाश (१२) मणि (१३) छाता (१४) विधान। सम्राट होने के लिए इन चौदहों एश्वर्यों का होना आवश्यक है। शशबिन्दु के पास ये सभी थे।

तस्य पत्नीसहस्राणां दशानां सुमहायशाः ।
दशलक्षसहस्राणि पुत्राणां तास्वजीजनत् ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

तस्य—शशबिन्दु की; पत्नी—पत्नियाँ; सहस्राणाम्—हजारों में से; दशानाम्—दस; सु-महा-यशाः—अत्यन्त विख्यात; दश—दस; लक्ष—लाख; सहस्राणि—हजार; पुत्राणाम्—पुत्रों का; तासु—उनमें; अजीजनत्—उसने उत्पन्न किया।

सुप्रसिद्ध शशबिन्दु के दस हजार पत्नियाँ थीं और उनमें से हर एक से एक लाख पुत्र उत्पन्न हुए। इसलिए उसके पुत्रों की संख्या एक अरब थी।

तेषां तु षट्प्रधानानां पृथुश्रवस आत्मजः ।
धर्मो नामोशना तस्य हयमेधशतस्य याट् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

तेषाम्—उन पुत्रों में से; तु—लेकिन; षट् प्रधानानाम्—जिसमें छह प्रमुख थे; पृथुश्रवसः—पृथुश्रवा का; आत्मजः—पुत्र; धर्मः—धर्म; नाम—नामक; उशना—उशना; तस्य—उसका; हयमेध-शतस्य—एक सौ अश्वमेघ यज्ञों का; याट्—सम्पन्न करने वाला।

इन अनेक पुत्रों में से छह अग्रणी थे यथा पृथुश्रवा तथा पृथुकीर्ति। पृथुश्रवा का पुत्र धर्म कहलाया और उसका पुत्र उशना कहलाया। उशना ने एक सौ अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न किये।

तत्सुतो रुचकस्तस्य पञ्चासन्नात्मजाः शृणु ।
पुरुजिद्रुक्मरुक्मेषुपृथुज्यामघसंज्ञिताः ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

तत्-सुतः—उशना का पुत्र; रुचकः—रुचक; तस्य—उसके; पञ्च—पाँच; आसन्—थे; आत्मजाः—पुत्र; शृणु—सुनो (उनके नाम); पुरुजित्—पुरुजित; रुक्म—रुक्म; रुक्मेषु—रुक्मेषु; पृथु—पृथु; ज्यामघ—ज्यामघ; संज्ञिताः—नाम वाले।

उशना का पुत्र रुचक था जिसके पाँच पुत्र थे—पुरुजित, रुक्म, रुक्मेषु, पृथु तथा ज्यामघ। कृपया मुझसे इनके विषय में सुनें।

ज्यामघस्त्वप्रजोऽप्यन्यां भार्यां शैब्यापतिर्भयात् ।
नाविन्दच्छत्रुभवनाद्भोज्यां कन्यामहारषीत् ।
रथस्थां तां निरीक्ष्याह शैब्या पतिममर्षिता ॥ ३५ ॥
केयं कुहक मत्स्थानं रथमारोपितेति वै ।
स्नुषा तवेत्यभिहिते स्मयन्ती पतिमब्रवीत् ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

ज्यामघः—ज्यामघ; तु—निस्सन्देह; अप्रजः अपि—यद्यपि निःसन्तान; अन्याम्—दूसरी; भार्याम्—पत्नी; शैब्या-पतिः—शैब्या का पति होने के कारण; भयात्—भय से; न अविन्दत्—स्वीकार नहीं किया; शत्रु-भवनात्—शत्रु के खेमे से; भोज्याम्—वेश्या को; कन्याम्—कन्या; अहारषीत्—ले आया; रथ-स्थाम्—रथ में बैठी; ताम्—उसको; निरीक्ष्य—देखकर; आह—कहा; शैब्या—ज्यामघ

की पत्नी शैब्या ने; पतिम्—पति पर; अमर्षिता—अत्यन्त क्रुद्ध; का इयम्—यह कौन है; कुहक—अरे धूर्त; मत्-स्थानम्—मेरा स्थान; रथम्—रथ पर; आरोपिता—बैठने के लिए अनुमति प्राप्त; इति—इस प्रकार; वै—निस्सन्देह; स्नुषा—बहू; तव—तुम्हारी; इति—इस प्रकार; अभिहिते—सूचित किये जाने पर; स्मयन्ती—हँसती हुई; पतिम्—पति से; अब्रवीत्—बोली।

ज्यामघ के कोई पुत्र न था, किन्तु क्योंकि वह अपनी पत्नी शैब्या से डरता था अतएव उसने दूसरा विवाह नहीं किया। एक बार ज्यामघ किसी शत्रु राजा के खेमे से एक लड़की ले आया जो एक वेश्या थी। किन्तु उसे देखकर शैब्या अत्यन्त क्रुद्ध हुई और उसने अपने पति से कहा "क्यों रे धूर्त! यह लड़की कौन है जो रथ में मेरे आसन पर बैठी है?" तब ज्यामघ ने उत्तर दिया "यह लड़की तुम्हारी बहू (पुत्रवधू) होगी।" इन विनोदपूर्ण शब्दों को सुनकर शैब्या ने हँसते हुए उत्तर दिया।

अहं बन्ध्यासपत्नी च स्नुषा मे युज्यते कथम् ।
जनयिष्यसि यं राज्ञि तस्येयमुपयुज्यते ॥ ३७॥

शब्दार्थ

अहम्—मैं; बन्ध्या—बाँझ; अस-पत्नी—सौत रहित; च—भी; स्नुषा—बहू; मे—मेरी; युज्यते—हो सकती है; कथम्—किस तरह; जनयिष्यसि—तुम जन्म दोगी; यम्—जो पुत्र; राज्ञि—हे रानी; तस्य—उसके; इयम्—यह लड़की; उपयुज्यते—उपयुक्त होगी।

शैब्या ने कहा, "मैं बाँझ हूँ और मेरी कोई सौत भी नहीं है। भला यह लड़की मेरी बहू (पुत्रवधू) कैसे बन सकती है?" ज्यामघ ने उत्तर दिया, "मेरी रानी! मैं देखूँगा कि तुम्हारे सचमुच पुत्र होगा और यह लड़की तुम्हारी बहू बनेगी।"

अन्वमोदन्त तद्विश्वेदेवाः पितर एव च ।
शैब्या गर्भमधात्काले कुमारं सुषुवे शुभम् ।
स विदर्भ इति प्रोक्त उपयेमे स्नुषां सतीम् ॥ ३८॥

शब्दार्थ

अन्वमोदन्त—स्वीकार कर लिया; तत्—यह भविष्यवाणी कि उसके पुत्र होगा; विश्वेदेवाः—विश्वेदेव देवतागण; पितरः—पितृगण; एव—निस्सन्देह; च—भी; शैब्या—शैब्या ने; गर्भम्—गर्भ; अधात्—धारण किया; काले—समय आने पर; कुमारम्—पुत्र को; सुषुवे—जन्म दिया; शुभम्—अत्यन्त शुभ; सः—वह पुत्र; विदर्भः—विदर्भ; इति—इस प्रकार; प्रोक्तः—विख्यात हुआ; उपयेमे—बाद में विवाह कर लिया; स्नुषाम्—बहू रूप में स्वीकृत; सतीम्—सती साध्वी लड़की को।

बहुत काल पूर्व ज्यामघ ने देवताओं तथा पितरों की पूजा करके उन्हें प्रसन्न कर लिया था। अब उन्हीं की दया से ज्यामघ के शब्द सही उतरे। यद्यपि शैब्या बाँझ थी लेकिन देवताओं की कृपा से वह गर्भिणी हुई और समय आने पर उसने विदर्भ नामक शिशु को जन्म दिया। चूँकि शिशु के जन्म के पूर्व ही उस लड़की को बहू रूप में स्वीकार किया जा चुका था अतएव जब विदर्भ सयाना हुआ तो

उसने उसके साथ विवाह कर लिया।

इस प्रकार *श्रीमद्भागवत* के नवम स्कन्ध के अन्तर्गत ''ययाति के पुत्रों की वंशावली'' नामक तेईसवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

Chapter चौबीस

भगवान् श्रीकृष्ण

विदर्भ के तीन पुत्र थे—कुश, क्रथ तथा रोमपाद। इन तीनों में से रोमपाद का वंश फैला जिसमें बभ्रु, कृति, उशिक, चेदि तथा चैद्य नामक पुत्र एवं पौत्र हुए। ये सभी आगे चलकर राजा बने। विदर्भ के पुत्र क्रथ के कुन्ति नामक पुत्र हुआ जिसके वंश में वृष्णि, निर्वृति, दशार्ह, व्योम, जीमूत, विकृति, भीमरथ, नवरथ, दशरथ, शकुनि, करम्भि, देवरात, देवक्षत्र, मधु, कुरुवश, अनु, पुरुहोत्र, अयु तथा सात्वत हुए। सात्वत के सात पुत्र थे जिनमें से देवावृध एक था और उसके पुत्र का नाम बभ्रु था। सात्वत के दूसरे पुत्र महाभोज से भोजवंश चला। सात्वत के अन्य पुत्र वृष्णि के पुत्र का नाम युधाजित था। युधाजित से अनमित्र तथा शिनि हुए और अनमित्र से निघ्न तथा एक अन्य शिनि उत्पन्न हुए। शिनि के बाद क्रम से सत्यक, युयुधान, जय, कुणि तथा युगन्धर हुए। अनमित्र का एक अन्य पुत्र वृष्णि था। वृष्णि से श्वफल्क हुआ जिससे अक्रूर तथा अन्य बारह पुत्र उत्पन्न हुए। अक्रूर के दो पुत्र हुए देववान तथा उपदेव। अन्धक का पुत्र कुकुर था जिसके वंशज वह्नि, विलोमा, कपोतरोमा, अनु, अन्धक, दुन्दुभि, अविद्योत, पुनर्वसु तथा आहुक हुए। आहुक के दो पुत्र थे—देवक तथा उग्रसेन। देवक के चार पुत्र हुए—देववान, उपदेव, सुदेव तथा देववर्धन। उसके सात कन्याएँ भी थीं—धृतदेवा, शान्तिदेवा, उपदेवा, श्रीदेवा, देवरक्षिता, सहदेवा, तथा देवकी। वसुदेव ने इन सातों कन्याओं से व्याह किया। उग्रसेन के नौ पुत्र थे—कंस, सुनामा, न्यग्रोघ, कंक, शंकु, सुहू, राष्ट्रपाल, धृष्टि तथा तुष्टिमान। उसके पाँच पुत्रियाँ भी हुईं जिनके नाम कंसा, कंसवती, कंका, शूरभू तथा राष्ट्रपालिका थे। वसुदेव के छोटे भाइयों ने उग्रसेन की सारी पुत्रियों से ब्याह कर लिया।

चित्ररथ के पुत्र विदूरथ के शूर नाम का पुत्र हुआ। शूर के दस और पुत्र थे जिनमें वसुदेव मुख्य था। शूर ने अपनी पाँच पुत्रियों में से एक पुत्री पृथा को अपने मित्र कुन्ति को दे दिया इसलिए वह कुन्ती भी कहलाई। उसने कुमारी रहते हुए कर्ण नामक पुत्र को जन्म दिया, और बाद में उसने महाराज पाण्डु से विवाह कर लिया।

वृद्धशर्मा ने शूर की पुत्री श्रुतदेवा से विवाह किया जिसके गर्भ से दन्तवक्र का जन्म हुआ। धृष्टकेतु ने शूर की पुत्री श्रुतकीर्ति से विवाह किया जिससे पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। जयसेन ने शूर की पुत्री राजाधिदेवी के

साथ विवाह किया। चेदि देश के राजा दमघोष ने शूर की पुत्री श्रुतश्रवा से शादी की जिससे शिशुपाल ने जन्म लिया।

देवभाग ने कंसा के गर्भ से चित्रकेतु तथा बृहद्बल को जन्म दिया। देवश्रवा ने कंसावती के गर्भ से सुवीर तथा इषुमान को उत्पन्न किया। कंक ने कंका से बक, सत्यजित तथा पुरुजित को उत्पन्न किया। सृञ्जय ने राष्ट्रपालिका से वृष तथा दुर्मर्षण को जन्म दिया। श्यामक ने शूरभूमि से हरिकेश तथा हिरण्याक्ष को जन्म दिया। वत्सक ने मिश्रकेशी से वृक को उत्पन्न किया। वृक के तीन पुत्र हुए—तक्ष, पुष्कर तथा शाल। समीक से सुमित्र तथा अर्जुनपाल हुए और आनक से ऋतधामा तथा जय हुए।

वसुदेव के अनेक पत्नियाँ थी जिनमें से देवकी तथा रोहिणी प्रमुख थीं। रोहिणी के गर्भ से बलदेव ने जन्म लिया। इनके अतिरिक्त गद, शारण, दुर्मद, विपुल, ध्रुव, कृत तथा अन्य पुत्र भी हुए। वसुदेव की अन्य पत्नियों से भी अनेक पुत्र हुए। देवकी के गर्भ से उत्पन्न होने वाले आठवें पुत्र भगवान् थे जिन्होंने असुरों के बोझ से सारे संसार का उद्धार किया। यह अध्याय भगवान् वासुदेव के महिमागान के साथ समाप्त होता है।

श्रीशुक उवाच
तस्यां विदर्भोऽजनयत्पुत्रौ नाम्ना कुशक्रथौ ।
तृतीयं रोमपादं च विदर्भकुलनन्दनम् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; तस्याम्—उस लड़की से; विदर्भः—विदर्भ ने; अजनयत्—जन्म दिया; पुत्रौ—दो पुत्रों को; नाम्ना—नामक; कुश-क्रथौ—कुश तथा क्रथ; तृतीयम्—तथा तीसरे पुत्र; रोमपादम् च—रोमपाद को भी; विदर्भ-कुल-नन्दनम्—विदर्भ वंश का प्रिय।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : अपने पिता द्वारा लाई गई उस लड़की के गर्भ से विदर्भ को तीन पुत्र प्राप्त हुए—कुश, क्रथ तथा रोमपाद। रोमपाद विदर्भ कुल का अत्यन्त प्रिय था।

रोमपादसुतो बभ्रुर्बभ्रोः कृतिरजायत ।
उशिकस्तत्सुतस्तस्माच्चेदिश्चैद्यादयो नृपाः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

रोमपाद-सुतः—रोमपाद का पुत्र; बभ्रुः—बभ्रु; बभ्रोः—बभ्रु से; कृतिः—कृति; अजायत—उत्पन्न हुआ; उशिकः—उशिक; तत्-सुतः—कृति का पुत्र; तस्मात्—उससे; चेदिः—चेदि; चैद्य—चैद्य (दमघोष); आदयः—इत्यादि; नृपाः—राजा।

रोमपाद का पुत्र बभ्रु हुआ जिससे कृति नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। कृति का पुत्र उशिक हुआ

और उशिक का पुत्र चेदि था। चेदि से चैद्य तथा अन्य राजा पुत्र उत्पन्न हुए।

क्रथस्य कुन्तिः पुत्रोऽभूद्वृष्णिस्तस्याथ निर्वृतिः ।
ततो दशार्हो नाम्नाभूत्तस्य व्योमः सुतस्ततः ॥ ३ ॥
जीमूतो विकृतिस्तस्य यस्य भीमरथः सुतः ।
ततो नवरथः पुत्रो जातो दशरथस्ततः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

क्रथस्य—क्रथ का; कुन्तिः—कुन्ति; पुत्रः—पुत्र; अभूत्—हुआ; वृष्णिः—वृष्णि; तस्य—उसका; अथ—तब; निर्वृतिः—निर्वृति; ततः—उससे; दशार्हः—दशार्ह; नाम्ना—नामक; अभूत्—उत्पन्न हुआ; तस्य—उसका; व्योमः—व्योम; सुतः—पुत्र; ततः—उससे; जीमूतः—जीमूत; विकृतिः—विकृति; तस्य—उसका; यस्य—जिसका (विकृति का); भीमरथः—भीमरथ; सुतः—पुत्र; ततः—उससे (भीमरथ); नवरथः—नवरथ; पुत्रः—पुत्र; जातः—उत्पन्न हुआ; दशरथः—दशरथ; ततः—उससे।

क्रथ का पुत्र कुन्ति, कुन्ति का पुत्र वृष्णि, वृष्णि का निर्वृति, निर्वृति का दशार्ह, दशार्ह का व्योम, व्योम का जीमूत, जीमूत का विकृति, विकृति का भीमरथ, भीमरथ का नवरथ तथा नवरथ का पुत्र दशरथ हुआ।

करम्भिः शकुनेः पुत्रो देवरातस्तदात्मजः ।
देवक्षत्रस्ततस्तस्य मधुः कुरुवशादनुः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

करम्भिः—करम्भि; शकुनेः—शकुनि से; पुत्रः—पुत्र; देवरातः—देवरात; तत्-आत्मजः—उसका पुत्र (करम्भि); देवक्षत्रः—देवक्षत्र; ततः—तत्पश्चात्; तस्य—उसका; मधुः—मधु; कुरुवशात्—कुरुवश से; अनुः—अनु।

दशरथ का पुत्र शकुनि हुआ और शकुनि का पुत्र करम्भि था। करम्भि का पुत्र देवरात हुआ जिसका पुत्र देवक्षत्र था। देवक्षत्र का पुत्र मधु था और उसका पुत्र कुरुवश था जिसके अनु नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ।

पुरुहोत्रस्त्वनोः पुत्रस्तस्यायुः सात्वतस्ततः ।
भजमानो भजिर्दिव्यो वृष्णिर्देवावृधोऽन्धकः ॥ ६ ॥
सात्वतस्य सुताः सप्त महाभोजश्च मारिष ।
भजमानस्य निम्लोचिः किङ्कणो धृष्टिरेव च ॥ ७ ॥
एकस्यामात्मजाः पत्न्यामन्यस्यां च त्रयः सुताः ।
शताजिच्च सहस्राजिदयुताजिदिति प्रभो ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

पुरुहोत्रः—पुरुहोत्र; तु—निस्सन्देह; अनोः—अनु का; पुत्रः—पुत्र; तस्य—पुरुहोत्र का; अयुः—अयु; सात्वतः—सात्वत; ततः—उससे (अयु); भजमानः—भजमान; भजिः—भजि; दिव्यः—दिव्य; वृष्णिः—वृष्णि; देवावृधः—देवावृध; अन्धकः—अन्धक; सात्वतस्य—सात्वत के; सुताः—पुत्र; सप्त—सात; महाभोजः च—तथा महाभोज; मारिष—हे महान् राजा; भजमानस्य—भजमान के; निम्लोचिः—निम्लोचि; किङ्कणः—किंकण; धृष्टिः—धृष्टि; एव—निस्सन्देह; च—भी; एकस्याम्—एक पत्नी से; आत्मजाः—पुत्र; पत्न्याम्—पत्नी से; अन्यस्याम्—दूसरी; च—भी; त्रयः—तीन; सुताः—पुत्र; शताजित्—शताजित; च—भी; सहस्राजित्—सहस्राजित; अयुताजित्—अयुताजित; इति—इस प्रकार; प्रभो—हे राजा।

अनु का पुत्र पुरुहोत्र हुआ जिसके पुत्र अयु का पुत्र सात्वत था। हे महान् आर्य राजा, सात्वत के सात पुत्र थे—भजमान, भजि, दिव्य, वृष्णि, देवावृध, अन्धक तथा महाभोज। भजमान की एक पत्नी से निम्लोचि, किंकण तथा धृष्टि नामक तीन पुत्र हुए और दूसरी पत्नी से शताजित, सहस्राजित तथा अयुताजित—ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए।

बभ्रुर्देवावृधसुतस्तयोः श्लोकौ पठन्त्यमू ।
यथैव शृणुमो दूरात्सम्पश्यामस्तथान्तिकात् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

बभ्रुः—बभ्रु; देवावृध—देवावृध; सुतः—पुत्र; तयोः—उनके; श्लोकौ—दो श्लोक; पठन्ति—पुरानी पीढ़ी के लोग सुनाते हैं; अमू—वे; यथा—जिस तरह; एव—निस्सन्देह; शृणुमः—हमने सुना है; दूरात्—दूर से; सम्पश्यामः—वास्तव में देख रहे हैं; तथा—उसी तरह; अन्तिकात्—आज भी।

देवावृध का पुत्र बभ्रु था। देवावृध तथा बभ्रु से सम्बन्धित दो प्रसिद्ध प्रार्थनामय गीत हैं जिन्हें हमारे पूर्वज गाते रहे हैं और जिन्हें हमने दूर से सुना है। आज भी मैं वही गीत उनके गुणों के विषय में सुनता हूँ (क्योंकि जो पहले सुना गया है, अभी भी लगातार गाया जाता है)।

बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः ।
पुरुषाः पञ्चषष्टिश्च षट्सहस्राणि चाष्ट च ॥ १० ॥
येऽमृतत्वमनुप्राप्ता बभ्रोर्देवावृधादपि ।
महाभोजोऽतिधर्मात्मा भोजा आसंस्तदन्वये ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

बभ्रुः—राजा बभ्रु; श्रेष्ठः—सब राजाओं में श्रेष्ठ; मनुष्याणाम्—सारे मनुष्यों में; देवैः—देवताओं समेत; देवावृधः—राजा देवावृध; समः—समदर्शी; पुरुषाः—पुरुष; पञ्च-षष्टिः—पैंसठ; च—भी; षट्-सहस्राणि—छह हजार; च—भी; अष्ट—आठ हजार; च—भी; ये—जो; अमृतत्वम्—भवबन्धन से मोक्ष; अनुप्राप्ताः—प्राप्त; बभ्रोः—बभ्रु की संगति के फलस्वरूप; देवावृधात्—तथा देवावृध की संगति से; अपि—निस्सन्देह; महाभोजः—राजा महाभोज; अति-धर्म-आत्मा—अत्यन्त धार्मिक; भोजाः—भोज नाम के राजा; आसन्—हुए; तत्-अन्वये—उसके (महाभोज के) कुल में।

"यह निश्चय हुआ कि मनुष्यों में बभ्रु सर्वश्रेष्ठ है और देवावृध देवता तुल्य है। बभ्रु तथा देवावृध की संगति से उनके सारे वंशज, जिनकी संख्या १४०६५ थी, मोक्ष के भागी हुए।" राजा महाभोज

अत्यन्त धर्मात्मा था और उसके कुल में भोज राजा हुए।

वृष्णे: सुमित्र: पुत्रोऽभूद्युधाजिच्च परन्तप ।
शिनिस्तस्यानमित्रश्च निघ्नोऽभूदनमित्रत: ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

वृष्णे:—सात्वत पुत्र वृष्णि का; सुमित्र:—सुमित्र; पुत्र:—पुत्र; अभूत्—हुआ; युधाजित्—युधाजित; च—भी; परम्-तप—हे शत्रुओं का दमन करने वाले राजा; शिनि:—शिनि; तस्य—उसका; अनमित्र:—अनमित्र; च—तथा; निघ्न:—निघ्न; अभूत्—प्रकट हुआ; अनमित्रत:—अनमित्र से।

हे शत्रुओं के दमन करने वाले राजा परीक्षित, वृष्णि के पुत्र सुमित्र तथा युधाजित थे। युधाजित से शिनि तथा अनमित्र उत्पन्न हुए। अनमित्र के एक पुत्र था जिसका नाम निघ्न था।

सत्राजित: प्रसेनश्च निघ्नस्याथासतु: सुतौ ।
अनमित्रसुतो योऽन्य: शिनिस्तस्य च सत्यक: ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

सत्राजित:—सत्राजित; प्रसेन: च—तथा प्रसेन; निघ्नस्य—निघ्न के पुत्र; अथ—इस प्रकार; असतु:—थे; सुतौ—दो पुत्र; अनमित्र-सुत:—अनमित्र का बेटा; य:—जो; अन्य:—दूसरा; शिनि:—शिनि; तस्य—उसका; च—भी; सत्यक:—सत्यक।

निघ्न के दो पुत्र हुए—सत्राजित तथा प्रसेन। अनमित्र का दूसरा पुत्र एक अन्य शिनि था जिसका पुत्र सत्यक था।

युयुधान: सात्यकिर्वै जयस्तस्य कुणिस्तत: ।
युगन्धरोऽनमित्रस्य वृष्णि: पुत्रोऽपरस्तत: ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

युयुधान:—युयुधान; सात्यकि:—सत्यक का पुत्र; वै—निस्सन्देह; जय:—जय; तस्य—उसका (युयुधान); कुणि:—कुणि; तत:—उससे (जय); युगन्धर:—युगन्धर; अनमित्रस्य—अनमित्र का पुत्र; वृष्णि:—वृष्णि; पुत्र:—पुत्र; अपर:—दूसरा; तत:—उससे।

सत्यक का पुत्र युयुधान था जिसका पुत्र जय हुआ। जय के एक पुत्र हुआ जिसका नाम कुणि था। कुणि का पुत्र युगन्धर था। अनमित्र का दूसरा पुत्र वृष्णि था।

श्वफल्कश्चित्ररथश्च गान्दिन्यां च श्वफल्कत: ।
अक्रूरप्रमुखा आसन्पुत्रा द्वादश विश्रुता: ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

श्वफल्क:—श्वफल्क; चित्ररथ: च—तथा चित्ररथ; गान्दिन्याम्—गान्दिनी नामक पत्नी से; च—तथा; श्वफल्कत:—श्वफल्क से; अक्रूर—अक्रूर; प्रमुखा:—इत्यादि; आसन्—थे; पुत्रा:—पुत्र; द्वादश—बारह; विश्रुता:—विख्यात।

वृष्णि से श्वफल्क तथा चित्ररथ नाम के दो पुत्र हुए। श्वफल्क की पत्नी गान्दिनी से अक्रूर उत्पन्न हुआ। अक्रूर सबसे बड़ा था, किन्तु उसके अतिरिक्त बारह पुत्र और थे जो सभी विख्यात थे।

आसङ्गः सारमेयश्च मृदुरो मृदुविद्गिरिः ।
धर्मवृद्धः सुकर्मा च क्षेत्रोपेक्षोऽरिमर्दनः ॥ १६ ॥
शत्रुघ्नो गन्धमादश्च प्रतिबाहुश्च द्वादश ।
तेषां स्वसा सुचाराख्या द्वावक्रूरसुतावपि ॥ १७ ॥
देववानुपदेवश्च तथा चित्ररथात्मजाः ।
पृथुर्विदूरथाद्याश्च बहवो वृष्णिनन्दनाः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

आसङ्गः—आसंग; सारमेयः—सारमेय; च—भी; मृदुरः—मृदुर; मृदुवित्—मृदुवित; गिरिः—गिरि; धर्मवृद्धः—धर्मवृद्ध; सुकर्मा—सुकर्मा; च—भी; क्षेत्रोपेक्षः—क्षेत्रोपेक्ष; अरिमर्दनः—अरिमर्दन; शत्रुघ्नः—शत्रुघ्न; गन्धमादः—गन्धमाद; च—भी; प्रतिबाहुः—प्रतिबाहु; च—तथा; द्वादश—बारह; तेषाम्—उनकी; स्वसा—बहन; सुचारा—सुचारा; आख्या—विख्यात; द्वौ—दो; अक्रूर—अक्रूर के; सुतौ—बेटे; अपि—भी; देववान्—देववान; उपदेवः च—तथा उपदेव; तथा—तत्पश्चात्; चित्ररथ-आत्मजाः—चित्ररथ के पुत्र; पृथुः विदूरथ—पृथु तथा विदूरथ; आद्याः—आदि; च—भी; बहवः—अनेक; वृष्णि-नन्दनाः—वृष्णि के पुत्र।

इन बारहों के नाम थे—आसंग, सारमेय, मृदुर, मृदुवित, गिरि, धर्मवृद्ध, सुकर्मा, क्षेत्रोपेक्ष, अरिमर्दन, शत्रुघ्न, गन्धमाद तथा प्रतिबाहु। इन भाइयों के एक बहन भी थी जिसका नाम सुचारा था। अक्रूर के दो पुत्र हुए जिनके नाम देववान तथा उपदेव थे। चित्ररथ के पृथु, विदूरथ इत्यादि कई पुत्र थे। ये सभी वृष्णिवंशी कहलाये।

कुकुरो भजमानश्च शुचिः कम्बलबर्हिषः ।
कुकुरस्य सुतो वह्निर्विलोमा तनयस्ततः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

कुकुरः—कुकुर; भजमानः—भजमान; च—भी; शुचिः—शुचि; कम्बलबर्हिषः—कम्बलबर्हिष; कुकुरस्य—कुकुर का; सुतः—पुत्र; वह्निः—वह्नि; विलोमा—विलोमा; तनयः—पुत्र; ततः—उससे (वह्नि)।

अन्धक के चार पुत्र हुए—कुकुर, भजमान, शुचि तथा कम्बलबर्हिष। कुकुर का पुत्र वह्नि था और वह्नि का पुत्र विलोमा हुआ।

कपोतरोमा तस्यानुः सखा यस्य च तुम्बुरुः ।
अन्धकाद्दुन्दुभिस्तस्मादविद्योतः पुनर्वसुः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

कपोतरोमा—कपोतरोमा; तस्य—उसका (पुत्र); अनु:—अनु; सखा—मित्र; यस्य—जिसका; च—भी; तुम्बुरु:—तुम्बुरु; अन्धकात्—अन्धक (अनुपुत्र) से; दुन्दुभि:—दुन्दुभि नामक पुत्र; तस्मात्—उससे (दुन्दुभि); अविद्योत:—अविद्योत नामक पुत्र; पुनर्वसु:—पुनर्वसु नामक पुत्र।

विलोमा का पुत्र कपोतरोमा था जिसका पुत्र अनु हुआ और उसका मित्र तुम्बुरु था। अनु से अन्धक का जन्म हुआ, अन्धक से दुन्दुभि, दुन्दुभि से अविद्योत और अविद्योत से पुनर्वसु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

तस्याहुकश्चाहुकी च कन्या चैवाहुकात्मजौ ।
देवकश्चोग्रसेनश्च चत्वारो देवकात्मजा: ॥ २१ ॥
देववानुपदेवश्च सुदेवो देववर्धन: ।
तेषां स्वसार: सप्तासन्धृतदेवादयो नृप ॥ २२ ॥
शान्तिदेवोपदेवा च श्रीदेवा देवरक्षिता ।
सहदेवा देवकी च वसुदेव उवाह ता: ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसके; आहुक:—आहुक; च—तथा; आहुकी—आहुकी; च—भी; कन्या—पुत्री; च—भी; एव—निस्सन्देह; आहुक—आहुक के; आत्मजौ—दो पुत्र; देवक:—देवक; च—तथा; उग्रसेन:—उग्रसेन; च—भी; चत्वार:—चार; देवक-आत्मजा:—देवक के पुत्र; देववान्—देववान; उपदेव:—उपदेव; च—तथा; सुदेव:—सुदेव; देववर्धन:—देववर्धन; तेषाम्—उन सब में से; स्वसार:—बहनें; सप्त—सात; आसन्—थीं; धृतदेवा-आदय:—धृतदेवा आदि; नृप—हे राजा परीक्षित; शान्तिदेवा—शान्तिदेवा; उपदेवा—उपदेवा; च—भी; श्रीदेवा—श्रीदेवा; देवरक्षिता—देवरक्षिता; सहदेवा—सहदेवा; देवकी—देवकी; च—तथा; वसुदेव:—कृष्ण के पिता वसुदेव ने; उवाह—विवाह लिया; ता:—उनको।

पुनर्वसु के एक पुत्र आहुक तथा एक पुत्री आहुकी थी। आहुक के दो पुत्र थे—देवक तथा उग्रसेन। देवक के चार पुत्र हुए—देववान्, उपदेव, सुदेव तथा देववर्धन। उसके सात कन्याएँ भी थीं जिनके नाम शान्तिदेवा, उपदेवा, श्रीदेवा, देवरक्षिता, सहदेवा, देवकी तथा धृतदेवा थे। इनमें धृतदेवा सबसे बड़ी थी। कृष्ण के पिता वसुदेव ने इन सबों के साथ विवाह किया।

कंस: सुनामा न्यग्रोध: कङ्क: शङ्कु: सुहूस्तथा ।
राष्ट्रपालोऽथ धृष्टिश्च तुष्टिमानौग्रसेनय: ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

कंस:—कंस; सुनामा—सुनामा; न्यग्रोध:—न्यग्रोध; कङ्क:—कंक; शङ्कु:—शंकु; सुहू:—सुहू; तथा—और; राष्ट्रपाल:—राष्ट्रपाल; अथ—तत्पश्चात्; धृष्टि:—धृष्टि; च—भी; तुष्टिमान्—तुष्टिमान; औग्रसेनय:—उग्रसेन के पुत्र।

उग्रसेन के पुत्रों के नाम थे—कंस, सुनामा, न्यग्रोध, कंक, शंकु, सुहू, राष्ट्रपाल, धृष्टि तथा तुष्टिमान।

कंसा कंसवती कङ्का शूरभू राष्ट्रपालिका ।
उग्रसेनदुहितरो वसुदेवानुजस्त्रियः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

कंसा—कंसा; कंसवती—कंसवती; कङ्का—कंका; शूरभू—शूरभू; राष्ट्रपालिका—राष्ट्रपालिका; उग्रसेन-दुहितरः—उग्रसेन की पुत्रियाँ; वसुदेव-अनुज—वसुदेव के छोटे भाइयों की; स्त्रियः—पत्नियाँ।

उग्रसेन की पुत्रियाँ कंसा, कंसावती, कंका, शूरभू तथा राष्ट्रपालिका थीं। वे वसुदेव के छोटे भाइयों की पत्नियाँ बनीं।

शूरो विदूरथादासीद्भजमानस्तु तत्सुतः ।
शिनिस्तस्मात्स्वयं भोजो हृदिकस्तत्सुतो मतः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

शूरः—शूर; विदूरथात्—विदूरथ से, जो चित्ररथ का पुत्र था; आसीत्—उत्पन्न हुआ; भजमानः—भजमान; तु—तथा; तत्-सुतः—उस (शूर) का पुत्र; शिनिः—शिनि; तस्मात्—उससे; स्वयम्—स्वयं; भोजः—प्रसिद्ध राजा भोज; हृदिकः—हृदिक; तत्-सुतः—उस (भोज) का पुत्र; मतः—विख्यात है।

चित्ररथ का पुत्र विदूरथ था, जिसका पुत्र शूर था और शूर का पुत्र भजमान था। भजमान का पुत्र शिनि हुआ, शिनि का पुत्र भोज था और भोज का पुत्र हृदिक था।

देवमीढः शतधनुः कृतवर्मेति तत्सुताः ।
देवमीढस्य शूरस्य मारिषा नाम पत्न्यभूत् ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

देवमीढः—देवमीढ; शतधनुः—शतधनु; कृतवर्मा—कृतवर्मा; इति—इस प्रकार; तत्-सुताः—उस (हृदिक) के पुत्र; देवमीढस्य—देवमीढ का; शूरस्य—शूर का; मारिषा—मारिषा; नाम—नामक; पत्नी—पत्नी; अभूत्—थी।

हृदिक के तीन पुत्र हुए—देवमीढ, शतधनु तथा कृतवर्मा। देवमीढ का पुत्र शूर था जिसकी पत्नी का नाम मारिषा था।

तस्यां स जनयामास दश पुत्रानकल्मषान् ।
वसुदेवं देवभागं देवश्रवसमानकम् ॥ २८ ॥
सृञ्जयं श्यामकं कङ्कं शमीकं वत्सकं वृकम् ।
देवदुन्दुभयो नेदुरानका यस्य जन्मनि ॥ २९ ॥
वसुदेवं हरेः स्थानं वदन्त्यानकदुन्दुभिम् ।
पृथा च श्रुतदेवा च श्रुतकीर्तिः श्रुतश्रवाः ॥ ३० ॥

राजाधिदेवी चैतेषां भगिन्यः पञ्च कन्यकाः ।
कुन्तेः सख्युः पिता शूरो ह्यपुत्रस्य पृथामदात् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

तस्याम्—उससे (मारिषा) से; सः—उस (शूर) ने; जनयाम् आस—उत्पन्न किया; दश—दस; पुत्रान्—पुत्रों को; अकल्मषान्—निष्कलंक; वसुदेवम्—वसुदेव को; देवभागम्—देवभाग को; देवश्रवसम्—देवश्रवा को; आनकम्—आनक को; सृञ्जयम्—सृञ्जय को; श्यामकम्—श्यामक; कङ्कम्—कंक; शमीकम्—शमीक; वत्सकम्—वत्सक; वृकम्—वृक को; देव-दुन्दुभयः—देवताओं द्वारा दुन्दुभियाँ; नेदुः—बजाई गईं; आनकाः—एक प्रकार की दुन्दुभी; यस्य—जिसके; जन्मनि—जन्म होने पर; वसुदेवम्—वसुदेव को; हरेः—भगवान् का; स्थानम्—स्थान; वदन्ति—लोग कहते हैं; आनकदुन्दुभिम्—आनक-दुन्दुभि; पृथा—पृथा; च—तथा; श्रुतदेवा—श्रुतदेवा; च—भी; श्रुतकीर्तिः—श्रुतकीर्ति; श्रुतश्रवाः—श्रुतश्रवा; राजाधिदेवी—राजाधिदेवी; च—भी; एतेषाम्—इन सबों की; भगिन्यः—बहनें; पञ्च—पाँच; कन्यकाः—शूर की पुत्रियाँ; कुन्तेः—कुन्ति का; सख्युः—मित्र; पिता—पिता; शूरः—शूर; हि—निस्सन्देह; अपुत्रस्य—पुत्रविहीन; पृथाम्—पृथा को; अदात्—दे दिया।

राजा शूर को अपनी पत्नी मारिषा से वसुदेव, देवभाग, देवश्रवा, आनक, सृञ्जय, श्यामक, कंक, शमीक, वत्सक तथा वृक नामक दस पुत्र उत्पन्न हुए। ये विशुद्ध पवित्र पुरुष थे। जब वसुदेव का जन्म हुआ था तो देवताओं ने स्वर्ग से दुन्दुभियां बजाई थीं। इसीलिए वसुदेव का नाम आनक-दुन्दुभि पड़ गया। इन्होंने भगवान् कृष्ण के प्राकट्य के लिए समुचित स्थान प्रदान किया। शूर के पाँच कन्याएँ भी जन्मीं, जिनके नाम थे पृथा, श्रुतदेवा, श्रुतकीर्ति, श्रुतश्रवा तथा राजाधिदेवी। ये वसुदेव की बहनें थीं। शूर ने अपने मित्र कुन्ति को अपनी पुत्री पृथा दे दी क्योंकि उसके कोई सन्तान नहीं थी; इसलिए पृथा का दूसरा नाम कुन्ती था।

साप दुर्वाससो विद्यां देवहूतीं प्रतोषितात् ।
तस्या वीर्यपरीक्षार्थमाजुहाव रविं शुचिः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

सा—उसने (पृथा ने); आप—प्राप्त किया; दुर्वाससः—दुर्वासा मुनि से; विद्याम्—योगशक्ति; देव-हूतीम्—किसी भी देवता का आवाहन करने की; प्रतोषितात्—प्रसन्न होकर; तस्याः—उस (योगशक्ति) से; वीर्य—प्रभाव; परीक्ष-अर्थम्—परीक्षा करने के लिए; आजुहाव—आवाहित किया; रविम्—सूर्यदेव को; शुचिः—पवित्र (पृथा)।

एक बार जब दुर्वासा पृथा के पिता कुन्ति के घर पर अतिथि बने तो पृथा ने अपनी सेवा से उन्हें प्रसन्न कर लिया। अतएव उसे ऐसी योगशक्ति प्राप्त हुई जिससे वह किसी भी देवता का आवाहन कर सकती थी। पवित्र कुन्ती ने इस योगशक्ति के प्रभाव की परीक्षा करने के लिए तुरन्त ही सूर्यदेव का आवाहन किया।

तदैवोपागतं देवं वीक्ष्य विस्मितमानसा ।

प्रत्ययार्थं प्रयुक्ता मे याहि देव क्षमस्व मे ॥ ३३॥

शब्दार्थ

तदा—उस समय; एव—निस्सन्देह; उपागतम्—(अपने समक्ष) प्रकट हुआ; देवम्—सूर्यदेव को; वीक्ष्य—देखकर; विस्मित-मानसा—अत्यधिक चकित; प्रत्यय-अर्थम्—योग की शक्ति को देखने के लिए; प्रयुक्ता—मैंने प्रयोग किया है; मे—मुझे; याहि—कृपया लौट जाइये; देव—हे देवता; क्षमस्व—क्षमा कीजिये; मे—मुझको।

ज्योंही कुन्ती ने सूर्यदेव का आवाहन किया वे तुरन्त उसके समक्ष प्रकट हो गये। इस पर वह अत्यधिक चकित हो गई। उसने सूर्यदेव से कहा ''मैं तो इस योगशक्ति के प्रभाव की परीक्षा ही कर रही थी। खेद है कि मैंने आपको व्यर्थ ही बुलाया है। कृपया वापस जाएँ और मुझे क्षमा कर दें।''

अमोघं देवसन्दर्शमादधे त्वयि चात्मजम् ।
योनिर्यथा न दुष्येत कर्ताहं ते सुमध्यमे ॥ ३४॥

शब्दार्थ

अमोघम्—व्यर्थ न होने वाला; देव-सन्दर्शम्—देवताओं से भेंट; आदधे—मैं (वीर्य) दूँगा; त्वयि—तुममें; च—भी; आत्मजम्—पुत्र; योनिः—योनि मार्ग; यथा—जिस तरह; न—नहीं; दुष्येत—दूषित हो; कर्ता—व्यवस्था करूँगा; अहम्—मैं; ते—तुम्हारी; सुमध्यमे—हे सुन्दरी।

सूर्यदेव ने कहा : हे सुन्दरी पृथा, देवताओं से तुम्हारी भेंट व्यर्थ नहीं जा सकती। अतएव मैं तुम्हारे गर्भ में वीर्य स्थापित करता हूँ जिससे तुम एक पुत्र उत्पन्न कर सको। मैं तुम्हारे कौमार्य को अक्षत रखने की व्यवस्था कर दूँगा क्योंकि तुम अब भी अविवाहिता लड़की हो।

तात्पर्य : वैदिक सभ्यता के अनुसार यदि विवाह के पूर्व कोई लड़की शिशु को जन्म दे तो उसके साथ कोई विवाह नहीं करता। इसीलिए जब सूर्यदेव ने पृथा के समक्ष उपस्थित होकर उसे शिशु देना चाहा तो पृथा को उलझन हुई क्योंकि वह कुमारी थी। किन्तु सूर्यदेव ने उसके कौमार्य को अक्षत रखने के लिए उसे ऐसा शिशु देने की व्यवस्था की जो कान से उत्पन्न हुआ। इसीलिए इसका नाम कर्ण पड़ा। यह प्रथा है कि अक्षतयोनि रहते लड़की विवाही जाय अर्थात् उसका कौमार्य भंग न हो। विवाह के पूर्व कुमारी को शिशु उत्पन्न नहीं करना चाहिए।

इति तस्यां स आधाय गर्भं सूर्यो दिवं गतः ।
सद्यः कुमारः सञ्जज्ञे द्वितीय इव भास्करः ॥ ३५॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; तस्याम्—उसमें (पृथा में); सः—उसने (सूर्यदेव ने); आधाय—वीर्य स्थापित करके; गर्भम्—गर्भ; सूर्यः—सूर्यदेव; दिवम्—स्वर्गलोक को; गतः—लौट गये; सद्यः—तुरन्त; कुमारः—बालक; सञ्जज्ञे—उत्पन्न हुआ; द्वितीयः—दूसरा; इव—सदृश; भास्करः—सूर्यदेव।

यह कहकर सूर्यदेव ने पृथा के गर्भ में अपना वीर्य स्थापित किया और वे स्वर्गलोक वापस चले गये। उसके तुरन्त बाद कुन्ती ने एक पुत्र को जन्म दिया जो दूसरे सूर्य की तरह था।

तं सात्यजन्नदीतोये कृच्छ्राल्लोकस्य बिभ्यती ।
प्रपितामहस्तामुवाह पाण्डुर्वै सत्यविक्रमः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस बालक को; सा—उसने (कुन्ती ने); अत्यजत्—छोड़ दिया; नदी-तोये—नदी के जल में; कृच्छ्रात्—पश्चाताप सहित; लोकस्य—लोगों के; बिभ्यती—डरते हुए; प्रपितामहः—(तुम्हारे) परबाबा; ताम्—उसको (कुन्ती को); उवाह—विवाह किया; पाण्डुः—पाण्डु ने; वै—निस्सन्देह; सत्य-विक्रमः—अत्यन्त पवित्र तथा पराक्रमी।

चूँकि कुन्ती लोगों की आलोचनाओं से भयभीत थी अतएव उसे बड़ी कठिनाई से पुत्र-स्नेह छोड़ना पड़ा। अनचाहे उसने बालक को एक मंजूषा (टोकरी) में बन्द करके नदी के जल में प्रवाहित कर दिया। हे महाराज परीक्षित, बाद में पवित्र तथा पराक्रमी तुम्हारे बाबा पाण्डु ने कुन्ती से विवाह कर लिया।

श्रुतदेवां तु कारूषो वृद्धशर्मा समग्रहीत् ।
यस्यामभूद्दन्तवक्र ऋषिशप्तो दितेः सुतः ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

श्रुतदेवाम्—कुन्ती की बहन श्रुतदेवा को; तु—लेकिन; कारूषः—करूष का राजा; वृद्धशर्मा—वृद्धशर्मा ने; समग्रहीत्—विवाह लिया; यस्याम्—जिससे; अभूत्—उत्पन्न हुआ; दन्तवक्रः—दन्तवक्र; ऋषि-शप्तः—सनक तथा सनातन ऋषियों द्वारा शाप प्राप्त; दितेः—दिति का; सुतः—पुत्र।

करूष के राजा वृद्धशर्मा ने कुन्ती की बहन श्रुतदेवा के साथ विवाह किया और उसके गर्भ से दन्तवक्र उत्पन्न हुआ। सनकादि मुनियों से शापित होने के कारण दन्तवक्र पूर्वजन्म में दिति के पुत्र हिरण्याक्ष के रूप में उत्पन्न हुआ था।

कैकेयो धृष्टकेतुश्च श्रुतकीर्तिमविन्दत ।
सन्तर्दनादयस्तस्यां पञ्चासन्कैकयाः सुताः ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

कैकेय:—केकय देश का राजा; धृष्टकेतु:—धृष्टकेतु ने; च—भी; श्रुतकीर्तिम्—कुन्ती की बहन श्रुतकीर्ति को; अविन्दत—ब्याह लिया; सन्तर्दन-आदय:—सन्तर्दन इत्यादि; तस्याम्—उससे (श्रुतकीर्ति से); पञ्च—पाँच; आसन्—हुए; कैकया:—केकय के राजा के; सुता:—पुत्र।

केकयराज धृष्टकेतु ने कुन्ती की अन्य बहिन श्रुतकीर्ति के साथ विवाह किया। श्रुतकीर्ति के सन्तर्दन इत्यादि पाँच पुत्र उत्पन्न हुए।

राजाधिदेव्यामावन्त्यौ जयसेनोऽजनिष्ट ह ।
दमघोषश्चेदिराजः श्रुतश्रवसमग्रहीत् ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

राजाधिदेव्याम्—राजाधिदेवी (कुन्ती की दूसरी बहन) से; आवन्त्यौ—दो पुत्र (विन्द तथा अनुविन्द); जयसेन:—जयसेन; अजनिष्ट—जन्म दिया; ह—भूतकाल में; दमघोष:—दमघोष ने; चेदि-राज:—चेदि राज्य का राजा; श्रुतश्रवसम्—श्रुतश्रवा को; अग्रहीत्—ब्याह लिया।

कुन्ती की अन्य बहन राजाधिदेवी के गर्भ से जयसेन ने विन्द तथा अनुविन्द नामक दो पुत्रों को जन्म दिया। इसी प्रकार चेदि राज्य के राजा दमघोष ने श्रुतश्रवा से विवाह किया।

शिशुपालः सुतस्तस्याः कथितस्तस्य सम्भवः ।
देवभागस्य कंसायां चित्रकेतुबृहद्बलौ ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

शिशुपाल:—शिशुपाल; सुत:—पुत्र; तस्या:—श्रुतश्रवा का; कथित:—पहले ही कहा जा चुका है (सातवें स्कन्ध में); तस्य—उसका; सम्भव:—जन्म; देवभागस्य—वसुदेव के भाई देवभाग से; कंसायाम्—उसकी पत्नी कंसा के गर्भ से; चित्रकेतु—चित्रकेतु; बृहद्बलौ—तथा बृहद्बल।

श्रुतश्रवा का पुत्र शिशुपाल था जिसके जन्म का वर्णन पहले ही (*श्रीमद्भागवत* के सातवें स्कन्ध में) किया जा चुका है। वसुदेव के भाई देवभाग की पत्नी कंसा ने दो पुत्रों को जन्म दिया जिनके नाम थे चित्रकेतु तथा बृहद्बल।

कंसवत्यां देवश्रवसः सुवीर इषुमांस्तथा ।
बकः कङ्कात्तु कङ्कायां सत्यजित्पुरुजित्तथा ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

कंसवत्याम्—कंसवती के गर्भ में; देवश्रवस:—वसुदेव के भाई देवश्रवा ने; सुवीर:—सुवीर; इषुमान्—इषुमान; तथा—और; बक:—बक; कङ्कात्—कंक से; तु—निस्सन्देह; कङ्कायाम्—कंका से; सत्यजित्—सत्यजित; पुरुजित्—पुरुजित; तथा—और।

वसुदेव के भाई देवश्रवा ने कंसावती से विवाह किया जिसने सुवीर तथा इषुमान दो पुत्रों को जन्म दिया। कंक को अपनी पत्नी कंका से तीन पुत्र प्राप्त हुए जिनके नाम थे बक, सत्यजित तथा

पुरुजित।

सृञ्जयो राष्ट्रपाल्यां च वृषदुर्मर्षणादिकान् ।
हरिकेशहिरण्याक्षौ शूरभूम्यां च श्यामकः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

सृञ्जयः—सृंजय ने; राष्ट्रपाल्याम्—राष्ट्रपालिका नामक पत्नी से; च—तथा; वृष-दुर्मर्षण-आदिकान्—वृष, दुर्मर्षण इत्यादि को उत्पन्न किया; हरिकेश—हरिकेश; हिरण्याक्षौ—तथा हिरण्याक्ष; शूरभूम्याम्—शूरभूमि के गर्भ से; च—तथा; श्यामकः—राजा श्यामक ने।.

राजा सृञ्जय के उसकी पत्नी राष्ट्रपालिका से वृष, दुर्मर्षण इत्यादि पुत्र हुए। राजा श्यामक के उसकी पत्नी शूरभूमि से दो पुत्र उत्पन्न हुए जिनके नाम थे हरिकेश तथा हिरण्याक्ष।

मिश्रकेश्यामप्सरसि वृकादीन्वत्सकस्तथा ।
तक्षपुष्करशालादीन्दुर्वाक्ष्यां वृक आदधे ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

मिश्रकेश्याम्—मिश्रकेशी के गर्भ से; अप्सरसि—जो अप्सरा थी; वृक-आदीन्—वृक तथा अन्य पुत्र; वत्सकः—वत्सक; तथा—और; तक्ष-पुष्कर-शाल-आदीन्—तक्ष, पुष्कर, शाल इत्यादि पुत्र; दुर्वाक्ष्याम्—दुर्वाक्षी के गर्भ से; वृकः—वृक ने; आदधे—उत्पन्न किया।.

तत्पश्चात् राजा वत्सक की पत्नी मिश्रकेशी नाम की अप्सरा से वृक इत्यादि पुत्र उत्पन्न हुए। वृक की पत्नी दुर्वाक्षी ने तक्षक, पुष्कर, शाल इत्यादि पुत्रों को जन्म दिया।

सुमित्रार्जुनपालादीन्समीकात्तु सुदामनी ।
आनकः कर्णिकायां वै ऋतधामाजयावपि ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

सुमित्र—सुमित्र; अर्जुनपाल—अर्जुनपाल; आदीन्—इत्यादि; समीकात्—समीक राजा से; तु—निस्सन्देह; सुदामनी—सुदामनी के गर्भ से; आनकः—आनक; कर्णिकायाम्—कर्णिका के गर्भ से; वै—निस्सन्देह; ऋतधामा—ऋतधामा; जयौ—तथा जय; अपि—निस्सन्देह।.

समीक की पत्नी सुदामिनी ने अपने गर्भ से सुमित्र, अर्जुनपाल तथा अन्य पुत्रों को जन्म दिया। राजा आनक ने अपनी पत्नी कर्णिका के गर्भ से ऋतधामा तथा जय नामक दो पुत्र उत्पन्न किये।

पौरवी रोहिणी भद्रा मदिरा रोचना इला ।
देवकीप्रमुखाश्चासन्पत्न्य आनकदुन्दुभेः ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

पौरवी—पौरवी; रोहिणी—रोहिणी; भद्रा—भद्रा; मदिरा—मदिरा; रोचना—रोचना; इला—इला; देवकी—देवकी; प्रमुखाः—प्रधान; च—तथा; आसन्—थीं; पत्न्यः—पत्नियाँ; आनकदुन्दुभेः—आनकदुन्दुभि अर्थात् वसुदेव की।

देवकी, पौरवी, रोहिणी, भद्रा, मदिरा, रोचना, इला इत्यादि आनकदुन्दुभि (वसुदेव) की पत्नियाँ थीं। इनमें देवकी प्रमुख थी।

बलं गदं सारणं च दुर्मदं विपुलं ध्रुवम् ।
वसुदेवस्तु रोहिण्यां कृतादीनुदपादयत् ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

बलम्—बल को; गदम्—गद को; सारणम्—सारण को; च—भी; दुर्मदम्—दुर्मद को; विपुलम्—विपुल को; ध्रुवम्—ध्रुव को; वसुदेवः—वसुदेव (कृष्ण के पिता) ने; तु—निस्सन्देह; रोहिण्याम्—रोहिणी के गर्भ से; कृत-आदीन्—कृत आदि पुत्रों को; उदपादयत्—उत्पन्न किया।

वसुदेव ने अपनी पत्नी रोहिणी के गर्भ से बल, गद, सारण, दुर्मद, विपुल, ध्रुव, कृत तथा अन्य पुत्रों को उत्पन्न किया।

सुभद्रो भद्रबाहुश्च दुर्मदो भद्र एव च ।
पौरव्यास्तनया ह्येते भूताद्या द्वादशाभवन् ॥ ४७ ॥
नन्दोपनन्दकृतकशूराद्या मदिरात्मजाः ।
कौशल्या केशिनं त्वेकमसूत कुलनन्दनम् ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

सुभद्रः—सुभद्र; भद्रबाहुः—भद्रबाहु; च—तथा; दुर्मदः—दुर्मद; भद्रः—भद्र; एव—निस्सन्देह; च—भी; पौरव्याः—पौरवी नामक पत्नी के; तनयाः—पुत्र; हि—निस्सन्देह; एते—ये सभी; भूत-आद्याः—भूत इत्यादि; द्वादश—बारह; अभवन्—उत्पन्न हुए; नन्द-उपनन्द-कृतक-शूर-आद्याः—नन्द, उपनन्द, कृतक, शूर इत्यादि; मदिरा-आत्मजाः—मदिरा के पुत्र; कौशल्या—कौशल्या ने; केशिनम्—केशी नामक पुत्र को; तु एकम्—एकमात्र; असूत—जन्म दिया; कुल-नन्दनम्—पुत्र को।

पौरवी के गर्भ से बारह पुत्र हुए जिनमें भूत, सुभद्र, भद्रबाहु, दुर्मद तथा भद्र के नाम आते हैं। मदिरा के गर्भ से नन्द, उपनन्द, कृतक, शूर इत्यादि पुत्र उत्पन्न हुए। कौशल्या (भद्रा) ने केवल एक पुत्र उत्पन्न किया जिसका नाम था केशी।

रोचनायामतो जाता हस्तहेमाङ्गदादयः ।
इलायामुरुवल्कादीन्यदुमुख्यानजीजनत् ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

रोचनायाम्—रोचना नाम की दूसरी पत्नी से; अतः—तत्पश्चात्; जाताः—उत्पन्न हुए; हस्त—हस्त; हेमाङ्गद—हेमांगद; आदयः—इत्यादि; इलायाम्—इला नामक दूसरी पत्नी से; उरुवल्क-आदीन्—उरुवल्क इत्यादि; यदु-मुख्यान्—यदुवंश के मुख्य पुरुषों को; अजीजनत्—जन्म दिया।

वसुदेव ने रोचना नामक पत्नी से हस्त, हेमांगद इत्यादि पुत्रों को उत्पन्न किया और इला नामक पत्नी से उरुवल्क इत्यादि पुत्रों को उत्पन्न किया जो यदुवंश के प्रधान पुरुष थे।

विपृष्ठो धृतदेवायामेक आनकदुन्दुभेः ।
शान्तिदेवात्मजा राजन्प्रशमप्रसितादयः ॥ ५० ॥

शब्दार्थ

विपृष्ठः—विपृष्ठ; धृतदेवायाम्—धृतदेवा नामक पत्नी के गर्भ से; एकः—एक पुत्र; आनकदुन्दुभेः—आनकदुन्दुभि अर्थात् वसुदेव के; शान्तिदेवा-आत्मजाः—दूसरी पत्नी शान्तिदेवा के पुत्र; राजन्—हे राजा परीक्षित; प्रशम-प्रसित-आदयः—प्रशम, प्रसित इत्यादि।

धृतदेवा पत्नी के गर्भ से आनकदुन्दुभि (वसुदेव) को विपृष्ठ नामक पुत्र की प्राप्ति हुई। वसुदेव की दूसरी पत्नी शान्तिदेवा के गर्भ से प्रशम, प्रसित इत्यादि पुत्रों ने जन्म लिया।

राजन्यकल्पवर्षाद्या उपदेवासुता दश ।
वसुहंससुवंशाद्याः श्रीदेवायास्तु षट्सुताः ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

राजन्य—राजन्य; कल्प—कल्प; वर्ष-आद्याः—वर्ष इत्यादि; उपदेवा-सुताः—वसुदेव की दूसरी पत्नी उपदेवा के पुत्र; दश—दस; वसु—वसु; हंस—हंस; सुवंश—सुवंश; आद्याः—इत्यादि; श्रीदेवायाः—श्रीदेवा के; तु—लेकिन; षट्—छ; सुताः—पुत्र।

वसुदेव के उपदेवा नामक पत्नी थी जिससे राजन्य, कल्प, वर्ष इत्यादि दस पुत्र उत्पन्न हुए। अन्य पत्नी श्रीदेवा से वसु, हंस, सुवंश इत्यादि छः पुत्र जन्मे।

देवरक्षितया लब्धा नव चात्र गदादयः ।
वसुदेवः सुतानष्टावादधे सहदेवया ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

देवरक्षितया—देवरक्षिता नामक पत्नी से; लब्धाः—प्राप्त किया; नव—नौ; च—भी; अत्र—यहाँ; गदा-आदयः—गदा इत्यादि; वसुदेवः—श्रील वसुदेव ने; सुतान्—पुत्रों को; अष्टौ—आठ; आदधे—उत्पन्न किया; सहदेवया—सहदेवा नामक पत्नी से।

वसुदेव के वीर्य एवं देवरक्षिता के गर्भ से नौ पुत्र उत्पन्न हुए जिनमें गदा प्रमुख था। साक्षात् धर्मस्वरूप वसुदेव की अन्य पत्नी सहदेवा के गर्भ से श्रुत, प्रवर इत्यादि आठ पुत्र उत्पन्न हुए।

प्रवरश्रुतमुख्यांश्च साक्षाद्धर्मो वसूनिव ।
वसुदेवस्तु देवक्यामष्ट पुत्रानजीजनत् ॥ ५३ ॥
कीर्तिमन्तं सुषेणं च भद्रसेनमुदारधीः ।

ऋजुं सम्मर्दनं भद्रं सङ्कर्षणमहीश्वरम् ॥ ५४॥
अष्टमस्तु तयोरासीत्स्वयमेव हरिः किल ।
सुभद्रा च महाभागा तव राजन्पितामही ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ

प्रवर—प्रवर या पौवर; श्रुत—श्रुत; मुख्यान्—प्रमुख, इत्यादि; च—तथा; साक्षात्—साक्षात्; धर्मः—धर्म रूप; वसून् इव—स्वर्ग लोक के प्रमुख वसुओं की तरह; वसुदेवः—कृष्ण के पिता वसुदेव ने; तु—निस्सन्देह; देवक्याम्—देवकी के गर्भ से; अष्ट—आठ; पुत्रान्—पुत्रों को; अजीजनत्—उत्पन्न किया; कीर्तिमन्तम्—कीर्तिमान को; सुषेणम् च—तथा सुषेण को; भद्रसेनम्—भद्रसेन को; उदार-धीः—सभी योग्य; ऋजुम्—ऋजु को; सम्मर्दनम्—सम्मर्दन को; भद्रम्—भद्र को; सङ्कर्षणम्—संकर्षण को; अहि-ईश्वरम्—परम नियन्ता एवं नाग के अवतार; अष्टमः—आठवाँ; तु—लेकिन; तयोः—दोनों के (देवकी तथा वसुदेव के); आसीत्—प्रकट हुए; स्वयम् एव—साक्षात्; हरिः—भगवान्; किल—क्या कहा जाय; सुभद्रा—सुभद्रा बहिन; च—तथा; महाभागा—सौभाग्यशालिनी; तव—तुम्हारी; राजन्—हे महाराज परीक्षित; पितामही—दादी।

सहदेवा से उत्पन्न प्रवर और श्रुत इत्यादि आठों पुत्र स्वर्ग के आठों वसुओं के हूबहू अवतार थे। वसुदेव ने देवकी के गर्भ से भी आठ योग्य पुत्र उत्पन्न किये। इनमें कीर्तिमान, सुषेण, भद्रसेन, ऋजु, सम्मर्दन, भद्र तथा शेषावतार संकर्षण सम्मिलित हैं। आठवें पुत्र साक्षात् भगवान् कृष्ण थे। परम सौभाग्यवती सुभद्रा एकमात्र कन्या तुम्हारी दादी थी।

तात्पर्य : ५५ वें श्लोक में कहा गया है—*स्वयमेव हरिः किल,* जिससे सूचित होता है कि देवकी का आठवाँ पुत्र कृष्ण भगवान् हैं। कृष्ण अवतार नहीं हैं। यद्यपि भगवान् हरि एवं उनके अवतार में कोई अन्तर नहीं है, किन्तु कृष्ण आदि परम पुरुष हैं, वे पूर्ण ईश्वर हैं। अवतारों में ईश्वर की कुछ ही प्रतिशत शक्तियाँ पाई जाती हैं, किन्तु कृष्ण तो स्वयं पूर्ण ईश्वर हैं जो देवकी के आठवें पुत्र के रूप में प्रकट हुए।

यदा यदा हि धर्मस्य क्षयो वृद्धिश्च पाप्मनः ।
तदा तु भगवानीश आत्मानं सृजते हरिः ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ

यदा—जब; यदा—जब; हि—निस्सन्देह; धर्मस्य—धर्म की; क्षयः—हानि; वृद्धिः—बढ़ोतरी; च—तथा; पाप्मनः—पापकृत्यों की; तदा—तब; तु—निस्सन्देह; भगवान्—भगवान्; ईशः—परम नियन्ता; आत्मानम्—साक्षात्, स्वयं; सृजते—अवतरित होते हैं; हरिः—भगवान् हरि।

जब जब धर्म की हानि होती है और अधर्म की वृद्धि होती है तब तब परम नियन्ता भगवान् श्री हरि स्वेच्छा से प्रकट होते हैं।

तात्पर्य : जिन नियमों से भगवान् इस धरा पर अवतरित होते हैं उनकी व्याख्या इस श्लोक में हुई है। इन्हीं नियमों की व्याख्या स्वयं भगवान् ने *भगवद्गीता* (४.७) में भी की है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

''हे भारत! जब जब और जहाँ जहाँ धर्म का ह्रास होता है और अधर्म का प्राधान्य होता है तब तब मैं अवतार ग्रहण करता हूँ।''

वर्तमान युग में श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में हरे कृष्ण आन्दोलन का सूत्रपात करने के लिए भगवान् प्रकट हुए हैं। वर्तमान समय में, कलियुग में लोग अत्यन्त पापी तथा मन्द-बुद्धि हैं। उन्हें आध्यात्मिक जीवन का कोई ज्ञान नहीं है और वे मानव रूप के लाभों का दुरुपयोग कुत्तों-बिल्लियों की तरह जीवन बिताने में कर रहे हैं। ऐसी परिस्थितियों में श्रीचैतन्य महाप्रभु ने हरे कृष्ण आन्दोलन का सूत्रपात किया जो कृष्ण से अभिन्न है। यदि कोई इस आन्दोलन से सम्बन्ध जोड़ता है तो वह भगवान् के सान्निध्य में आता है। लोगों को हरे कृष्ण मंत्र कीर्तन का लाभ उठाना चाहिए और इस कलियुग में उत्पन्न सारी समस्याओं से छुटकारा पाना चाहिए।

न ह्यस्य जन्मनो हेतुः कर्मणो वा महीपते ।
आत्ममायां विनेशस्य परस्य द्रष्टुरात्मनः ॥ ५७ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; हि—निस्सन्देह; अस्य—उनका (भगवान् का); जन्मनः—जन्म लेना; हेतुः—कोई कारण है; कर्मणः—या कर्म करने का; वा—अथवा; महीपते—हे राजा (परीक्षित); आत्म-मायाम्—पतितात्माओं के लिए उनका परम अनुग्रह; विना—बिना, रहित; ईशस्य—परम नियन्ता का; परस्य—भगवान् का, जो भौतिक संसार से परे है; द्रष्टुः—परमात्मा का, जो हर एक के कर्मों के साक्षी हैं; आत्मनः—हर एक के परमात्मा का।

हे महाराज परीक्षित, भगवान् के प्राकट्य, तिरोधान या कर्मों का एकमात्र कारण उनकी निजी इच्छा है, कोई अन्य कारण नहीं है। परमात्मा रूप में वे सर्वज्ञ हैं फलस्वरूप ऐसा कोई कारण नहीं जो उन्हें प्रभावित करता हो, यहाँ तक कि सकाम कर्मों के फल भी नहीं।

तात्पर्य : इस श्लोक में भगवान् तथा एक सामान्य जीव का अन्तर बताया गया है। सामान्य जीव को अपने विगत कर्मों के अनुसार विशेष प्रकार का शरीर प्राप्त होता है (*कर्मणा दैवनेत्रेण जन्तुर्देहोपपत्तये*)। जीव कभी भी स्वतंत्र नहीं होता और स्वतंत्र रूप से कभी भी प्रकट नहीं हो सकता। प्रत्युत उसे अपने पूर्वकर्मों के अनुसार माया द्वारा उस पर थोपे गये शरीर को स्वीकार करना होता है। जैसा कि *भगवद्गीता* (१८.६१) में कहा गया है—*यन्त्रारूढानि मायया।* यह शरीर एक प्रकार का यंत्र है जिसे माया ने भगवान् के

निर्देशन में जीव को प्रदान किया है। अतएव जीव को अपने कर्म के अनुसार माया द्वारा प्रदत्त शरीर को स्वीकार करना पड़ता है। कोई स्वतंत्र रूप से यह नहीं कह सकता कि मुझे इस तरह का या उस तरह का शरीर दिया जाय। माया जो भी शरीर प्रदान करती है मनुष्य को वही स्वीकार करना पड़ता है। ऐसी है सामान्य जीव की स्थिति।

किन्तु जब कृष्ण अवतरित होते हैं तो वे पतितात्माओं पर अनुग्रहवश ऐसा करते हैं। जैसा कि *भगवद्गीता* (४.८) में भगवान् कहते हैं—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।

धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

"मैं साधुओं का उद्धार करने तथा दुष्टों का विनाश करने और धर्म की फिर से स्थापना करने के लिए युग युग में अवतार लेता हूँ।" भगवान् को प्रकट होने के लिए बाध्य नहीं किया जाता। निस्सन्देह, उन्हें कोई बाध्य नहीं कर सकता क्योंकि वे भगवान् हैं। हर व्यक्ति उनके अधीन है, किन्तु वे किसी अन्य के अधीन नहीं हैं। जो मूर्ख लोग अज्ञान के कारण सोचते हैं कि वे कृष्ण के समकक्ष हैं या कृष्ण बन सकते हैं उनकी हर तरह से निन्दा की जाती है। कोई न तो कृष्ण के तुल्य है, न उनसे बढ़कर; इसीलिए उन्हें *असमौर्ध्व* कहा गया है। विश्वकोश के अनुसार माया शब्द का प्रयोग मिथ्या अहंकार के रूप में किया जाता है और दया के रूप में भी। सामान्य जीव जिस शरीर में प्रकट होता है वह उसके लिए एक प्रकार से दण्ड है। जैसा कि भगवान् *भगवद्गीता* (७.१४) में कहते हैं—*दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया*—मेरी इस दैवी शक्ति को, जो तीन भौतिक गुणों से बनी है, पार कर पाना दुष्कर है। लेकिन जब श्रीकृष्ण अवतरित होते हैं तो माया का अर्थ होता है भक्तों तथा पतितात्माओं पर कृष्ण की कृपा या अनुग्रह। भगवान् अपनी शक्ति से हर एक का भी उद्धार कर सकते हैं चाहे वह पापी हो या पुण्यात्मा।

यन्मायाचेष्टितं पुंसः स्थित्युत्पत्त्यप्ययाय हि ।
अनुग्रहस्तन्निवृत्तेरात्मलाभाय चेष्यते ॥ ५८ ॥

शब्दार्थ

यत्—जो भी; **माया-चेष्टितम्**—भगवान् द्वारा बनाये गये प्रकृति के नियम; **पुंसः**—जीवों की; **स्थिति**—जीवन अवधि; **उत्पत्ति**—जन्म; **अप्ययाय**—संहार के लिए; **हि**—निस्सन्देह; **अनुग्रहः**—कृपा; **तत्-निवृत्तेः**—जन्म-मृत्यु के चक्र को रोकने के लिए विराट शक्ति की सृष्टि तथा प्राकट्य; **आत्म-लाभाय**—भगवद्धाम जाने के लिए; **च**—निस्सन्देह; **इष्यते**—इसी उद्देश्य से सृष्टि हुई है।

भगवान् अपनी माया के माध्यम से इस विराट जगत के सृजन, पालन तथा संहार का कार्य करते हैं जिससे वे अपनी दया से जीव का उद्धार कर सकें और जीव के जन्म, मृत्यु तथा भौतिक जीवन की अवधि को रोक सकें। इस तरह वे जीव को भगवद्धाम लौटने में सक्षम बनाते हैं।

तात्पर्य : भौतिकतावादी लोग कभी-कभी पूछते हैं कि ईश्वर ने जीवों के कष्ट के लिए भौतिक जगत की सृष्टि क्यों की? भौतिक सृष्टि निश्चय ही उन बद्धजीवों को कष्ट पहुँचाने के लिए है जो भगवान् के अंश स्वरूप हैं जैसा कि भगवान् ने स्वयं *भगवद्गीता* (१५.७) में पुष्टि की है—

ममैवांशो जीवलोके जीवभूत: सनातन:।

मन: षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति॥

"इस बद्ध जगत में जीव मेरे नित्य अंश हैं। बद्ध जीवन के कारण वे मन समेत छहों इन्द्रियों से कठिन संघर्ष कर रहे हैं।" सारे जीव भगवान् के अंश रूप हैं और गुणात्मक रूप से भगवान् के ही समान हैं, किन्तु मात्रात्मक रूप से उनमें महान् अन्तर है क्योंकि भगवान् असीम हैं और जीव सीमित है। इस प्रकार भगवान् में असीम ह्लादिनी शक्ति होती है, किन्तु जीव में यह सीमित होती है। *आनन्दमयोऽभ्यासात्* (*वेदान्त सूत्र* १.१.१२)। भगवान् तथा जीव दोनों ही गुणात्मक दृष्टि से आत्मा होने के कारण शान्तिपूर्ण भोग करना चाहते हैं, किन्तु जब भगवान् का अंश दुर्भाग्यवश स्वतंत्र रूप से कृष्ण के बिना भोग करना चाहता है तो उसे भौतिक जगत में डाल दिया जाता है जहाँ वह अपना जीवन ब्रह्मा से प्रारम्भ करके धीरे-धीरे एक चींटी या मल के कीट के पद तक उतार दिया जाता है। यही *मन: षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति* है। जीवन के लिए महान् संघर्ष चलता है क्योंकि माया द्वारा बद्ध किया गया जीव पूरी तरह प्रकृति के वश में रहता है (*प्रकृते: क्रियमाणानि गुणै कर्माणि सर्वश:*)। मनुष्य अपने सीमित ज्ञान के कारण सोचता है कि वह इस भौतिक जगत में भोग कर रहा है। *मन: षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।* वास्तव में वह प्रकृति के पूर्ण वशीभूत रहता है; फिर भी वह अपने को स्वतंत्र मानता है (*अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते*)। जब वह चिन्तनपरक ज्ञान के द्वारा ऊपर उठकर ब्रह्म से तदाकार होना चाहता है तो भी यही रोग चलता रहता है। *आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं तत: पतन्त्यध:* (*भागवत* १०.२.३२)। उस *परं पदम्* को प्राप्त करके तथा निर्विशेष ब्रह्म में तल्लीन होकर भी वह पुन: भौतिक जगत में आ गिरता है।

इस तरह बद्धजीव इस जीवन के लिए इस जगत में महान् संघर्ष करता है; अतएव भगवान् उस पर अनुग्रह के कारण इस जगत में प्रकट होते हैं और उसे शिक्षा देते हैं। इस प्रकार भगवान् *भगवद्गीता* (४.७) में कहते हैं—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

''हे भारत! जब-जब धर्म का ह्रास होता है और अधर्म का प्राधान्य होता है तब-तब मैं स्वयं अवतरित होता हूँ।'' असली धर्म कृष्ण की शरण ग्रहण करना है लेकिन विद्रोही जीव, कृष्ण की शरण न ग्रहण करके, कृष्ण जैसा बनने के लिए संघर्ष के दौरान अधर्म में लग जाता है। अतएव कृष्ण अनुग्रहवश जीव को अपनी असली स्थिति समझने के लिए अवसर प्रदान करने हेतु इस सृष्टि की रचना करते हैं। *भगवद्गीता* तथा ऐसे ही वैदिक ग्रंथ इसीलिए भेंट किये जाते हैं कि जीव कृष्ण से अपने सम्बन्ध को समझ सके। *वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः* (*भगवद्गीता* १५.१५)। ये सारे वैदिक ग्रंथ मनुष्य को यह समझाने के लिए हैं कि वह क्या है, उसकी असली स्थिति क्या है और भगवान् से उसका क्या सम्बन्ध है। यही *ब्रह्मजिज्ञासा* है। हर बद्ध आत्मा संघर्षरत है, किन्तु मानव जीवन उसे सबसे अच्छा अवसर प्रदान करता है कि वह अपनी स्थिति को समझे। इसीलिए इस श्लोक में *अनुग्रहस्तन्निवृत्तेः* कहा गया है जो सूचित करता है कि जन्म-मृत्यु के चक्र के मिथ्या जीवन को समाप्त हो जाना चाहिए और बद्ध आत्मा को शिक्षा दी जानी चाहिए। सृष्टि का यही प्रयोजन है।

जैसा कि नास्तिक सोचते हैं यह सृष्टि मनमाने ढंग से नहीं उत्पन्न हुई—

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्।

अपरस्परसम्भूतं किमन्यत् कामहैतुकम्॥

''उनका कहना है कि यह जगत असत्य है, इसका कोई आधार नहीं है तथा इसका नियंत्रण करने वाला कोई ईश्वर नहीं है। यह तो कामेच्छा से उत्पन्न होता है और कामवासना के अतिरिक्त इसका कोई अन्य कारण नहीं है।'' (*भगवद्गीता* १६.८)। नास्तिक धूर्त सोचते हैं कि ईश्वर नहीं है और यह सृष्टि वैसे ही (संयोगवश) बन गई है जिस तरह स्त्री तथा पुरुष का मिलन संयोग की बात होती है और तब स्त्री गर्भवती

हो जाती है और शिशु को जन्म देती है। लेकिन वास्तव में यह तथ्य नहीं है। तथ्य तो यह है कि इस सृष्टि के पीछे एक प्रयोजन है—वह है बद्धजीव को उसकी मूल चेतना, कृष्णभावनामृत, तक लौटने का अवसर प्रदान करना जिससे वह भगवद्धाम वापस जाकर आध्यात्मिक जगत में पूर्णतया सुखी रह सके। इस जगत में बद्धजीव को अपनी इन्द्रियों को तुष्ट करने का अवसर प्रदान किया जाता है, किन्तु साथ ही उसे वैदिक ज्ञान द्वारा सावधान किया जाता है कि यह भौतिक संसार उसके सुख का असली स्थान नहीं है। *जन्ममृत्युजराव्याधिदु:खदोषानुदर्शनम्* (*भगवद्गीता* १३.९)। मनुष्य को जन्म-मृत्यु के चक्र को बन्द करना होगा। अतएव हर मनुष्य को चाहिए कि इस सृष्टि में आकर कृष्ण को तथा कृष्ण से अपने सम्बन्ध को समझे और इस तरह भगवद्धाम को वापस जाए।

अक्षौहिणीनां पतिभिरसुरैर्नृपलाञ्छनैः ।
भुव आक्रम्यमाणाया अभाराय कृतोद्यमः ॥ ५९ ॥

शब्दार्थ

अक्षौहिणीनाम्—महान् सैन्य शक्ति से युक्त राजाओं की; **पतिभिः**—ऐसे राजाओं या सरकार के द्वारा; **असुरैः**—असुर (उन्हें ऐसी सैन्य शक्ति की आवश्यकता नहीं रहती फिर भी वे व्यर्थ में ही सेना रखते हैं); **नृप-लाञ्छनैः**—जो राजा बनने योग्य नहीं हैं (यद्यपि उन्होंने किसी तरह सरकार हथिया रखी है); **भुवः**—पृथ्वी पर; **आक्रम्यमाणायाः**—एक दूसरे पर आक्रमण करने का लक्ष्य बनाकर; **अभाराय**—पृथ्वी से असुरों की संख्या कम करने का मार्ग प्रशस्त करते हुए; **कृत-उद्यमः**—उत्साही (वे सैन्य शक्ति बढ़ाने में ही सारी पूँजी व्यय कर देते हैं)।

यद्यपि सरकार हथियाने वाले असुरगण सरकारी व्यक्तियों का वेश बनाये रहते हैं, किन्तु उन्हें सरकार के कर्तव्यों का ज्ञान नहीं होता। फलस्वरूप ईश्वर की व्यवस्था से ऐसे महान् सैन्य शक्तिसम्पन्न असुर एक दूसरे से लड़ते-भिड़ते हैं और इस तरह पृथ्वी की सतह से असुरों का महान् भार घटता है। ये असुर भगवान् की इच्छा से अपनी सैन्य शक्ति बढ़ाते हैं जिससे उनकी संख्या घट जाए और भक्तों को कृष्णभावनामृत में प्रगति करने का अवसर प्राप्त हो।

तात्पर्य : जैसा कि *भगवद्गीता* (४.८) में कहा गया है *परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्*। साधुजन अर्थात् भगवान् के भक्त कृष्णभावनामृत को अग्रसर करने के लिए सदैव इच्छुक रहते हैं जिससे बद्धजीव जन्म-मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो सके। किन्तु असुरगण कृष्णभावनामृत आन्दोलन में बाधक बनते हैं; अतएव कृष्ण ऐसे विभिन्न असुरों को समय-समय पर परस्पर लड़ाते रहते हैं जो अपनी सैन्य शक्ति बढ़ाने में अत्यधिक रुचि रखते हैं। सरकार अथवा राजा का कर्तव्य, बिना आवश्यकता के, सैन्य शक्ति

बढ़ाना नहीं है। उनका असली कर्तव्य तो यह देखना है कि प्रजा कृष्णभावनामृत में अग्रसर हो। इसीलिए कृष्ण *भगवद्गीता* (४.१३) में कहते हैं—*चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागश:*—प्रकृति के तीन गुणों तथा निर्दिष्ट कार्य के अनुसार मैंने मानव समाज के चार विभाग किये हैं। मनुष्यों का एक आदर्श वर्ग होना चाहिए जो प्रामाणिक ब्राह्मण हों और उन्हें सभी तरह का संरक्षण प्रदान किया जाना चाहिए। *नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मण-हिताय च।* कृष्ण को ब्राह्मण तथा गौवें अत्यन्त प्रिय हैं। ब्राह्मण कृष्णभावनामृत को अग्रसर कराने वाले हैं और गौवें शरीर को सतोगुणी बनाये रखने के लिए पर्याप्त दूध देती हैं। क्षत्रियों को तथा सरकार को ब्राह्मणों के द्वारा ही सलाह दी जानी चाहिए। वैश्यों को पर्याप्त अन्न उत्पन्न करना चाहिए और शूद्रों को, जो अपने आप कोई लाभप्रद कार्य नहीं कर सकते, चाहिए कि वे तीनों उच्च वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य) की सेवा करें। यह भगवान् की व्यवस्था है जिससे बद्धजीव भौतिक जगत से छूटकर भगवद्धाम वापस जा सकें। कृष्ण द्वारा पृथ्वी पर अवतार लेने का यही प्रयोजन है (*परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्*)।

हर व्यक्ति को चाहिए कि कृष्ण के कार्यकलापों को समझे (*जन्म कर्म च मे दिव्यम्*)। यदि वह इस पृथ्वी पर कृष्ण के आगमन और उनके कार्यकलापों के उद्देश्य को समझ लेता है तो वह तुरन्त मुक्त हो जाता है। यह मुक्ति ही सृष्टि-निर्माण और कृष्ण द्वारा इस पृथ्वी पर अवतार ग्रहण करने का प्रयोजन है। असुरगण ऐसी योजना बनाने में सदैव रुचि दिखलाते हैं जिसमें लोगों को कुत्तों, बिल्लियों तथा शूकरों की तरह कठिन श्रम करना पड़े, किन्तु कृष्ण के भक्तगण तो लोगों को कृष्णभावनामृत सिखलाना चाहते हैं जिससे वे सरल जीवन से एवं कृष्णभावनाभावित प्रगति से तुष्ट रहें। यद्यपि असुरों ने उद्योग तथा कठोर श्रम के लिए अनेक योजनाओं की सृष्टि की है, जिससे लोग दिन-रात पशुओं की तरह काम करें, किन्तु सभ्यता का उद्देश्य यह नहीं है। ऐसे प्रयास तो *जगतोऽहित:* अर्थात् जनता के दुर्भाग्य के निमित्त हैं। *क्षयाय*—ऐसे कार्यों से विनाश होता है। जो भगवान् कृष्ण के प्रयोजन को समझता है उसे चाहिए कि कृष्णभावनामृत आन्दोलन की महत्ता को अच्छी तरह समझे और उसमें गम्भीरता से सम्मिलित हो। मनुष्य को उग्रकर्म अर्थात् इन्द्रियतृप्ति के लिए अनावश्यक कार्य करने का प्रयास नहीं करना चाहिए। *नूनं प्रमत्त: कुरुते विकर्म यदिन्द्रियप्रीतय आपृणोति* (*भागवत* ५.५.४)। लोग केवल इन्द्रियतृप्ति के लिए भौतिक सुख की योजना

बनाते हैं। *मायासुखाय भरमुद्वहतो विमूढान्* (*भागवत* ७.९.४३)। वे ऐसा इसलिए करते हैं क्योंकि वे सभी *विमूढ* हैं। लोग क्षणिक सुख के लिए अपनी मानव शक्ति का अपव्यय करते हैं और कृष्णभावनामृत आन्दोलन की महत्ता को न समझ कर सीधे-सादे भक्तों पर दोषारोपण करते हैं कि वे 'मस्तिष्क धुलाई' कर रहे हैं। असुरगण कृष्णभावनामृत आन्दोलन के प्रचारकों पर झूठा आरोप लगा सकते हैं लेकिन कृष्ण असुरों को इस तरह लड़ाएँगे कि उनकी सारी सैन्य शक्ति उधर ही लग जाएगी और दोनों पक्ष के असुरों का संहार हो जाएगा।

कर्माण्यपरिमेयाणि मनसापि सुरेश्वरैः ।
सहसङ्कर्षणश्चक्रे भगवान्मधुसूदनः ॥ ६० ॥

शब्दार्थ

कर्माणि—कार्यकलाप; अपरिमेयाणि—असीम; मनसा अपि—यहाँ तक कि मन के भीतर सोची गई योजनाओं से भी; सुर-ईश्वरैः—ब्रह्मा तथा शिव जैसे ब्रह्माण्ड के नियन्ताओं द्वारा; सह-सङ्कर्षणः—संकर्षण (बलदेव) समेत; चक्रे—सम्पन्न किया; भगवान्—भगवान्; मधु-सूदनः—मधु नामक असुर को मारने वाले ने।

भगवान् कृष्ण ने संकर्षण बलराम के सहयोग से ऐसे कार्यकलाप कर दिखलाये जो ब्रह्माजी तथा शिवजी जैसे पुरुषों की भी समझ के परे हैं (उदाहरणार्थ कृष्ण ने सारे संसार को राक्षसों से छुटकारा दिलाने के लिए असुरों का वध करने के लिए कुरुक्षेत्र युद्ध की आयोजना की)।

कलौ जनिष्यमाणानां दुःखशोकतमोनुदम् ।
अनुग्रहाय भक्तानां सुपुण्यं व्यतनोद्यशः ॥ ६१ ॥

शब्दार्थ

कलौ—कलियुग में; जनिष्यमाणानाम्—ऐसे बद्धजीवों का जो भविष्य में जन्म लेंगे; दुःख-शोक-तमः-नुदम्—उनके असीम दुख तथा शोक को कम करने के लिए जो अज्ञान के कारण उत्पन्न हैं; अनुग्रहाय—दया दिखाने के लिए; भक्तानाम्—भक्तों के प्रति; सु-पुण्यम्—अत्यन्त पवित्र दिव्य कार्यकलाप; व्यतनोत्—विस्तार किया; यशः—महिमा या ख्याति।

भगवान् ने इस कलियुग में भविष्य में जन्म लेने वाले भक्तों पर अहैतुकी कृपा दर्शाने के लिए इस तरह से कार्य किया कि मात्र उनका स्मरण करने से मनुष्य संसार के सारे शोक-संताप से मुक्त हो जायेगा। (दूसरे शब्दों में, उन्होंने इस तरह कार्य किया जिससे सारे भावी भक्तजन भगवद्गीता में कथित कृष्णभावनामृत के उपदेशों को ग्रहण करके संसार के कष्टों से छुटकारा पा सकें)।

तात्पर्य : भक्तों की रक्षा एवं असुरों का वध—भगवान् के दोनों ही कार्य साथ-साथ चलते हैं

(*परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्*)। कृष्ण वस्तुतः साधुओं या भक्तों के उद्धार करने के लिए प्रकट होते हैं, किन्तु असुरों को मारकर वे उन पर दया भी दिखाते हैं क्योंकि जो भी भगवान् के हाथों से मरता है उसको मुक्ति मिलती है। अतएव भगवान् चाहे मारें या रक्षा करें, वे असुर तथा भक्त दोनों पर ही दयालु होते हैं।

यस्मिन्सत्कर्णपीयुषे यशस्तीर्थवरे सकृत् ।
श्रोत्राञ्जलिरुपस्पृश्य धुनुते कर्मवासनाम् ॥ ६२॥

शब्दार्थ

यस्मिन्—धरा पर कृष्ण के दिव्य कार्यकलापों के इतिहास में; **सत्-कर्ण-पीयुषे**—जो दिव्य एवं शुद्ध कानों की आवश्यकताओं को पूरा करता है; **यशः-तीर्थ-वरे**—भगवान् के दिव्य कार्यकलापों का श्रवण करके पवित्र स्थानों में रखते हुए; **सकृत्**—एक बार ही, तुरन्त; **श्रोत्र-अञ्जलिः**—दिव्य संदेश का श्रवण करते हुए; **उपस्पृश्य**—स्पर्श करके (जिस तरह गंगाजल को); **धुनुते**—नष्ट कर देता है; **कर्म-वासनाम्**—सकाम कर्मों के लिए प्रबल इच्छा को।.

शुद्ध हुए दिव्य कानों से भगवान् के यश को ग्रहण करने मात्र से भक्तगण प्रबल भौतिक इच्छाओं एवं सकाम कर्मों की व्यस्तता से तुरन्त ही मुक्त हो जाते हैं।

तात्पर्य : जब भक्तगण *भगवद्‌गीता* तथा *श्रीमद्भागवत* में वर्णित भगवान् के कार्यकलापों का श्रवण करते हैं तो उन्हें तुरन्त ही दिव्य दृष्टि प्राप्त हो जाती है जिसके पश्चात् वे भौतिकतावादी कार्यकलापों में तनिक भी रुचि नहीं रखते। इस तरह उन्हें भौतिक जगत से मुक्ति मिल जाती है। लगभग हर व्यक्ति इन्द्रियतृप्ति के लिए भौतिकतावादी कार्यकलापों में लगा रहता है जिससे *जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि* की प्रक्रिया बढ़ती जाती है, किन्तु भक्त मात्र *भगवद्‌गीता* का सन्देश सुनकर तथा *श्रीमद्भागवत* की कथाओं का स्वाद लेकर इतना शुद्ध बन जाता है कि उसे भौतिकतावादी कार्यकलापों के प्रति कोई रुचि नहीं रहती। इस समय पश्चिमी देशों में भक्तगण कृष्णभावनामृत द्वारा आकृष्ट हो रहे हैं और भौतिकतावादी कार्यकलापों से विकृष्ट हो रहे हैं; इसीलिए लोग इस आन्दोलन का विरोध करने का प्रयत्न कर रहे हैं। किन्तु यूरोप तथा अमरीका में भक्तों के कार्यकलापों पर कृत्रिम रोक लगाकर वे इस आन्दोलन को रोक नहीं सकते। यहाँ पर *श्रोताञ्जलिरुपस्पृश्य* शब्द बताते हैं कि भगवान् के दिव्य कार्यकलापों के श्रवण मात्र से भक्तगण इतने शुद्ध हो जाते हैं कि उन्हें सांसारिक सकाम कार्यकलापों का दूषण व्यापता नहीं। *अन्याभिलाषिताशून्यम्।* आत्मा के लिए भौतिकतावादी कार्यकलाप व्यर्थ हैं; अतएव भक्तगण ऐसे कार्यों से मुक्त हो जाते हैं। भक्तगण मुक्ति

में स्थित रहते हैं (*ब्रह्मभूयाय कल्पते*) अतएव उन्हें उनके भौतिक घरों तथा कार्यों में फिर से वापस नहीं बुलाया जा सकता।

भोजवृष्ण्यन्धकमधुशूरसेनदशार्हकैः ।
श्लाघनीयेहितः शश्वत्कुरुसृञ्जयपाण्डुभिः ॥ ६३ ॥
स्निग्धस्मितेक्षितोदारैर्वाक्यैर्विक्रमलीलया ।
नृलोकं रमयामास मूर्त्या सर्वाङ्गरम्यया ॥ ६४ ॥

शब्दार्थ

भोज—भोज; वृष्णि—तथा वृष्णि वंश द्वारा; अन्धक—तथा अन्धकों द्वारा; मधु—तथा मधुवंशियों द्वारा; शूरसेन—तथा शूरसेनों द्वारा; दशार्हकैः—तथा दशार्हकों द्वारा; श्लाघनीय—प्रशंसनीय; ईहितः—प्रयास करते हुए; शश्वत्—सदैव; कुरु-सृञ्जय-पाण्डुभिः—पांडवों, कौरवों तथा सृञ्जयों की सहायता से; स्निग्ध—स्नेहिल; स्मित—हँसी; ईक्षित—माने जाने वाले; उदारैः—उदार; वाक्यैः—वचनों द्वारा; विक्रम-लीलया—वीरतापूर्ण लीलाऐ; नृ-लोकम्—मानव समाज को; रमयाम् आस—प्रसन्न किया; मूर्त्या—अपने साकार रूप से; सर्व-अङ्ग-रम्यया—ऐसा स्वरूप जो अपने सारे शारीरिक अंगों से हर एक को प्रमुदित करता है।

भगवान् कृष्ण ने भोज, वृष्णि, अन्धक, मधु, शूरसेन, दशार्ह, कुरु, सृञ्जय तथा पाण्डु के वंशजों की सहायता से विविध कार्यकलाप सम्पन्न किये। अपनी मोहक मुस्कान, अपने स्नेहिल आचरण, अपने उपदेशों और गोवर्धन पर्वत धारण करने जैसी अलौकिक लीलाओं के द्वारा भगवान् ने अपने दिव्य शरीर में प्रकट होकर सारे मानव समाज को प्रमुदित किया।

तात्पर्य : *नृलोकं रमयामास मूर्त्या सर्वाङ्गरम्यया* शब्द महत्त्वपूर्ण हैं। कृष्ण आदि रूप हैं अतएव भगवान् को यहाँ पर *मूर्त्या* शब्द से बतलाया गया है। मूर्ति का अर्थ है 'रूप'। कृष्ण या ईश्वर कभी निराकार नहीं होते। निराकार स्वरूप तो उनके दिव्य शरीर की अभिव्यक्ति है (*यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्ड कोटि*)। भगवान् नराकृति हैं—मनुष्य के स्वरूप से ठीक मिलते-जुलते, किन्तु उनका स्वरूप हमसे भिन्न होता है। अतएव *सर्वांगरम्यया* शब्द बतलाते हैं कि उनके शरीर का अंग-प्रत्यंग देखने में सभी को मनोहर लगता है। उनके हँसते हुए मुख के अतिरिक्त उनके शरीर का हर अंग—उनके हाथ, उनके पाँव, उनकी छाती—भक्तों को मनोहर लगने वाले हैं जो भगवान् के सुन्दर रूप को देखते हुए कभी भी टकटकी नहीं लगा सकते।

यस्याननं मकरकुण्डलचारुकर्ण-
भ्राजत्कपोलसुभगं सविलासहासम् ।
नित्योत्सवं न ततृपुर्दृशिभिः पिबन्त्यो
नार्यो नराश्च मुदिताः कुपिता निमेश्च ॥ ६५ ॥

शब्दार्थ

यस्य—जिसके; आननम्—मुखमंडल; मकर-कुण्डल-चारु-कर्ण—मगर जैसे कुण्डलों से आभूषित तथा सुन्दर कानों से; भ्राजत्—चमचमाते हुए; कपोल—मस्तक; सुभगम्—सारे ऐश्वर्य की घोषणा करने वाले; स-विलास-हासम्—भोग की हँसी से युक्त; नित्य-उत्सवम्—जब भी कोई उन्हें देखता है उत्सव जैसा अनुभव होता है; न ततृपुः—सन्तुष्ट नहीं हुआ; दृशिभिः—भगवान् के स्वरूप को देखकर; पिबन्त्यः—आँखों से मानो पी रही हों; नार्यः—वृन्दावन की सारी स्त्रियाँ; नराः—सारे पुरुष भक्त; च—भी; मुदिताः—पूर्णतया सन्तुष्ट; कुपिताः—क्रुद्ध; निमेः—आँखे झपकने के कारण होनेवाले व्यवधान से; च—भी।

कृष्ण का मुखमण्डल मकराकृति के कुण्डलों से सुसज्जित है। उनके कान सुन्दर हैं, उनके गाल चमकीले हैं और उनकी हँसी हर एक को आकृष्ट करने वाली है। जो भी कृष्ण का दर्शन करता है मानो उत्सव देख रहा हो। उनका मुख तथा शरीर देखने में हर एक को पूर्णतया तुष्ट करनेवाले हैं लेकिन भक्तगण स्त्रष्टा से क्रुद्ध हैं कि उन्होंने भक्तोंकी आँखों के झपकने में व्यवधान उत्पन्न कर दिया है।

तात्पर्य : जैसा कि स्वयं भगवान् ने *भगवद्गीता* (७.३) में कहा है—

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।

यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वत: ॥

''हजारों मनुष्यों में से कोई एक सिद्धि के लिए प्रयत्न करता है और जिन्होंने सिद्धि प्राप्त कर ली है उनमें से मुश्किल से कोई एक मुझे वास्तव में जानता है।'' जब तक कोई कृष्ण को समझने के योग्य नहीं होता तब तक वह पृथ्वी पर कृष्ण की उपस्थिति को समझ नहीं पाता। भोज, वृष्णि, अन्धक, पाण्डव तथा कृष्ण से सम्बन्धित अनेक अन्य राजाओं में से कृष्ण एवं वृन्दावन के निवासियों के घनिष्ठ सम्बन्ध विशेष तौर पर विचार करने योग्य हैं। इस सम्बन्ध को इस श्लोक में *नित्योत्सवं न ततृपुर्दृशिभि: पिबन्त्य:* शब्दों द्वारा बतलाया गया है। विशेषतया वृन्दावन के निवासी यथा गोप, गाएँ, बछड़े, गोपियाँ, कृष्ण के माता–पिता कभी भी तुष्ट नहीं हुए यद्यपि वे कृष्ण के सुन्दर मुखमण्डल का निरन्तर दर्शन करते थे। यहाँ पर कृष्ण के दर्शन को *नित्य–उत्सव* कहा गया है। वृन्दावन के निवासी लगभग हर क्षण उनका दर्शन करते थे, किन्तु जब वे गाँव से चरागाह में गायों तथा बछड़ों को चराने जाते तो गोपियाँ अत्यन्त दुखित होती थीं क्योंकि वे देखतीं कि कृष्ण रेत पर नंगे पाँव चल रहा है और उसके चरणकमलों में कंकड़ गड़ रहे हैं जिन्हें वे अपने वक्ष:स्थलों पर इसलिए नहीं धारण करती थीं क्योंकि वे सोचती थी कि उनके वक्ष:स्थल पर्याप्त मात्रा में मृदु नहीं हैं। ऐसा सोच–सोचकर ही गोपियाँ प्रभावित हो जातीं और अपने घरों में रो पड़ती थीं। कृष्ण की

ये मित्रतुल्य गोपियाँ कृष्ण को निरन्तर देखती थीं लेकिन पलकें कृष्ण को देखने में बाधा डालती थीं अतएव वे स्रष्टा ब्रह्माजी को कोसती रहती थीं। इसलिए यहाँ पर कृष्ण के मुख की सुन्दरता का विशेष वर्णन हुआ है। नवम स्कन्ध के अन्तिम इस चौबीसवें अध्याय में हम कृष्ण के सौन्दर्य के विषय में संकेत पाते हैं। अब हम दशम स्कन्ध की ओर बढ़ रहे हैं जो कृष्ण का शीर्ष माना जाता है। सम्पूर्ण *श्रीमद्भागवत* पुराण साक्षात् कृष्ण का स्वरूप है और दशम स्कन्ध उनका मुखमंडल है। इस श्लोक से यह संकेत मिलता है कि उनका मुख कितना सुन्दर है। कृष्ण का हँसीला मुख, उनके गाल, होठ, कान के आभूषण, उनका पान चबाना—गोपियाँ इन सबका सूक्ष्म निरीक्षण करती थीं और इस तरह दिव्य आनन्द प्राप्त करती थीं यहाँ तक कि वे कभी भी कृष्ण का मुख देखकर सन्तुष्ट नहीं होती थीं अपितु वे शरीर बनाने वाले की भर्त्सना करती थीं कि उसने पलकें क्यों बनाईं जिनसे उनकी दृष्टि में रुकावट आती थी। इस तरह गोपमित्रों या कृष्ण के मुखमंडल को सजाने में रुचि रखने वाली यशोदा माता से भी बढ़कर गोपियाँ कृष्ण के मुख-सौन्दर्य की प्रशंसा करती थीं।

जातो गतः पितृगृहाद्व्रजमेधितार्थो
हत्वा रिपून्सुतशतानि कृतोरुदारः ।
उत्पाद्य तेषु पुरुषः क्रतुभिः समीजे
आत्मानमात्मनिगमं प्रथयञ्जनेषु ॥ ६६ ॥

शब्दार्थ

जातः—वसुदेव के पुत्र रूप में जन्म लेकर; गतः—चला गया; पितृ-गृहात्—अपने पिता के घर से; व्रजम्—वृन्दावन को; एधित-अर्थः—वृन्दावन के पद को ऊँचा बनाने; हत्वा—मारकर; रिपून्—अनेक असुरों को; सुत-शतानि—सैकड़ों पुत्र; कृत-उरुदारः—हजारों श्रेष्ठ स्त्रियों को पत्नी रूप में स्वीकार करके; उत्पाद्य—उत्पन्न किया; तेषु—उनमें; पुरुषः—परम पुरुष, जो मनुष्य के समान है; क्रतुभिः—अनेक यज्ञों द्वारा; समीजे—पूजा की; आत्मानम्—अपनी (क्योंकि सभी यज्ञों में उन्हीं की पूजा की जाती है); आत्म-निगमम्—वेदों के अनुष्ठानों के अनुसार; प्रथयन्—वैदिक नियमों का विस्तार करते हुए; जनेषु—जनता में।

भगवान् कृष्ण लीला पुरुषोत्तम कहलाते हैं। वे वसुदेव के पुत्र रूप में उत्पन्न हुए, किन्तु तुरन्त ही अपने पिता का घर छोड़कर अपने विश्वासपात्र भक्तों के साथ प्रेम व्यवहार बढ़ाने के लिए वृन्दावन चले गये। वृन्दावन में उन्होंने अनेक असुरों का वध किया और फिर द्वारका लौट गये जहाँ उन्होंने वैदिक नियमों के अनुसार अनेक श्रेष्ठतम स्त्रियों के साथ विवाह किये, उनसे सैकड़ों पुत्र उत्पन्न किये और गृहस्थ जीवन के सिद्धान्तों को स्थापित करने के लिए अपनी ही पूजा के लिए अनेक यज्ञ सम्पन्न किये।

तात्पर्य : जैसा कि *भगवद्गीता* (१५.१५) में कहा गया है—*वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः*—सारे वेदों के द्वारा कृष्ण को ही जाना जाता है। भगवान् कृष्ण ने अपने आचरण से एक आदर्श स्थापित करते हुए वेदवर्णित अनेक अनुष्ठान संपन्न किये और अनेक पत्नियों के साथ विवाह करके तथा उनसे सन्तानें उत्पन्न करके लोगों को यह दिखलाने के लिए कि वैदिक नियमों के अनुसार रहकर किस तरह सुखी बना जा सकता है, गृहस्थ जीवन के नियमों की स्थापना की। कृष्ण वैदिक यज्ञ के केन्द्रबिन्दु हैं (*वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः*)। मनुष्य जीवन में प्रगति करने के लिए मानव समाज को स्वयं भगवान् कृष्ण द्वारा गृहस्थ जीवन में प्रदर्शित वैदिक सिद्धान्तों का पालन करना चाहिए। किन्तु भगवान् कृष्ण के प्राकट्य का असली उद्देश्य तो यह दिखलाना था कि मनुष्य भगवान् के साथ प्रेम व्यापार में किस तरह भाग ले सकता है। भावावेश में प्रेम-व्यापार का आदान-प्रदान वृन्दावन में ही सम्भव है। इसीलिए वसुदेव के पुत्र रूप में प्रकट होते ही उन्होंने तुरन्त वृन्दावन के लिए प्रस्थान किया। वृन्दावन में उन्होंने न केवल अपने माता-पिता, गोपों तथा गोपियों के प्रेम-व्यापार में भाग लिया अपितु अनेक असुरों को मारकर उन्हें मोक्ष प्रदान किया। जैसा कि *भगवद्गीता* (४.८) में कहा गया है—*परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्*—भगवान् भक्तों की रक्षा करने एवं असुरों का वध करने के लिए प्रकट होते हैं। उन्होंने अपने आचरण से इसे भलीभाँति दिखला दिया। *भगवद्गीता* में अर्जुन भगवान् को *पुरुषं शाश्वतं दिव्यम्* के रूप में समझता है। यहाँ भी हमें *उत्पाद्य तेषु पुरुषः* शब्द मिलते हैं। इसलिए हमें यह निष्कर्ष निकालना होगा कि परब्रह्म एक पुरुष हैं। निराकार रूप तो उनके व्यक्तित्व का एक प्रकार है। अन्ततोगत्वा वे *पुरुष* हैं, वे निराकार नहीं हैं। वे न केवल *पुरुष* ही हैं अपितु लीलापुरुषोत्तम हैं और सभी पुरुषों में श्रेष्ठ हैं।

पृथ्व्याः स वै गुरुभरं क्षपयन्कुरूणा-
मन्तःसमुत्थकलिना युधि भूपचम्वः ।
दृष्ट्या विधूय विजये जयमुद्विघोष्य
प्रोच्योद्धवाय च परं समगात्स्वधाम ॥ ६७॥

शब्दार्थ

पृथ्व्याः—पृथ्वी पर; सः—वह (कृष्ण); वै—निस्सन्देह; गुरु-भरम्—बहुत बड़ा भार; क्षपयन्—पूरी तरह हटाने में; कुरूणाम्—कुरुवंशियों का; अन्तः-समुत्थ-कलिना—भाइयों में मनमुटाव द्वारा शत्रुता उत्पन्न करके; युधि—कुरुक्षेत्र के युद्ध में; भूप-चम्वः—सारे असुर राजा; दृष्ट्या—अपने दृष्टिपात से; विधूय—उनके पापकर्मों को शुद्ध करके; विजये—विजय में; जयम्—विजय;

उद्घिघोष्य—घोषणा करके (अर्जुन की विजय); प्रोच्य—उपदेश देकर; उद्धवाय—उद्धव को; च—भी; परम्—दिव्य; समगात्—वापस गया; स्व-धाम—अपने धाम को।.

तत्पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण ने संसार का भार कम करने के लिए पारिवारिक सदस्यों के बीच मनमुटाव उत्पन्न किया। उन्होंने अपनी चितवन मात्र से कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में सारे आसुरी राजाओं का संहार कर दिया और अर्जुन को विजयी घोषित किया। अन्त में वे उद्धव को दिव्य जीवन तथा भक्ति के विषय में उपदेश देकर अपने आदि रूप में अपने धाम को वापस चले गये।

तात्पर्य : *परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।* कृष्ण का कार्य कुरुक्षेत्र के युद्धस्थल में पूरा हुआ क्योंकि भगवान् की कृपा से अर्जुन विजयी हुआ। वह उनका महान् भक्त था और अन्य लोग भगवान् की चितवन मात्र से मारे गये जिससे उनके सारे पापकर्म धुल गये और वे *सारूप्य* को प्राप्त हो सके। अन्त में भगवान् कृष्ण ने उद्धव को भक्ति के दिव्य जीवन का उपदेश दिया और समय आने पर वे अपने धाम लौट गये। *भगवद्गीता* के रूप में भगवान् के उपदेश ज्ञान तथा वैराग्य से पूर्ण हैं। मनुष्य जीवन में ये दो बातें सीख लेनी चाहिए कि भौतिक जगत से किस प्रकार विरक्त हुआ जाय और आध्यात्मिक जीवन में किस प्रकार पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया जाय। यही भगवान् का प्रयोजन है (*परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्*)। अपना कार्य समाप्त करने के बाद भगवान् अपने धाम गोलोक वृन्दावन लौट गये।

इस प्रकार *श्रीमद्भागवत* के नवम स्कन्ध के अन्तर्गत 'भगवान् कृष्ण' नामक चौबीसवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।

भुवनेश्वर (उड़ीसा, भारत) में कृष्णबलराम मन्दिर की स्थापना के अवसर पर नवम स्कंध पूर्ण हुआ।

36312/3/98Preliminary page 1

श्री श्रीगुरु–गौराङ्गौ जयत:

कृष्णद्वैपायन व्यास

कृत

श्रीमद्भागवतम्

स वै मनः कृष्णपदारविन्दयो–

र्वचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने।

करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु

श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये ॥१८॥

(श्रीमद्भागवत ९.४.१८)

preliminary page 2

कृष्णकृपाश्रीमूर्ति श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद द्वारा विरचित वैदिक ग्रंथरत्न :

श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध १-१२ (१८ खण्ड)

श्रीचैतन्य-चरितामृत (७ खण्ड)

भगवान् चैतन्य महाप्रभु का शिक्षामृत

श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु

श्रीउपदेशामृत

श्रीईशोपनिषद्

अन्य लोकों की सुगम यात्रा

कृष्णभावनामृत सर्वोत्तम योगपद्धति

लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण

पूर्ण प्रश्न पूर्ण उत्तर

द्वन्द्वात्मक अध्यात्मवाद:पाश्चात्य दर्शन का वैदिक दृष्टिकोण

देवहूतिनन्दन भगवान् कपिल का शिक्षामृत

प्रह्लाद महाराज की दिव्य शिक्षा

रसराज श्रीकृष्ण

जीवन का स्रोत जीवन

योग की पूर्णता

जन्म-मृत्यु से परे

श्रीकृष्ण की ओर

कृष्णभावनामृत : अनुपम भेंट

राजविद्या

कृष्णभावनामृत की प्राप्ति

पुनरागमन:पुनर्जन्म का विज्ञान

गीतार गान (बंगला)

भगवद्दर्शन (मासिक पत्रिका) :संस्थापक

अधिक जानकारी तथा सूचीपत्र के लिए लिखें

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट,

हरे कृष्ण धाम, जुहू, मुंबई–४०००४९

preliminary page 3

श्रीमद्भागवतम्

(भगवत्–सन्देश)

नवम स्कन्ध

''मुक्ति''

मूल संस्कृत पाठ, शब्दार्थ,

तथा विस्तृत तात्पर्य द्वारा

कृष्णकृपामूर्ति

श्री श्रीमद् अभयचरणारविन्द भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

संस्थापकाचार्य: अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट

लॉस एंजिलिसलंदनस्टॉकहोमसिडनीहाँगकाँगमुंबई

preliminary page 4

इस ग्रंथ की विषयवस्तु में जिज्ञासु पाठकगण अपने निकटस्थ किसी भी इस्कॉन केन्द्र से अथवा निम्नलिखित पते पर पत्र-व्यवहार करने के लिए आमंत्रित हैं

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट

हरे कृष्ण धाम,

जुहू, मुंबई-४०००४९

अनुवादक

(अंग्रेजी-हिन्दी)

डॉ. शिवगोपाल मिश्र

पुनरीक्षक

वधीकाराम अग्रवाल अवकाशप्राप्त निदेशक आकाशवाणी मथुरा

हिन्दी संपादक

श्रीनिवास आचार्य दास

पहला अंग्रेजी संस्करण, १९७५, २०,००० प्रतियाँ

पहला हिन्दी संस्करण, जुलाई, १९९२, २,००० प्रतियाँ

द्वितीय हिन्दी संस्करण, जुलाई, १९९६, २,००० प्रतियाँ

Printer:

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट के लिए श्रील गोपालकृष्ण गोस्वामी द्वारा हरे कृष्ण धाम, जुहू, मुंबई४०००४९ से प्रकाशित

preliminary page 5

विषय-सूची

श्रीमद्भागवतम्

विषय-सूची

अध्याय चौबीस

भगवान् कृष्ण

अध्याय का सारांश

कुन्ती द्वारा सूर्यदेव का आवाहन

वसुदेव की पत्नियाँ तथा सन्ताने

भगवान् के अवतार क्यों ?

पृथ्वी को आसुरी भार से छुटकारा दिलाना

भौतिक कल्मष से मुक्ति

भगवान् के सौन्दर्य का दर्शन नित्य उत्सव

परिशिष्ट लेखक परिचय